दशकुमार चरित

राजकमल अमर साहित्य — २

दण्डीकृत

दशकुमारचरित

अनुवादक

पं० निरंजनदेव आयुर्वेदालंकार

आमुख

डॉ० मोतीचन्द्र

राजकमल

राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

मूल्य पाँच रुपये आठ आने

प्रकाशक :
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड
बम्बई

मुद्रक :
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
देहली

आमुख

संस्कृत साहित्य में दंडिन् का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उनके बारे में कहावत है—'कविर्दण्डिः; कविर्दण्डिः कविर्दण्डिः न संशयः।' राजशेखर ने शारंगधर पद्धति (१७४) में कहा है—त्रयोग्नयास्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः। त्रयोर्दण्डि प्रबंधाश्च त्रिषुलोकेषु विश्रुताः। पर दंडिन् की इतनी ख्याति होते हुए भी संस्कृत साहित्य के अनेक महान् कलाकारों की तरह हमें उनके बारे में बहुत कम पता है। बाद की अनुश्रुति हमें बताती है कि वे तीन ग्रंथों के लेखक थे। प्रायः विद्वानों का मत है कि दशकुमारचरित और काव्यादर्श के लेखक दंडिन् हैं। पर उनका तीसरा ग्रंथ कौन था इसके सम्बन्ध में विद्वानों की राय एक नहीं है। पिशेल उन्हें मृच्छकटिक का लेखक मानकर उनके ग्रंथों की तीन संख्या पूरी कर देते हैं। पर इस मत को अब कोई नहीं मानता। काव्यादर्श में उल्लिखित छंदोविचिति को कुछ विद्वान् दंडिन् की तीसरी कृति मानते हैं, पर इस मत में भी कोई सार नहीं। श्री रामकृष्ण कवि[१] ने अवंति सुन्दरीकथा और अवंतिसुन्दरीकथासार के आधार पर यह बताने का प्रयत्न किया कि अवंतिसुन्दरी कथा दशकुमारचरित की खोई हुई पूर्वपीठिका है। इस ग्रंथ के अनुसार दंडिन् दामोदर के पड़पोते, मनोरथ के पोते और वीरदत्त के पुत्र थे। उनका कुल आनंदपुर से आकर नासिक के आसपास अचलपुर में बस गया था। पर डा० दे ने दशकुमार-चरित और काव्यादर्श के लेखक दंडिन् और अवंतिसुंदरी कथा के लेखक

१. ओरियंटल कान्फ्रेंस प्रोसीडिंग्स एंड ट्रान्सेक्शन्स, १९२३, पृ. १९३ से

दंडिन् को एक नहीं माना है ।[1] अपने मत की पुष्टि में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि अवंतिसुंदरी कथा और दशकुमारचरित की शैली एक-सी न होने से वे ग्रंथ एक ही लेखक की कृति नहीं हो सकते । श्री आगाशे[2] ने तो दशकुमारचरित को भी दंडिन् की कृति नहीं माना है । उन्होंने काव्यादर्श से अनेक उदाहरण दे-देकर यह बताने का प्रयत्न किया है कि काव्यादर्श के लेखक दंडिन् दशकुमारचरित के लेखक दंडिन् से भिन्न थे । दशकुमारचरित में व्याकरण की अनेक भूलें, गद्य में लंबे-लंबे समासों के न होने से ओज की कमी, भावों में ग्राम्यता, कामुकता का स्पष्ट वर्णन, जूआ, चोरी, व्यभिचार, खूनखराबी, ये सब बातें काव्यादर्श में वर्जित हैं, पर दशकुमारचरित की ये जान हैं । पर ऐसी शंकाओं का आधार केवल वह विश्वास है जो यह मान बैठता है कि शास्त्रीय ग्रंथों में जो कुछ नियम दिये गए हैं उनका अक्षरशः पालन करना लेखक के लिए आवश्यक है। पर जैसा संस्कृत साहित्य में प्रायः देखा गया है काव्य सिद्धान्तों के आदेश और उनके पालन में काफ़ी अंतर है । यह बात मान लेने में क्या कठिनाई है कि काव्यादर्श लिखने के पहले दंडिन् की शैली कुछ और थी और उसके बाद कुछ और । मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि दंडिन् गुणाढ्य की बृहत्कथा से बहुत प्रभावित थे । गुणाढ्य ने जिस समाज का चित्रण किया है वह रूढ़िगत संस्कृत साहित्य का काल्पनिक समाज न होकर जीते-जागते, हँसते-खेलते, खाते-खिलाते समाज का चित्र है । ऐसे जीवित समाज के चित्रण के लिए सीधी-सीधी पर चोट करने वाली शैली की आवश्यकता थी और दंडिन् ने उसे बेखटके अपनाया ।

अभी तक दंडिन् का ठीक-ठीक समय भी निश्चित नहीं हो पाया है, पर काव्यादर्श के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे भामह (करीब ७०० ई०) के पहले हुए होंगे । भामह ने दंडिन् के कुछ काव्य-सिद्धान्तों का खंडन किया है जिससे पता चलता है कि दंडिन् भामह के पहले हुए होंगे ।

१. इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १, ३१ से; ३,३९४ से

२. दशकुमारचरित, पृ. XXV से, दूसरी आवृत्ति, बंबई १९१९

श्री कॉलिन्स[१] ने भौगोलिक आधारों पर यह स्थिर करने की चेष्टा की है कि रघुवंश और दशकुमारचरित का समय एक था। उनके अनुसार दशकुमारचरित के भौगोलिक आधार दो तरह के हैं—एक तो उसमें प्राचीन भौगोलिक नाम आये हैं और दूसरे तत्कालीन। अवन्ती, शूरसेन और त्रिगर्त प्राचीन भौगोलिक नाम हैं। विदेह से शायद यहां लिच्छवियों से मतलब है। श्रावस्ती से यहां कॉलिन्स स्थाण्वीश्वर का तात्पर्य मानते हैं, पर उनके इस मत में कोई तथ्य नहीं है। रघु के दिग्विजय का भूगोल रामायण पर आश्रित है। उसमें मत्स्य, सिन्धु-सौवीर सुराष्ट्र और काशी का उल्लेख नहीं है। कॉलिन्स का मत है कि कालिदास का ऐसा करना गुप्तकाल के राजनीतिक फेरबदल का द्योतक है। उस समय मत्स्य मालवा मिल चुके थे तथा क्षत्रपों के जीतने के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सुराष्ट्र को भी मालवे के ही आधीन कर लिया था। काशी कौशाम्बी के साथ मिल चुकी थी, लेकिन इन्दुमती के स्वयम्वर में जो भौगोलिक नाम आये हैं उनमें श्री कॉलिन्स तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का आभास पाते हैं। ये नाम हैं—विदर्भ, मगध, अंग, अवन्ती, अनूप, शूरसेन, कलिंग, पांड्य और उत्तरकोसल। इनमें छः नाम यथा विदर्भ, मगध, अंग, मालव, माहिष्मती और कलिंग दशकुमारचरित में भी आये हैं। कॉलिन्स श्रावस्ती का सम्बन्ध उत्तरकोसल से नहीं जोड़ते। रघुवंश में पांड्यों का जिक्र है पर उसकी जगह दशकुमारचरित में बनवासी का नाम आया है। सुह्म, कामरूप और यवन नाम भी रघुवंश और दशकुमारचरित में समान हैं। दशकुमारचरित में कुछ नाम भी ऐसे हैं जैसे विदर्भ, कोसल, काशी, पुंड्र, आंध्र, लाट और पाटल, जिनका उल्लेख रघुवंश में नहीं मिलता। फिर भी दोनों ग्रंथों में आठ नाम समान हैं, जिनसे शायद यह कयास किया जाता है कि रघुवंश और दशकुमारचरित का समय एक ही रहा होगा।

---

१. एम. कॉलिन्स, जियोग्राफिकल डेटा आफ रघुवंश ऐंड दशकुमारचरित, लाइप्सीज १९०७

रघुवंश और दशकुमारचरित में मालवा उत्तरी साम्राज्य का एक अंग माना गया है। इसी बुनियाद पर कॉलिन्स का ख्याल है कि दंडिन् और कालिदास दोनों ही बाद के गुप्त राजाओं के दरबार में रहे होंगे। अंग देश की राजधानी चम्पा में कॉलिन्स के अनुसार मौर्यवंश राज करता था और उनका सम्बन्ध कॉलिन्स ने मौखरियों से जोड़ने की चेष्टा की। रघुवंश और दशकुमारचरित में विदर्भ से वाकाटकों के राज्य की ओर इशारा माना गया है। कॉलिन्स की राय में वाकाटक अपने को शायद भोज कहते थे। विदर्भ के अन्तर्गत छः राज्य और थे जिनके नाम दशकुमारचरित में अश्मक, कुन्तल, मुरल, ऋषि, कोंकण, और शशिक या नाशिक गिनाये गए हैं।

कॉलिन्स ने रघुवंश और दशकुमारचरित के जो भूगोल की तुलना करके निष्कर्ष निकाले हैं वे मुझे कुछ ठीक नहीं जंचते। बहुत संभव है कि दंडिन् की कथाओं का आधार वृहत्कथा थी और शायद उन कथाओं के प्राचीन भौगोलिक संकेत भी दशकुमारचरित में आ गए। इस बात में कुछ तथ्य है, इसका पता विदर्भ के प्रतिराज्यों के नाम से मिलता है। अश्मक से इस तालिका में बरार के दक्षिण का बोध होता है। कुन्तल की सीमा उत्तर में नर्मदा, दक्षिण में तुंगभद्रा, पश्चिम में अरबसागर और उत्तरपूर्व में और दक्षिणपूर्व में गोदावरी और पूर्वी घाट तक पहुँचती थी। ऋषिक शायद विदर्भ और माहिष्मती के बीच में कहीं रहते थे। अगर वास्तव में ये देश वाकाटकों के राज्य में थे तो इनके नाम वाकाटक अभिलेखों में अवश्य मिलने चाहिएँ, पर सिवाय अश्मक को छोड़कर दूसरा नाम उन लेखों में नहीं मिलता। इसके विपरीत अगर हम इन नामों की खोज सातवाहन अभिलेखों में करते हैं तो हमें फौरन पता चल जाता है कि दशकुमारचरित में वर्णित विदर्भ के छः प्रतिराज्य गुप्तकाल के न होकर सातवाहन युग के थे। यह बात सब पर विदित है कि गुणाढ्य जिनकी कथाओं के आधार पर दशकुमारचरित की रचना हुई सातवाहन युग के थे। सातवाहन राज्य की जो सीमा वृहत्कथा में दी

गई होगी उसीका उल्लेख हम दशकुमारचरित में भी पाते हैं। इस सम्बन्ध में हम पाठकों का ध्यान गौतमीपुत्र की माता बालश्री के नासिक वाले लेख की ओर दिलाना चाहते हैं।[१] बालश्री ने अपने अभिलेख में उन देश और जातियों की तालिका दी है जिन पर गौतमीपुत्र का राज्य था। इस तालिका में असिक शब्द ऋषिक के लिए आया है। मूलक से शायद दशकुमारचरित के मुरल का उद्देश्य है। दशकुमारचरित के कोंकण के लिए इस लेख में अपरांत शब्द का उल्लेख किया गया है; विदर्भ दोनों ही में समान है।[२]

श्री आगाशे तो दशकुमारचरित को ग्यारहवीं सदी की कृति मानते हैं। अपने मत की पुष्टि में श्री आगाशे का कहना है कि जिस सामाजिक दशा का वर्णन दशकुमारचरित में आया है वह ग्यारहवीं सदी की है। उनकी राय में दण्डिन् को मुसलमानी व्यापारियों का पता था इसलिए दशकुमारचरित १०वीं सदी के बाद का होना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने हीरों के यवन व्यापारी खनति और यवन नाविक रामेषु को, जिनका उल्लेख दशकुमारचरित में हुआ है, मुसलमान व्यापारी मान लिया है, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। यवन खनति की व्युत्पत्ति ईरानी कन्दन, जिसका अर्थ खोदना होता है, से की जा सकती है। डा० उनवाला ने मुझे बताया है कि रामेषु तो निश्चयपूर्वक सीरियन शब्द है जिसके अर्थ होते हैं 'सुंदर ईसा'। अगर उपर्युक्त शब्दों की व्युत्पत्ति ठीक है तो निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि दशकुमारचरित छठी सदी का होना चाहिए, जब भारत के समुद्री व्यापार पर ईरानियों का काफी प्रभाव था। मैं 'प्राचीन भारतीय वेषभूषा'[3] में दिखला चुका हूँ कि अजंता के तथाकथित ईरानी प्रणिधिवर्ग के चित्रण में वास्तव में किसी भारतीय राजा के पास सीरियन व्यापारियों द्वारा भेंट देने का

---

१. रैप्सन् कैटलाग ऑफ इंडियन क्वाइन्स, पृष्ठ XXX से

२. वही, पृ० XXXVIII से

३. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ० २११-२१२

चित्रण है। इस बात से भी इसकी पुष्टि हो जाती है कि सीरियन व्यापारी भारतीय बन्दरगाहों में बराबर व्यापार के लिए आया-जाया करते थे। श्री आगाशे का यह मत कि दशकुमारचरित में ११वीं सदी की सामाजिक अवस्था का चित्रण है विशेष महत्त्व नहीं रखता, क्योंकि दशकुमारचरित में जिस समाज का हम दर्शन करते हैं उसी तरह के समाज का दर्शन हम शूद्रक के मृच्छकटिक, बुधस्वामिन् के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह और संघदास के वसुदेव हिंडी में पाते हैं। ये सब ग्रंथ ईसा की छठी सदी के पहले के हैं। इसलिए दंडिन् का भी समय पांचवीं-छठी सदी होना चाहिए।

यह बहुत संभव है कि दंडिन् ने अपनी कथाओं का रूप और कहने का ढंग गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया। दशकुमारचरित में गुणाढ्य अथवा बृहत्कथा का कोई सीधा उल्लेख तो नहीं आया है, पर दशकुमार-चरित के प्रथम उच्छ्वास में सुरतमंजरी कहती है कि वेगवत का पौत्र और मानसवेग का पुत्र वीरशेखर विद्याधरों के सम्राट् के संतान का वैरी था। इस उल्लेख से पता चल जाता है कि दंडिन् को बृहत्कथा का पता था। बृहत्कथा की कहानियों में जिस तरह नरवाहनदत्त के साथी उनसे मिलकर अनेक विचित्र घटनाओं और साहसिक कार्यों का वर्णन करते हैं उसी तरह दशकुमारचरित के पात्र भी। कुछ विद्वानों की राय है कि दंडिन् दशकुमारचरित को काफ़ी बड़ा बनाना चाहते थे पर किसी कारणवश वे ऐसा न कर सके। जिस दशा में दशकुमारचरित प्राप्त है उससे तो यही पता चलता है कि बिना उसका आदि-अंत लिखे हुए ही दंडिन् ने उसे अधूरा छोड़ दिया। बाद के लेखकों ने उसमें पूर्व-पीठिका और उत्तरपीठिका जोड़ दिया। पूर्वपीठिका के लेखक के नाम का तो पता नहीं चलता पर उत्तरपीठिका के लेखक कोई चक्रपाणि दीक्षित थे जिनके बारे में कुछ पता नहीं चलता। लगता है, पूर्वपीठिका दंडिन्कृत होने में कुछ प्राचीन पंडितों को भी संदेह था, इसलिए भट्टनारायण नामक एक विद्वान् ने एक दूसरी पूर्वपीठिका लिखी जिसमें

दशकुमारचरित के उच्छ्वासों का क्रमबद्ध वर्णन है।

छपे हुए दशकुमारचरित में जो पूर्वपीठिका मिलती है उसमें तो केवल पहली कहानी के पहले की भूमिका होनी चाहिए थी, पर उसमें दशकुमारचरित के दसकुमारों की कहानी पूरी करने के लिए दो कुमारों की कथाएं जोड़ दी गई हैं। दंडिन् ने तो अपनी कहानियों में केवल आठ कुमारों की कहानियां दी हैं और उनमें भी आठवीं कहानी अधूरी है। पूर्वपीठिका में अर्थपाल, प्रमति और विश्रुत की जो वंश-परम्पराएं दी गई हैं उन वंश-परम्पराओं का मेल दंडिन् की कहानियों में दी गई वंश-परम्पराओं से नहीं खाता। दंडिन् की कहानी में अर्थपाल और प्रमति कामपाल के क्रमशः कान्तिमती और तारावली से पुत्र हैं पर पूर्वपीठिका में अर्थपाल को तारावली का पुत्र माना गया है तथा प्रमति को मंत्री सुमति का पुत्र माना गया है। दंडिन् के अनुसार विश्रुत के दादा सिंधुदत्त और पिता वैश्रवण थे, पर पूर्वपीठिका में उसके दादा का नाम पद्मोद्भव दिया गया है। कीथ के अनुसार पूर्वपीठिका में दी गई सोमदत्त, मित्रगुप्त और मंत्रगुप्त की वंशावलियां बनावटी हैं। दंडिन् के अनुसार तो ये कुमार दूसरी स्त्रियों से कामपाल के पुत्र और राजवाहन के सौतेले भाई थे। दंडिन् की कहानी में जब चण्डवर्मन् राजकुमार राजवाहन को राजकुमारी के पास देखता है तो उसे धर्म की आड़ में लोगों को धोखा देनेवाला कहता है, पर पूर्वपीठिका में इस घटना का उल्लेख नहीं आता। उसमें तो राजवाहन को एक जादूगर की सहायता से अपना काम साधते बतलाया गया है। उपहारवर्मन् की कहानी में तो यह बात साफ तौर से कही गई है कि उसे एक ऋषि ने पाला, पर पूर्वपीठिका में यह काम एक राजा को सौंपा गया है। पूर्वपीठिका के अंत का भी पहली कहानी से मेल नहीं खाता। दंडिन् के अनुसार राजकुमारी के साथ भोग-विलास करने के बाद उसके प्रेम के पुनः उद्दीपन के लिए राजवाहन ने प्रेम-कथाएं कहीं, पर पूर्वपीठिका में तो यह अवसर प्रथम संगम का माना गया है और यह

कहा गया है कि राजकुमारी के श्रवण-सुख के लिए ही ये कहानियां कही गईं। पूर्वपीठिका में यह भी कहा गया है कि उन कहानियों के विषय शृंगारिक न होकर ब्राह्मणों के चौदह लोक थे। पर जैसा दंडिन् ने छठी कथा में स्वयं कहा है, उसका उद्देश्य प्राचीन शृंगारिक कथाएं कहना था। दशकुमारचरित के अंत से पता लगता है कि दण्डिन् एक आदर्श राजा का चित्रण खींचना चाहते थे, पर पूर्वपीठिका में इसका पता नहीं चलता। दंडिन् का मुख्य उद्देश्य कहानी कहना था, इसीलिए दशकुमार-चरित में उपदेश देने की प्रवृत्ति कम दीख पड़ती है। कहानी कहने के लिए सीधी-सादी चलती हुई भाषा की आवश्यकता होती है और शायद इसीलिए गुणाढ्य की मनोहारी शैली का दंडिन् ने उपयोग किया। अलंकारों और समासों की मदद से शैली में गम्भीरता का प्रयत्न दशकुमार-चरित में नहीं दीख पड़ता। दशकुमारचरित का मुख्य उद्देश्य जन-जीवन की, जिसमें बड़े-छोटे सब आ जाते हैं, झलकें दिखलाना था। कहानियों में हम जादूगर और पाखंडी साधु, राजकुमारियां और राजे-महाराजे, वेश्याएं और चोर तथा प्रेम से अंधे बने हुए कामुकों का चित्र देखते हैं। राक्षसों का तो कभी-कभी दर्शन हो जाता है, पर देवता बेचारे कहानियों में जगह नहीं पाते। कहानियों के चरित-नायक द्वारा पर-स्त्री-हरण और ख़ूनखराबे को उचित साबित करने के लिए शास्त्रों के वचन उद्धृत किये गए हैं। अपहारवर्मन् चोरों का राजा है जो कर्णीसुत मूलदेव कृत चौर्य-शास्त्र के सहारे चोरी करता है हालाँकि उसके चोरी का उद्देश्य एक लुटे हुए भलेमानस की सहायता करना और नगर के कंजूसों को लूटना है। मंत्रगुप्त एक बेवकूफ राजा को इसलिए समुद्र में स्नान करने के लिए उकसाता है कि उससे उसकी सुंदरता बढ़ जायगी। फिर उसे धोखे से मारकर स्वयं उसकी जगह प्रकट होकर लोगों से कहता है कि भगवान की कृपा से राजा का रूप बदल गया। धोखेबाजी से अपने एक साथी को बढ़ावा देने के लिए विश्रुतदुर्गा के नाम का सहारा लेता है। दंडिन् ने ब्राह्मणों का मज़ाक तो उड़ाया है ही, दिगंबर जैन और बौद्ध भी उसकी चोट से

नहीं बच पाए हैं। व्यापारी का हिंदू बेटा वसुपालित काममंजरी से लुटकर नंगा बन गया। बाद में वह दिगंबर साधु बन बैठा। अपहारवर्मन् से मिलने पर उसने कहा कि लोभ और उपवास से उसे तकलीफ़ पहुँचती थी और वह जैनों द्वारा हिंदू देवी-देवताओं को गाली दिया जाना नहीं सह सकता था। कुछ बौद्ध भिक्षुणियों को कुटनियां बताया गया है।

ब्राह्मणों और देवताओं की हँसी तो दशकुमारचरित में साधारण बात है। एक जगह दंडिन् ने ब्राह्मणों को धरणितलतैतिल यानी पृथ्वी का गैंडा कहकर उनकी हँसी उड़ाई है। इसके विपरीत पूर्वपीठिका में ब्राह्मणों की महिमा गाई गई है और लड़ाइयों में जीत का श्रेय देवताओं को दिया गया है। बिल साधना, मसान जगाना, सिद्धांजन इत्यादि तत्कालीन मूढ़ विश्वासों का भी उल्लेख बेखटके किया गया है।

दशकुमारचरित के प्रधान पात्र तो जीते जागते हैं ही, उसके मामूली पात्र भी गतिवान हैं। मारीचि ऋषि, व्यापारी वसुपालित, वेश्या काममंजरी, मुर्गों की लड़ाई के समय प्रमति से मिलने वाला बूढ़ा ब्राह्मण पांचालशर्मा, राजकुमारी के प्यार के धोखे में पड़ा हुआ शहर कोतवाल कांतक, इन सब के चित्र बड़ी खूबसूरती से खींचे गए हैं।

संस्कृत-साहित्य में मर्यादित हास्य की कमी है, पर दशकुमारचरित की हँसी और फबतियां तो आजकल के हास्य जैसी लगती हैं। दश-कुमारचरित के पात्र चाहे वे राजा हों या रंक, अपना काम पूरा कर दिखलाने पर तैयार रहते हैं; उन्हें धर्म-अधर्म का कोई विचार नहीं होता और इसीलिए उनके करतब बहुधा हमें हँसाते हैं। तपस्वी मारीचि और वेश्या काममंजरी की कहानी हँसी से भरी है। काममंजरी मारीचि के पास जाकर तपस्या की नकल साधती है। बेचारे ऋषि उसका ध्यान तपस्या की कठिनाइयों पर खींचते हैं और उसकी मां से उसे कुछ दिन आश्रम में छोड़ देने को कहते हैं जिससे उसकी अक्ल ठीक हो जाय; लेकिन सबक उल्टा तपस्वी को लेना पड़ता है। अपहारवर्मन् चंपा के कंजूस व्यापारियों को लूटने के लिए चोरी करता है। बड़ी होशियार काम-

मंजरी को भी उससे मात खानी पड़ी। उसने धनमित्र को एक बटुआ राजा के पास ले जाने को कहा और यह बतलाने को कहा कि एक ऋषि के प्रभाव से उस बटुए में यह सिफ्त थी कि वह धन से किसी वेश्या का घर भर दे, पर केवल शर्त एक थी कि वह वेश्या लोगों का लूटा धन लौटा दे और खूब दान-दक्षिणा दे। इस तरह बटुए की बड़ी शोहरत मच गई। इसी बीच में अपहारवर्मन् काममंजरी की बहन रागमंजरी के प्रेम में फँस गया। काममंजरी की एक बौद्ध-दूतिका के मार्फत यह बात पक्की पाई कि धनमित्र से बटुआ चुराकर काममंजरी के हवाले करने पर रागमंजरी उसकी हो जायगी। मिलीभगत के अनुसार बटुआ काममंजरी के हाथ लगा। उधर अपहारवर्मन् ने धनमित्र के राजा के पास जाकर फ़रियाद करने को कहा कि बटुआ काममंजरी ने चोरी कर लिया था। काममंजरी ने बहकावे में आकर अपनी लूटी हुई रकम लोगों को लौटा दी थी। अपहारवर्मन् से उकसाई जाकर काम-मंजरी ने बटुआ चुराने का दोष अर्थपति के सर मढ़ दिया। राजा ने उसके मारने की आज्ञा जारी कर दी, पर धनमित्र के यह कहने पर कि मौर्यों की आज्ञा से ऐसे कुसूरों के लिए वैश्य अवध्य थे, राजा ने अर्थपति को देश-निकाला का दण्ड दिया। अपहारवर्मन् ने तरस खाकर अर्थपति की जब्त रकम से कुछ रकम काममंजरी को दिलवा दी। इस तरह अपहारवर्मन् की पूरी कहानी में हँसी का पुट है। मित्रगुप्त चन्द्रसेना को एक ऐसा अंजन देना चाहता है जिसके लगाने से वह बंदरिया-सी दीख पड़े। पर वह बंदरिया बनने को तैयार नहीं थी। अर्थपाल एक स्त्री की तुलना उस राजलक्ष्मी से करता है जो बुरे राजाओं के दर्शन से बचने के लिए पाताल में घुस गई हो।

दंडिन् का संस्कृत-गद्य पर पूरा अधिकार है। उसकी भाषा सीधी-सादी और आडंबर-रहित है, पर कहीं-कहीं वर्णनों में उसने भाषा पर अपना अधिकार बतलाया है। ठीक-ठीक भाव-प्रदर्शन उसके गद्य की जान है। उसकी शब्द-योजना ऐसी है जिससे रस स्वयं छलक पड़ता है। उसके

वर्णन कभी दुहराए नहीं जाते। सुन्दर राजकन्याओं के नखशिख के वर्णन अद्वितीय हैं। एक जगह प्रभात की शोभा का काफी सुन्दर शाब्दिक चित्रण है। एक भयंकर अकाल का वर्णन करते हुए उसने कथा-साहित्य में सादृश्यवाद का सुंदर रूप उपस्थित किया है।

हम पहले कह आए हैं कि दशकुमारचरित में भारतीय समाज के निम्नस्तर का दिग्दर्शन है तथा राजाओं के षड्यन्त्र और राजमहलों में होनेवाले दुराचारों की ओर संकेत है। दशकुमारचरित के राजा और राजकुमार कामुकता के शिकार दिखलाए गए हैं जो अपना मतलब गाँठने के लिए कोई भी काम कर गुजरने से नहीं हिचकिचाते थे। शायद इसीलिए विश्रुत की कहानी में दंडिन् ने विदर्भ के राजा पुण्यवर्मन् के चरित्र में एक आदर्श राजा की तसवीर खींची है। पुण्यवर्मन् सुन्दर, बलवान, बुद्धिमान्, धर्म-शास्त्र की आज्ञा पालन करने वाले, लोकोपकारी, विद्वानों और सेवकों का आदर करने वाले, उलूल-जुलूल बातों पर कान न देने वाले, कलाओं में पंडित, राजकर्मचारियों पर निगाह रखने वाले और चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था कायम रखने वाले थे। एक कुशल राजा के लिए राजनीति का ज्ञान भी आवश्यक था। विहारभद्र ने अपनी जिस बुरी सलाह से अनंतवर्मन् को बहकाने की कोशिश की उसमें भी एक आदर्श राजा की दिनचर्या पर काफी प्रकाश पड़ता है। राजा सवेरे ही उठते थे, फिर हाथ-मुंह धोकर आय-व्यय का हिसाब सुनते थे। दिन के दूसरे भाग में ये मामले-मुकदमे सुनते थे। इसके बाद वे तीसरे पहर भोजन करते थे। दिन के चौथे पहर में कर और नज़राना वसूल करते थे, पाँचवें पहर में मंत्रियों से सलाह-मशविरा करते थे तथा दूतों और चरों से राज्य का हालचाल सुनते थे। दिन के छठे भाग में वे आराम करते थे अथवा गुप्त मंत्रणा। दिन के सातवें भाग में उन्हें सेना की निगरानी करनी पड़ती थी और आठवें भाग में वे सेनापति के साथ बातचीत करते थे। साँझ होते ही उन्हें संध्यावंदन करना पड़ता था। रात के पहले पहर में वे गुप्तचरों से खबरें सुनकर

गुप्त रूप से शत्रुओं को भड़काने का हुक्म देते थे। रात के दूसरे पहर में खा-पीकर स्वाध्याय करते थे और तीसरे पहर का घंटा बजते ही सो जाते थे। तीन घंटे सोने के बाद वे दूतों से मिलते थे और अंत में पुरोहित से शकुन-अपशकुन की बातें सुनकर दान-दक्षिणा की व्यवस्था करते थे। इस दिनचर्या का पालन कितने राजे करते थे, यह तो संदेहास्पद है, पर प्राचीन भारत का यह एक आदर्श था, इसमें संदेह नहीं।

शिकार, जूआ, वेश्यागमन और शराबखोरी, ये सब वस्तुएँ राजाओं के लिए निंदनीय ठहराई गई हैं, पर चन्द्रपालित ने अनंतवर्मन् को इन आदतों के गुण बतलाए। शिकार से कसरत होती है, पैरों में तेजी आती है, तन्दुरुस्ती बढ़ती है, मौसम की कठिनाइयों को सहने की आदत पड़ती है, पशुओं की प्रकृति का अच्छा अध्ययन होता है, जंगली पशुओं के मार डालने से खेती की रक्षा होती है, रास्तों पर लगने वाले शेर-बाघों का खतरा दूर होता है, भौगोलिक ज्ञान बढ़ता है, और पशुओं से जंगली जातियों की रक्षा होती है। जूए से त्याग-भावना बढ़ती है। हार-जीत में समभाव रहता है, मर्दानगी आती है। पासे फेंकते समय इतनी चालाकी बरती जाती है कि दाँव कुछ-का-कुछ पड़ता है। खेल में ध्यान देने से एकाग्रता बढ़ती है तथा जीत के लिए निरंतर कोशिश करने से हिम्मत बढ़ती है। बदमाशों से साबका पड़ने पर जीवट बढ़ता है और जुआरी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। वेश्या के साथ से तो नाशवान धन का सदुपयोग होता है और अबला की सहायता। वेश्याओं के साथ से मर्दानगी बढ़ती है, दूसरों के भावों को समझने की ताकत आती है। तर माल उड़ाने से कंजूसी गायब हो जाती है। उनके साथ बैठने से कलाओं के प्रति अनुराग बढ़ता है। दूसरों से तरकीब के साथ माल हथियाने की विद्या भी वह उनसे सीखता है। चीज़ों को हिफाजत से रखने की विद्या उसे आती है। रूठों को मनाने की विद्या वह सीखता है। बातचीत का शऊर आता है। अच्छे गहने-कपड़े पहनने का सलीका आता है और चार मित्रों में बैठने की आदत पड़ती है। और शराबखोरी? शराब तो एक उपकारी वस्तु है। उससे तन्दुरुस्ती और जीवन बढ़ता

है, पीने से दुःख दूर होता है, अभिमान जागता है और कामेच्छा बढ़ती है। शराबी कभी मन में बुराई नहीं रखता। पीने वाले के पास चार मित्र इकट्ठा हो जाते हैं। शराबी कड़ककर बोलते हैं और उनमें दहशत का नाम नहीं होता।

इस दर्शन का प्रभाव अनंतवर्मन् पर वैसा ही पड़ा जैसा पड़ना चाहिए था। राजा के दुर्गुणों का प्रभाव प्रजा में फैल गया। मदमत्त राजा की यह हालत देखकर कर्मचारी लूट मचाने लगे, आमदनी घटने लगी, खर्च बढ़ने लगा। शराब की दावतों में अपनी स्त्रियों के साथ राजा के सरदार और नागरिक शामिल होने लगे। रानियों का चरित्र गिर गया और उनके देखा-देखी नगर की स्त्रियों में व्यभिचार बढ़ गया; गुंडापन उभड़ गया और लूट-मार का बोलबाला हो गया। जव प्रजा शिकायत करती थी, तो राजा उसी को दंड देते थे।

इस बढ़ती हुई अराजकता को देखकर विदर्भ के भीतर बहुत से शत्रु घुस पड़े। उन्होंने खबर उड़ा दी कि जंगली जानवरों से पहाड़ी दर्रे खतरनाक बन चुके थे। बेचारे यात्री जब झाड़ियों वाले रास्ते से गुजरने लगे तो शत्रु के जासूसों ने उसमें आग लगवाकर लोगों को जलवा डाला। वे विदर्भ वालों को शिकार करने के लिए उकसाकर उन्हें चुपके-चुपके मार डालते थे। प्यासे राहगीरों को भुलावा देकर वे दूर ले जाते थे और खड्डों में गिराकर उन्हें मार डालते थे। कभी वे उन्हें नदी के कमजोर कगारों पर ले जाकर नदी में गिराकर मार डालते तो कभी उनके पैरों में चुभे कांटे निकालने के बहाने जहर से बुझी सूइयों से वे उन्हें काल के हवाले कर देते। कभी वे यात्रियों को तीरों का निशाना बना देते; कभी वे यात्रियों को पहाड़ की चोटी पर चढ़ने को उत्साहित करते और पीछे रह जाने वाले यात्रियों को खड्ड म गिराकर मार डालते। कभी-कभी वे जंगल के अफसरों का वेष धर कर राजा के सैनिकों को पकड़ ले जाते। ये जासूस जूएखानों, मुर्गे की लड़ाइयों अथवा मेले-तमाशे में घुस पड़ते और मारकाट मचा देते। खून-खराबा उनके बाँए हाथ का खेल था। पकड़े जाने पर वे अपना दोष गवाहों के सर मढ़ देते।

जासूस स्त्रियां लोगों को दुराचार के लिए उकसातीं और मौका पड़ने पर उनके साथी कामुकों को खतम कर देते। कभी-कभी वे जासूस खजाना खोदने अथवा किसी साधु के दर्शन के बहाने बाहर ले जाकर उन्हें मार डालते। कभी वे लोगों को बढ़ावा देकर मस्त हाथी पर चढ़ा देते और बाद में उस पर से गिराकर उन्हें कुचलवा देते। उपजाऊ क्षेत्र को वे नष्ट करवा देते तथा रिश्वत देकर जंगली हाथियों को छुड़वाकर सारा प्रदेश तहस-नहस करवा देते। जमीन-जायदाद के झगड़ों में वे एक फ़रीक वाले को मार देते और उसका दोष दूसरे फ़रीक पर पड़ता। सामंतों के प्रदेशों में भी वे गुंडों-बदमाशों को मारकर उसका दोष विरोधियों पर डाल देते। जासूस वेश्याओं की सहायता से सैनिकों में रोग फैलाते तथा जहर देकर सेनापतियों को मार देते।

जूआ, वेश्या और शराब के फेर में पड़कर किस तरह राजा और प्रजा की हानि होती है उसका इतना सटीक चित्र साहित्य में और कहीं नहीं मिलता। प्राचीन युग के जासूसों के कारनामों का जो वर्णन दंडिन् ने किया है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी उसका वर्णन है। अपनी कहानियों में दंडिन् ने चोरी, वेश्यागमन, जूए इत्यादि का खुलकर वर्णन किया है, पर विश्रुत की कहानी में उसने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि हद के बाहर हो जाने पर ये ही बातें नाश का कारण बनती हैं।

दंडिन् के समय के समाज में वेश्याओं का एक अपना स्थान था। वेश्याओं के जीवन और कारनामों का जो वर्णन हमें कामशास्त्र में मिलता है, उसी से मिलता-जुलता वेश्या-जीवन का चित्रण दशकुमारचरित में हुआ है। मारीचि के सामने काममंजरी की माता वेश्याओं के लालन-पालन और जीवन का विशद वर्णन करती है। बचपन से ही उसकी खूब मालिश होती थी, उसका तेजबल बढ़ाने के लिए और अंगों को सुडौल रखने के लिए उसे कम भोजन दिया जाता था। पांच वर्ष की उम्र से ही उसे पुरुषों से अलग रखा जाता था। उसके जन्म-दिन और त्यौहारों पर उत्सव मनाया जाता था। विधिपूर्वक कामशास्त्र की उसे शिक्षा दी जाती थी। नृत्य, गीत, वाद्य, नाट्य, पाकशास्त्र,

गंध और पुष्पकला, लिपिज्ञान और हाज़िर-जवाबी की उसे शिक्षा दी जाती थी, व्याकरण और न्याय का भी उसे मामूली ज्ञान करा दिया जाता था। उसे जीविकोपार्जन, क्रीड़ाकौशल और जूए की शिक्षा दी जाती थी। रति-कला में उसका ज्ञान बढ़ाया जाता था। यात्रा तथा उत्सवों के समय कपड़े लत्ते से सजाकर उसका प्रदर्शन होता था। उस्तादों से संगीत की तालीम दिलवाई जाती थी। चारों ओर उसके कलाज्ञान की शोहरत मचवा दी जाती थी। लक्षणज्ञ उसके शुभ लक्षणों की खबर उड़ा देते थे। पीठमर्द, विट, विदूषक और भिक्षुणियां नागरिकों के जलसों में उसके रूप, शील, सौंदर्य और माधुर्य का वर्णन करते थे। युवकों को अपनी ओर खींचकर वह उनसे गहरी फीस वसूल करती थी। इसके बाद खाला उसके लिए रूपवान, शील-वान्, कुलीन और धनी प्रेमी की खोज करती थी। अगर ऐसा असामी खुद फँस गया तो ठीक है नहीं तो उसे फँसाना पड़ता था। अगर ग्राहक खुदमुख्तार नहीं हुआ तो गांधर्व विवाह का भय दिखलाकर उसके अभिभावक से रकम वसूल की जाती थी। कम रकम मिलने पर भी इस आशा से कि प्रेमी के खुदमुख्तार होने पर काफी रकम मिलेगी, उसकी आवभगत की जाती थी। आशिक से एकचारिणी व्रत का दिखावा दिखलाया जाता था। नखरे दिखलाकर आशिकों को फँसाया जाता था। दूसरे की उदारता दिखलाकर लोभी प्रेमी को रकम देने को उत्साहित किया जाता था। आशिक के खुक्ख पड़ जाने पर उस पर हँसकर, गालियां देकर, उसकी माशूका को रोककर, उसे लज्जित करके निकाल बाहर किया जाता था, इत्यादि। मारीचि के साथ रहकर काममंजरी ने धर्म, अर्थ और काम के सापेक्ष गुणों का बखान किया और उन्हें यह बतलाया कि काम और अर्थ से धर्म के रास्ते में पड़ने वाली विघ्न बाधाएं दूर की जा सकती थीं। इस उपदेश से मारीचि की क्या दुर्गति हुई, इसका वर्णन अपहारवर्मन् की कहानी में खूबी के साथ किया गया है।

दशकुमारचरित में चोरों का भी जीता-जागता चित्रण खड़ा किया गया है। अपहारवर्मन् कर्णीसुत मूलदेव का चौर्य-शास्त्र पढ़कर पूरा

चोर बन गया पर चोरी करने के पहले उसने जुआरी बनने की सोची। जूएखाने के वर्णन से पता चलता है कि जुआरी प्रायः आपस में लड़ बैठते थे। मजबूत जुआरियों की लोग मदद करते थे, पर कमजोरों की लोग हँसी उड़ाते थे। जीत होने पर जुआरी प्रायः जीती रकम का कुछ हिस्सा बांट देते थे। कभी-कभी खेल में गाली-गुफ्ते का बाजार गरम हो जाता था। एक दिन एक भारी खिलाड़ी के हारने पर अपहारवर्मन् हँस पड़ा। जुआरी ने क्रोध में आकर उसे खेलने के लिए ललकारा। अपहारवर्मन् ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली और खेल में सोलह हज़ार मुहरें जीत गया। बाद में सबके परितोष के लिए उसने जशन मनाया। जूआखाने के अध्यक्ष को नाल के पैसे मिलते थे।

जूए के बाद अपहारवर्मन् का नम्बर चोरी पर आया। जूएखाने के विमर्दक नामक एक मित्र से उसने शहर के व्यापारियों की टोह ली और एक चालाक चोर बन गया। कृष्णपक्ष की एक रात में उसने एक नीली चादर और एक जांघिया (अर्घोस) पहनी तथा तलवार, फर्णमुख (सबरी), काकली (कैंची), संदंशक (संडसी), पुरुष शीर्षक, योगचूर्ण, योग वर्जिका, मानसूत्र, कर्कटक (घिरनी), रस्सी और दीपभाजन से लैस होकर एक रईस के घर सेंध मार कर उसे लूट लिया।

आजकल की तरह ही चोरों से बचाव के लिए नगर में पुलिस का प्रबन्ध था। चोरी के बाद अपहारवर्मन् की नागरिक दल से मुलाकात हो गई और नकल साधकर वह अपने को बचा सका। एक बार तो शहर कोतवाल न उसे पकड़कर जेलखाने में बन्द ही कर दिया।

दंडिन् ने राजमहलों का जो चित्र खींचा है, वह कामुकता और षड्यंत्र से भरा है। उपहारवर्मन् विकटवर्मन् की रानी कल्पसुन्दरी को फँसाने के लिए अनेक प्रपंच रचता है। उसी की राय से कल्पसुन्दरी ने अपने पति को सुन्दर बनने के लिए यज्ञ करने का उपदेश दिया और स्वयं कल्पसुन्दरी का रूप धरकर उसे मार डाला। पाटलिपुत्र के मंत्री सुमित्र के भाई ने राजकुमारी कांतिमति का भोग किया जिसके फलस्वरूप उसे एक

अवैध बच्चा हुआ ।

संस्कृत साहित्य में बहुधा तीतर, बटेर, मढ़ और मुर्गों की लड़ाई का उल्लेख है। इन लड़ाइयों में खूब बाज़ी लगती थी। दशकुमारचरित में मुर्गों की लड़ाई का एक जगह सजीव चित्रण हुआ है। श्रावस्ती जाते समय प्रमति एक निगम में पहुंचा जहां नैगम लोग मुर्गों की लड़ाई में मस्त थे। मुर्गों को देखकर वह ज़रा मुस्कराया, एक बूढ़े ब्राह्मण विट ने इसका कारण पूछा। इस पर उसने जवाब दिया कि पूरब का नारिकेल नाम का मुर्गा पश्चिम के वलाका किस्म के मुर्गे से कभी नहीं जीत सकता, इसीलिए उसे हँसी आ गई थी। ब्राह्मण उसकी राय से सहमत हो गया। अन्त में वलाका ही लड़ाई जीता।

प्राचीन भारत में कंदुक-क्रीड़ा स्त्रियों का मनचाहा खेल था। संस्कृत-साहित्य में अनक स्थानों में कंदुक-क्रीड़ा का चित्रमय वर्णन आया है। दशकुमार चरित में कंदुकावती के कंदुक-नृत्य का बड़ा सुन्दर वर्णन है। रत्नरंग पीठ पर से देवी को नमस्कार करके नृत्य का आरम्भ हुआ।

गेंद रंगबिरंगी थी। जमीन पर गेंद के उछलने पर उसने उसे बड़ी सफाई से रोक लिया और फिर ऊपर फेंका और चूर्णपदक दिखलाया। उछलती गेंद को पकड़कर उसे उछालकर अधर में पकड़ लिया। वह गेंद को कभी लंबा अन्तर देकर ज़मीन पर पटकती तो कभी उसे जल्दी से फेंकती। कभी वह झुककर बाएं-दाहिने हाथ से गेंद उछालती और कभी गेंद खूब ऊंचा फेंककर दस कदम आगे बढ़कर उसे रोक लेती थी। कभी वह चारों ओर चक्कर काटकर गेंद रोकने के लिए ठीक जगह पर आ पहुंचती। गेंद को जब वह तेजी से गोलाई में फेंक कर चक्कर देती थी तो मानों उसके चारों ओर रंगीन घेरा बन जाता था। कभी कभी वह पांच-पांच घुमाव देकर फेंकती थी। गेंद उछालते समय कभी-कभी उस की गति टेढ़ी मेढ़ी होती थी और कभी-कभी उसके कदम बड़े अन्दाज़ से पड़ते थे।

दंडिन् ने दशकुमारचरित में कभी-कभी तत्कालीन वेष-भूषा और प्रसाधन सम्बन्धी उल्लेख भी कर दिए हैं। सूक्ष्म चित्र निःसन शायद महीन

काशी का कपड़ा होता था। चीन के बने रेशमी कपड़ों की काफ़ी मांग थी। उसे चीनांग और चीनांशुक कहते थे। कोरे कपड़े (निष्प्रवाणि युगल) पहनने का रिवाज भी था। राजा परिबर्हा नामक कीमती कपड़े पहनते थे। कौपीन के लिए मलमल्लक शब्द आया है। स्त्रियां कभी-कभी नीलांशुक चूड़िका यानी नीली मलमल की बनी चोली पहनती थीं। मध्यकालीन बंगाली साहित्य में पाचूड़ी शब्द में प्राचीन चूड़िका बच गया है। स्त्रियों के गहनों-कपड़ों और प्रसाधन का भी उल्लेख है। गहनों में मणिनूपुर, कड़ा (कटक), ताटंक, हार, मानिक के टिकरे (रुचक) वाला सूत्र, कुंडल, रत्नकर्णिका तथा कर्णावतंस इत्यादि नाम आए हैं। गालों पर नकाशियां—जिन्हें विशेषक कहते थे—लिखने की प्रथा थी। कर्पूर इत्यादि से सुवासित पान लोग खाते थे।

अन्त में मैं अनुवाद के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना चाहता हूं। अनुवाद दो तरह के होते हैं। एक तरह के अनुवाद में मूल पाठ का अक्षरशः अनुवाद किया जाता है और इसी तरह का अनुवाद विद्वानों द्वारा ठीक माना जाता है, क्योंकि किसी लेखक की कृति को वह उसी के शब्दों में सामने रखता है। दूसरी तरह का अनुवाद स्वतन्त्र अथवा भावानुवाद है जिसमें मूल लेखक के पाठ के पीछे न जाकर केवल उसका भाव ग्रहण कर लिया जाता है। श्री निरंजनदेव ने इन दोनों तरह के अनुवादों में मध्यम मार्ग ग्रहण किया है। उनकी भाषा काफ़ी मंजी हुई है और उन्होंने प्राचीन पारिभाषिक शब्दों के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके अनुवाद को अधिक सुन्दर बनाने का यत्न किया है। अगर पारिभाषिक और भौगोलिक शब्दों पर पाद टिप्पणियां दे दी जातीं तो अच्छा होता। आशा है अनुवाद के दूसरे संस्करण में इस बात पर ध्यान रखा जायगा।

—मोतीचन्द्र

सूची

पूर्व पीठिका

प्रथम उच्छ्वास

जो ब्रह्माण्ड-छत्र का अविचल दण्डभूत आधार अनूप ।
झरती हुई गगन-गंगा की पट्टी में ध्वज-दण्ड स्वरूप ।।
स्मारक-चिह्न-सदृश जो शोभित त्रिभुवन-विजय-स्तम्भ का दंड ।
विविध वैरियों के करता जो कालदण्ड बनकर शतखंड ।।
जो विरंचिगृहभूत-कमल में नालदंड के तुल्य महान् ।
ज्योतिर्मण्डल रूप चक्र में लगा धुरी के दण्ड समान ।।
तट पर बन्धन दंड-सदृश जो वसुधा रूप तरणि का प्राण ।
श्री शंकर का 'चरणदंड' वह वितरण करे तुम्हें कल्याण ।।

कुमारों का जन्म और उनकी शिक्षा

प्राचीन समय में मगध देश के अन्दर पुष्पपुरी या पाटलिपुत्र नाम की एक सुन्दर नगरी थी। यह वहाँ की राजधानी थी, और मगध राज्य के सब नगरों की सरताज समझी जाती थी। उन दिनों जब किसी नगर की शोभा और सुन्दरता को परखना होता, तो पाटलिपुत्र के साथ उसकी तुलना कर ली जाती। इस प्रकार दूसरे नगरों के लिए यह एक कसौटी-सी बनी हुई थी।

पाटलिपुत्र की नगरी बहुत लम्बी-चौड़ी थी। इसके बाजारों में असंख्य दुकानें थीं, जिनमें सोना-चाँदी, तरह तरह की मणियाँ और नग आदि वस्तुएँ बड़ी प्रचुरता के साथ भरी रहती थीं। इन कीमती और सुन्दर चीजों को दुकानों के अन्दर खूब फैला-सजाकर प्रदर्शित किया जाता था। हीरा, पन्ना, मूंगा, मोती, शंख तथा शुक्ति आदि तरह-तरह की सामग्रियाँ बहुतायत में होने के कारण यह नगरी रत्नों की खान-सी प्रतीत होती, और ऐसा जान पड़ता था कि यह रत्नाकर के, अर्थात् समुद्र के, महत्त्व और बड़प्पन का बखान कर रही है।

इस पाटलिपुत्र में राजहंस नाम का एक राजा हुआ। वह बड़ा रूपवान था। रूप भी उसका ऐसा-वैसा नहीं—निर्दोष, निष्कलंक, जिसमें तनिक भी कोर-कसर नहीं थी। कहते हैं कि कामदेव को अपनी सुन्दरता का बड़ा घमंड है, वह राजा भी वैसा ही रूप का धनी था।

केवल रूप ही नहीं,बल और वीरता भी राजहंस में असाधारण थी। जिस समय उसके शत्रुओं की सेनाएँ उससे लड़ने के लिए आकर इकट्ठी होतीं, उस समय ऐसा जान पड़ता मानो एक समुद्र लहरा रहा है। शत्रुओं के बड़े-बड़े योद्धा उस समुद्र में इस प्रकार उमड़ रहे होते, जैसे तरंगें उठ रही हों, और हजारों हाथी-घोड़े ऐसे लगते मानो मगरमच्छ हों। इन सबके कारण यह सैन्य-समुद्र बड़ा डरावना प्रतीत होता था। राजहंस, इस शत्रु-समूह के बीच युद्ध करते हुए अद्भुत पराक्रम दिखलाया करते। अपनी प्रचंड भुजाओं से शस्त्र घुमाते हुए वे शत्रुओं के इस सैन्य-सागर को मथ डालते; और ऐसा प्रतीत होने लगता कि समुद्र को मन्दराचल की मथानी से बिलोया जा रहा है।

इस वीरता और रूप के कारण राजा राजहंस का बड़ा नाम फैला। पृथिवी की तो बात ही क्या, स्वर्ग तक की युवती अप्सराएँ जब इन्द्रपुरी के मैदानों और वन-उपवनों में विहार कर रही होतीं, तो इस राजा की ही चर्चा किया करतीं, और बारम्बार इसी के गुणों का बखान करती थीं।

कहा जाता है कि यश या कीर्ति का रंग सफेद होता है। ऐसा प्रतीत होता था कि शरत् काल का चन्द्रमा, कुन्द के फूल, कपूर, हिम, हार, कमलनाल, हंस, ऐरावत हाथी, जल, दूध, महादेव का अट्टहास, कैलाश पर्वत, और काँस के फूलों के रूप में, राजा राजहंस का सफेद यश ही सब तरफ फैल गया है।

जिस तरह सुगन्ध की लहर दूर-दूर तक फैल जाया करती है, उसी तरह राजहंस की सुन्दरता और वीरता की बातें दूर देशों तक पहुँच गईं। ऐसा मालूम होने लगा कि उसकी कीर्ति की महक से दिग्-दिगन्तर सब भर गए हैं।

राजा राजहंस सच्चे अर्थों में 'भूपति' थे,और बड़े भाग्यशाली व्यक्ति थ। यदि भूमि को एक स्त्री मान लिया जाय, तो उसके चारों ओर लहराने वाले समुद्र—जिनमें सुमेरु पर्वत की चोटियों की तरह चमकीले और बड़े-बड़े रत्न भरे पड़े हैं—ज्वार की हालत में ऐसे प्रतीत होते हैं

जैसे उस स्त्री की कमर में करधनी पड़ी हुई हो। इस प्रकार की करधनी से सजी हुई पृथिवी रूपी सुन्दरी स्त्री के सुहाग का उपयोग राजहंस कर रहे थे।

राजहंस के राज्य में सदा यज्ञ-याग आदि धर्म-कार्य होते रहते थे। यज्ञों में वे खूब दक्षिणाएँ दिया करते। इस प्रकार सज्जन, विद्वान्, ज्ञानवान और तेजस्वी ब्राह्मणों का राजा के द्वारा अच्छी तरह भरण-पोषण होता रहता था।

सुन्दर,वीर और दानी होने के साथ ही मगधराज बड़े प्रतापी भी थे। उनके तेज और प्रताप से वैरी लोग सदा संतप्त रहते। इस कारण उनकी तुलना उस सूर्य के साथ की जाती थी, जो बीच आकाश में बैठा हुआ दुनिया-भर को तपाया करता है।

राजहंस की धर्मपत्नी का नाम वसुमती था। यह बड़ी बुद्धिमती थी। अपने समय के सम्भ्रांत महिला-समाज में क्रीड़ा-विनोद, हास्य-विलास तथा कार्य-कुशलता आदि की दृष्टि से, वह सबमें प्रमुख और सबकी शिरोमणि समझी जाती थी।

रानी वसुमती परम सुन्दरी थी। उसके एक-एक अवयव से निराला रूप बरसता था, और उसके अंग-प्रत्यंग को देखकर नई-से-नई कल्पना मन में उठने लगती थी। ऐसा जान पड़ता था कि जिस समय शिवजी ने अपने क्रोध-भरे तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म किया, उस समय उसकी तो चेतना जाती रही, और वह अचेत भी हो गया, परन्तु उसके साथी-संगी, अस्त्र-शस्त्र, ध्वजा-रथ एवं युद्ध के अन्य उपकरण आदि नष्ट नहीं हुए। वे महादेव के डर के मारे भाग गए। उस समय क्योंकि रानी वसुमती ही एक ऐसी स्त्री थी जो असाधारण रूप-लावण्य से सम्पन्न और अनिन्द्य सुन्दरी थी, इसलिए वे इसी के शरीर में आ छिपे।

इस प्रकार उस कामदेव के धनुष की कमान बनी हुई मौरों की पंक्ति आकर इस रानी की सुन्दर केश-राशि बन गई। प्रेम की खान चन्द्रमा इसका कमल-विजयी मुख हो गया। काम की विजय-पताका बना हुआ मत्स्य,

अपनी स्त्री समेत इस रानी की दोनों आँखों में आ समाया। महाराज अनंग के सब सिपाहियों का मुख्य सरदार मलय पवन, इसकी साँस बन गया, पेड़ों की नई कोंपल, जो अपने घरों से बिछुड़े हुए यात्रियों को, उनकी प्रियतमाओं के अधरों की याद दिलाकर उनके हृदयों को मसोसती रहती थी; और इस तरह उनके हृदयों को छेदने में जो कामदेव की तलवार का काम किया करती थी, वह भागकर इस रानी के बिम्बाफल-जैसे ओंठ बन गई। उनका विजय-शंख, रानी की तनिक उठी और लची हुई सुन्दर गरदन में समा गया। कामदेव के दोनों कलश, वसुमती के चकवा-चकवी-जैसे मनोहर स्तनों के रूप में आ बैठे। दोनों कमल-नाल, जो कोमलता में अनुपम समझे जाते थे, और मदन के धनुष की डोरी बने हुए थे, भागकर इस रानी की दोनों बाँहों के रूप में बदल गए। कामदेव उमंग में आकर कमल की जिस अधखिली कली को खिलौना बनाकर कभी-कभी खेला करते थे वह इस रानी की गंगा की भँवरों से घिरी नाभि हो गई। मदन महीप का वह दिग्विजयी रथ, जो योगियों की आध्यात्मिक अभिलाषाओं को धता बता देता था आकर सुन्दरी वसुमती के कटि-प्रदेश में छिप गया। मनोरम कदली वृक्ष की जोड़ी, जो कामदेव के विजय-स्तम्भ-सदृश थी और ऋषि-मुनियों के धर्म-कर्म में जो सदा विघ्न डाला करती थी शिवजी के डर से भागकर रानी की दोनों जाँघों में आ बसी। महाराज कामदेव छत्र भी धारण करते थे। यह छत्र कमल का होता था। बेचारा कमल भी भयभीत होकर रानी के चरणों में आकर बैठ गया। वीरवर कामदेव जिन अस्त्र-शस्त्रों से लड़ा करते थे, वे विविध फूलों के होते थे। ये सब फूल भी वसुमती के भिन्न-भिन्न अंगों में आ बसे। इस प्रकार सौंदर्य-मूर्ति महाराज कामदेव के अस्त्र-शस्त्र, रथ, छत्र और सेना-सामन्त, सब-के-सब, मानो वसुमती के शरीर में आ विराजे थे।

मगध की महारानी वसुमती वस्तुतः ऐसी ही सुन्दरी थी। उधर राजहंस भी रूप में अद्वितीय थे। रूप-लावण्य में अनुपम ये दोनों राजा-रानी, मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में आनन्दपूर्वक निवास करते थे। पाटलिपुत्र की

चर्चा पहले की जा चुकी है। यह नगरी अपने धन-वैभव तथा शक्ति-शोभा आदि सभी बातों में इन्द्रपुरी अमरावती तक को मात करती थी। ऐसी सजी हुई और धन-वैभव से भरी-पूरी नगरी में रानी वसुमती को किसी चीज की कमी क्या हो सकती थी ? उन्हें असंख्य सुख-भोग प्राप्त थे। सबसे बढ़-कर राजा राजहंस का प्यार तथा दुलार उन्हें मिला हुआ था; और राजहंस को भी एक नहीं, दो-दो वसुमती प्राप्त थीं---रानी वसुमती और पृथिवी वसुमती। वे दोनों का सुख उठा रहे थे।

मगध-नरेश राजहंस के तीन मन्त्री थे, जो महाराजा के पूरे आज्ञा-कारी थे। ये अपनी वंश-परम्परा से उनके यहाँ काम करते आ रहे थे। इनके नाम थे धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा। तीनों मन्त्री बड़े स्थिरमति और विचारवान थे। चाहे पढ़न-लिखने और विचार-विवेक करने का काम हो चाहे राज्य-प्रबन्ध का, सभी कठिन-से-कठिन प्रसंगों पर ये लोग अपने धीरज, विवेक और बुद्धिमत्ता का असाधारण परिचय दिया करते थे। इनके इन गुणों के कारण लोग इन्हें देवगुरु बृहस्पति से भी ऊँचा मानने लगे थे।

इन मन्त्रियों में से सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा, पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव, तथा धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल नाम के पुत्र हुए।

इनमें सत्यवर्मा स्वभाव से ही धार्मिक प्रकृति का था। वह संसार की असारता समझकर तीर्थयात्रा की इच्छा से विदेश चला गया। मन्त्री धर्मपाल का पुत्र कामपाल उद्दंड स्वभाव का निकला। उसका चालचलन बिगड़ गया। वह नाचने-गाने वालों, बदमाशों और वेश्याओं की सोहबत में रहने लगा। अपने पिता और बड़े भाइयों का कहना भी वह नहीं मानता था। उसने दुनिया की सैर करने की ठान ली, और वह भी घूमने-फिरने तथा सैर-सपाटे के लिए निकल गया। रत्नोद्भव वाणिज्य-व्यवसाय में चतुर निकला, और वह समुद्र-पार चला गया। अन्य मन्त्रियों के पुत्र अच्छे योग्य निकले। जब उन लोगों के बड़े-बूढ़े स्वर्ग सिधार गए,

तो वे लोग, उनके स्थान पर पहले की तरह काम-काज करने लगे।

इस प्रकार मगध राज्य में सब काम-काज अच्छी तरह चल रहा था।

एक बार ऐसा हुआ कि मगध-नरेश राजहंस ने मालवा राज्य पर चढ़ाई की। राजहंस की वीरता प्रसिद्ध थी। उन्हें अपने समय के सब तरह के हथियारों की जानकारी थी और हल्के, भारी, नये-पुराने सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के चलाने-छोड़ने में वे खूब होशियार थे। उन्होंने जीवन में सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़ी थीं। केवल नामी-नामी योद्धाओं से ही नहीं, बड़े-बड़े क्षत्रिय राजाओं से उन्होंने लोहा लिया था, और अपने तीखे बाणों से बहुतेरे राजाओं के मुकुट धूल में मिला दिए थे।

परन्तु मालवा के शासक मानसार भी ऐसे-वैसे राजा न थे; वे बड़े आत्माभिमानी आदमी थे। अपनी इज्जत और अपने मान को वे जीवन में सबसे ऊपर समझने वाले लोगों में से थे। मानसार सचमुच ही 'मानसार' थे, क्योंकि मान ही उनके लिए सार-वस्तु थी। वे भी नये उठने वाले योद्धाओं में गिने जाते और उन दिनों होने वाली लड़ाइयों में वे 'शत्रुभक्षक' के नाम से विख्यात हो रहे थे।

मगधराज राजहंस युद्ध के लिए चतुरंगिणी सेना लेकर चले। उनकी लम्बी-चौड़ी और भारी सेनाओं के बोझ से धरती लचने-सी लगी, और ऐसा मालूम पड़ने लगा कि उसके भार से शेषनाग के सिर की ताकत भी कुछ चलायमान हो उठी है। राजहंस इस समय खूब जोश, उत्साह और युद्ध के उभार में भरे हुए थे। उनकी सेना के जुझारू बाजे और नगाड़े जोर-शोर से गड़गड़ा रहे थे। उनसे इतनी भयंकर आवाज उठी कि समुद्र की गर्जना भी फीकी जान पड़ने लगी। सच तो यह था कि समुद्र का शब्द इसके सामने कुछ था ही नहीं। समुद्र के गरजने का घमंड तो इस घोर गम्भीर नाद ने जैसे खेल-खेल में ही चूर-चूर कर डाला था।

लड़ाई के बाजों का यह विकराल कोलाहल दूर-दूर तक फैल गया। यहाँ तक कि चारों तरफ फले हुए हाथियों के कानों में भी, यह जबरदस्ती जा पहुँचा। वे एकदम चौंक पड़े, और उन पर डर का जबरदस्त

आतंक छा गया। इस डर के कारण इन हाथियों के दल में खलबली मच गई।

जब मालवा के राजा मानसार ने देखा कि शत्रुदल आ पहुँचा, और वह चोट करना ही चाहता है, तब फिर वे भी युद्ध के लिए निकल खड़े हुए। उन्होंने भी सेना तैयार की, और लड़ाकू हाथियों का भारी दल साथ में लिया। इसके बाद उन्होंने भी रुद्र रूप धारण किया और ऐसे प्रतीत होने लगे मानो साक्षात् युद्ध-देवता उतर आए हों। वे झट मगधराज के मुकाबले में आकर डट गए।

दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। पैदलों से पैदल भिड़ गए और हाथियों से हाथियों की टक्करें होने लगीं। असंख्य रथों के पहियों और घोड़ों के सुमों से धरती दूर-दूर तक खुद गई। उड़ती हुई मिट्टी के गुब्बार से आसमान भर उठा। ऊपर अन्तरिक्ष में धूल-ही-धूल छा गई। किंतु नीचे, क्योंकि हाथियों के झुंड-के-झुंड मैदान में जूझ रहे थे जिनके माथे से मद की धारें चू रही थीं, इस कारण उनसे धुल-धुलकर आकाश का नीचे का भाग साफ और निर्मल पड़ गया। इस प्रकार बीच अधर में गर्द का अम्बार-सा लटक गया; और ऐसा प्रतीत होने लगा कि युद्ध के मैदान में धराशायी होने वाले वीरों को नये पतियों के रूप में वरण करने आई हुई देव-कन्याओं के लिए आकाश में चिकोंदार तम्बू तान दिया गया है।

मगधराज और मालवनरेश दोनों ने एक-दूसरे की सेना का भीषण संहार किया। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। हथियार बाँधे हुए सिपाही, अपने जोड़ीदार दूसरे हथियारबन्द सूरमाओं से जूझ रहे थे। फिर युद्ध के उन्माद में भरे हुए बहुत से वीरों में मल्ल-युद्ध और घूँसों से भी लड़ाई होने लगी। तुरही, नगाड़े, नरसिंहा आदि जुझारू बाजों ने दूसरी सब आवाजों को दबा दिया। इन सबका मिलकर इतना भारी कोलाहल और घोर-गम्भीर नाद होने लगा कि सब दिग्दिगन्तर तक बहरे-से पड़ गए।

धीरे-धीरे लड़ाई का आखिरी नतीजा भी दिखाई देने लगा। मालव-नरेश का पासा ढीला पड़ गया। उनकी लगभग सारी सेना मारी गई। यहाँ तक कि अन्त में वे जिन्दा पकड़ लिये गए।

परन्तु युद्ध खत्म हो जाने पर मगधराज को मालवा के राजा पर दया आ गई और उन्होंने उनको न केवल छोड़ ही दिया, बल्कि उन्हीं को फिर से मालवा की गद्दी पर भी बिठा दिया।

यह युद्ध जीत लेने पर मगधराज राजहंस का प्रभाव बहुत बढ़ गया। समुद्रों से घिरी इस पृथिवी पर अब उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा। वे अपने दूर-दूर तक फैले हुए, खूब लम्बे-चौड़े राज्य पर अकेले हुकूमत करने लगे।

परन्तु इतने भारी राज्य के मालिक होते हुए भी मगधराज के कोई सन्तान नहीं थी। इस कमी को पूरा करने के लिए जब और सब उपाय व्यर्थ गये तो उन्होंने भगवान् विष्णु की पूजा करनी आरम्भ की, क्योंकि वे ही इस सारी दुनिया के एक-मात्र रक्षक और पालक हैं। अब महाराज लगातार उन्हीं की पूजा-उपासना में लीन रहने लगे।

इसी तरह दिन बीतते रहे। एक बार एसा हुआ कि मगध की पटरानी महादेवी वसुमती ने रात के अन्तिम पहर में—लगभग सवेरे के समय—एक इस तरह का सुखदायक सपना देखा कि महाराज राजहंस को कहीं से कल्पवृक्ष का फल मिला है।

ऐसा सुन्दर सपना देखने के कुछ ही दिनों बाद रानी गर्भवती हो गईं। स्त्रियों को सन्तान की जो एक स्वाभाविक लालसा हुआ करती है, उसे यदि एक 'फल' माना जाय तो इस गर्भ को उस फल के पहले का एक 'फूल' समझना चाहिए। अस्तु;

मगधराज के पास धन-दौलत की तो कोई कमी थी नहीं। ऐश्वर्य में वे इंद्र को भी मात करते थे। इसलिए महारानी के गर्भवती होने का सुसमाचार पाकर उन्होंने अपने सब मित्र राजाओं की मण्डली को आमन्त्रित कर दिया, और उन सबको पाटलिपुत्र बुला भेजा। राजहंस के मन में सन्तान पाने की बड़ी-बड़ी उमंगें थीं। उन्हें पूरा करने के लिए उन्होंने अपनी धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य के अनुरूप ही खूब-धूमधाम के साथ महारानी का 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार करवाया और बड़ा भारी उत्सव किया। भावी

सन्तान की प्रतीक्षा में महाराज का समय अब बड़ी हँसी-खुशी और आशा में कटने लगा।

एक दिन राजहंस अपने दरबार में राजगद्दी पर विराजमान थे। मन्त्री, पुरोहित, मित्र और हितैषी सामन्त लोग भी अपनी-अपनी जगहों पर बैठे हुए थे। इतने में दरबान आया। उसने दोनों हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—"महाराज, एक साधु महात्मा द्वार पर आये हैं, और आपसे भेंट करना चाहते हैं। वे कोई मामूली साधु नहीं जान पड़ते, उन्हें देखते ही भक्ति का भाव उमड़ता है और ऐसा जान पड़ता है कि भगवान् ने इन्हें मानो पूजा के लिए ही बनाया है।"

महाराज की अनुमति पाकर दरबान उन यती महात्मा को अन्दर लिवा लाया। राजहंस ने जो उसे आते देखा तो दूर से ही वे उसे ताड़ गए, और उसकी सब जासूसी हरकतें उन्होंने अच्छी तरह भाँप लीं। अपने सेवकों को उन्होंने तुरन्त विदा कर दिया। केवल मन्त्री लोग रह गए। तब पास आकर महात्माजी ने उन्हें नमस्कार किया।

राजा मन्द-मन्द हँसते हुए उससे बोले—"कहिये तपस्वी जी महाराज! इस वेश में देश-विदेश की सैर तो आपने खूब की होगी। इधर-उधर क्या-क्या मालूम किया—कुछ सुनाइए।"

यह आदमी वास्तव में ही राजहंस का जासूस था, और साधु के भेस में खूब जँचता था। इस वेष में भी यह अच्छा मजबूत और हिम्मती जान पड़ता था। यह व्यक्ति सारी पृथिवी का चक्कर लगा आया हो, यह बात भी इसके लिए कुछ अनहोनी या कठिन न थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं यहाँ से चल दिया। सबसे पहले मैंने अपना रूप बदल डाला; और संन्यासियों का-सा ऐसा वेश बनाया कि उसमें किसी तरह की भी कसर नहीं छोड़ी। फिर मैं मालवा के राजा की राजधानी में पहुँचा, और वहाँ गुप्त रूप से रहने लगा। धीरे-धीरे मैंने उनका सब हाल-चाल और भेद मालूम कर लिया। सब काम पूरा करके मैं वापिस लौटा हूँ।

महाराज, आप तो जानते ही हैं मालवनरेश मानसार बड़े अभिमानी आदमी हैं। पिछली लड़ाई में उनकी सारी सेना मारी गई थी। कैसा भयानक युद्ध हुआ था वह! उसे युद्ध भी क्या कहा जाय, वह तो एक ऐसा विघ्न-सा था जो मालवराज के सैनिकों की आनन्द से गुजरने वाली आयु के बीच एकदम आ पड़ा था। अस्तु, उस लड़ाई में आपसे हार खाकर और फिर आपकी ही दया से कैद से छुटकारा पाकर उन्हें मन-ही-मन बड़ी लज्जा अनुभव हुई। साथ ही उनका हृदय एकदम क्रूर और बड़ा कठोर बन गया। उन्होंने कठिन तप करने की ठान ली और महाकाल निवासी कालीपति अविनाशी शंकर भगवान् की पूजा आरम्भ कर दी। कुछ काल के पश्चात् उनकी तपस्या से शिवजी सन्तुष्ट हुए, और मालवराज को वरदान के रूप में उन्होंने एक भयंकर गदा प्रदान की।

इस गदा की विशेषता यह है कि चाहे कैसा ही बलवान और शूरवीर शत्रु क्यों न हो, यदि उस पर उसे छोड़ा जायगा तो उसका वार खाली नहीं जा सकता। इस गदा के हाथ आ जाने पर अब मालवनरेश अपने को अद्वितीय वीर समझ रहे हैं। इस समय वे घमंड में फूले नहीं समाते और आप पर हमला करने के लिए पूरी तरह तैयार हैं।··· अब महाराज जैसा उचित समझें वैसी आज्ञा दें।''

यह समाचार सुनकर राजहंस ने मन्त्रियों की सभा बुलाई। उसमें इस गम्भीर विषय पर अच्छी तरह विचार किया गया। अब आगे क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में मन्त्रियों ने अपना निर्णय राजा के सामने रखते हुए कहा—''महाराज, शत्रु को तो इस समय देवता की—एक दैवी—सहायता मिल गई है। इसका कुछ उपाय ही नहीं हो सकता। इसको निष्फल करना भी असम्भव है। इसी सहायता के भरोसे पर वह लड़ने भी आ रहा है। इस कारण हम लोगों का उससे इस समय युद्ध करना उचित नहीं है। ऐसे समय तो सेना समेत किले में बैठकर अपना बचाव ही करना चाहिए।''

राजा मन्त्रियों की इस राय से सहमत नहीं हुए। तब मन्त्रियों ने

उन्हें फिर और कई तरह से समझाया तथा लड़ाई न करने पर जोर दिया। परन्तु राजहंस में भी आत्माभिमान की मात्रा कम न थी। वीर्य-दर्प से प्रदीप्त होकर राजा बोले—"युद्ध से मुख मोड़ना तो किसी प्रकार भी उचित नहीं जान पड़ता।" इस प्रकार राजा ने मन्त्रियों की बात नहीं चलने दी, और मानसार का सामना करने का ही निश्चय किया।

इधर मानसार सेना लेकर युद्ध करने आ भी पहुँचे। पिछली हार के कारण उनके वीर मालव-योद्धा झूमने के लिए और भी उतावले थे। मानसार अपनी सेना के अगुआ होकर चले। उन्हें शिवजी की दी हुई गदा पर पूरा भरोसा था। मालवों की सेना सब तरह की तैयारियाँ करके युद्ध के पूरे साज-सरंजाम के साथ बढ़ने लगी और बिना किसी रुकावट के वह मगध-राज्य में घुस आई।

मालव-सेना के हमले की खबर से मगध के मन्त्रियों को बड़ी चिन्ता थी। वे राजहंस का युद्ध के लिए हठ देख ही चुके थे और जानते थे कि राजा बिना मुकाबला किये न मानेंगे। मन्त्रियों ने सोचा कि कम-से-कम राज्य के भावी राजा को तो बचा लिया जाय। इसलिए उन्होंने मगधराज से किसी तरह अनुनय-विनय करके राज-परिवार को अर्थात् महारानी वसुमती को, जो गर्भवती थीं, मुख्य सेना के संरक्षण में देकर विन्ध्याचल के घने जंगल में भेज दिया। यह जगह शत्रुओं की पहुँच से बाहर थी।

इधर राजहंस अपने चुने हुए मागध-वीरों की सेना लेकर युद्ध के लिए निकले। यद्यपि यह खबर चारों ओर फैली हुई थी कि मानसार को शिवजी ने एक अव्यर्थ गदा दे दी है, तो भी मगध-सेना में इससे न तो किसी तरह की निराशा फैली, और न इन लोगों की हिम्मत ही टूटी। मालवों का सामना करने के लिए मागध-वीर बड़े वेग से झपटे। उन्होंने इस खूंखार और हमलावर दुश्मन को बीच में ही आकर रोक लिया।

दोनों ओर से विकट संग्राम छिड़ गया। राजहंस और मानसार इन दोनों का, एक-दूसरे के प्रति पुराना वैर था; और दोनों के हृदयों में यह शत्रुता खूब गहरी पैठ चुकी थी। इसलिए दोनों प्रतिद्वन्द्वी एक-दूसरे के

मुकाबले में आने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगे ।

मागधों और मालवों का यह युद्ध बहुत भयंकर हुआ । इसे देखने की उत्सुकता लेकर मनुष्य ही नहीं, आकाशचारी देवगण भी आये और देख-देखकर सभी बड़ा अचरज करने लगे ।

मालव-नरेश ने चाहा कि पहल करके पहले वार में ही शत्रु को जीत लें । उधर राजहंस भी शस्त्र चलाने में सिद्धहस्त थे । सभी तरह के हथियारों को वे बड़े धीरज से बरता करता थे; और इनके छोड़ने-चलाने में उनकी उपमा इंद्र से दी जाया करती थी । हथियारों को निष्फल करना भी वे खूब जानते थे । परन्तु मालवराज ने इसकी कोई परवाह नहीं की । उन्होंने अपना मौका समझकर, वह शिवजी की दी हुई गदा तुरन्त उन पर फेंकी ।

राजहंस इसके लिए पहले ही तैयार थे । उन्होंने इस आती हुई गदा को खूब पैने वाणों से बीच में ही टुकड़े-टुकड़े कर डाला ।

परन्तु कैसी हैरानी की बात थी कि टूटते-टूटते भी यह गदा मगधराज के रथ तक जा ही पहुँची । इसकी चोट से उनके रथ का सारथी मारा गया, और राजहंस भी अछूते नहीं बचे । वे भी इसके वार से अचेत होकर रथ पर गिर पड़े । आखिर यह देवता की गदा थी और फिर शिवजी का वरदान तो विफल जा ही नहीं सकता था ।

राजहंस के मूर्छित होकर रथ पर गिरते ही रास छुटे हुए घोड़े रथ लेकर भाग पड़े । युद्ध में घोड़ों को चोट नहीं आई थी, इसलिए वे चमक-कर बेतहाशा दौड़े और दैव की गति कुछ ऐसी हुई कि वे उसी घने जंगल में जाकर घुसे जिसमें मगध के राज-परिवार ने आकर शरण ली थी ।

इस प्रकार इस युद्ध में विजय-लक्ष्मी ने मालवेश्वर का साथ दिया । उन्होंने विशाल मगध-राज्य पर कब्जा करके पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया ।

अब मगधराज के मन्त्रियों की कहानी सुनिए । इस युद्ध में राजा के साथ-साथ मन्त्रियों को भी जाना ही था । उन बेचारों ने बल-सामर्थ्य के अनुसार युद्ध भी खूब किया । परन्तु जिस समय राजा का रथ मैदान से

निकल भागा तो फिर वे बेचारे कहाँ तक टिकते ? शत्रु का पक्ष उस समय भी प्रबल था। उनके हथियारों की चोटों से सब मन्त्री लोहू-लुहान हो गए। भाग्यवश केवल उनके प्राण नहीं निकल पाए। वे सभी मूर्छित होकर युद्ध के मैदान में गिर गए और वहीं पड़े रहे। यहाँ तक कि उसी जगह उन्हें रात हो गई। इस बेहोशी की हालत में भी वे अकेले युद्ध-क्षेत्र में पड़े रहे। जब रात बीतने पर आई और धीमी-धीमी बयार चलने लगी, तब उसकी सरसराहट से मन्त्रियों की मूर्च्छा टूटी। उस निर्जन और डरावने युद्धक्षेत्र में वे सब अकेले थे, कोई मित्र या संगी-साथी नहीं था। अन्त को किसी तरह खुद ही सँभलकर वे लोग उठे और धीरज के साथ उन्होंने वहाँ मगध-राज को ढूंढ़ना शुरू किया। परन्तु वे कहीं दिखाई न दिए। तब खिन्न होकर सब मन्त्री उसी विन्ध्याचल के जंगल में महारानी के पास पहुँचे।

वहाँ जाकर उन्होंने वसुमती को लड़ाई का हाल सुनाया। अपनी सारी सेना के नष्ट हो जाने और मगधराज के लापता होने की बात सुनकर महारानी बड़ी दुखी हुईं। महाराज के गायब होने के समाचार ने तो उन्हें शोक-सागर में ही डुबो दिया। वे समझ गईं कि महाराज युद्ध में काम आए, इसलिए उन्होंने भी महाराज के पद-चिह्नों पर चलते हुए प्राण त्यागने की ठान ली।

जब मन्त्रियों को रानी के इस निश्चय का पता चला तो उन्होंने कहा कि "महारानीजी, अभी यह बात पक्के तौर से नहीं कही जा सकती कि मगधराज अवश्य ही वीरगति को प्राप्त हो गए हैं। इसके अतिरिक्त आपकी कोख ईश्वर की कृपा से भरी है। ज्योतिषी की गणना यह है कि इस गर्भ में एक राजकुमार है जो सुन्दर, कोमल और वीर होने के साथ-साथ बड़ा प्रतापी होगा। आगे चलकर यह दुनिया-भर का सम्राट् होगा और यही मगध के इन उद्दंड वैरियों का भी अभिमान चूर करेगा। इसलिए आज ऐसे नाजुक समय में आप प्राण त्यागने की बात न कीजिए।"

मन्त्रियों ने बड़े अच्छे और सुन्दर शब्दों में महारानी के सामने ये बातें रखीं। उन्होंने उनसे अनुनय-विनय भी की। इसलिए वे उस समय थोड़ी

देर के लिए चुप हो रहीं। परन्तु राजहंस के अभाव में अब उनके मन में कोई उमंग नहीं रह गई थी।

इस बातचीत के उपरान्त रात आ गई और सब लोग सो गए। मन्त्रीगण भी वहीं जंगल में अपने स्थानों पर जाकर आराम करने लगे। जब आधी रात का समय हुआ तो राजसेवकों तथा पहरेदारों की आँखों में नींद भर गई। रात के सन्नाटे में और एकान्त में रानी का दुःख उमड़ पड़ा। इस शोक-सागर के पार उतर सकना उनके सामर्थ्य से बाहर हो गया। वे चुपचाप उठीं और बिना आहट के धीरे-धीरे उन्होंने सेना की छावनी को पार कर लिया। इसके पश्चात् वे अकेली जंगल में चल दीं। चलते-चलते अचानक वे उस जगह आ पहुँचीं जहां राजा राजहंस के युद्ध के मैदान से भागे हुए रथ के घोड़े आकर टिके थे। रथवान के न होने से रथ को लिये हुए महाराज के घोड़े बेतहाशा भाग पड़े थे। जंगल तक आते-आते वे थक गए और इस जगह राह न मिलने से आगे बढ़ना उनके वश का न रहा था। इसलिए इस स्थान पर घोड़े ठिठक रहे, और जरा दूर आगे बढ़कर खड़े हो गए।

इधर रानी ने इस जगह आकर एक बड़ का पेड़ देखा। उसकी एक नीची झुकी हुई डाल को पकड़कर वह खड़ी हो गईं। रात के घने अन्धेरे में निर्जन जंगल के बीच वह वटवृक्ष की शाखा एक मृत्युरेखा-सी प्रतीत हो रही थी। रानी आत्मघात का निश्चय कर ही चुकी थीं। उन्होंने इसी डाल में एक जगह अपने दुपट्टे का आधा हिस्सा फाड़कर उसे बाँध दिया और फाँसी लगाने का फंदा बना लिया। इसके बाद वे अपने जीवन का अन्त करने को खड़ी हुईं।

इस अन्तिम समय में उन्हें अपने पति महाराज राजहंस की याद आई। उनकी स्मृति आते ही उस सुन्दरी के आँसू उमड़ चले और गला भर आया। उनसे रहा न गया और वह विलाप करती हुई कहने लगीं—"महाराज, आप कहाँ चले गए? मुझे इस असहाय दशा में आपने क्यों छोड़ दिया? हे स्वामी, मैं अपने जीवन में तुम्हारे सिवा किसी दूसरे पुरुष को नहीं

जानती। मेरे तो तुम्हीं सर्वस्व थे, तुम्हारा रूप-लावण्य मेरे लिए कामदेव से भी बढ़कर था। अब मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि अगले जन्म में भी तुम ही मेरे पति बनो।" रानी वसुमती यद्यपि इस समय बड़े दुःख में थीं, पर उनकी बोली में मिठास अब भी वैसा ही था, और उनका स्वर कोयल को भी मात कर रहा था।

रानी के इस करुण विलाप को कहीं पास ही जंगल में पड़े हुए राजहंस ने सुना। युद्ध में गदा की चोट के कारण उनके शरीर से बहुत खून निकल गया था जिससे वे अचेत हो गए थे। यहाँ जंगल में आकर जब घोड़ों ने रथ रोका तब भी वे मूर्छित पड़े रहे। बहुत देर के बाद रात में जब चन्द्रमा निकला और कुछ शीतलता तथा शान्ति हुई, तब उन्हें होश आया। इसी समय उन्होंने यह करुण विलाप सुना। इसे सुनते ही वे समझ गए कि ये महारानी वसुमती के ही शब्द हैं। उन्होंने तुरन्त धीमी-धीमी मधुर-सी आवाज में उन्हें बुलाया।

रानी भी महाराज का स्वर पहचान गईं। वे बड़ी हैरानी और उत्सुकता के साथ जल्दी से वहाँ आ पहुँचीं। यह रात का समय था और चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था। परन्तु चाँदनी के कारण उन्होंने तुरन्त महाराज को पहचान लिया। वे उन्हें अपलक निहारती रह गईं। इस समय उनकी खुशी का आर-पार नहीं था। असीम हार्दिक आनन्द से उनका मुख-कमल खिल उठा।

कुछ देर तक इस आकस्मिक सुख के कारण वे कुछ बोल भी न सके। थोड़ी देर बाद उनकी आवाज कुछ खुली, और उन्होंने राज-पुरोहित तथा मन्त्रियों आदि को जोर-जोर से पुकारना शुरू किया। सब लोग तुरन्त दौड़े हुए आए, और रानी ने उन्हें ले जाकर महाराज को दिखलाया।

मन्त्रियों ने महाराज के सामने आते ही उन्हें देखकर परम आदर और सम्मान का भाव प्रदर्शित किया। फिर पृथिवी पर सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। इसके पश्चात् सब लोग वहीं बैठ गए। महाराज के इस

प्रकार कुशलपूर्वक और जीवित मिल जाने पर सभी ने भाग्य की बड़ी सराहना की। मन्त्रियों ने कहा—"महाराज, आप जब अचेत हुए उसी समय रथ का सारथी मारा गया था। इस कारण घोड़े आपके रथ को बेतहाशा ले भागे और दैव की कुछ ऐसी गति हुई कि वे इसी जंगल में आ पहुँचे।"

महाराज कहने लगे—"मेरे साथ जो सैनिक और जो शरीर-रक्षक रह गए थे, उन पर शत्रुओं की अनगिनत फौज टूट पड़ी। इस प्रकार वे सब मारे गए, मैं अकेला रह गया। इसी समय मालवनरेश ने दया, माया आदि सबको छोड़कर वह शिवजी की दी हुई गदा मुझ पर चला दी। उसकी चोट से मैं अचेत हो गया। फिर मुझे कुछ नहीं मालूम कि क्या हुआ। अभी थोड़ी देर पहले ही संभवतः रात समाप्त हुई है और धीमी-धीमी हवा चली है। इसी समय मुझे होश आया और मैंने देखा कि मैं यहाँ जंगल में पड़ा हूँ।"

इस बातचीत के उपरान्त मन्त्री, पुरोहित तथा राजसेवक आदि सब लोग महाराज की सेवा-सुश्रूषा में लग गए। यह एक तरह से दैव का ही प्रभाव समझना चाहिए कि इन सब लोगों के भाग्य ने पलटा खाया और ये एक-दूसरे से फिर आकर मिल गए।

महाराज राजहंस को तुरन्त छावनी में लाया गया। उनके घावों में से हथियारों के टूटे हुए टुकड़े निकालकर उनकी मरहम-पट्टी की गई, तब जाकर उन्हें चैन पड़ा। अपने सम्बन्धियों और आत्मीय जनों के बीच में आकर महाराज को खुशी अनुभव हुई और उनका मुख-कमल खिल गया। धीरे-धीरे महाराज की चोटें ठीक हो गईं और वे अच्छे हो गए।

स्वस्थ हो जाने पर महाराज राजहंस कुछ खिन्न से रहने लगे। युद्ध में यद्यपि उन्होंने असाधारण वीरता दिखाई थी, परन्तु फिर भी उनकी हार हो गई और भाग्य ने उनकी उस वीरता को भी एक तरह से धिक्कार दिया। ऐसी स्थिति में उन्हें मन-ही-मन बड़ी वेदना अनुभव होने लगी। मन्त्रियों ने राजा का यह हाल देखा तो उन्हें स्वयं तो कुछ कहने का साहस

न हुआ। उनकी सम्मति से रानी ने एक दिन राजा से कहा—

"महाराज, आप सब राजाओं में सिरमौर और सबसे तेजस्वी हैं। गौरव-गरिमा में भी आपसे ऊँचा कोई नहीं है। तिस पर भी आप आज विन्ध्याचल के जंगल में पड़े हैं। सचमुच यह धन-सम्पत्ति पानी के बुलबुले की तरह है। यह थोड़ी देर के लिए ही अच्छी और सुन्दर लगती है। बिजली की चमक की तरह यह एकाएक पैदा होती और तुरन्त मिट जाती है। इसका आदमी के पास आना-जाना भाग्यवश ही समझना चाहिए। प्राचीन काल में राजा हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र आदि असंख्य बड़े-बड़े महीपालों को, जिनकी उपमा ऐश्वर्य में इन्द्र से दी जाती थी, भाग्य की चक्की को पिसकर दुःख भोगना पड़ा। फिर पीछे से अवश्य अनेक वर्षों तक इन्होंने अपने-अपने राज्य का सुख उठाया। महाराज, मेरा तो मन कहता है कि इस वर्तमान कष्ट के पश्चात् आपके भी दिन अवश्य फिरेंगे। आज हमारा संकट का समय है। इसमें क्यों न आप कुछ दिनों के लिए चुप्पी साधकर और निश्चिन्त होकर बैठ जायँ।"

राजहंस ने रानी के इन समयानुकूल वचनों को ध्यान से सुना, और इस सलाह को ही उपयुक्त मानकर वे शान्तिपूर्वक रहने लगे।

परन्तु मन-ही-मन वे इस बारे में सोचते अवश्य रहते थे। कुछ दिन बीतने पर उन्हें एक विचार सूझा और उन्होंने ऋषि वामदेव के पास चलने का निश्चय किया। वामदेव अपने समय के बड़े प्रसिद्ध तपस्वी थे। तप के तेज से उनका मुख-मंडल दमकता रहता था। राजा राजहंस को अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिए इन्हीं ऋषि की सहायता लेने का उपाय सूझा, और वे अपनी सब सेना तथा सेवक-मंडली के साथ ऋषि वामदेव के आश्रम पर पहुँचे।

वामदेव को समाचार मिला कि चन्द्रवंशी महाराजा राजहंस पधारे हैं। राजहंस ने जाकर ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने भी महाराज और उनके साथियों को आशीर्वाद देकर, उनके आतिथ्य आदि की व्यवस्था की। आरम्भिक कुशल-क्षेम के उपरान्त महाराज विश्राम करने चले गए और कुछ

दिन तक वे उसी आश्रम में रहे। राजहंस अपने छिने हुए राज्य के सम्बन्ध में ऋषि जी का परामर्श लेने आये थे, अतः उन्होंने उपयुक्त अवसर देखकर थोड़े से चुने हुए शब्दों में ऋषि के समक्ष अपने मन का भाव प्रकट करते हुए कहा—

"भगवन्, मालवराज मानसार ने महादेवजी की दी हुई दैवी शक्ति के बल से मुझ पर विजय पाई है। वह अब मेरे राज्य को अन्यायपूर्वक भोग रहा है। मैं चाहता हूँ कि मैं उसी के समान भारी तप करूँ और देवता का वरदान पाऊँ। आप दुनिया के सब दुखी प्राणियों को शरण देते हैं; मुझ पर भी यदि आपकी कृपा हो जाय तो मैं भी अपने इस वैरी का जड़ से नाश कर डालूं। आप सब तरह के धर्म-कर्म और विधि-अनुष्ठान के पूरे जानकार हैं, इसलिए इस तप के सम्बन्ध में आप मुझे निर्देश दीजिए। इसी विचार से मैं आपकी सेवा में आया हूँ।"

राजा की बात सुनकर त्रिकालदर्शी ऋषि उनसे बोले—"मित्र राजहंस, जिस तपस्या की बात तुम कहते हो वह तो शरीर को दुर्बल बना डालती है। ऐसी तपस्या तुम न करो, इसे रहने दो। मैं तुम्हें और उपाय बताता हूँ। सुनो, तुम्हारी महारानी वसुमती इस समय गर्भवती है। वे एक ऐसे तेजस्वी और प्रतापी राजकुमार को जन्म देगी जो तुम्हारे वैरी का समूल ही नाश कर देगा। उस समय के आने की तुम प्रतीक्षा करो और तब तक शान्त भाव से रहते चलो।"

ऋषि वामदेव के यह कहने के साथ ही आकाशवाणी हुई —"ऋषि का यह कथन सर्वथा सत्य है।"

महाराज राजहंस,वामदेव की बात मानकर लौट आए,और चुपचाप शान्त भाव से रहने लगे। धीरे-धीरे महारानी के गर्भ के दिन पूरे हुए और बड़े अच्छे मुहूर्त में उन्होंने पुत्र को जन्म दिया। इस राजपुत्र के सब लक्षण बड़े शुभ थें। क्रमशः इस बच्चे के संस्कारों का समय आया।

संस्कार संबंधी सब कार्यकलाप,यद्यपि महाराज राजहंस स्वयं जानते थे, परन्तु कुल की परम्परा के अनुसार उन्होंने अपने राज-पुरोहित को ही

बुलवाया। उनके ये पुरोहित बड़े विद्वान् और तेजस्वी थे। ब्राह्मणोचित यज्ञ-याग, विधि, अनुष्ठान, संकल्प और संस्कार आदि कराने में वे ब्रह्मा जी की बराबरी करते थे। महाराज ने उन्हीं के द्वारा राजपुत्र का 'जातकर्म' संस्कार करवाया। इस बच्चे का नाम 'राजवाहन' रखा गया। संस्कार के पश्चात् इस शिशु को बच्चों के माफिक हल्के कपड़ों और गहनों से सजाया गया।

जिस समय राजवाहन का जन्म हुआ, दैवयोग से उन्हीं दिनों महाराज के अन्य मन्त्रियों के भी पुत्र हुए। इनमें मन्त्री सुमति के प्रमति, सुमन्त्र के मित्रगुप्त, सुमित्र के मन्त्रगुप्त और सुश्रुत के लड़के का नाम विश्रुत रखा गया। राजवाहन समेत ये सब बच्चे नये उगे हुए चन्द्रमा-जैसे गोरे-गोरे और बड़े सुन्दर लगते थे। कुमार राजवाहन और ये सब मन्त्रि-पुत्र, साथ-साथ खेलते हुए धीरे-धीरे बड़े होने लगे।

एक दिन ऐसा हुआ कि एक तपस्वी महात्मा महाराज राजहंस के पास आये। उन्होंने एक बच्चा राजा के सुपुर्द किया। यह बच्चा असाधारण रूप से सुन्दर था और आँखों को बड़ा प्यारा लग रहा था। इसके भी शरीर पर राजसी निशान थे। बच्चे को देखकर वे महात्मा राजा से कहने लगे—"महाराज, मैं एक दिन हवन के लिए कुश और लकड़ियाँ लेने जंगल में गया था। वहाँ मैंने एक स्त्री देखी। वह बिचारी जंगल में अकेली बैठी-बैठी आँसू बहा रही थी। इसे किसी का आसरा नहीं था और बड़े दुःख में थी। मैंने उससे पूछा कि तू इस निर्जन जंगल में कैसे आ गई और रो किसलिए रही है?

यह सुनकर उसने अपने नरम-नरम हाथों से आँसू पोंछे और भरे हुए गले से कहने लगी—"मुनिवर, मिथिला के राजा का नाम आपने सुना होगा। उनका बड़ा नाम है। सुनती हूँ कि उनकी कीर्ति की चर्चा देवताओं तक में होती है। रूप और सुन्दरता भी मिथिला-नरेश को असाधारण मिले हैं। इन गुणों में उनसे कामदेव तक मात खाते हैं। कुछ दिन हुए, वे स्त्री-पुत्र को लेकर अपने मित्र मगधराज के यहाँ गये थे। मगध-नरेश की रानी का 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार था और बड़ा भारी उत्सव हो रहा था। उसी में शामिल होने के लिए मिथिल-नरेश पाटलिपुत्र पहुँचे और कुछ समय तक

वहीं रहे। इसी बीच मालवा के राजा ने शिवजी की पूजा करके उनका वरदान प्राप्त किया। वे मगधराज से युद्ध करने आ पहुँचे। दोनों बड़े प्रसिद्ध वीर थे। इनमें बहुत भयंकर और असाधारण युद्ध हुआ। मिथिला-नरेश प्रहारवर्मा इस लड़ाई में अपने मित्र मगधराज की सहायता कर रहे थे। उनकी सेना युद्ध में काम आई और मालवराज ने उन्हें कैद कर लिया। परन्तु प्रहारवर्मा ने पूर्व जन्म में अच्छे कर्म किये थे, जिनके कारण मालवराज को दया आ गई और उन्होंने इनको छोड़ दिया। प्रहारवर्मा की बहुत कुछ सेना मर चुकी थी; जो बाकी बची वह भी बिना हथियारों के थी। उसे लेकर वे अपनी राजधानी को चल दिए।

रास्ते में बीहड़ जंगल पड़ता था। उसमें से जाते समय उन पर भीलों की फौज टूट पड़ी। मिथिला-नरेश की विशेष फौज की टुकड़ी, जिसके पास कुछ हथियार थे, उनके परिवार की रक्षा और बचाव करने लगी, पर भीलों के जबरदस्त हमले के कारण अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा।

मिथिला-नरेश के दो जुड़वाँ बच्चे थे, वे मेरे पास थे। मैं उनकी धाय थी। मुझे भी सबके साथ भागना पड़ा। परन्तु राजा और उनके साथी बड़ी तेजी से पीछे हट रहे थे। मैं और साथ में मेरी लड़की हम दोनों उतनी जल्दी उनके पीछे-पीछे नहीं चल सके और पिछड़ गए। रास्ते में जंगल था ही, उसमें से एक बाघ मेरे प्राण लेने आ पहुँचा। ऐसा बाघ मैंने जीवन में कभी न देखा था। बाघ क्या था, क्रोध की साक्षात् मूर्ति थी। मुझसे उस समय कुछ करते-धरते नहीं बना, और मैं डर के मारे एक ऊँचे पत्थर पर से लुढ़कती हुई नीचे आ गिरी। बच्चा मेरे हाथ से छूट पड़ा। वह अलग पड़ी हुई एक गाय की लाश की गोद में जा गिरा। मुझे फिर वह दिखाई नहीं दिया। बाघ गुस्से में भरकर उस मुर्दा गाय की ओर लपका, परन्तु इतने में किसी ने धनुष खींचकर एक तीर से उसे मार गिराया। बच्चा जब मेरे हाथ से गिरा था तो उसके घुँघराले बाल बिखर गए थे। उसकी वह सूरत मुझे अब तक याद है। उस बच्चे को भील कहीं उठा ले गए।

दूसरा बच्चा मेरी लड़की के पास था। वह न जाने कहाँ गई, मुझे

कुछ मालूम नहीं पड़ा,क्योंकि मैं गिरते ही अचेत हो गई थी। मुझे उसी दशा में एक गडरिये ने देखा। वह बड़ा दयावान आदमी था। मुझे उठाकर वह अपनी झोंपड़ी में ले गया और उसी ने मेरे घावों की मरहम-पट्टी की। कुछ दिनों बाद मैं ठीक हो गई और वहाँ से चल दी।

अब मैं मिथिलापति के पास पहुँचना चाहती हूँ। परन्तु एक तो यहाँ मेरा कोई सहायक नहीं,दूसरे अपनी लड़की का भी मुझे पता नहीं मिल रहा है। इसलिए मैं बड़ी बेचैन हूँ।" यह कहकर वह चुप हो गई। फिर अन्त में कहने लगी—"मैं अकेली हूँ तो भी कोई चिन्ता नहीं। इसी हालत में मैं महाराज के पास चली जाऊँगी।" इतना कहकर वह उसी दम उठी और चली गई।"

उस बालक का इतना हाल सुनाकर वे महात्मा कहने लगे—"महाराज विदेहपति प्रहारवर्मा आपके मित्र थे। उनकी मुसीबत को सुनकर मेरा भी चित्त बड़ा खिन्न हुआ। मैंने सोचा कि कम-से-कम उनका वंश तो लोप न हो जाय; इस कारण उस राजपुत्र को खोजने चल दिया। देखता-भालता मैं एक काली के मन्दिर में पहुँचा जिसकी इमारत बहुत सुन्दर बनी हुई थी।

मन्दिर में भील लोग इकट्ठे थे। जान पड़ता था कि विदेहराज पर हमला करके लूट-मार करने में उन्हें जो सफलता मिली थी; उसी की खुशी में वे देवी को भेंट चढ़ाने आए थे। वे लोग इस राजपुत्र की बलि देना चाहते थे। इसी बारे में उनमें आपस में बातचीत चल रही थी।

इस बच्चे को किस ढंग से मारकर बलि दिया जाय,इस बात पर सब एकमत नहीं हो पाते थे। कोई तो कह रहे थे कि इसे पेड़ की डाल में लटकाकर तलवार से काट दिया जाय। कुछ की राय यह थी कि रेतीली जगह में गड्ढा खोदकर उसमें इसके पैर गाड़ दिए जायँ और इसे तेज़ वाणों का निशाना बना दिया जाय। कुछ लोग चाहते थे कि इसे दौड़ाया जाय और कुत्तों के पिल्ले चारों टाँगों से भागते हुए जाकर इसे नोच-नोचकर मार डालें।

वे लोग इस तरह सोच-विचार कर ही रहे थे कि मैं वहाँ जा पहुँचा

और मेरी उनसे बातचीत होने लगी। मैंने उनके मुखिया से कहा—"सरदार, मैं एक बूढ़ा ब्राह्मण हूँ। इस घने जंगल में मैं रास्ता भूल गया था, इसलिए अपने गोद के बच्चे को एक जगह छाँह में लिटाकर रास्ता खोजने के लिए कुछ दूर आगे बढ़ गया। इसी बीच मेरा वह बच्चा न जाने कहाँ गुम हो गया ? यह देखने के लिए कि उसे कौन ले गया मैंने चारों ओर अच्छी तरह देख-भाल की। परन्तु कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। अपने उस बच्चे का मुँह देखे मुझे कई दिन हो गए। क्या करूं और कहाँ जाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। कहीं आप लोगों ने तो उसे नहीं देखा ?

यह सुनकर उन लोगों में से एक भील बोला—"पंडितजी, यहाँ एक बच्चा है तो। देखिए, क्या यह आपका ही लड़का है ? अगर आपका हो तो इसे ले जाइए।"

यह कहकर इस बच्चे को सौभाग्यवश उन लोगों ने मेरे हवाले कर दिया। मैंने उन भीलों को आशीर्वाद दिया और बच्चे को लेकर चला आया। अपने स्थान पर आकर मैंने ठंडे पानी के छींटे आदि दिये और उसे होश में लाया। उसके बाद मैं निःसंकोच इसे आपके पास ले आया हूँ। ईश्वर कृपा करें कि यह बच्चा दीर्घायु हो। इसके अब आप ही पिता हैं, इसका भरणपोषण कीजिए।"

महाराज राजहंस ने जब यह हाल सुना तो अपने मित्र, विदेहराज प्रहारवर्मा पर विपत्ति पड़ने की बात से उन्हें बड़ा शोक हुआ। परन्तु प्रहारवर्मा के इस पुत्र का मुख देखकर उन्हें कुछ शान्ति हुई। उन्होंने उस बच्चे को प्रेम से ले लिया और अपने पुत्र राजवाहन की तरह उसका भी पालन-पोषण करने लगे। इस बच्चे का नाम उन्होंने उपहारवर्मा रख दिया।

दूसरी बार एक अद्भुत घटना यह हुई कि कोई पर्व आकर पड़ा। उस पर तीर्थ-स्नान करने के लिए राजहंस भीलों की बस्ती के पास वाले रास्ते से गुजरे। जाते समय क्या देखते हैं कि कोई भील औरत एक बहुत ही खूबसूरत बच्चे को गोद में लिये खिला रही है। बच्चे का रूप-रंग और छवि कुछ अनुपम ही थी, इसलिए राजा को बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने उस भीलनी से

पूछा —"यह बच्चा तुम लोगों के घराने का तो हो नहीं सकता, क्योंकि इसकी देह के चिह्न राजकुमारों-जैसे हैं; बच्चा सुन्दर भी बहुत है। यह किसका है ? तुम्हारे हाथ कहाँ से लगा, ठीक-ठीक बतलाओ।"

यह सुनकर उस भीलनी ने राजा को झुककर बड़े आदर के साथ नमस्कार किया, फिर बड़े हाव-भाव दिखलाती हुई कहने लगी—"महाराज, एक बार मिथिला के राजा हमारी बस्ती के पास वाले रास्ते से जा रहे थे। भीलों ने उन पर धावा करके उनका सब माल-असबाब लूट लिया। उसी लूट के समय मेरे मालिक ने यह बच्चा भी छीन लिया था और लाकर मुझे दे दिया था। मैंने इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है।"

उस भीलनी की बातपर राजा ने ध्यान से सोचा तो उन्हें उन महात्मा की 'उस दूसरे राजकुमार' वाली बात का खयाल आ गया। उन्हें पक्का निश्चय हो गया कि 'यह' अवश्य प्रहारवर्मा का वह 'दूसरा' राजकुमार ही है। राजहंस ऐसे मामलों में अपने कर्तव्य को अच्छी तरह समझने वाले व्यक्तियों में से थे। उन्होंने मित्र की सन्तान को ले लेने का इरादा कर लिया और शांति-पूर्वक कुछ दे-दिलाकर उस भीलनी को राजी करके, वह बच्चा उससे ले आए। घर लाकर उन्होंने उसका नाम अपहारवर्मा रखा और रानी को देकर कहा कि इसका पालन-पोषण अच्छी तरह करो।

इसी तरह एक बार और एक विचित्र घटना घटी।

एक दिन मुनि वामदेव के सोमदेव शर्मा नाम के शिष्य महाराज राजहंस के पास आये और उनके सामने एक बालक को उपस्थित करके कहने लगे—"महाराज, मैं राजतीर्थ में स्नान करने गया था। वहाँ से लौटते हुए रास्ते में जंगल पड़ा। मैंने देखा कि वहीं जंगल में एक स्त्री इस बच्चे को लिये जा रही है। यह बच्चा मुझे बड़ा गोरा-गोरा-सा और सुन्दर जान पड़ा। मैंने उस स्त्री से बड़े आदर के साथ पूछा—"वृद्धा माता, तुम कौन हो ? इस जंगल में कैसे आईं ? तुम इतनी थक गई हो, फिर भी इस बच्चे को उठाए चली ही जा रही हो, क्या बात है ?"

वह कहने लगी—"महात्माजी, मेरी कहानी लम्बी है। आपने शायद

कालभवन टापू का नाम तो सुना होगा ? वहाँ बालगुप्त नाम के एक बड़े धन-वान सौदागर रहते हैं। उनकी लड़की का नाम सुवृत्ता है। वह बड़ी सुन्दर है। उसी टापू में मगधराज के मन्त्री का लड़का 'रत्नोद्भव' पहुँचा। उसके साथ सुवृत्ता का विवाह हो गया। रत्नोद्भव भी वाणिज्य-व्यवसाय में बड़ा होशियार था। वह दूर-दूर तक देश-विदेश में घूम आया था और सुन्दर होने के साथ-साथ गुणी भी था। ससुर ने उसे दहेज में बहुत-सी धन-सम्पत्ति और साज-सामान भेंट किया। इसे उन्होंने वहीं अपने पास ही बड़ी खातिर के साथ रख लिया। कुछ समय बाद सुन्दरी सुवृत्ता गर्भवती हुई।

इन्ही दिनों रत्नोद्भव को अपने सगे भाई के देखने की बड़ी प्रबल इच्छा हो आई। उसने जैसे-तैसे ससुर को राजी कर लिया और अपनी प्यारी सुवृत्ता को संग लेकर जहाज पर सवार होकर पाटलिपुत्र की ओर चल दिया। परन्तु बीच में समुद्र के अन्दर तूफान आ गया। उसमें पहाड़ की ऊँची-ऊँची बड़ी भयंकर लहरें उठने लगीं। जहाज उन लहरों से टक्कर खाकर समुद्र में डूब गया। गर्भवती होने के कारण सुवृत्ता की इस समय हालत नाजुक थी। मैं उसकी धाय बनकर साथ-साथ गई हुई थी। जहाज टूटने पर मैंने उसे अपने दोनों हाथों में ले लिया, और एक काठ के तख्ते के सहारे तैर चली। भाग्य से हम दोनों किनारे भी जा लगीं। रत्नोद्भव के बारे में मुझे कुछ पता नहीं चला कि वे और उनके संगी-साथी किसी उपाय से किनारे जा लगे या वहीं समुद्र में डूब गए।

किनारे आकर सुवृत्ता को साथ लेकर मैं चल दी। राह में इस जंगल तक ही आ पाई थी कि उसके पीर होने लगी और आज उसके यह बच्चा हुआ है। प्रसव की वेदना से सुवृत्ता अचेत हो गई है और एक पेड़ की ठंडी छाँह में पड़ी हुई है।

यह जंगल एकदम सुनसान और बियाबान है। किसी आदमी का इसमें पता नहीं। यहाँ ठहरना मुमकिन नहीं जान पड़ता, इसलिए मैं बस्ती के जाने वाले रास्ते को खोजने निकली। मैंने सोचा कि इस अकेले बच्चे को बेबस माँ के पास छोड़ जाना ठीक नहीं रहेगा, इस विचार से इसे भी साथ

लेती आई।"

इसके बाद सोमदेव राजहंस से कहने लगे—"महाराज, वह इतना ही कह पाई थी कि उसी समय एक जंगली हाथी दिखाई दिया। उसे देखते ही वह बूढ़ी स्त्री एकदम डर गई, और बच्चे को वहीं नीचे डालकर तेजी से भाग गई।

मैं पास ही बेलों के झुरमुट में घुस गया और सावधानी से वहीं बैठा रहा।

यह बच्चा वहीं नीचे पड़ा हुआ था। इसे उस जंगली हाथी ने पेड़ की नई कोंपलों का मानो ग्रास हो, इस तरह सूंड में उठा लिया। इतने में बड़े जोर से दहाड़ता हुआ एक शेर तेजी से उस पर झपटा। हाथी उसके डर के मारे घबरा गया और उसने बच्चे को ऊपर आकाश में गेंद की तरह उछाल फेंका। आकाश से फिर यह नीचे की ओर गिरा, परन्तु इसकी आयु लम्बी थी, इस कारण एक बन्दर ने जो ऊँचे पेड़ की डाल पर बैठा था, इसे एक पका हुआ फल समझकर बीच में ही लपककर ले लिया। जब बन्दर ने देखा कि यह तो फल नहीं है कुछ और ही है तो उसने इसे पेड़ के एक चौड़े फैले हुए टहने की जड़ पर डाल दिया। वह बन्दर भी फिर कहीं चला गया। बच्चे ने पक्का पोढ़ा होने से वे सब मुसीबतें झेल लीं। वह शेर हाथी को मारकर किसी दूसरी ओर को चल दिया। उसके चले जाने के बाद मैं उस झुरमुट में से निकला और मैंने इस तेजस्वी बच्चे को धीरे-धीरे पेड़ के नीचे उतारा।

अब मैं उस स्त्री को जंगल में ढूँढने लगा, परन्तु वह कहीं दिखाई नहीं पड़ी। तब मैं इसे आश्रम पर ले आया और गुरु जी को मैंने सब हाल सुनाया।

उनकी यह आज्ञा हुई है कि इसे आपके पास ले जाऊँ, इसलिए आपकी सेवा में लाया हूँ।"

राजहंस ने यह सब हाल ध्यान से सुना। वे आश्चर्य में पड़कर सोचने लगे कि देखो, हमारे सभी मित्रों पर एक-साथ ही मुसीबतें आ पड़ीं, और भाग्य सभी के प्रतिकूल हो गया। उन्हें खयाल हुआ कि बेचारे रत्नोद्-

भव का न जाने क्या बना हो ?

इसके पश्चात् उन्होंने उस बच्चे को ले लिया और उसका 'पुष्पोद्भव' नाम रखा। फिर अपने मंत्री सुश्रुत को बुलाकर उन्हें यह सब वृत्तान्त सुनाया। राजा को इस समय शोक तो हुआ ही, परन्तु पुष्पोद्भव को पाकर उनके चित्त को कुछ सन्तोष हो गया। उन्होंने यह बच्चा देकर सुश्रुत से कहा कि देखो यह तुम्हारे ही भाई का बेटा है, इसे खूब अच्छी तरह पालो-पोसो।

इसके पश्चात् एक और बालक बड़ी विचित्र रीति से महाराज राजहंस के पास आया।

एक दिन ऐसा हुआ कि एक बच्चे को छाती से लगाये, रानी वसुमती पति के पास पहुँचीं। जब राजा ने पूछा कि यह कहाँ से आया, तो वे कहने लगीं—"महाराज, पिछली रात एक स्त्री मेरे पास आई। वह इस दुनिया की तो लगती नहीं थी। उसने एक बच्चा मेरे आगे ला रखा। नींद में उस समय मेरी आँखें बन्द थीं। उस स्त्री ने मुझे जगाया और बड़ी नरमी तथा विनय के साथ कहने लगी—"देवी जी, मैं तुम्हारे मंत्री धर्मपाल के पुत्र कामपाल की प्रेयसी हूँ। मेरा नाम तारावली है। मैं यक्षिणी हूँ और मणिभद्र की लड़की हूँ। आपके कुँअर राजवाहन भविष्य में चक्रवर्ती राजा होने वाले हैं। समुद्रों से घिरी हुई इस सारी धरती पर उनका राज्य होगा और सब दुनिया में उनका नाम फैल जायगा। यक्षराज कुवेर की मुझे आज्ञा हुई कि कुमार राजवाहन की सेवा के लिए तू अपना पुत्र अर्पित कर दे। इसीलिए मैं इसे आपकी सेवा में लाई हूँ। देखिए, मेरा यह बच्चा कामदेव की तरह कितना सुन्दर है! अब आप इसे लें और इसका पालन करें।"

उस स्त्री की ये सब बातें सुनकर मैं तो अचरज के मारे आँखें फाड़े देखती ही रह गई। वह यक्षिणी बेहद सुन्दर थी और आँखें तो उसकी बहुत ही मनोहर थीं। मैंने उसका बड़ी नम्रता से आदर-सत्कार किया। किन्तु वह रुकी नहीं, थोड़ी देर में ही ओझल हो गई।"

कामपाल के साथ यक्ष की लड़की के इस 'प्रेम' और 'मिलन' पर, राजहंस मन-ही-मन सोचते रहे। वे इस अद्‌भुत बात से बड़े हैरान हुए। फिर उन्होंने सुमित्र को बुला भेजा। मन्त्री सुमित्र 'यथा नाम तथा गुण' थे। अपने संगी-साथियों और मित्रों में वे बड़े प्रिय थे। महाराज ने उन्हें कामपाल और यक्षिणी के सम्बन्ध की सब बातें सुनाईं। फिर उन्होंने इस बालक का 'अर्थपाल' नाम रखा, और सुमित्र के भाई का लड़का होने के नाते उन्हीं को दे दिया।

इसके बाद किसी दूसरे दिन एक और विचित्र घटना घटी। ऋषि वामदेव के आश्रम में रहने वाला उनका छात्र एक और बच्चे को राजहंस के पास लाया। यह भी बड़ा सुन्दर और फूल-सा मुलायम था। इस शिशु की इतनी मनोहर छवि थी कि कामदेव लजाता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि यह बच्चा किसी और लोक का असाधारण बालक है। देवता तक इसकी कीर्ति का बखान करते हुए प्रतीत होते थे। वामदेव का वह विद्यार्थी महाराज राजहंस से बोला—"महाराज,मैं तीर्थ-यात्रा के लिए गया हुआ था। उसी सिलसिले से कावेरी नदी के किनारे पर जा पहुँचा। वहां मैंने क्या देखा कि एक बूढ़ी स्त्री बैठी रो रही है। उसकी गोद में एक बच्चा लेटा हुआ था जिसके बाल इधर-उधर बिखर रहे थे। मैंने उस स्त्री से पूछा—'माता जी, आप कौन हैं ? यह बच्चा किसका है ? इस डरावने जंगल में आप कैसे आ गईं और रोती क्यों हैं ?'

मुझे देखकर उस बूढ़ी स्त्री को कुछ धीरज-सा बँधा। उसे शायद यह खयाल हुआ कि मैं उसके दुःख में कुछ हाथ बँटा सकूंगा। उसने अपनी आँखों के आँसू पोंछ डाले, और मुझसे कहने लगी—'महात्मा जी, आप ब्राह्मण के पुत्र जान पड़ते हैं। मेरा किस्सा यह है कि इस देश में मगधराज राजहंस के मंत्री सितवर्मा के पुत्र सत्यवर्मा तीर्थ करने के लिए आये थे। उन्होंने यहाँ अग्रहार गाँव में काली नाम की एक ब्राह्मण लड़की से ब्याह किया। उससे उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। उस काली की छोटी बहन गोरी बहुत खूबसूरत थी। उसका रंग भी सोने-जैसा दमकता था।

सत्यवर्मा ने सन्तान के लिए उससे भी ब्याह कर लिया। इस गोरी से उनके एक पुत्र हुआ।

अब काली को डाह होने लगा। मैं उस बच्चे की धाय थी। काली ने क्या काम किया कि वह इस बच्चे समेत मुझे एक दिन किसी बहाने से नदी पर ले आई और धोखे से इसके अन्दर गिरा दिया। हम दोनों पानी में बह चले। मैंने एक हाथ में बच्चे को उठा लिया और दूसरे से तैरना शुरू किया। इतने में नदी के बहाव में आता हुआ एक पेड़ मिल गया। मैंने उसे पकड़-कर उसकी एक डाल पर पत्तों के बीच इस बालक को लिटा दिया और पेड़ के साथ-साथ बहाव में बहती चली। पेड़ में वहीं एक काला साँप लिपटा हुआ था, उसने मुझे डस लिया इसके बाद यह पेड़ जिसे मैं पकड़े-पकड़े आ रही थी धीरे-धीरे इस जगह किनारे पर आ लगा।

अब मेरा यह हाल है कि साँप का जहर मेरे सारे शरीर में फैल रहा है। कुछ देर बाद मैं मर जाऊंगी। यह सोचती हूँ कि मेरे मरने के बाद इस बच्चे का क्या होगा ? इस जंगल में कोई ऐसा भी नहीं है जो इसे आसरा दे देता। यही सोच-सोचकर मेरे आँसू आ रहे हैं।'

इतना कहते-कहते ही उस बेचारी बूढ़ी के अंग-अंग में तेज़ विष की एक लहर-सी व्याप गई। वह धरती पर गिर पड़ी। उसे देखकर मेरे हृदय में दया उमड़ आई। मैं मन्त्र-बल से तो जहर उतारना जानता नहीं था; हाँ एक बूटी मुझे जरूर मालूम थी। इसलिए आसपास की झाड़ियों में उसे खोजने लगा, परन्तु जड़ी लेकर जब तक लौटा तब तक देखा तो उसके प्राण निकल चुके थे।

मुझे उस बिचारी की मौत से बड़ा क्लेश हुआ। जैसे-तैसे मैंने उसका दाह-कर्म किया। फिर इस अनाथ और निराश्रय बच्चे को उठाकर यहाँ चला आया।

इस बच्चे के पिता सत्यवर्मा का हाल सुनते समय उसके ग्राम 'अग्रहार' का नाम मैंने पहले कभी नहीं सुना था। उसकी खोज करना मेरी सामर्थ्य से बाहर था। मैंने सोचा कि यह बच्चा आपके मंत्री के भाई का

लड़का है, अतः आप इसे पाल लेंगे। इसीलिए ले आया हूँ।"

राजहंस यह सब हाल सुनकर सोचने लगे—'न मालूम सत्यवर्मा अब कहां हो?' उसका पता-ठिकाना कुछ भी निश्चित नहीं था। इस बात से वे बड़े खिन्न हुए। फिर उन्होंने उस बच्चे को ले लिया और उसका नाम 'सोमदत्त' रखा।

इसके पश्चात् उन्होंने मन्त्री सुमति को बुलाया। उनके भाई का ही यह पुत्र था, इसलिए इसे उनके हवाले करके, उन्हीं की देख-रेख में रख दिया।

सुमति इस बच्चे को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा लगा मानो उनका सगा भाई ही आ गया हो। वे उसे बड़े यत्न के साथ पालने लगे।

इस प्रकार अब महाराज राजहंस के यहाँ मन्त्रियों के तथा उनके भाइयों के पुत्रों की एक अच्छी मण्डली आकर जुड़ गई। राजकुमार राजवाहन इस बाल-मंडली के साथ खेल खेलते और तरह-तरह की सवारियों पर सैर करने का आनन्द लिया करते। धीरे-धीरे इन कुमारों के चूड़ाकर्म, उपनयन आदि संस्कार किये गए। फिर उन सबका पढ़ना-पढ़ाना शुरू हो गया।

क्रम से इन बालकों ने ऊँची शिक्षा प्राप्त की। अपने समय में प्रचलित सब लिपियां उन्होंने सीखीं और देश-विदेश की सभी भाषाओं में पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। छः अंगों सहित वेदों का उन्हें विशेष रूप से अध्ययन कराया गया। काव्य, नाटक, उपाख्यान, इतिहास, प्राचीन कथाएं, पुराणग्रन्थ, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा आदि शास्त्रों के वे अच्छे विद्वान हो गए। कौटिल्य अर्थशास्त्र और कामन्दक नीति-ग्रन्थ भी उन्होंने ध्यान से पढ़े। संगीत-शास्त्र में और वीणा मृदंग आदि बाजे के बजाने में खूब प्रवीणता प्राप्त की। काव्य सुनाने तथा उसके गायन करने के द्वारा श्रोताओं का चित्त अपनी ओर खींच लेने की कला में भी वे दक्ष हो गए। रत्नों और मणियों की परख करना, मन्त्रविद्या का अभ्यास, औषध-चिकित्सा, मायाजाल या जादू के द्वारा अनेक प्रकार के प्रपंच खड़े कर देना, यह कौशल भी उन्होंने सीखा। हाथी, घोड़े आदि की सवारी

करने में तो ये सब बहुत ही दक्ष हो गए। तरह-तरह के हथियारों को चलाने और छोड़ने में सिद्धहस्त हो जाना उनके लिए जरूरी ही था। इन सबके साथ-साथ चौर्य-कर्म तथा द्यूत-कौशल आदि तरह-तरह की कपट-कलाओं का भी उन्हें अभ्यास कराया गया।

उपर्युक्त सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा इन लोगों को अपने समय के विख्यात आचार्यों द्वारा दिलवाई गई।

इस शिक्षा-प्राप्ति में ही धीरे-धीरे इन कुमारों का बचपन बीत गया और वह समय आ गया जब राजपुत्र राजवाहन तथा उनके साथी सब कुमारों के शरीर युवावस्था के कारण खिल उठे। अब ये लोग हर एक काम को उमंग और उत्साह के साथ करने लगे। आलस्य किसी को छू तक नहीं गया था। महाराज राजहंस जब इस उठती हुई और उमंगों-भरी कुमार-मंडली को देखते तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। धीरे-धीरे महाराज को विश्वास हो चला कि अब हमारे वैरी हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अपनी भावी उन्नति और आगामी अभ्युदय का खयाल आते ही महाराज का हृदय आनन्द से भर उठा।

पूर्व पीठिका

द्वितीय उच्छ्वास

राजवाहन की पाताल-यात्रा

एक बार ऋषि वामदेव महाराज राजहंस के यहां पधारे। उस समय सब राजकुमार महाराज के चारों ओर उन्हें घेरे हुए इकट्ठे खड़े थे। सभी राजपुत्र इस समय तक तरह-तरह के ज्ञान, विज्ञान-कला-कौशल और शिल्प आदि सीखकर खूब होशियार हो चुके थे। बचपन से निकलकर उन्होंने जवानी में कदम रखा था, इसलिए सभी के शरीर बलिष्ठ और सुन्दर हो उठे थे। ये सब रूपवान राजकुमार इस समय एक जगह इकट्ठे थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सौन्दर्यमूर्ति कामदेव के बहुत से भाई आकर जमा हो गए हैं। यदि स्वयं कामदेव इन्हें आकर देखते, तो वे भी सन्देह में पड़कर हैरान हो जाते और सोचने लगते कि मुझमें और इन राजपुत्रों में अधिक सुन्दर कौन है ?

केवल बाहर से देखने में ही नहीं, अन्दरूनी बल, वीरता और साहस में भी इन राजपुत्रों का कोई जोड़ीदार उस समय दिखाई नहीं देता था। देवताओं के सेनापति कुमार स्वन्द बड़े साहसी समझे जाते हैं, पर इन राजकुमारों में से अकेला एक-एक ही इतना हिम्मती था कि स्कन्द के साहस को धिक्कारता हुआ-सा जान पड़ता था।

शूरवीरता और बल-पराक्रम का काम करने वालों की देह प्रायः रूखी और कठोर पड़ जाया करती है, परन्तु इन युवकों के शरीर अब तक भी अच्छे मुलायम बने हुए थे।

ये सभी राजकुमार महाराज राजहंस को बड़ा मानते और उनकी सेवा-सुश्रूषा किया करते थे। जिस समय महाराज की सवारी निकलती, उस समय इनमें से कोई राजपुत्र उनकी विजय-पताका लेकर चलता, कोई उन पर चँवर डुलाता, कोई राजछत्र पकड़ता, और कोई उनका महावत बनकर हाथ में अंकुश लेकर उनके हाथी को चलाया करता था। ये काम सब राजकुमार बड़े प्रेम से किया करते और इन कामों का उन्होंने खूब अभ्यास कर लिया था। यहाँ तक कि सबके हाथों में इन चीजों के पकड़ने के निशान भी पड़ गए थे।

आज किसी काम से ये सब राजपुत्र महाराज को घेरकर खड़े हुए थे। इसी समय वामदेव आये। उन्हें देखते ही महाराज राजहंस बड़े आदर और भक्ति-भाव के साथ उनकी ओर बढ़े, फिर पास जाकर और सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। इसके उपरान्त अत्यन्त प्रेम और सम्मानपूर्वक उनकी आवभगत की। मुनि ने भी महाराज को आशीर्वाद दिया और उनका कुशल-क्षेम पूछा।

इसके बाद गोल बाँधे हुए सब राजकुमार मुनि की ओर बढ़े। इन नौजवानों को देखते ही उस समय हरेक के मन में यह विचार उठता था कि अब ऐसे शूरवीरों के आगे महाराज राजहंस के वैरी भला क्या ठहर पाएँगे। जल्दी या देर में उनका खात्मा जरूर होगा। राजपुत्रों ने मुनि के पैरों पर चारों ओर सिर झुकाकर उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम किया। वामदेव के गुलाबी चरणों पर कुमारों के लहराते हुए घुँघराले बाल विचित्र शोभा उत्पन्न करने लगे——ऐसा लगा मानो दो कमलों के चारों ओर भौरों के झुंड मँडरा रहे हैं।

वामदेव इन सबसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमारों को उठा-उठाकर छाती से लगाया। मुनिवर वामदेव बड़े संयमी और मितभाषी पुरुष थे। बेमतलब वे कोई बातचीत नहीं करते थे, इसलिए बहुत थोड़े और चुने हुए शब्दों में उन्होंने सबको आशीर्वाद देकर राजा से कहा——"हे पृथ्वीवल्लभ ! आपके कुमार राजवाहन को और उनकी इस मित्रमंडली

को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। ये सभी कुमार सुशिक्षित, बलवान और सुशील हैं। ऐसा कौन होगा जो इनके गुणों की सराहना न करे! कुमार राजवाहन अब युवावस्था में पदार्पण कर चुके हैं। गुण, शील, रूप, लावण्य, सभी-कुछ भगवान ने इन्हें दिया है। आप अपने मन में चिरकाल से जो अभिलाषाएँ रखे बैठे हैं, वे ही अब राजपुत्र राजवाहन के इन गुणों के रूप में फलने आई हैं। मेरे विचार से अब बड़ा अच्छा अवसर है। राजवाहन अपने मंत्रियों को साथ में लें, और दिग्विजय आरम्भ कर दें। ये लोग अब इस योग्य हो चुके हैं कि जीवन के सब तरह के कष्ट और कठिनाइयाँ झेलें, तथा इस महान कार्य के लिए आगे बढ़ें। विजय-यात्रा के लिए शीघ्र ही इनका प्रस्थान होना चाहिए।

मुनि की आज्ञा महाराज ने सिर-आँखों रखी। उन्होंने आदेश दे दिया कि दिग्विजय के लिए सेना तैयार की जाय और सब राजपुत्र प्रयाण करने के लिए प्रस्तुत हों।

इसके अनुसार सब प्रकार की तैयारियाँ होने लगीं। सभी राज-कुमार तरह-तरह के कामों में जुट गए। इस विजय-यात्रा के लिए जितना भी परिश्रम और उद्योग किया जा रहा था वैसा शायद दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्र ने ही लंका-विजय के पहले किया होगा। और कोई उदाहरण मिलना कठिन ही है। राजकुमारों का उत्साह और जोश देखते ही बनता था। इनकी उमंग और तेजस्विता के आगे यही खयाल होता था कि दुश्मन भला इनसे क्या लड़ पायँगे? उनके छक्के तो इनकी घुड़क और रोष को देखकर ही छूट जायँगे।

पलक मारते ही हवा की-सी तेजी और फुर्ती के साथ, सब काम पूरा हो गया। युद्ध के साज-सामान लेकर सेनाओं के साथ राजकुमार राजवाहन अपने मित्रों समेत दिग्विजय के लिए सन्नद्ध हो गए। राजहंस ने जब विजय-यात्रा के लिए इस विराट् सैन्य-दल का प्रस्थान देखा तो उन्हें मन-ही-मन बड़ी आशा बँधने लगी। अपने पुराने वैभव को फिर से पा लेने का उन्हें बहुत-कुछ भरोसा हो गया।

इन सबको विदा देने से पहले महाराज ने सब बातों की अच्छी तरह व्यवस्था कर दी। राजवाहन इस सैन्य-दल के नेता हुए। अन्य राजकुमारों को उनका सलाहकार बनाया गया। महाराज ने उनको समझाते हुए कहा—"हर एक काम सोच-समझकर बुद्धिमत्ता के साथ करना।" अन्त को शुभ मुहूर्त्त में सब लोग चल दिए। नौकर-चाकर, सेवक और परिचारकों ने भी कुमारों के साथ-साथ प्रस्थान किया।

रास्ते में ये लोग अनेक दृश्य और तरह-तरह की घटनाएँ देखते हुए चले, पर जो कुछ भी हुआ, वह सब मांगलिक और शुभ ही हुआ। धीरे-धीरे राजवाहन बहुत से भू-भागों को लाँघ गए और विन्ध्याचल के घने जंगल में आये। अब सेनाएँ जंगल में होकर बढ़ने लगीं। राजवाहन सेना से कुछ आगे-आगे चल रहे थे। यहाँ एक जगह उन्होंने एक अजीब-से व्यक्ति को देखा। इस आदमी का शरीर लोहे के तवे की तरह एकदम काला था। इसकी देह भी लोहे-जैसी ही बड़ी कठोर पड़ गई थी। विचित्र बात यह थी कि एक तरफ तो इस आदमी के हाथ, बाँहों आदि पर हथियार चलाने के निशान पड़े हुए थे और दूसरी ओर उसके कन्धे पर मोटा-सा जनेऊ भी दिखाई दे रहा था। राजवाहन की समझ में न आया कि इसे कोई लड़ाकू क्षत्रिय योद्धा समझे या ब्राह्मण। कई बातें ऐसी भी थीं, जिन्हें देखकर ऐसा अनुमान होता था कि यह शायद कोई भील हो।

राजवाहन को आया देख, उस आदमी ने इनकी बड़े अच्छे ढंग से आवभगत की। कुछ देर बाद राजवाहन ने उससे पूछा—"महानुभाव! यह विन्ध्याचल का जंगल तो बड़ा लम्बा-चौड़ा, सुनसान और एकदम बीहड़ है। जंगली जानवर ही यहाँ रह सकते हैं, आदमियों के लिए तो इसमें घुसना तक कठिन है। आप यहाँ अकेले किस तरह रहते हैं? किसी बाहरी आदमी का यहाँ आना-जाना भी नहीं होता होगा? एक और बात से भी मुझे बड़ा अचम्भा हो रहा है। आपके कन्धे पर यह जो जनेऊ पड़ा है, इससे जान पड़ता है कि आप ब्राह्मण हैं, परन्तु शस्त्र चलाने के निशान यह बतला रहे हैं कि

आप शायद भीलों के ढंग पर जीविका चलाते हैं । यह सब क्या मामला है, कुछ बतलाइए तो ?"

वह आदमी राजवाहन की बातें सुनता हुआ उन्हें बड़े ध्यान से देख रहा था । राजकुमार की तेजस्विता और उनके असाधारण प्रभाव को अनुभव करके उसने समझ लिया कि यह सामान्य आदमी नहीं है । उसने यह भी अनुमान कर लिया कि इस आदमी में ग़ैरमामूली ताकत होनी चाहिए। इसके बाद, राजकुमार के साथियों से उसने उनका नाम-धाम और पता भी मालूम कर लिया । सब तरह से परिचय पा चुकने पर वह कहने लगा—

"राजपुत्र, अपने सम्बन्ध में कुछ कहने से पहले मैं आपको यह बतला देता हूँ कि विन्ध्याचल का यह भारी जंगल बहुत दूर तक चला गया है । इसमें जहाँ-तहाँ तरह-तरह के आदमी बसते हैं। कुछ ऐसे ब्राह्मण नामधारी लोग भी इसमें रहा करते हैं, जो वेदों के पठन-पाठन का अपना वंश-परम्परागत काम बिलकुल छोड़ चुके हैं। ब्राह्मणों के आचार-विचारों को भी इन्होंने तिलांजलि दे रखी है । सत्यभाषण, सदाचार, धर्म-कर्म आदि कुछ भी अब इनके पास नहीं रह गया है । ये लोग भीलों के अगुआ बने हुए हैं और उनके बीच में रहकर उन्हीं का खाते-पीते हैं। ऐसे ही एक ब्राह्मण नामधारी परिवार में से मैं हूँ। मेरा भी आचार-विचार इन्हीं सबकी तरह गिरा हुआ है । मेरा नाम मातंग है । बहुत दिनों तक मेरा यही पेशा रहा कि भीलों का गिरोह बनाकर मैं बस्तियों पर छापा मारा करता और इधर-उधर के गाँवों में जो धनी आदमी हाथ पड़ जाता, उसे बाल-बच्चों समेत पकड़ लाया करता था । यहाँ जंगल में लाकर इन लोगों को कैद कर दिया जाता । फिर इन्हें यन्त्रणाएँ दे-देकर मैं इनके रुपये-पैसे का पता लगाता और सब लूट-छीनकर इन्हें छोड़ दिया करता था। बहुत समय तक मैंने यही क्रूरतापूर्ण कारनामे किये और इसी तरह जिन्दगी बिताई ।

एक बार ऐसा हुआ कि मेरे साथियों को कहीं एक ब्राह्मण मिल

गया। इन्होंने उसे मारकर उसको भी लूट लेना चाहा । मुझ इस ब्राह्मण पर दया आ गई। मैंने उन लोगों को मना करते हुए कहा—'अरे पापियो! इस बिचारे ब्राह्मण को तो मत मारो।'

इस पर मेरे वे साथी बहुत बिगड़े। एक ब्राह्मण की हिमायत करते देख उन्हें बड़ा गुस्सा चढ़ गया। मेरी ओर लाल-लाल आँखें निकालकर वे कहने लगे—'क्यों? इस ब्राह्मण पर ही इतनी मेहरबानी किसलिए की जाय? क्या आज तक और बीसियों गरीबों को नहीं लूटा?'

मतलब यह कि इसी बात पर बड़ी तू-तू मैं-मैं हो गई और उन लोगों ने मुझे बहुत बुरा-भला कहा। उन लोगों की ऐसी फटकार मुझे सहन नहीं हुई और मैं भी बिगड़ उठा। मैंने उस ब्राह्मण को बचाने का पक्का इरादा कर लिया और उसकी ओर से मैं इन लोगों के मुकाबले में आ गया। यद्यपि वे मेरे अब तक के साथी थे, पर इस मामले में उन्होंने मेरी कोई परवाह नहीं की। वे उस ब्राह्मण के साथ ही मुझ पर भी टूट पड़े। बहुत देर तक हम लोग लड़ते रहे, पर वे बहुत आदमी थे और हम केवल दो ही जने थे। अन्त को उनकी चोटों से घायल होकर मैं वहीं गिर पड़ा और कुछ देर बाद मेरे प्राण निकल गए।

मरकर मैं यमलोक पहुँचा। वहां पर मैंने उस यमपुरी का विचित्र दृश्य देखा। हम लोगों की तरह ही वहां बहुत से शरीरधारी आदमी जमा थे। इनकी सभा में बीचोंबीच एक हीरे-जवाहरात से जड़ा हुआ बहुत बढ़िया सिंहासन रखा था। इस पर यमराज बैठे हुए थे। मैंने अपने अन्दाज से उन्हें पहचानकर दण्डवत् की।

उन्होंने मुझे देखा तो अपने मन्त्री चित्रगुप्त को बुलवाया और उससे कहने लगे—'मन्त्री जी, इस आदमी की मौत का तो यह समय नहीं है? इतनी बात तो है कि यह बहुत बुरे चालचलन का था, परन्तु इसकी मौत एक ब्राह्मण को बचाने में हुई है। ब्राह्मण की रक्षा करना बड़े पुण्य का काम था। इस काम को करते हुए इस आदमी

के पिछले सब पाप धुल गए हैं। इस अच्छे काम का एक फल यह भी है कि अब आगे से इस आदमी की बुद्धि बदल जायगी और भले कामों में इसका मन लगेगा। ऐसा करो कि जो पापी यहां तरह-तरह के क्लेश और यातनाएँ भोग रहे हैं उनको यह आदमी एक बार देख ले, फिर इसे इसके पिछले जन्म की देह में पहुँचा दो।'

यमराज की आज्ञा पर चित्रगुप्त ने नरक में मुझे इधर-उधर घुमाना शुरू किया। मैंने देखा कि अपने पिछले जन्म के पापों का फल भोगते हुए कुछ आदमी लोहे के गरम खम्भों के साथ बाँध दिये गए हैं। एक जगह बड़े चौड़े-चौड़े कड़ाह रखे थे, जिनके अन्दर तेल खौल रहा था। कुछ पापियों को इनके अन्दर डालकर तला जा रहा था। बहुत से पापियों की देह को डंडों से मार-मारकर उनको कुचला जा रहा था। एक स्थान पर पत्थर की बनी हुई तेज छेनियां रखी थीं; बहुत-से लोगों की देह को चारों तरफ से इनके द्वारा छीला जा रहा था।

चित्रगुप्त मुझे इन सबको दिखलाते हुए घुमा लाए और अन्त में उन्होंने मुझे अपने मन और बुद्धि को सदा साफ और ठीक रखने का उपदेश दिया।

इसके बाद उन्होंने मुझे यमपुरी से विदा कर दिया।

वहां से छूटते ही मैं तुरन्त अपने पिछले जन्म वाली देह में पहुँच गया। मैंने देखा कि मेरा शरीर विन्ध्याचल के उसी निर्जन जंगल में पड़ा है। उसी समय एक ब्राह्मण कहीं से मेरे पास आया। उसने ठंडे पानी के छींटे आदि देकर कुछ शीतल उपचार किया और मेरी देखभाल की; इसके बाद मुझे एक चट्टान के ऊपर लिटा दिया। कुछ देर तक मैं वहीं लेटा रहा। इस प्रकार मैं जीवित हो गया।

मेरे फिर से जी उठने की खबर मेरे घरवालों को मिली तो बहुत से भाई-बन्धु उसी समय वहां आ पहुँचे। ये लोग मुझे एक मन्दिर में ले गए। यहां मैं बड़े आराम से रहा। मेरे शरीर के घाव भी इन्होंने ठीक कर दिये।

जिस ब्राह्मण ने शुरू-शुरू में मेरी सेवाटहल और देखभाल की

थी, वह बड़ा सज्जन था। संस्कार कराना या वेद आदि का पठन-पाठन, ये सब ब्राह्मणों के काम भी वह अच्छी तरह जानता था। वह अभी तक मेरे पास ही था। उसने मुझे अक्षर-बोध कराया; फिर धीरे-धीरे सब शास्त्र पढ़ाये। तन्त्र ग्रन्थों की भी शिक्षा दी। इसके अतिरिक्त वह मुझे समय-समय पर बड़े अच्छे-अच्छे उपदेश भी दिया करता था। जीवन के पाप और दुष्कर्म कैसे दूर हुआ करते हैं, सदाचार का क्या महत्व है, ज्ञान किसे कहते हैं, इस तरह की अनेक उपयोगी बातें उसने मुझे समझाईं। यह भी बतलाया कि उस देवाधिदेव महादेव का साक्षात्कार ज्ञान रूपी आँखों से ही किया जा सकता है। उस ब्राह्मण ने महादेव जी की पूजा की। लोकप्रचलित विधि भी मुझे सिखलाई। जब मेरी विद्या समाप्त हो गई तब मैंने अपनी शक्ति भर उसको दक्षिणा आदि दी, और उसका सब तरह से मान आदर किया। उसने भी इसे बड़े प्रेमभाव से स्वीकार किया। इसके पश्चात् एक दिन वह ब्राह्मण स्वयं ही कहीं चला गया।

इस प्रकार अब एक तरह से मेरा दूसरा जन्म हुआ। मरी पुरानी सब आदतें और प्रवृत्तियां बदल गईं। इसके बाद से भीलों के साथ सम्पर्क रखने वाले अपने नाते रिश्तेदारों से मेरा सम्बन्ध छूट गया। परिवार कुटुम्ब के लोगों से भी मैं अलग हो रहा। अब मेरा चित्त प्रभुभक्ति में लगने लगा। मेरी उस समय यही इच्छा रहती थी कि इस संसार के एकमात्र स्वामी भगवान् शिव का ही स्मरण और चिन्तन करता रहूँ। इसलिए सब झगड़े-बखेड़े और पाप कर्म छोड़कर मैं इधर जंगल में आ गया। तब से मैं यहीं पर रह रहा हूँ।"

अपनी इतनी रामकहानी कह चुकने के बाद वह आदमी थोड़ा रुका, फिर राजवाहन से बोला—"महानुभाव, मैं एकान्त में आपसे कुछ और भी निजी बात कहना चाहता हूँ, ज़रा इधर आ जाइए।" इतना कहकर वह उन्हें उनके मित्रों से अलग थोड़ी दूर पर ले गया और कहने लगा—"राजपुत्र, पिछली रात ऐसा हुआ कि जब रात्रि समाप्त होने को आई, उस

समय भगवान् शंकर ने मुझे दर्शन दिये। वे मेरे निकट आये। मेरी आँखें बन्द थीं और मैं अब तक सो रहा था। उन्होंने मुझे जगाया। उन्हें देख मैंने बड़ी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। इससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। मैंने देखा कि उस समय खुशी से उनका चेहरा चमक रहा था। वे मुझसे बोले—'मातंग, दण्डक वन के बीचोंबीच बहने वाली नदी तो तूने देखी है। उसी के किनारे एक जगह मन्दिर है। उसमें स्फटिक की बनी हुई हमारी मूर्ति स्थापित है। इस मन्दिर में प्रायः सिद्ध साध्य आदि देवयोनियों के लोग ही पूजा करने के लिए आया करते हैं। इस मूर्ति के पीछे एक पत्थर रखा है जिस पर पार्वती जी के पैरों के निशान बने हुए हैं। बस, इसी पत्थर के पास एक चौड़ा-सा बिल है। ऊपर से इस बिल की शक्ल ब्रह्माजी के मुँह की-सी मालूम पड़ती है। तुम उस बिल में उतर जाओ। उसके भीतर एक ताम्रपत्र है, उसे ले लो। यह मामूली चीज नहीं है, इसे भगवान् का आदेशपत्र समझना। इस पत्र पर पाताललोक में जा पहुँचने की तरकीब लिखी हुई है। यह बात इस तरह समझना जैसे तुम्हारी किस्मत किसी आगामी जीत की खबर तुम्हें पहले से दे रही हो। इस ताम्रपत्र की विधि के अनुसार यदि चलोगे तो तुम पाताल-लोक के राजा बन जाओगे। तुम्हें इस काम में दैवी सहायता भी मिलेगी। जो राजपुत्र इस काम में तुम्हारी मदद कर सकता है, वह आज या कल तक यहीं आ पहुँचेगा।'

इतना कहकर शंकर जी अन्तर्धान हो गए।

अब मैं देख रहा हूँ कि उन्होंने जैसे बतलाया था ठीक उसी तरह यहाँ आपका आगमन हो गया है। मैं अब तक यही सोचता था कि ऐसे भारी काम में भला मेरी सहायता कौन करेगा? परन्तु देवता के आशीर्वाद से आप स्वयं ही आ पहुँचे हैं। मेरे मन में इस समय बड़ी खुशी है। बस, अब इस भारी काम में आप मेरी मदद करें।"

मातंग की ये बातें सुनकर राजवाहन शायद दैवगति को समझ गए। उनसे यही कहते बना—"अच्छी बात है, मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूँगा।"

इसके बाद कुमार राजवाहन उसके पास से चले आये और अपने मित्रों में आ गए। उन्होंने उस बात की किसी से कुछ चर्चा नहीं की। सारा काम रोज की तरह करके वे उन सबके साथ अपनी छावनी में सो गए। जब आधी रात हुई तब वे अकेले उठे। उनके सब मित्र, मन्त्री, कुमार तथा सेवक और पहरेदार आदि भाग्यवश गहरी नींद में सोये पड़े थे। राजवाहन इस समय किसी दैवी शक्ति की प्रेरणावश खिंचे हुए-से चल दिये। उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा, न किसी को जगाया। वे सीधे मातंग के पास जा पहुँचे। मातंग तैयार ही था। वह भी सिर झुकाये चुपचाप चल दिया। राजवाहन उसके पीछे-पीछे चलने लगे। वे दोनों चलते-चलते एक दूसरे जंगल में जा पहुँचे।

राजवाहन तो उधर मातंग के साथ निकल गए। इधर उनके पीछे जब सवेरा हुआ तो छावनी में हलचल मच गई। उनके नौकर-चाकर चारों ओर उन्हें ढूँढने में लगे। उनके साथी-मन्त्रीपुत्र भी उन्हें इधर-उधर खोजने चल दिए। कई दिन तक उन्हें ढूंढा गया। जिन स्थानों पर से होते हुए ये लोग चले आ रहे थे, वहाँ भी देखभाल की गई। अन्य भी परिचित स्थानों पर आदमी भेजे गए। आसपास के जंगल तक छान डाले गए, परन्तु राजवाहन का कहीं पता न चला। जब आस-पड़ोस की जगहों पर खोज करते-करते सब लोग थक गए तब उनके साथी मन्त्री कुमारों ने यह निश्चय किया कि अब हम लोग दूर-दूर के देशों में कुमार राजवाहन की खोज के लिए जायँगे। ये सब कुमार बल, पराक्रम और साहस में किसी से कम तो थे नहीं। सब तरह के क्लेश और कष्ट भी वे खूब झेल सकते थे। इन लोगों ने हिम्मत नहीं छोड़ी और अपने-अपने जाने के लिए एक-एक दिशा चुन ली। यह भी निश्चित कर लिया कि सब लोग, किस दिन और किस स्थान पर आकर इकट्ठे मिलेंगे। इसके बाद एक दूसरे से जुदा होकर सब मित्र अलग-अलग देशों की ओर चल दिए।

इधर मातंग, राजवाहन को अपने पीछे-पीछे लिये हुए चला जा रहा था। ये दोनों इस समय बिलकुल अकेले थे। राजवाहन ने समझ लिया था कि

ईश्वरीय आदेश का पालन करते हुए अब हमें इस पुरुष के जीवन की सब प्रकार से रक्षा करनी है। बड़ा भारी उत्तरदायित्व उन्होंने अपने ऊपर ले लिया था। परन्तु वे अपने समय के अद्वितीय वीर और बड़े पराक्रमी पुरुष थे, इसलिए निर्भय होकर मातंग की चौकसी करते हुए चलते गए। मातंग ने भी देख लिया कि शिवजी के आदेशानुसार उसे एक सच्चा सहायक मिल गया है। इस विचार से उसे मन-ही-मन बड़ा सन्तोष हुआ और अपनी भावी सफलता पर उसे पूरा भरोसा हो गया।

वह चलता हुआ उसी शिव मन्दिर में पहुँचा। सपने में महादेवजी ने उसे जो-जो चिह्न बतला दिए थे, उनको पहचानता हुआ वह बेधड़क उस बिल या सुरंग में उतर गया और उसके भीतर रखा हुआ वह ताम्रपत्र उसने ले लिया।

इस बिल के अन्दर-ही-अन्दर एक सुरंग चली गई थी। इसी में से होकर पाताल के लिए रास्ता जाता था। मातंग और उसके पीछे-पीछे राजवाहन, दोनों इसी सुरंग में से चले। चलते-चलते ये लोग पाताल में जा निकले और वहाँ के किसी शहर के निकट पहुँचे।

मातंग ने ताम्रपत्र को देखकर समझ लिया कि अब उसे क्या करना है। इसी शहर के पास एक सुन्दर उद्यान बना हुआ था; इसी में एक तालाब था। तालाब के अन्दर बहुत से कमल खिले थे और जहाँ-तहाँ सारस किलोलें कर रहे थे। मातंग इस तालाब के किनारे आया। यहाँ ये दोनों स्नान आदि से निवृत्त हुए। मातंग ने यहाँ कुछ लकड़ियां इकट्ठी कीं और कई प्रकार की सामग्री लाकर रखी।

इसके बाद शिवजी ने जैसे-जैसे बतलाया था उसी रीति से विशष विधिपूर्वक उसने एक यज्ञ किया। राजवाहन इसके निकट ही आसपास घूमते रहे और इसकी चौकसी करते रहे, जिससे यज्ञ में किसी तरह का विघ्न न होने पावे। वे इस अद्भुत यज्ञ को भी बड़े अचरज के साथ देखते जाते थे। घी, सामग्री आदि के द्वारा यज्ञ की अग्नि खूब प्रचण्ड हो उठी। अन्त में राजवाहन ने क्या देखा कि मातंग ने कुछ मन्त्र पढ़े और उसके पीछे

स्वाहा के साथ-साथ वह स्वयं भी उस यज्ञ-कुण्ड में कूद गया। इस प्रकार अपनी आत्मा के पवित्र चोले की—अपने इस शरीर की—उसने यज्ञ के अन्दर आहुति दे दी।

परन्तु आश्चर्य यह कि इसके बाद ही यज्ञकुण्ड में से मातंग एक दिव्य शरीर धारण किये हुए फिर बाहर आ गया। इस समय उसकी काया बिजली की तरह दमक रही थी और उसमें से बड़ी सुन्दर तथा चमकीली आभा फूट-फूटकर निकल रही थी।

इधर तो मातंग यह दिव्य देह लेकर यज्ञकुण्ड में से निकला और उधर एक अन्य ही अद्भुत घटना घटी। देखते क्या हैं कि सामने से एक बड़ी रूपवती कन्या चली आ रही है। स्त्रियों में इसके जैसा सौन्दर्य मिलना बड़ा कठिन था। इस सुन्दरी कन्या को यदि दुनिया भर की स्त्रियों में सबकी सिरमौर समझ लिया जाता तो भी कोई बड़ी बात न थी। लड़की सिर से पैर तक जवाहरात के जड़ाऊ गहनों से सजी थी और बड़ी नम्रतापूर्वक गरदन झुकाये बढ़ी आ रही थी। उसके पीछे-पीछे उसकी बहुत सी सहेलियाँ भी आ रही थीं। इस लड़की की चाल भी बड़ी आकर्षक थी। हंस की-सी धीमी-धीमी गति से आकर वह मातंग के सामने खड़ी हो गई और सबसे पहले उसने एक चमकदार हीरा उसको भेंट किया।

मातंग ने हीरा लेकर उससे पूछा—"आप कौन हैं?"

इस पर उस कन्या ने हाथ जोड़कर सबसे पहले नमस्कार किया, फिर कोयल के-से मीठे और महीन स्वर में धीरे-धीरे कहने लगी—"हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं असुरों के राजा की पुत्री हूँ। मेरा नाम कालिन्दी है। मेरे पिता इस पाताल देश पर राज्य करते थे। उनका दूर-दूर तक बड़ा प्रभाव था। एक बार उनकी देवताओं के साथ लड़ाई हो गई। उसमें मेरे पिताजी ने उन्हें हराकर भगा दिया। देवताओं की हार सुनकर विष्णु बहुत बिगड़े, यहाँ तक कि आपे से बाहर हो गए। वे सीधे आकर पिताजी से लड़ पड़े। इसी लड़ाई में मेरे पिताजी काम आये। इस दुनिया में पिताजी ही मेरे सर्वस्व

थे। उनके न रहने से मुझे अपार दु:ख हुआ। मैं दिन रात उन्हीं के शोक में व्याकुल रहती और उन्हीं को याद करती। इस दु:ख रूपी अथाह सागर में मैं एक तरह डूब-सी गई। मुझे इस प्रकार दु:खी और बेचैन देखकर एक महात्मा को बड़ी दया आई। वह बड़े पहुँचे हुए साधु थे। उन्होंने मुझसे कहा— "बेटी, तू घबरा मत। तेरा भविष्य बड़ा अच्छा है। कुछ ही दिनों में यहाँ एक अजनबी पुरुष आवेगा। इसकी देह बड़ी सुन्दर और छवि बहुत मनोहर होगी। वह तेरा पति बनेगा और यहाँ रहकर इस सारे पाताल देश पर बड़े अच्छे ढंग से राज्य करेगा।"

साधु महात्मा की बातों से मुझे कुछ धीरज बँधा। उसके बाद से मैं हर समय इसी आशा और प्रतीक्षा में रहती कि 'वे' न जाने कब आवेंगे। धीरे-धीरे आपको देखने की मेरी उत्कण्ठा बहुत बढ़ गई। आपके दर्शनों की लालसा से मेरी हालत ऐसी हो गई जैसे बरसात के आने और बादल की आवाज सुनने के लिए चातकी की दशा हो जाया करती है। यही चाह लेकर मैं बहुत समय से बैठी थी। इतने में आज आपके यहाँ आ पहुँचने का समाचार मिला। मेरे मन में आपकी अभिलाषा के रूप में जो एक अंकुर बहुत दिनों से फूट चुका था उसका अन्त को फल मिला और आपका शुभ आगमन हुआ।

आपके आने की खबर पाकर मैं सोचने लगी कि अब क्या करू। सीधे एकदम आप से मिलना उचित नहीं था, इसलिए मेरे इस राज्य का जिन लोगों ने सारा बोझ उठा रखा है, उन अपने मन्त्रियों को मैंने बुला भेजा और उनसे अपना हाल कहा। उन लोगों ने मुझे आपसे भेंट करने की सलाह दी। मेरे मन में भीतर-ही-भीतर प्रेरणा तो पहले ही थी और सच बात तो यह है कि मेरे मन की इस गाड़ी पर सारथी बनकर कामदेव बैठे हुए थे; वे इसे इधर ही ले आना चाहते थे। मन्त्रियों की सलाह से मुझे और भी बल मिला और मैं आपके पास आ गई। अब आप चलिए, और इस पाताल देश की राजलक्ष्मी को स्वीकार कीजिए। इतनी कृपा और हो जाय कि इस राजलक्ष्मी की सौत समझकर ही सही, मुझे भी

अपने चरणों में थोड़ा-सा स्थान दे दीजिए ।"

इस राजकन्या की बातें सुनकर मातंग ने राजवाहन की ओर देखा। उन्होंने इस काम में अपनी सहमति प्रकट की। तब मातंग ने उस राजकन्या से विधिपूर्वक विवाह कर लिया। पाताल में आकर ऐसी परम सुन्दरी स्त्री पाने से मातंग बड़ा प्रसन्न हुआ। इसके बाद वह पाताल देश की राजगद्दी पर बैठा और बड़े आनन्द के साथ राजकाज चलाने लगा।

मातंग के साथ-साथ मित्र रूप में राजवाहन भी वहीं रहने लगे। परन्तु कुछ दिनों बाद राजवाहन को बीती हुई घटनाओं और अपने पिछले साथियों की याद आने लगी। उन्हें ध्यान आया कि उस जंगल में वे अपने मित्रों की आँख बचाकर चुपके से मातंग के साथ निकल आये थे। उन मित्रों का, सारी सेना का और फिर उनके माता-पिता का न जाने क्या हाल हुआ हो? राजवाहन अब अपने उन साथियों को देखने के लिए छटपटाने लगे। उनका मन पाताल से फिर पृथ्वी पर लौट चलने के लिए करने लगा।

अपनी यह इच्छा राजवाहन ने मातंग पर प्रकट की। मातंग उनके स्वभाव और उनके सहायता देने के कारण उनसे बहुत सन्तुष्ट था। उसने राजवाहन को लौट जाने की अनुमति दे दी। पाताल से उनके चलने के पहले मातंग ने एक और काम किया। उसे उसकी पत्नी कालिन्दी ने एक बड़ी अद्भुत मणि दी। इसका यह गुण था कि जिस व्यक्ति के पास यह मणि होती उसे भूख-प्यास आदि का क्लेश नहीं सता सकता था। मातंग ने यह मणि राजवाहन को भेंट में दे दी। इसे लेकर राजवाहन पाताल से चले। मातंग उन्हें छोड़ने के लिए कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे आया, फिर राजवाहन ने उसे विदा कर दिया। जिस सुरंग के रास्ते से ये दोनों पाताल देश में आये थे, उसी से होकर राजवाहन पृथ्वी की ओर चले और कुछ दिनों में वे उसी जंगल में पुराने स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ से वे मित्रों को छोड़कर चले आये थे।

यहाँ आकर राजवाहन ने देखा कि मित्र मण्डली या उनकी सेना आदि कुछ भी अब वहाँ पर नहीं है। इसके पश्चात् उनकी टोह लेते हुए वे

इधर-उधर घूमने लगे। चलते-चलते वे एक बार 'शिला' नाम की एक नगरी में पहुँचे। इसके सिरे पर एक बाग था। थोड़ा आराम लेने के विचार से वे इसी बाग में घुसे। अन्दर पहुँचते ही सामने क्या देखते हैं कि डोली पर सवार एक आदमी आ रहा है। उसके साथ में उसकी स्त्री भी थी। इस आदमी के इर्द-गिर्द उसके अपने बहुत से नौकर-चाकर और कर्मचारी भी चल रहे थे।

उस आदमी ने भी सामने से राजवाहन को आते देखा। इन्हें देखते ही वह एकदम प्रसन्नता के मारे नाच-सा उठा। उसका चित्त आनन्द से भर गया और चेहरा खुशी में कमल-सा खिल उठा। अत्यधिक हर्ष में उसके मुँह से निकल पड़ा—"अरे! ये तो स्वामी राजवाहन हैं! ये सोम-कुलभूषण राजपुत्र यहाँ कहाँ? जिनका पवित्र नाम घर-घर फैला हुआ है वे इस तरह अकेले यहाँ कैसे घूम रहे हैं? मैं तो इनकी खोज में दर-दर भटक रहा था। बड़े भाग्य हैं जो आज अचानक मैं इनके चरणों तक आ पहुँचा। मेरी ये आँखें आज ठंडी हुईं। कितने सुख का यह दिन है! आज तो जैसे चारों तरफ आनन्द-ही-आनन्द और उत्सव-ही-उत्सव दिखाई पड़ रहा है!

इस तरह कहते-कहते वह आदमी फुर्ती के साथ डोली पर से उतर पड़ा। इस समय हैरानी और अचम्भा उसके चेहरे से टपके-से पड़ते थे। वह बड़ी जल्दी-जल्दी और छोटे-छोटे कदम रखता हुआ उनकी ओर बढ़ा। चेहरे-मोहरे से उसकी अन्दरूनी खुशी बाहर भी छलकी पड़ती थी। राजवाहन तब तक चार-छः पग उसकी ओर बढ़ आये थे। उस आदमी ने इनके कमल-से गुलाबी दोनों पैरों को अपने मस्तक से स्पर्श किया।

यह झुककर प्रणाम करने वाला व्यक्ति भी कोई बड़ा आदमी जान पड़ता था, क्योंकि इसके सिर पर बँधी पगड़ी में खिले हुए चमेली के फूलों की माला लिपटी थी। झुकते समय यह माला भी कुछ नीचे लटक आई।

उस आदमी ने पास आकर जब इस प्रकार अकस्मात् राजवाहन के

पैर छुए तो यह भी उसे पहचान गए। इनके नेत्रों में भी आनन्द के आँसू छलक आये। राजवाहन ने उसे अपनी भुजाओं में ले लिया और खूब मिल-कर भेंट की। असीम हर्ष के कारण उस आदमी का इस समय अंग-प्रत्यंग पुलकित हो उठा।

उसके चेहरे पर नजर पड़ते ही राजवाहन के मुँह से निकल पड़ा—"ओह, प्रिय सोमदत्त ! तुम हो ?"

इसके उपरान्त सुपारी के एक घने पेड़ की ठंडी-ठंडी छाँह में दोनों बैठ गए। राजवाहन बड़े प्रेम से उससे बोले—"मित्र, इतने दिनों तक तुम कहाँ रहे ? कौन-कौनसे देशों में घूमे ? अब इस समय कहाँ की तैयारी है ? तुम्हारे साथ तो यह एक रमणी भी है; यह कौन है ? ये इतने नौकर-चाकर कहाँ से मिल गए ? अपना सब हालचाल तो सुनाओ।"

मन्त्री-पुत्र सोमदत्त भी अब जाकर तनिक शान्त हुए। अपने परमप्रिय मित्र राजवाहन से मिलकर उनकी सब चिन्ताएँ दूर हो गईं। राजवाहन के न मिलने से उन्हें हर समय एक तरह का सोच बना रहता था जो उनके लिए एक मर्ज़-सा होता जा रहा था। अब जाकर उन्हें पूरी तसल्ली हुई और उनके चित्त का बोझ उतरा।

राजवाहन के प्रश्न के उत्तर में सोमदत्त ने अपने साफ और गुलाबी-गुलाबी से दोनों हाथ जोड़ लिये। ऐसा लगा मानो कमल की एक कली उनके सामने बनकर खड़ी हो गई है। फिर बड़ी नम्रता के साथ उन्होंने अपनी यात्रा और भ्रमण का हाल सुनाना आरम्भ किया।

पूर्व पीठिका

तृतीय उच्छ्वास

सोमदत्त की आपबीती

अपनी आपबीती सुनाते हुए सोमदत्त कहने लगे—"कुमार, जब मैंने यह सुना कि आप एकाएक गायब हो गए और खोजने पर भी नहीं मिले तो मुझे बड़ी चिन्ता हुई। मैं सोचने लगा कि अब आपके चरणों की सेवा करने का सौभाग्य न जाने कब प्राप्त हो। फिर मैं भी दूसरे मन्त्रिपुत्रों की तरह आपकी खोज में चल दिया।

चलते-चलते इधर-उधर घूमता हुआ मैं एक जंगल में पहुँचा। वहाँ एक जगह लता-बेलों से घिरा हुआ तालाब मिला। मैं प्यास के मारे बेचैन हो रहा था। इसलिए उसमें घुसकर उसका ठंडा-ठंडा पानी पीने लगा। ज्यों ही मैं झुका कि नीचे पानी में मैंने कोई चमकीली चीज देखी। हाथ बढ़ाकर उसे निकाला तो एक बहुत बढ़िया हीरा मिला।

उसे लेकर मैं चल दिया। उन दिनों गरमियाँ थीं, और सूरज बहुत तप रहा था, इसलिए कुछ दूर चलने के बाद मुझे बेहद गरमी मालूम हुई, यहाँ तक कि चलना दूभर हो गया। जब आगे बढ़ने में मैं बिलकुल असमर्थ-सा हो चला, तो जंगल के अन्दर एक शिवालय में जा पहुँचा। यहाँ एक ब्राह्मण ठहरा हुआ था। वह बिचारा बड़ा निर्धन और गरीब मालूम पड़ता था। उसके मुँह से भी बड़ी उदासी और दीनता टपक रही थी। उसके बहुत-से बाल-बच्चे थे। बिचारे बूढ़े ब्राह्मण के ऊपर इन सबका बहुत भारी बोझ था। इसे देखकर मुझे दया हो आई। मन्दिर में जाकर मैंने उसका

कुशल-क्षेम पूछा।

गरीबी के मारे बिचारे ब्राह्मण का चेहरा उतरा हुआ था। मैंने जब उसका हालचाल पूछा तो उसने बड़ी आशा-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा और कहने लगा—"महाशय, मेरे इन बच्चों की मां नहीं है। जैसे-तैसे करके बड़ी मुश्किल से मैं इन्हें पाल रहा हूँ। यह देश इतना बुरा है कि कहीं कुछ मिलता तक नहीं। बड़ी कोशिशों से इन बालकों का पालन कर पाता हूँ। भीख भी यहाँ कम मिलती है, उसी के सहारे जो-कुछ अन्न हो जाता है इन्हें खिला-पिला देता हूँ। रहने के लिए घर के नाम पर बस यह शिवालय है, इसीमें हम सब पड़ रहते हैं।"

इसके बाद कुछ और इधर-उधर की बातें होती रहीं। मैंने उससे पूछा—"ब्राह्मण देवता, इस जंगल में यह छावनी किनकी पड़ी हुई है? यह कहाँ के राजा हैं? कुछ मालूम है इनका नाम क्या है, और यहाँ ये किसलिए आये हैं?"

ब्राह्मण कहने लगा—'भाई, इस देश के, जहाँ मैं रहता हूं, राजा वीरकेतु हैं। उनकी एक पुत्री है—वामलोचना। वह बड़ी सुन्दरी है—सैकड़ों-हजारों में एक। जवान स्त्रियों में उसे ऐसे समझिए जैसे हीरा हो। इसके रूप-लावण्य की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई है। इसकी यह बड़ाई धीरे-धीरे लाटदेश के राजा मत्तकाल के कानों तक भी पहुँची। मत्तकाल इसे चाहने लगा। उसने वीरकेतु से कहलाया कि अपनी लड़की का ब्याह हमारे साथ कर दो। वीरकेतु ने उसकी बात नहीं मानी और उसके साथ ब्याह करने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर मत्तकाल ने उनकी राजधानी पर चढ़ाई कर दी।

जब लाट की भारी सेना आकर डट गई तो उसे देखकर वीरकेतु घबड़ा गए। उन्होंने डर के मारे अपनी लड़की को उपहार के रूप में मत्तकाल के पास भिजवा दिया। इस तरह जब धौंस में ही ऐसी सुन्दर स्त्री हाथ लग गई तो मत्तकाल मन-ही-मन बड़े खुश हुए। उन्होंने सोचा कि अब इस सुन्दरी से ब्याह अपने देश में ही चलकर करना चाहिए। बस,

वे वापिस लाट की ओर लौट चले। जब वे इस जंगल में आये तो उन्हें शिकार की सूझी। शिकार के वे बड़े शौकीन हैं। उन्होंने अपनी छावनी का यहीं पड़ाव डाल दिया।

इधर वीरकेतु के कोई लड़का तो था नहीं, केवल एक लड़की थी। वह भी इस तरह उनके हाथ से छिन गई। आप जानते हैं लड़की वालों को अपनी लड़की ही बहुत प्यारी हुआ करती है। उन बिचारों के लिए रुपया-पैसा, हीरा, मोती, सब-कुछ वही होती है। इस लड़की के जाने का वीरकेतु को बड़ा दुःख हुआ, परन्तु उनसे भी अधिक यह बात उनके मन्त्री मानपाल को लगी। मन्त्री मानपाल सच्चा 'मानपाल' ही था। इज्जत-आबरू को वह रुपये-पैसे से भी ज्यादा मानता था। अपने स्वामी राजा वीरकेतु के अपमान से उसका चित्त बड़ा खिन्न हुआ। उसने क्या काम किया कि राज्य के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सारी सेना लेकर वह अलग चला गया और एक अच्छी जगह देखकर वहीं उसने पड़ाव डाल दिया। प्रकट-रूप में तो उसने मत्तकाल के विरुद्ध कुछ नहीं किया, पर अन्दर-ही-अन्दर तोड़-फोड़ के सामान तैयार करने लगा। इस समय भी वह मत्तकाल के विरुद्ध कूटनीति बरतने में लगा हुआ है।"

इस ब्राह्मण की इन बातों से मुझे यहाँ की सारी हालत का पता चल गया। यह आदमी मुझे भला जान पड़ा। इस बिचारे के औलाद बहुत थी, यह निर्धन भी था और पढ़ा-लिखा भी अच्छा था। मेरे मन में यही आया कि यह व्यक्ति दान का पात्र है, इसलिए मैंने वह अपना हीरा तरस खाकर उस ब्राह्मण को ही दे दिया।

इतनी कीमती चीज मिल जाने का उसे गुमान तक नहीं था। इसलिए यह हीरा पाकर वह बेहद खुश हुआ। मारे आनन्द के उसका मुरझाया हुआ चेहरा भी कमल-सा खिल उठा। उसने मुझे बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया, फिर कुछ देर बाद वह कहीं चला गया।

मैं वहाँ उसी मन्दिर में बैठ गया। रास्ते की थकान के मारे मैं पस्त

पड़ा हुआ था, इसलिए वहीं एक जगह लेट गया और आनन्द से खूब अच्छी तरह सोया।

कुछ देर बाद जब सोकर उठा तो देखता क्या हूँ कि वही ब्राह्मण चला आ रहा है। उसके हाथ पीछे की तरफ बँधे हुए थे और तलवार बाँधे कई आदमी उसके साथ-साथ चले आ रहे थे। ऐसा लग रहा था कि ब्राह्मण को खूब पीटा गया है। कोड़ों की मार से उसकी देह पर लासें पड़ गई थीं। आते ही उसने मुझे दिखाकर उन लोगों से कहा—'यह है वह चोर, जिसने मुझे हीरा दिया है!'

ये सब आदमी वास्तव में राजा मत्तकाल के सिपाही थे। उन्होंने ब्राह्मण को तो छोड़ दिया और मुझे रस्सियों से खूब कसकर बाँध लिया। मैंने बहुतेरा चाहा कि उन्हें हीरे के मिलने की सारी घटना समझा दूँ, पर वहाँ कौन सुनता था! बाँधकर वे लोग मुझे ले चले। मैं समझ गया कि अब मेरे साथ कैसा बरताव किया जायगा। पर वास्तव में मैं चोर तो था नहीं, इसलिए मुझे अपने ऊपर भरोसा रहा; मैं डरा बिलकुल नहीं।

इन सिपाहियों ने मुझे लाकर सीधा जेल में ठूँस दिया और मेरे दोनों पैर भी बाँध दिये। जेल में और कई आदमी बँधे पड़े थे। इनकी ओर इशारा करके ये सिपाही मुझसे बोले—'ये हैं तेरे दोस्त, जा इन्हीं के पास रह!'

जेल में जाकर मुझे अनुभव हुआ कि मैं कैसी भयंकर परिस्थिति में पड़ गया हूँ। यहाँ से सहज छुटकारे की कोई आशा नहीं थी। कुछ देर तक तो मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा रहा और मुझे बड़ी निराशा हुई। फिर मैंने अपने आसपास नजर डाली। मेरी ही तरह और भी बहुत से आदमी यहाँ बँधे हुए पड़े थे। मैंने उनसे पूछा—'क्यों भाई! आप सब लोग तो बड़े-बड़े मजबूत और ताकतवर आदमी हैं, आप इस जेल में पड़े-पड़े क्यों सड़ रहे हैं? इन सिपाहियों ने अभी-अभी मुझे इशारा करते हुए आप लोगों के लिए यह कहा था कि ये तेरे दोस्त हैं। इसका क्या मतलब था? यह सब माजरा क्या है, कुछ बतलाओ तो।'

उन लोगों ने देखा कि मैं भी उन्हीं की तरह बँधा हुआ हूँ। मेरी बातों से उन्हें यह भी पता चल गया कि मैं यहाँ के हालात से बिलकुल अपरिचित हूँ, इसलिए उन्होंने मुझे लगभग वे ही सब बातें कह सुनाईं जो वह बूढ़ा ब्राह्मण पहले बतला चुका था। उन्होंने लाट-नरेश मत्तकाल की सारी कहानी सुनाई। उनसे बातचीत करने पर पता चला कि वे लोग, जो चोरों की तरह बँधे पड़े थे, वास्तव में चोर नहीं थे। वे कहने लगे—

"भाई! हम लोग महाराज वीरकेतु के मन्त्री मानपाल जी के सेवक हैं। उन्हीं के आदेश से हम मत्तकाल को मारने के लिए गये थे। रात के समय एक सुरंग में से होते हुए हम मत्तकाल के कमरे में घुसे। पर वहाँ वह नहीं मिला। इससे कुछ निराशा-सी हुई। खैर, इसके बाद हम लोगों ने उसके कमरे की बहुत-सी कीमती चीजें अपन साथ बाँध लीं और वहाँ से निकलकर उसी राह से जंगल में आ गए।

दूसरे दिन मत्तकाल को जब चोरी का पता चला तो उसने पैरों के निशान पहचानने वाले बहुत से जासूस हम लोगों के पीछे छोड़ दिये। उन्होंने पैरों के चिह्नों पर चलते-चलते जंगल में आकर, हमें चारों ओर से घेर लिया। रुपया-पैसा या कीमती सामान जो हम उठा लाये थे सब अभी हमारे पास ही था। वे लोग संख्या में बहुत अधिक थे, इसलिए उन्होंने आकर हम सबको बाँध लिया। इसके बाद सामान सहित वे हमें यहाँ ले आये। यहां आते ही हमारी तलाशी ली गई। चोरी का और सामान तो हमारे पास से बरामद हो गया, पर राजा का एक कीमती हीरा नहीं मिला। हमें खुद ही पता नहीं चला कि वह किधर गया। हीरा न मिलने पर उन लोगों ने हमें कत्ल कर डालने का निश्चय किया और अब हमें जंजीरों में कस दिया है।"

उन लोगों की सब बातें सुनकर और हीरे का प्रसंग आने पर मुझे खयाल आया कि वह हीरा जो मुझे तालाब में पड़ा मिला था, जरूर इन्हीं लोगों से वहां गिर पड़ा होगा। अब मैंने अपना हाल इन लोगों को सुनाया, और सब बातें बतलाईं कि किस तरह वह हीरा मुझे तालाब के पानी में पड़ा

हुआ मिला, और किस तरह उस ब्राह्मण पर तरस खाकर मैंने उसे दिया; फिर किस-किस तरह सिपाहियों ने आकर मुझे बाँध लिया।

यह सब कह चुकने के बाद मैंने अपना जन्मस्थान और अपना नाम बतलाया। फिर उन लोगों से यह भी कहा कि इस-इस तरह महाराजकुमार राजवाहन कहीं चले गए हैं,उन्हें ढ़ूँढने के लिए मैं घूमता फिर रहा हूँ। अन्त में इधर-उधर की दूसरी बातों के साथ-साथ बहुत सी गपशप करके मैंने उन लोगों के साथ अच्छी-खासी दोस्ती गांठ ली।

इस थोड़े ही समय में मैं उनके साथ इतना घुल-मिल गया कि हम लोगों ने आपस में सलाह करके वहाँ से छूटने की तरकीब भी सोच ली। आधी रात के समय बड़ी सावधानी के साथ मैंने पहले उन लोगों की ज़ंजीरें काटीं। अन्त में अपनी भी रस्सियां काट डालीं, और हम लोग जेल की दीवारें फांदकर भाग निकले।

मैं सबका अगुआ बना हुआ था। बाकी लोग मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे। जब हम जेल की भीतरी दीवारें फाँद आये, तो सबसे आखरी दरवाजे पर पहुँचे। भाग्य से वहां के चौकीदार और दरबान सोये हुए थे। हमने चुपके से उनके हथियार उठा लिये और वहां से भाग चले। चलते-चलते रास्ते में हमें शहर के और बहुत से पहरेदार मिले। कुछ को तो हमने चकमा दे दिया, पर कुछ ऐसे निकले जो हमारे बहकावे में नहीं आये। उन्हें मैंने और मेरे साथियों ने तलवार के जोर से सीधा किया। उनमें से कुछ मारे गए और बाकी भाग निकले।

हम लोगों ने शुरू से ही वह रास्ता पकड़ा था जो मन्त्री मानपाल की छावनी की ओर जाता था। सब विघ्नों को पार करके मैं उन साथियों को लिये हुए इस छावनी में पहुँच गया। मेरे साथियों से मन्त्रीजी ने सब हाल सुना। इन लोगों ने मेरे कुल परिवार की और मेरी अपनी प्रतिष्ठापूर्ण स्थिति का परिचय देकर उन्हें मेरी हिम्मत-बहादुरी-होशियारी आदि की सब बातें सुनाईं। मानपालजी ने मुझे बहुत माना और मेरा बड़ा आदर किया।

अगले दिन छावनी में मत्तकाल के भेजे हुए कुछ सिपाही आये। ये मन्त्री मानपाल जी के सामने बड़ी ढिठाई से पेश आये और बोले—"हमें लाट-देश के स्वामी महाराज मत्तकाल ने भेजा है। उन्होंने तुम्हारे लिए कहलाया है कि मन्त्री, हमारे राजमहल में तुम्हारे कुछ चोर-सिपाही, कल रात सुरंग लगाकर घुस आये थे। उन्होंने हमारी बहुत सी कीमती चीजें और माल-असबाब चुरा लिया है। चोरी करके ये तुम्हारी छावनी में आ घुसे हैं। इन्हें तुरन्त हमारे हवाले करो, वरना भारी अनर्थ हो जायगा।"

मत्तकाल की ओर से कहलाई गई इन बेहूदा और अपमानजनक बातों को सुनकर मन्त्री मानपाल की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। उन्होंने उन सिपाहियों को खूब फटकारा और बोले—"यह तुम्हारा लाट-देश का स्वामी होता कौन है? और फिर उसका हमसे क्या वास्ता? खबरदार! हम उसके नौकर या दबे-बसे नहीं हैं; चले जाओ यहां से।"

वे सिपाही अपना-सा मुंह लेकर लौट गए, और जाकर उन्होंने मानपाल जी की कही हुई डांट-फटकार की सब बातें जैसी-की-तैसी मत्तकाल से कह सुनाईं। मत्तकाल इन्हें सुनकर बहुत नाराज हुआ। उसने आव देखा न ताव, जैसे बैठा था उसी हालत में लड़ने चल दिया। उसे अपने बाहुबल का घमण्ड तो था ही, इसलिए अपनी सेना भी अच्छी तरह तैयार करने की सुध उसे न रही। जो थोड़े-बहुत सैनिक उस समय उसके पास थे, उन्हीं को लिये हुए वह लड़ने निकल आया।

इधर मन्त्री मानपाल पहले से ही तैयार बैठे थे। अपने राजा के अपमान से उन्हें बड़ी ठेस पहुँची थी। सेना को पूरी तरह सुसज्जित किये, वे केवल अवसर ताक रहे थे। उनके सैनिक भी लड़ने-मरने के लिए पूरे जोश में थे। मत्तकाल के आने की खबर पाते ही वे बेधड़क मैदान में आ गए। उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था कि अबकी बार डटकर लड़ना है।

हमारी छावनी के अन्दर ज़रा देर में ही लड़ाई की सब तैयारी हो गई। मेरे लिए मंत्री जी ने बड़े मान-आदर के साथ अपने पास से लड़ाई का खास सामान भेजा था। मैंने इसमें से एक अच्छा मज़बूत जिरहबख्तर लेकर

बाँधा और छांटकर अपने लायक एक बढ़िया-सा धनुष ले लिया। कई तरह के तीरों से भरे दो तरकस भी पीठ पर लटका लिए। इनके अतिरिक्त कुछ और जरूरी हथियार लेकर मैं लड़ाई के लिए चल दिया।

मन्त्री मानपाल जी को मेरे ऊपर बड़ा भरोसा हो गया था। मेरे बल और साहस के सहारे उन्हें विश्वास था कि मत्तकाल को जरूर हराया जा सकेगा। वे आगे बढ़े, मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा था। तुरन्त ही मत्त-काल के साथ हमारी मुठभेड़ हो गई। दोनों ओर के सैनिक एक-दूसरे पर टूट पड़े। मैंने आरम्भ से ही युद्ध का एक लक्ष्य निश्चित कर लिया था। सेनाएँ तो एक-दूसरे के साथ आमने-सामने लड़ती रहीं और मैं उन्हें बचाकर एक तरफ आ गया। मेरी बाँहों में खूब ताकत थी,इसलिए मैंने ताक-ताक कर खास मोरचों पर बेतरह बाण बरसाये। इनसे दूसरी ओर के बड़े-बड़े लड़ाके और जुझाऊ आदमी मारे गए। इस प्रकार दुश्मनों के मोरचों की हालत बहुत खराब और नाजुक हो गई। जब मैंने देखा कि लाट वालों में ढिलाई आ गई है, तो अपना रथ सीधे मत्तकाल की ओर बढ़ाया। मेरे घोड़े बहुत तेज थे, इसलिए रथ बड़ी जल्दी मत्तकाल के पास जा पहुँचा। मैं एकदम फुर्ती के साथ कूदकर उसके रथ पर चढ़ गया और जब तक वह सँभले, तबतक मैंने उसका सिर काटकर अलग डाल दिया।

मत्तकाल का मरना था कि उसके सब सिपाहियों में भगदड़ मच गई। मैदान मार लिया गया। अब हमारी सेना को केवल लूटने का काम रह गया। लाट वालों के अच्छे-अच्छे घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत सा सामान हम लोगों के हाथ लगा। मन्त्री मानपाल इस जीत से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मेरे युद्ध-कौशल की बड़ी सराहना की और कई तरह के उपहार भेंट में देकर मेरा खूब मान-आदर किया।

इस जीत का समाचार उन्होंने अपने एक विश्वासी सेवक के द्वारा तुरन्त राजा वीरकेतु के पास भेजा। सब हाल सुनकर राजा बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। वे मन्त्री जी को बधाई देने के लिए स्वयं पधारे। जब उन्हें मेरी वीरता का हाल मालूम हुआ तो वे बड़े विस्मित हुए।

फिर उन्हें मेरे कुल आदि का परिचय दिया गया। मुझे सब तरह से योग्य पाकर राजा ने अपने मन्त्रियों और राजपरिवार के लोगों से सम्मति लेकर बड़ी धूमधाम के साथ अपनी लड़की राजकुमारी वामलोचना का विवाह मेरे साथ कर दिया। कुछ दिनों बाद मुझे युवराज बनाकर उन्होंने अपने राज्य का उत्तराधिकार भी मुझको दे दिया। महाराज वीरकेतु ने जब मुझे इतना माना, तो मैंने भी अपनी ओर से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाने और भलाई करने में कमी नहीं रखी। उनके चित्त को प्रसन्न और संतुष्ट बनाये रखने का ही मैं सदा उपाय करता रहा। मेरे जीवन का यह समय बड़े आराम से बीता। सुन्दरी वामलोचना के संग मैंने तरह-तरह के सुख और आनन्द उठाये।

इतना सब-कुछ मुझे मिला, परन्तु राजकुमार, आपका विछोह मुझे हमेशा खलता रहा। आपके हम लोगों से बिछुड़ने का दुःख ऐसा था जो कांटे की तरह मेरे मन में खटकता रहता था और इसके कारण सदा एक बेचैनी बनी रहती थी। अपने हृदय का यह दुःख मैंने एक महात्मा से कहा। वह बड़े पहुँचे हुए साधु थे। उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि तुम अपनी स्त्री समेत शिवजी की पूजा किया करो। इसी के लिए मैं आज यहां इस शिवालय में आया था। यहां मेरा आना ऐसा शुभ हुआ कि आपसे भेंट हो गई। आज बड़े दिनों बाद मुझे, अपने मित्र के दर्शनों का यह सुफल प्राप्त हो सका है। यह सब वस्तुतः भक्तवत्सल भगवान् उमापति की ही दया का प्रताप है जो आपके चरण-कमल देखने को मिले और चित्त को इतना आह्लाद प्राप्त हुआ।"

कुमार राजवाहन ने अपने साथी सोमदत्त की आपबीती सुनकर उनकी वीरता की बड़ी सराहना की, फिर कहने लगे—"भाई सोमदत्त ! इस भाग्य के खेल तो देखो कि तुम-जैसे निर्दोष और निरपराध को भी जेल की हवा खानी पड़ी !"

फिर उन्होंने अपने पाताल जाने का सब हाल सोमदत्त को सुनाया। ये दोनों आपस में बातचीत कर ही रहे थे, इतने में क्या देखते हैं कि उनके एक और साथी पुष्पोद्भव भी सामने खड़े हैं। पुष्पोद्भव ने राजवाहन

को देखते ही अचरज के साथ बड़ी जल्दी से उनके पैरों पर अपना माथा रख दिया और हाथ जोड़कर बड़ी भक्ति और प्रेम से नमस्कार किया। राजवाहन ने झट उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। मारे हर्ष के उनकी आँखों में आँसू छलक आये। वे बोल उठे—"सोमदत्त! अरे देखो तो, ये पुष्पोद्भव भी आ गए।"

इसके बाद सोमदत्त और पुष्पोद्भव भी गले मिले। आज इतने दिनों बाद ये बिछड़े हुए मित्र मिल पाये। फिर तीनों उसी पेड़ की छाँह में बैठ गए। राजकुमार राजवाहन बड़ी हँसी-खुशी के साथ अब उन्हें अपनी आपबीती सुनाते रहे। फिर कहने लगे—"मित्रो! तुम्हें याद ही होगा कि विन्ध्याचल के उस जंगल में हमें वह भील-जैसा दिखाई पड़ने वाला ब्राह्मण मिला था। उसकी बातें सुनकर मेरी बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि इस बिचारे का काम कर दूँ। पर मैं यह भी जानता था कि आप लोग हमारे सब मित्र इस बात को कभी नहीं मानेंगे। आप लोग भला मुझे पाताल क्यों जाने देते? इतना ही नहीं, यदि मैं आप सबकी जानकारी में यह काम करना चाहता तो भी आप कभी न करने देते। इसी कारण मैं सबको सोता हुआ छोड़कर अकेला ही निकल गया।

अच्छा, अब एक बात बतलाओ—तुम सब जिस समय जागे और मुझे तुमने वहां नहीं पाया तो क्या करने का निश्चय किया? मेरी खोज में लोग कहां-कहां गये? पुष्पोद्भव, तुम बतलाओ तुम निकलकर किस ओर गये थे?"

कुमार राजवाहन की बात सुनकर पुष्पोद्भव ने बड़ी शिष्टता के साथ दोनों हाथ जोड़े और सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। फिर बड़ी नम्रतापूर्वक अपना हाल कहना शुरू किया।

पूर्व पीठिका

चतुर्थ उच्छ्वास

पुष्पोद्भव की आपबीती

पुष्पोद्भव अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—"कुमार, आपको जिस समय वह ब्राह्मण एकान्त में ले गया था, तभी हम लोगों को खटका हुआ था। फिर जब अगले दिन आप गायब हो गए और वह ब्राह्मण भी आपके साथ ही लापता दिखाई दिया, तब हम लोग समझ गए कि हो न हो उस ब्राह्मण के ही साथ उसी के किसी काम से आप कहीं चले गए हैं। परन्तु हम लोगों को यह पता नहीं चला कि आप गये किस दिशा की ओर, इसलिए हम सब मित्रों ने आपस में यही तय किया कि आपको खोजने के लिए एक-एक व्यक्ति एक-एक दिशा की ओर चले। इसी के अनुसार हम लोग अलग-अलग दिशाओं में रवाना हो गए।

मैं भी एक ओर चला। चलते-चलते बहुत से स्थानों पर घूमता रहा। एकबार मैं पहाड़ की तरफ निकल गया। सवेरे से चलते-चलते दोपहर हो गई थी। सूरज भी आसमान के बीचों-बीच आ चुका था और उसकी तीखी किरणें सीधे सिर पर पड़ रही थीं। यह गरमी मुझसे झेली नहीं गई, इसलिए मैं पास ही एक घने पेड़ की ठंडी छाँह में बैठ गया। यह पेड़ पहाड़ की तराई में ही था, इसलिए यहाँ धीमी-धीमी बड़ी अच्छी बयार चल रही थी।

मैं अभी थोड़ी देर ही बैठा था कि सामने आसमान में से कछुए की-सी शक्ल में आती हुई एक आदमी की छाया दिखाई दी। इसके हाथ-पाँव, बीच में सिकुड़े हुए थे। मैंने उसकी ओर सिर उठाया और क्या देखा कि

ऊपर आकाश से बड़ी तेजी के साथ एक आदमी गिरा आ रहा है।

मैंने सोचा कि यह बिचारा जमीन पर टकराकर जरूर मर जायगा। इस विचार से मेरे मन में बड़ी दया आई। मैंने, उसे बीच में ही अपने दोनों हाथों पर ले लिया और धीरे-धीरे धरती पर लिटा दिया।

वह आदमी ऊपर बड़ी दूर से गिरा आ रहा था, इसलिए बेहोश हो गया। मैंने उसको पानी के छींटे आदि दिये और किसी तरह उसे होश में लाया। जब उसे चेत हुआ तो मैंने देखा कि उसकी आँखों में आँसू उमड़े हुए हैं। शायद किसी बहुत भारी शोक के कारण उसकी ऐसी दशा थी। मैंने उस व्यक्ति से पहाड़ पर से गिरने का कारण पूछा।

उसने धीरे-धीरे अपना हाथ उठाया और अंगुलियों के पोरों से आँख के कोने पर आई हुई आँसू की बूँदें हटाईं; फिर कहने लगा—

"भाई, मगधनरेश के मन्त्री पद्मोद्भव का नाम शायद तुमने सुना हो। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ। मेरा नाम रत्नोद्भव है। मैं रोजगार के सिलसिले में यहाँ से कालयवन द्वीप में चला गया था। वहाँ एक सौदागर की लड़की से मेरा विवाह हुआ। कुछ दिनों बाद उसे साथ लेकर मैं लौटा। सारा समुद्र तो हम पार कर आये, पर किनारे लगने से ज़रा पहले तूफान आ गया और हमारा जहाज टूट गया। इसलिए मेरा परिवार वहीं समुद्र में डूब गया। मेरा भाग्य शायद कुछ अच्छा था। इस कारण मैं जैसे-तैसे किनारे आ लगा। पर जब से मेरी पत्नी डूबी, मेरे मन पर भारी शोक छा गया। इस दुःख-सागर से मैं किसी तरह पार नहीं पा सका। उसके विछोह में बेचैन-सा होकर मैं इधर-उधर घूमने लगा। बीच में एक साधु महात्मा के दर्शन हो गए। उन्होंने कहा कि सोलह साल के बाद तेरा क्लेश दूर हो जायगा। उनकी तपस्या के असर पर भरोसा करके मैंने सोलह साल भी किसी तरह काट दिये, फिर भी धर्मपत्नी के मिलने की कोई आशा दिखाई नहीं दी। जब उसके वियोग का दुःख मेरे लिए बहुत ही असह्य हो गया, और जीवन में क्लेश-ही-क्लेश दिखाई देने लगा तो प्राणान्त करने के विचार से मैं पहाड़ पर से कूद पड़ा।"

वे सज्जन अपनी यह बात सुना ही रहे थे, इतने में कोई स्त्री बड़े कातर स्वर से यह कहती हुई सुनाई दी—

"बेटी, रुक जा ! ऐसा मत कर। उस साधु ने तो कहा था कि पति और पुत्र तुझे फिर मिलेंगे। उनके साथ तेरी भेंट हो जायगी। पर तू आग में जल मरने पर उतारू हो गई है। ऐसा करना तो किसी तरह भी ठीक नहीं है। उनके विछोह का दुःख जहाँ इतने दिनों सहा वहाँ और थोड़े दिन देख ले। आग में मत जा··!

इन शब्दों को सुनते ही मुझे पता चल गया कि कहीं पास ही कोई स्त्री जल मरने पर उतारू खड़ी है, और दूसरी उसे मना कर रही है।

मैं जिस आदमी से बातें कर रहा था उसकी आँपबीती सुनने से मुझे निश्चय हो गया था कि ये अवश्य मेरे पिताजी हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में स्वभावतः पितृ-भावना जाग उठी थी। मैंने उनसे कहा—"पूज्यवर, मुझे भी आपसे बहुत-सी बातें कहनी हैं। थोड़ी देर रुक जाइए। इस स्त्री की ये करुणा-भरी बातें मुझसे सुनी नहीं जातीं। आप यहीं बैठिए, मैं अभी आ रहा हूँ।"

यह कहता हुआ मैं तुरन्त उसी ओर चल दिया, जिधर से आवाज आई थी। कुछ दूर जाते ही एक जलती हुई चिता दिखाई दी। उसमें से आग की बड़ी भयंकर लपटें निकल रही थीं। पास ही एक स्त्री हाथ जोड़े खड़ी थी। वह उस चिता में कूद पड़ने के लिए बिलकुल तैयार मालूम पड़ती थी। मैं भागता हुआ एक छलांग में उसके पास जा पहुँचा और आग से उसे दूर हटा लाया। एक बुढ़िया भी वहीं खड़ी रो रही थी। मैं उन दोनों को अपने पिताजी के पास ले आया। वे कुछ ओट में बैठे थे।

आते ही मैंने उस वृद्धा से पूछा कि आप दोनों कहाँ रहती हैं? यहां जंगल में कैसे आईं? इन्हें इतना दुःख किस बात का है, जो इस तरह जल मरने पर उतारू हो गई हैं?

बुढ़िया अब तक भी रुआँसी थी। वह भरे हुए गले से कहने लगी—

"बेटा, समुद्र पार कालयवन द्वीप में एक सौदागर रहते थे, यह उन्हीं की लड़की है। इसका नाम वृत्ता है। यह अपने पति रत्नोद्भव के साथ जहाज पर इधर आ रही थी। रास्ते में तूफान आया और जहाज डूब गया। मैं इसकी धाय थी और इसके संग-संग जा रही थी। जहाज टूटने पर मैंने इसे थाम कर एक तख्ते का सहारा ले लिया। भाग्य कुछ अच्छा था, इसलिए इसके साथ-साथ मैं किनारे पर आ लगी। इस सुवृत्ता के बाल-बच्चा होने वाला था। प्रसवकाल बिलकुल नजदीक होने से वहीं जंगल में इसके बच्चा हुआ। मुसीबत यह आई कि उस बच्चे को मेरे हाथ से एक जंगली हाथी ने झपट लिया।

इसके बाद मैं और यह हम दोनों इधर-उधर भटकती फिरीं। तकदीर से एक जगह एक साधु महात्मा मिल गए। उन्होंने सब हाल सुनकर दिलासा देते हुए कहा—'बेटी, घबरा मत। सोलह साल बाद अपने पति और पुत्र से तेरी भेंट हो जायगी।' उनके वचन पर भरोसा करके, मैं इसे साथ लिये एक आश्रम पर चली गई। वहाँ रहकर हमने वे सोलह साल भी जैसे-तैसे बिताये। फिर भी इसके पति और पुत्र के मिलने की कोई आशा नहीं दिखाई दी। इस बिचारी की सारी जिन्दगी दुःख में ही कटी। अब आकर इससे यह क्लेश सहा नहीं गया, इसलिए चिता जलाकर यह इसमें कूदने जा रही थी।"

बुढ़िया की यह बातें सुनते ही मैं समझ गया कि वह दूसरी स्त्री मेरी माता है। मैंने तुरन्त उसके पैरों पर झुककर प्रणाम किया। साथ ही अपना सब हाल मैंने उसे सुना दिया।

वह बुढ़िया धाय जिस समय अपनी बात कह रही थी, उस समय पिताजी वहीं आड़ में खड़े थे और बड़े अचरज के साथ सब हाल सुन रहे थे। आश्चर्य के मारे आंखें खोले हुए वे देखते-से रह गए। उनका चेहरा हर्ष से खिल उठा। इसके बाद मैंने उन लोगों को ले जाकर पिताजी से भेंट कराई।

मेरी माता और पिताजी ने आमने-सामने होते ही एक-दूसरे को पहचान लिया। दोनों की अन्तरात्मा प्रफुल्लित हो उठी। मैं चुपचाप सिर

झुकाये खड़ा था। उन दोनों ने मुझे छाती से लगा लिया। उस समय दोनों की आँखों से खुशी के आँसू टपकने लगे। यहाँ तक कि मैं भी इन आँसुओं से भीग गया। दोनों बड़े प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर हम सब पास के एक पेड़ की छाँह में बैठ गए।

पिताजी मुझसे पूछने लगे कि महाराज राजहंस कैसे हैं और उनका क्या हालचाल है। मैंने उन्हें महाराज का राज छोड़कर जंगल में चला जाना, आप (कुमार राजवाहन) के जन्म का हाल, सब मन्त्रि पुत्रों का महाराज के पास आ-आकर इकट्ठा होना, आपका दिग्विजय के लिए निकलना और बीच में ही मातंग के साथ कहीं चले जाना, हम लोगों का आपकी खोज के लिए निकलना, यह सब हाल सुना दिया। इसके उपरान्त उन दोनों को ले जाकर एक ऋषि के आश्रम में मैंने उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया।

यह मैंने इसलिए किया, क्योंकि मुझे आपकी खोज में निकलना था। अब मेरे रास्ते में एक बड़ी भारी रुकावट और रह गई, यह रुपये-पैसे की थी। हर काम में धन की जरूरत पड़ती थी। इसलिए मैंने कुछ रुपया जमा करने का उपाय किया।

मुझे मालूम था कि विन्ध्याचल के जंगलों में पुराने शहरों के खंडहर हैं और इनमें कई जगह बड़े-बड़े खजाने गड़े हुए हैं। मैंने सोचा कि यह मेरे एक अकेले के करने का काम नहीं है। इसके लिए और भी बहुत से आदमी चाहिएँ। इसलिए मैंने कुछ ऐसे साथी चुनकर इकट्ठे किये, जिनसे मेरा काम निकल सकता था। कुछ दिनों की कोशिश के बाद मुझे ऐसे आदमी मिल गए। ये सभी बड़े विश्वासपात्र थे और हर काम में मेरी अच्छी तरह मदद कर सकते थे।

मैंने ऐसा किया कि एक साधु का भेस धर लिया। क्योंकि इसी शक्ल में जंगलों के अन्दर इधर-उधर विचरने में सुभीता था। इस रूप में लोगों को किसी तरह के शक करने का भी मौका नहीं था। अपने इन साथियों को मैंने शिष्य बना लिया और मैं चल दिया।

चलते-चलते हम लोग विंध्याचल के जंगल में जा पहुँचे। वहाँ कई पुराने नगरों के खंडहर देखे-भाले। इस काम के छेड़ने से पहले ही एक बड़े पहुँचे हुए साधु से मैंने एक करामाती सुरमा ले लिया था। इसे 'सिद्धाञ्जन' कहते थे। यह ऐसा सुरमा था कि इसे लगा लेने पर धरती में गड़ी हुई चीजों का पता चल जाता था। मैंने इसी की सहायता ली। इससे मुझे कुछ खास तरह के पेड़ों की पहचान हो गई। ये पेड़ अजीब शक्ल-सूरत के होते थे, और इस बात का पता देते थे कि अमुक जगह पर अशर्फियों के भरे-भराये कलसे खड़े हैं। ऐसे खजानों का पक्की तौर से पता लगाकर मैंने उनकी चौकसी के लिए अपने इन चेलों को पहरेदार बनाकर बिठा दिया। जमीन खोदने के औजार हमारे पास थे ही। बस, हमने इन जगहों को खोद-खोदकर बहुत भारी संख्या में सोने की गिन्नियां इकट्ठी कर लीं।

भाग्य से इसी अवसर पर उस जंगल में सौदागरों की एक टोली ने पड़ाव डाला। मैं उनकी मंडली में आ पहुँचा। उनसे मैंने कहा कि हमें जंगल की बहुत-सी जड़ी-बूटियां और दवाइयाँ तथा खनिज पदार्थ ले जाने हैं, इस लिए कुछ बैलगाड़ियों और बोरियों की आवश्यकता है। इन लोगों ने मेरी जरूरत के अनुसार ये सब चीजें मोल दे दीं। मैंने वे अशर्फियां उनमें अच्छी तरह होशियारी से भरवा दीं और बैलगाड़ियों पर लदवाकर उसी काफिले में ले आया। इन सौदागरों के मुखिया का नाम चन्द्रपाल था। वह किसी वैश्य का लड़का था। उससे मैंने दोस्ती गाँठ ली। चन्द्रपाल के साथ-साथ मैं उज्जैनी जा पहुँचा। अपने माता-पिता को भी मैंने उस आश्रम से उज्जैनी ही बुला लिया था। यहां चन्द्रपाल का घर था। उसके पिता का नाम बन्धुपाल था। वे बड़े गुणी और अनुभवी आदमी थे। मुझे उन्होंने बड़े प्रेम से लिया। उन्हीं के द्वारा मैंने एक बार अपने वैरी मालवा के राजा को भी देखा। बन्धुपाल जी की सलाह से मैं चुपचाप गुप्त रूप से वहां रहता रहा।

कुछ दिनों बाद आपकी खोज में मुझे जंगलों की ओर निकलने की सूझी। जब मैं चलने को तैयार हुआ तो बन्धुपाल जी कहने लगे—"बेटा इस पृथ्वी का तो कहीं ओर-छोर और अन्त नहीं है। तुम अपने राजकुमार

को कहाँ-कहाँ खोजते फिरोगे ? सारी धरती छान डालना तो तुम्हारे बते से बाहर है। इस कारण, इस बात की तो ग्लानि मन से निकाल दो कि अमुक-अमुक स्थानों पर जाना नहीं हो सका, शायद वहां कुमार मिल जाते। अब एक काम करो। इस समय तो तुम चुपचाप बैठ जाओ। मैं शकुन और मुहूर्त अच्छी तरह देख लेता हूँ। जब मैं शुभ मुहूर्त देखूँगा और यह समझूँगा कि अब लक्षण अच्छे हैं और तुम्हारे राजकुमार के मिलने की अब कोई सूरत निकल सकती है, तभी मैं तुमसे कह दूँगा।"

उनकी बातें मेरी समझ में आ गईं। मैं वास्तव में उन दिनों बड़ा बेचैन रहता था और यह समझ ही नहीं पाता था कि किस-किस जगह, और कैसे-कैसे आपकी खोज करूँ। इसलिए उस समय उनके ये वचन मुझे अमृत-जैसे जान पड़े। उनकी बात मानकर मैं वहीं उन्हीं के पास रहने लगा।

कुछ दिन इसी तरह निकल गए। एक बार ऐसा हुआ कि पड़ौस में एक वैश्य की लड़की पर मेरी नज़र पड़ी। इसका बालचन्द्रिका नाम था। लड़की क्या थी, खूबसूरत जवान औरतों में इसे एक हीरा समझिए। इसका चाँद-सा मुखड़ा खिला पड़ता था। एक-एक अंग पर इसके नई जवानी फूट रही थी। मुझे जब यह लड़की दिखाई पड़ जाती, तो ऐसा लगता मानो सामने चांदनी खिल उठी है। जिस घर में वह रहती थी, उसमें तो जान पड़ता जैसे साक्षात् लक्ष्मी ने वास कर रखा है। यह लड़की बेहद सुन्दर थी। उसका रूप और लावण्य देख-देखकर मेरा धीरज जाता रहा, और मैं उस पर पूरी तरह लट्टू हो गया। इसका खयाल आते हीकाम के बाण मुझे छेदने लगते।

धीरे-धीरे मैंने महसूस किया कि वह लड़की भी मुझे देख लेने की टोह में रहती। बड़े चुपके से डरते-डरते वह आया करती। उस समय उसकी आंखें ऐसी दिखाई देतीं जैसे चौंका हुआ हिरन हो। उसका देखना भी बड़े गजब का था। चितवन ऐसी पड़ती जैसे काम की सीधी बरछी चली आ रही हो! तमाशा यह कि कटाक्ष के साथ वह स्वयं ही मेरी ओर देखती और

फिर स्वयं ही खड़ी-खड़ी कांपने लगती। इस लड़की की देह छरछरी थी। आसमानी या हरा रंगीन कपड़ा पहने और थरथराते हुए वह ऐसी दिखाई देती,जैसे कोई हरी-भरी मुलायम बेल हो, जो, धीमी-धीमी हवा से झकझोरी हुई कांप रही हो। मैं जब कभी उसके सामने पड़ जाता तो मारे लज्जा और संकोच के उसका अजीब हाल हो जाया करता। कभी-कभी वह मेरे देखते-देखते अंगड़ाई ले उठती। फिर खास तरह की नजर मेरे ऊपर डाला करती। मैं जानता था कि ये अंगड़ाइयां प्यार और लज्जा के बीच की हालत में ली जाया करती हैं। खैर, मतलब यह कि अपने दिल की बात इस तरह बीच-बीच में वह जाहिर कर दिया करती। मुझे फिर भी भरोसा नहीं हुआ। अपने इतमीनान के लिए मैं चालाकी के साथ इस बात की टोह में लगा रहा कि क्या यह भी सचमुच ही मुझे चाहती है। अन्ततः मैंने पता लगा लिया कि उसके मन में भी मेरे लिए वस्तुतः प्रेम है। अब मैं यह सोचने लगा कि मेरा और इसका यह प्रेम-मिलन हो कैसे।

एक दिन की बात है कि बन्धुपाल जी मेरे साथ शहर के बाहर एक बाग में गये। यह एक ऐसा उद्यान था, जिसमें लोग खेल-कूद और सैर सपाटे के लिए आया करते थे। बन्धुपाल जी बाहर की तरफ अक्सर निकल जाया करते, और पक्षियों की बोलियों के द्वारा या ऐसी ही दूसरी बातों के द्वारा अच्छे-बुरे शकुन डाला करते थे। उस दिन भी वे पास के एक पेड़ पर बैठी हुई चिड़ियों की चहचहाहट सुनते हुए बैठ गए, आपकी क्या गतिविधि है, या किस दशा में आपकी स्थिति होनी चाहिए,यही सब वह सोचने-विचारने लगे। मैं सैर-सपाटे की उमंग में सुन्दर सुहावने दृश्य देखता हुआ कुछ आगे निकल गया और दूसरे बाग में जा पहुँचा। यहां एक तालाब था। मैं उधर ज्यों ही बढ़ा, तो क्या देखा कि उसके किनारे बालचन्द्रिका अकेली बैठी हुई है। आजकल मेरी सब अभिलाषाएँ इसी सुन्दरी में केन्द्रित हो रही थीं। उसके मन को चिन्ता से व्याकुल देखकर मुझे बड़ी बेचैनी हुई। बाहर उसके चेहरे पर देखा तो हवाइयां उड़ रही थीं।

इतने पर भी ज्यों ही उसने मुझे देखा तो उसी तरह घबराहट, प्यार, लज्जा और अचरज के भाव उसके मुँह पर खेलने लगे। उसने उसी तरह बड़ी अदा के साथ देखा भी। इस आपस की देखादेखी में मुझे बड़ा आनन्द मिला। मैंने खयाल किया तो मालूम हुआ कि उसके चेहरे पर एक गहरा विषाद-सा छाया हुआ था। ऐसा भाव अक्सर तब हुआ करता है, जब कोई स्त्री किसी से नफरत रखती हो, और उसी के साथ उसे जबरदस्ती मिलना पड़ता हो। मैंने सोचा इस सुन्दरी से मालूम करना चाहिए कि क्या बात है।

मैं ज़रा बहाने से तनिक इधर-उधर घूमकर झट उसके पास चला आया और मैंने उससे पूछा—"सुन्दरी, तुम्हारा चेहरा तो सदा कमल-सा खिला रहता था, आज इस पर दुःख की छाप क्यों पड़ी है? क्या बात है, हमसे कहोगी?"

कोई और दिन होता तो शायद वह लड़की मेरे-जैसे अजनबी आदमी से इस तरह एकाएक बात न करती। पर एक तो इतने दिनों की देखादेखी होने से उसे मुझ पर कुछ भरोसा हो गया था; दूसरे, वह आज मुसीबत में थी; तीसरे, यह जगह भी बिलकुल अकेली थी। इसलिए लाज, हिचक और डर छोड़कर वह मुझसे बोलने लगी। उसने कहा—

"आपसे क्या छिपाऊँ? मेरा कोई दूसरा अपना ऐसा नहीं जो इस विपत्ति में मुझे सहारा दे सके। बात यह है कि मैं मालवराज के महल में उनकी लड़की की सहेली हूँ। बड़े महाराज मानसार तो अब बहुत बूढ़े हो चुके हैं। इस लिए उन्होंने अपने लड़के दर्पसार को राजा बना दिया है। उनका उज्जैनी में राजतिलक भी हो चुका है। दर्पसार भले आदमी हैं। वे सचमुच ही इतने योग्य हैं, कि इस सारी पृथ्वी का राज्य भी सम्हाल सकते हैं। पर वे तप करने कैलाश चले गए हैं। राजकाज का भार वे अपने फुफेरे भाई चण्डवर्मा और दारुवर्मा पर डाल गए हैं। ये दोनों बड़े आवारा और उच्छृंखल हैं। अब इस समय मालवा का वैरी तो कोई रह नहीं गया है, इस कारण इन लोगों को खूब बेफिक्री है। राज्य का काम चण्डवर्मा देख लेता है, दारुवर्मा मौज उड़ाता है।

इस दारुवर्मा ने न तो कभी अपने मामा का कहा माना, और न यह अपने बड़े भाई को कुछ गिनता है। यह बड़ा लम्पट है। दिन-रात दूसरों को लूटना-खसोटना और पराई औरतों को बेइज्जत करना, यही इसका काम रह गया है। ऐसे ही कुकर्मों में यह लगा रहता है।

इसकी निगाह कहीं एक बार मेरे ऊपर भी पड़ गई। मेरी हालत आपसे तो छिपी नहीं है। मेरा मन किन्होंने चुरा लिया है, और किसके रूप-लावण्य पर मैं बिक चुकी हूँ, यह सब आप ही समझते हैं। दुष्ट दारुवर्मा तो क्या, साक्षात् कामदेव भी आ जावें, तो उनकी ओर भी आँख उठाकर देखने को मेरा जी नहीं चाहता। हालांकि दारुवर्मा यह बात जानता है कि मैं क्वारी कन्या हूं, न्और कसी कन्या को बुरी दृष्टि से देखना पाप है, पर उसने इसकी भी परवाह नहीं की। उस दिन एकान्त पाकर उसने मुझे घेर लिया और पाप में घसीटना चाहा। जब मैं नहीं मानी तो जबरदस्ती करने पर उतारू हो गया। खैर, उस दिन तो हाथ-पैर जोड़कर मैं किसी तरह उससे छूट गई, पर आगे के लिए मुझे हरदम चिन्ता बनी रहती है कि फिर कभी ऐसा हुआ तो उससे कैसे पार पाऊँगी। आज भी मैं इसी सोच में पड़ी हुई हूँ।"— इतना कहकर वह चुप हो गई, उसकी आंखों में आंसू भर आये।

मैं यह नहीं समझता था कि उसके दिल में मेरे लिए ऐसे भाव हैं, और मुझे वह इतना प्यार करने लगी है। इधर मेरे मन में उसके प्रति जो इतना प्रेम था और उसके लिए इतनी चाह हो गई थी उसका पूरा होना अब कुछ भी कठिन नहीं था। पर मैंने देखा कि दारुवर्मा के बीच में आ पड़ने से अब मेरी मनोकामना पूरी होने में भारी विघ्न खड़ा हो गया है।

मैं कुछ देर तक सोचता रहा। फिर दारुवर्मा का सफाया करने की युक्ति निकालकर मैंने अपनी उस प्रियतमा से कहा—

"सुन्दरी, इस दुनिया में ऐसा कौन है जो तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुमसे जबरदस्ती करे, या तुम्हें सता सके? यह पापी दारुवर्मा तुम्हें ऐसे नहीं छोड़ेगा। इसका एक ही उपाय है कि उसको खत्म

कर दिया जाय। इसकी एक सहज तरकीब मेरी समझ में आई है। तुम ऐसा करो कि अपने दो-चार ऐसे आदमी ठीक करो जिन्हें सब लोग सच्चा, भला और ईमानदार समझते हों। ये लोग शहर के दूसरे आदमियों में दो-चार जगह यह बात फैलायें कि 'राजकुमारी की सहेली बालचन्द्रिका पर आजकल एक यक्ष आया करता है। ऐसा सुनते हैं कि अगर कोई आदमी इस सुन्दरी को सच्चे मन से प्यार करता हो और इसे लेना चाहे, तो उसे एक हिम्मत का काम करना पड़ेगा। वह आदमी उसे अपने सोने के कमरे में बुलाये। बालचन्द्रिका अपनी एक सहेली को लेकर उसके पास चली जायगी। वह यक्ष भी उसके साथ अध्यक्षरूप में रहेगा। उस आदमी को पहले इस यक्ष से पार पाना होगा। उसके बाद, सुन्दरी बालचन्द्रिका की मिठास-भरी बातचीत का आनन्द लेकर अगर वह आदमी कुशल पूर्वक वहां से निकल आये तो फिर वह उसी की हो जायगी। इस यक्ष से निबट लेने के बाद फिर उस आदमी से बालचन्द्रिका का ब्याह हो सकता है।

यह अफवाह उड़ती-उड़ती दारुवर्मा के कानों तक भी पहुँचेगी। इस बात से घबड़ाकर और डरकर, यदि वह चुपचाप बैठ जाय तब तो अच्छा ही है। परन्तु दिल पर काबू न करके अगर वह तुम्हें बगलगीर करना ही पसन्द करे, तो बाद में तुम्हारे आस-पड़ोस के बहुत से आदमी इकट्ठे होकर दारुवर्मा से यह कहें कि—'राजकुमार, आप बहुत बड़े आदमी हैं, महाराज दर्पसार के आप मन्त्री हैं। आपका इस तरह हमारे मुहल्लों में आना और किसी औरत पर जोर जबरदस्ती करना, उचित नहीं है। आप बालचन्द्रिका को अगर वास्तव में चाहते हैं तो कोई हर्ज की बात नहीं। लुकाछिपी का इसमें क्या काम? ऐसा कीजिए कि नगर के सब लोगों की जानकारी में आप अपने महल के अन्दर उसे बुलवा लें। वहां आप उसके साथ पहले अच्छी तरह बातचीत कर लें, यदि आप से उसकी रजामन्दी हो जाय तो फिर बाद में उससे ब्याह कर लीजिए। इस तरह आपकी मनोकामना पूरी हो जायगी।

दारुवर्मा यह बात मान जायगा। तब तुम ऐसा करना कि उसके महल में चली जाना, और साथ में अपनी सहेली बनाकर मुझे ले चलना। उसके सोने का कमरा तो अलग एकान्त में होगा ही। वहां लात-घूंसों से उसकी मरम्मत करके मैं चटपट उसे ठिकाने लगा दूँगा। फिर उसी तरह सहेली की शक्ल में तुम्हारे पीछे-पीछे मैं वहां से बेखटके निकल भी आऊँगा।

मेरा खयाल है कि यही उपाय तुम कर डालो। बाद में काम बन जाने पर तुम्हें एक बात करनी होगी। उसमें घबड़ाने या शरमाने से काम नहीं चलेगा। तुम अपने मां बाप और भाइयों के आगे मेरे और अपने प्रेम की बात साफ साफ कह देना। मेरे साथ अपने ब्याह के लिए भी उनसे अनुरोध करना। वे लोग अच्छा ऊँचा घराना, धन-दौलत, रूप-सौंदर्य, यही सब बातें चाहेंगे, और मैं अच्छा तन्दुरुस्त जवान हूँ, ये सब चीजें ईश्वर ने मुझे दी भी हैं। मुझे देखकर तुम्हें मेरे साथ वे लोग जरूर ब्याह देंगे।

अब तुम जाकर दारुवर्मा के मारने की यह तरकीब उनसे कहो। वे लोग जो जवाब दें वह मुझे बतलाना।"

बालचन्द्रिका ने मेरी ये सब बातें अच्छी तरह ध्यान से सुनीं और उसे पसन्द आ गई। अब जाकर उसके दिल का बोझ हलका हुआ और उसका मुख-कमल भी कुछ-कुछ खिला। वह बोली—"आपने जैसे जैसे कहा है, मैं उसी तरह सब काम करूंगी। आपको देखकर मुझे पूरा भरोसा होता है कि उस नीच दारुवर्मा को आप जरूर मार लेंगे। उस पापी का अन्त हो जाने पर ही आपके जी की बात भी पूरी हो सकेगी।'

इतना कहकर वह उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे घर की ओर चली गई। जाते-जाते भी उसने कई बार मुँह फिराकर मेरी ओर ताका। उसके चले जाने पर मैं भी वहां से उठा और बन्धुपाल जी के पास गया। उन्होंने सब शकुन अच्छी तरह देख-भालकर, और अपने ज्योतिष के

अनुसार गणना करके मुझे बतलाया कि 'आज से तीस दिनों के बाद, तुम्हारी उस राजकुमार से अर्थात् आपसे, भेंट हो पायगी ।"

वहां से बन्धुपाल जी के पीछे-पीछे, उन्हें पहुंचाने मैं उनके घर तक गया। घर पहुँचकर उन्होंने मुझे भी अपने मकान पर जाने की छुट्टी दी।

दो-चार दिन के बाद वही हुआ जिसकी मैं आशा कर रहा था। मैंने जो तरकीब निकाली थी और एक कपट जाल रचा था, दारुवर्मा उसी में आ फंसा। उसने अपने शयनगृह में मनोरंजन के लिये बालचन्द्रिका को बुला भेजा। बालचन्द्रिका ने इसकी खबर देने और मुझे बुला लाने के लिए अपनी नौकरानी को मेरे पास भेज दिया।

मैं भी उसकी सहेली बनने के लिए तैयार होने लगा। मर्दों के कपड़े उतारकर मैंने अन्दर सिर्फ एक मजबूत जांघिया कस लिया, और ऊपर से औरतों के रेशमी कपड़े पहने। पैरों में नग जड़े हुए घुंघरू बाँधे, और कमर में करधनी पहनी। साथ ही बाजूबन्द, कड़े, झुमके, हार आदि सब गहने ठीक तरह से पहन लिये। ईंगुर-बिन्दी-काजल आदि लगा लिया। मतलब यह कि खूब बढ़िया औरतों का-सा सुन्दर भेस बना लिया। इसके बाद अपनी प्यारी बालचंद्रिका के पीछे-पीछे मैं दारुवर्मा के महल के फाटक पर जा पहुँचा।

दरबान ने हमारे आने की खबर अन्दर पहुँचाई। दारुवर्मा तैयार बैठा ही था। वह हमें लेने के लिए खुद आ पहुँचा। दरवाजे पर से घर के और सब लोगों को उसने हटवा दिया और बड़ी आवभगत के साथ हम दोनों को अन्दर ले गया। वहां उसके उसी शयनागार में हम दोनों पहुँचे।

इधर बालचन्द्रिका पर यक्ष के आने की खबर से शहर भर में सनसनी फैली हुई थी। यक्ष के आने की बात कहां तक सच है, इसे जानने के लिए लोग बड़े उत्सुक थे। इस कारण बहुत से आदमी दारुवर्मा के फाटक पर आ जमा हो गये थे।

दारुवर्मा इस समय काम-वासना के मारे पागल-सा हो रहा था। कुछ भी सोचने-समझने लायक उसकी बुद्धि नहीं रह गई थी। भीतर उसके कमरे में एक जवाहरात से जड़ा हुआ बहुत बढ़िया पलंग था। इस पर

रुई का सफेद और खूब गुदगुदा गद्दा बिछा था । बालचन्द्रिका को वह उसी पर ले गया ।

रात का समय था। घने अँधेरे में वह मुझे अच्छी तरह देख नहीं पाया। मैंने स्त्रियों का बड़ा सुन्दर रूप रच रखा था, इस कारण मेरे आदमी होने का उसे तनिक भी भान नहीं हुआ । उसने बालचन्द्रिका को और साथ-साथ मुझे भी, सोने के जड़ाऊ गहने, बारीक रेशम के रंगीन कपड़े, कस्तूरी मिलाकर तैयार किया हुआ चन्दन, कपूर पड़ा पान, तरह-तरह के इत्र, और फूल आदि बहुत सी चीजें भेंट कीं। हम लोगों से हँसी दिल्लगी की बातें उसने मुश्किल से दो-चार पल ही की होंगी, क्योंकि उसके दिल में तो आग भड़क रही थी। वह इस समय एकदम कामान्ध हो रहा था। इसके बाद झटपट उसने बालचन्द्रिका की छातियां पकड़ने को हाथ बढ़ाया ।

मेरी नजर इसी बात पर लगी हुई थी कि उसकी इस हरकत से मेरा क्रोध एकदम भड़क उठा, और आँखें लाल हो गईं । मैंने पलक मारते ही औरतों के कपड़े उतार फेंके और उस पर एकाएक टूट पड़ा। वह सँभल भी नहीं पाया था कि तुरन्त मैंने उसे पलंग के नीचे दे पटका और गरदन दबाकर, लात-घूँसों से मारते-मारते बेदम कर डाला । उसे मार डालने में मुझे कुछ भी देर नहीं लगी ।

इस हाथापाई से पहले मैं जेवर नहीं उतार सका था, इस लिए ये कुछ अस्त-व्यस्त हो गए। मैंने इन्हें तुरन्त ठीक किया और फिर वे ही औरतों के कपड़े पहन लिये ।

दारुवर्मा का गला घोंटने के समय, इस दृश्य को देखकर बालचन्द्रिका थरथर कांपने लगी। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि वह बड़ी नरमदिल और कोमलांगी बाला थी । उसकी ऐसी हालत देखकर मैंने उसे जैसे-तैसे धीरज बँधाया और हर तरह से तसल्ली दी। थोड़ी देर में वह कुछ सावधान हुई । इसके बाद उसे लेकर मैं बाहर महल के आंगन में आ गया। बालचन्द्रिका तो डर के मारे कांप ही रही थी, मैंने भी बनावटी डर से घबड़ा कर कांपना और चिल्लाना शुरू किया । मैं चीखता हुआ बोला—

"अरे लोगो ! दौड़ो, दौड़ो ! जल्दी आओ ! देखो, यह भयंकर यक्ष दारुवर्मा को मारे डाल रहा है !"

शहर के आदमी बाहर पहले से इकट्ठे थे। हम दोनों के चीखने-चिल्लाने से उनमें से भी बहुत से लोग घबरा गए और रोने लगे। चारों ओर हाहाकार होने लगा। और कुहराम-सा मच गया। यहां तक कि किसी दूसरे की बात तक सुनना कठिन हो गया। सारी भीड़ दारुवर्मा के कमरे की ओर दौड़ी। लोग तरह-तरह की बातें करते जा रहे थे। बहुत से लोगों को मैंने कहते हुए सुना—

"......देखो ! यह बात सबको मालूम हो गई थी कि बालचन्द्रिका पर यक्ष आता है, तो भी इस दारुवर्मा ने नहीं माना। ऐय्याशी के लिए यह इतना अन्धा हो गया कि इसी लड़की पर उसने हाथ डाला। जैसी करनी वैसी भरनी। अपने कर्मों से ही उसकी यह गत हुई है। ऐसे आदमी के लिये रोया-धोया भी क्या जाय ?" उस हल्ले-गुल्ले में बालचन्द्रिका को लिये हुए मैं चुपके से एकदम निकल आया, और हम दोनों अपने-अपने घर पहुँच गए।

धीरे-धीरे दारुवर्मा के मरने की सनसनी जाती रही। लोग पहले की तरह अपने-अपने काम में लग गए। तब कुछ दिनों बाद मेरे कहने के अनुसार बालचन्द्रिका ने अपने घर वालों से मेरे बारे में जिक्र किया। उन लोगों ने इस विषय में एक बाबा जी से राय ली। उन साधु महात्मा को मैंने पटा लिया और उनसे अपने माफिक कहला लिया। इस प्रकार हम दोनों का ब्याह हो गया। इस अवसर पर शहर के बहुत से लोग शामिल हुए।

यह सुन्दरी बालचन्द्रिका बहुत दिनों से मेरे मन में बसी हुई थी। इसी से मिलकर आनन्द करने की मेरे मन में बड़ी चाह थी। ब्याह के बाद इसके साथ मैंने खूब किलोलें कीं और जी भरकर जवानी का सुख लूटा।"

अपना यह सब हाल सुनाने के बाद पुष्पोद्भव राजवाहन से बोले—"युवराज, बन्धुपाल जी ने जैसा शकुन विचारा था, उसके अनुसार आज के दिन मैं शहर के बाहर आया था। सोचा यह था कि अब आपकी

कहीं इधर-उधर खोज करूंगा। पर आपके पवित्र दर्शन स्वयं ही हो गए। अब मेरी आंखों को कितना सुख मिल रहा है, इसका कुछ भी बखान मैं नहीं कर सकता।"

इतना कहकर पुष्पोद्भव चुप हो गए।

कुमार राजवाहन अपने मित्र की यह आपबीती सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपना और सोमदत्त, दोनों का हाल पुष्पोद्भव को सुनाया। इसके बाद सोमदत्त से बोले—"तुम तो अभी शिवजी की पूजा करोगे? अच्छी बात है, पूजन कर लो। उसके बाद अपनी पत्नी और नौकर-चाकरों को घर पहुँचाकर हमारे पास आ जाना। हम तुम्हें बुलाने के लिए आदमी भेज देंगे।

इस प्रकार सोमदत्त को भेजकर राजवाहन पुष्पोद्भव के साथ अवन्ती की ओर चले। अवन्ती या उज्जैनी की इस समय अपूर्व शोभा थी। बाहर से वह ऐसी सुन्दर प्रतीत हो रही थी मानो इन्द्रपुरी धरती पर उतर आई हो।

उज्जैनी शहर में आकर पुष्पोद्भव ने बन्धुपाल आदि अपने मित्रों से राजकुमार राजवाहन का परिचय कराया और कहा कि ये मेरे स्वामी के पुत्र हैं। उन लोगों को जब यह पता चला कि ये इतने बड़े आदमी के लड़के हैं तो उन्होंने राजवाहन का तरह-तरह से आदर सत्कार किया और खूब सेवा-सुश्रूषा की।

शहर के भी बहुत से लोग उनसे मिलने आये। उनसे पुष्पोद्भव ने यह कह परिचय कराया कि ये बड़े ऊंचे घराने के ब्राह्मण युवक हैं। ये सब विद्याओं में निष्णात और कला-कौशल में बड़े प्रवीण हैं।

इसके पश्चात् पुष्पोद्भव ने राजकुमार के स्नान भोजन आदि का अपने घर पर बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया, और वे आराम से वहीं रहने लगे।

पूर्व पीठिका

पञ्चम उच्छ्वास

राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी

कुमार राजवाहन उज्जैनी में पुष्पोद्भव के पास रहने लगे। कुछ दिनों बाद धीरे-धीरे वसन्त ऋतु आ गई। लोगों के मन में तरह-तरह की उमंगें उठने लगीं। शौकीन और रसिक लोग रंगरेलियाँ मनाने के लिए उतावले हो उठे। इस मौसम में ऐसी स्त्रियों के भी मन मचलने लगे जिन्हें अपने मान का बड़ा ख्याल था और जो बहुत मौन तथा गम्भीर रहा करती थीं।

स्त्री-पुरुषों में ही नहीं, पेड़ पौधों में भी परिवर्तन होने लगे। निर्गुण्डी-लाल, अशोक-टेसू और तिलों में कोपलें तथा नई कलियाँ निकल आईं। इन नई कोंपलों का तथा आम के बौर का स्वाद ले-लेकर कोयलों और भौरों के गले और भी सुरीले हो उठे। इनकी कूक तथा गुंजार बहुत साफ और ऊँची हो गई, जिससे चारों दिशाएँ गूंजने लगीं। दक्षिण की ओर से चलने वाली बयार धीरे-धीरे बह निकली।

ऐसा प्रसिद्ध है कि दक्षिण में मलय पहाड़ है, जिस पर चन्दन के पेड़ बहुत उगते हैं। इन चन्दन-वृक्षों पर सुगन्ध के मारे साँप हमेशा लिपटे रहते हैं। ये साँप चन्दन की महक से भरी हुई यहाँ की हवा को पी-पीकर उगला करते हैं, शायद इसीलिए इस समय दक्षिणी बयार इतनी महीन और पतली पड़कर बह रही थी। यह हवा धीमे-धीमे संभवत: इस कारण चलती थी कि चन्दन-वृक्षों से लिपटकर आने के कारण उनकी सुगन्ध के बोझ से यह लदी हुई थी।

कुछ भी हो, दक्षिण से आने वाला यह सुगन्धित मन्द पवन हृदय में एक अजीब मस्ती भर रहा था। अपने प्यारों से बिछड़े हुए स्त्री-पुरुषों के दिलों में तो यह एक टीस-सी पैदा कर देता था। इन वियोगियों के हृदय इन दिनों तड़प उठे थे, और अपने-अपने संगी-साथी से मिलकर किलोलें करने के लिए बेचैन हो रहे थे। वसन्त की इस ऋतु ने वन-उपवन और बाग-बगीचों को अत्यन्त सुहावना बना दिया था। उज्जैनी के बाहर इन उद्यानों में यहाँ के स्त्री-पुरुष, खेल-कूद और सैर-सपाटे के लिए जाने-आने लगे थे।

इन्हीं दिनों एक बार मालवराज मानसार की पुत्री राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी भी आनन्द-विहार के लिए निकली और नगर के बाहर एक बहुत रमणीक उद्यान में आई। उसकी प्यारी सहेली पुष्पोद्भव की स्त्री बालचंद्रिका उसके साथ-साथ थी। नगर के ऊँचे परिवारों की और भी बहुत सी सुन्दर स्त्रियां राजकुमारी को चारों ओर से घेरे हुए थीं। उन दिनों वसन्त ऋतु में कामदेव की पूजा का आम रिवाज था। क्वारी लड़कियाँ यह पूजन बड़े चाव से किया करतीं। राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी के लिए भी एक नन्हे-से आम के पेड़ की छाँह चुनी गई। इसके नीचे ठंडी, साफ और रेतली जगह पर पूजा का सब सामान सजा दिया गया। राजकुमारी ने आकर सुगन्धित फूल, हल्दी, चावल, रेशमी कपड़े, तरह-तरह के इत्र, और दूसरी बहुत सी चीजों से विधिपूर्वक कामदेव की पूजा की। इसके पश्चात् वह खेल-कूद और घूमने-फिरने में लग गई।

राजकुमारी के बसन्त-उत्सव मनाने और उद्यान में खेलने की चर्चा शहर-भर में थी। राजकुमार राजवाहन ने भी इसे सुना। उनके कानों में यह बात भी पड़ी थी कि राजनन्दिनी अपितु सुन्दरी बेहद खूबसूरत है। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि अच्छी-से-अच्छी और सुन्दर-से-सुन्दर स्त्रियों का भी इतना रूप नहीं हुआ करता; हाँ, कामदेव की स्त्री रति भले ही इतनी सुन्दर हो।

राजवाहन ने पुष्पोद्भव से कहा कि चलो हम लोग भी राजकुमारी

को देख आयें। पुष्पोद्भव तैयार हो गए। दोनों मित्र उसी बाग की ओर चले। राजवाहन और पुष्पोद्भव दोनों सुन्दर जवान थे। दोनों की जोड़ी ऐसी लगती थी जैसे कामदेव और उनका मित्र बसन्तदेव दोनों साथ-साथ जा रहे हों।

दोनों उसी बाग में पहुँच गए। इस शाही बाग की शोभा और सुन्दरता का क्या कहना? जगह-जगह रंगबिरंगे फूल दूर तक खिले हुए थे। आम के पेड़ बौर से लदे खड़े थे। दक्षिण की ओर से धीमी-धीमी बयार के झोंके आते, और इन पेड़ों की डालें एकदम डोलने लगतीं। इनमें कहीं पर नई कोंपलें चटकतीं, कहीं ताजा बौर उगता दिखाई देता, और कहीं नन्ही-नन्ही अमियाँ फलती हुईं मालूम पड़ती थीं। चारों ओर पेड़-पौधे खूब हरे-भरे और प्रफुल्लित खड़े थे। आम के पेड़ों पर जहाँ-तहाँ कोयलें कूकती सुनाई पड़ती थीं। कहीं हरे-हरे तोतों के झुण्ड चहकते और कहीं पर भौंरों की गुञ्जार उठ रही थी। राजवाहन और पुष्पोद्भव बाग में इन सबकी मीठी बोलियाँ सुनते हुए चले जा रहे थे। जगह-जगह साफ ठंडे पानी के भरे जलाशय थे। इनमें कहीं नीले कमल की कलियां तनिक-तनिक चटकी हुई खड़ी थीं, कहीं लाल-पीले कमल खिल रहे थे। किसी-किसी तालाब में सफेद कमलों की कतारें-की-कतारें मुँह खोले खड़ी थीं। तालाबों के इन फूलों के बीच-बीच में जगह-जगह सफेद हंस-सारस और मुर्गाबियां किलोलें कर रही थीं। कहीं कारण्डव पक्षी चहकते सुनाई पड़ते। किसी-किसी जगह चकवा-चकवी खेल में दीवाने हो रहे थे। इन सबको देखते और प्राकृतिक शोभा का आनन्द लेते हुए दोनों मित्र धीरे-धीरे उसी ओर बढ़ रहे थे जिधर अवन्तिसुन्दरी आई हुई थी। थोड़ी देर में राजवाहन बड़ी अल्हड़ता के साथ अचानक अवन्तिसुन्दरी के निकट आ पहुँचे।

राजकुमारी के साथ पुष्पोद्भव की प्रेयसी बालचन्द्रिका तो थी ही। उसने इन लोगों को चुपके से इशारा कर दिया कि बेखटके इधर ही चले आइए। पुष्पोद्भव उधर ही मुड़ गए। राजवाहन भी उनके साथ-साथ उसी ओर आगे बढ़ चले। इस समय कुमार राजवाहन की चाल-ढाल और उनका

चेहरा-मोहरा देखते ही बनता था। वे अपनी पूरी जवानी में थे। इसलिए उनके चेहरे से रूप और लावण्य फूटे पड़ते थे। मुख से उनके ऐसा तेज बरस रहा था कि सामने यदि देवराज इन्द्र होते तो उनका रोब भी फीका पड़ जाता। चलते-चलते राजवाहन ऐसी जगह आ पहुँचे, जहां वे और अवन्तिसुन्दरी दोनों आमने-सामने आ गए।

राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी का सौंदर्य भी अपूर्व था। वह इस समय मानुषी नहीं, कोई अलौकिक पीर या दिव्य मूर्ति-सी जान पड़ती थी। वह शायद एक सुन्दरता की पुतली थी, जिसे कामदेव ने अपनी प्रियतमा रति के खिलवाड़ के लिए रच दिया था।

कामदेव सौन्दर्य के स्वामी हैं। सुन्दर रूप के निर्माण के लिए अच्छे-से-अच्छे और निराले सामान का उनके पास खजाना रहता है। अपनी रति सुन्दरी के खेलने के लिए जब उन्होंने अवन्तिसुन्दरी के रूप में एक परम रूपवती पुतली बनाई, तो उसके एक-एक हिस्से को उन्होंने खास-खास मसाले से रचा।

उस सुन्दर पुतली या गुड़िया के पैर बनाने के लिए उन्होंने शरद्ऋतु के उन कमलों की शोभा को ले लिया जो उनके निजी क्रीड़ा-सरोवर में खिले थे। इसकी चाल भी उन्हें निराली नजाकत से भरी हुई और आकर्षक बनाई थी। इसके लिए उनके सैर करने के बाग में जो बावड़ी बनी थी, उसमें रहने वाली मनमौजिन हंसिनी को उन्होंने चुना। इस हंसिनी का मस्ती-भरा और अलसाया हुआ चलना देखकर उन्होंने इस गुड़िया की चाल बनाई। कामदेव ने अपने तरकस की सुन्दर बनावट पर इसकी दोनों टांगें और पिंडलियां रचीं। उनके क्रीड़ा-भवन के दरवाजे पर जो सुन्दर केले के खम्भे लगे थे, उनकी मनोहरता लेकर उसके दोनों सुन्दर घुटनों का उन्होंने निर्माण किया। अपने दुनिया-भर को जीत लेने वाले रथ के सौन्दर्य से उन्होंने उसके कमर से नीचे के हिस्से को बनाया। उसकी नाभि गंगाजी की भंवर-घेरी-जैसी चक्करदार और गोलाई लिये, बड़ी खूबसूरत बनी हुई थी; इसे रचने के लिए कामदेव ने अपनी खेल में खिलौने की तरह

काम आने वाली कमल की कली चुन ली। इसके बाहरी खोल से उन्होंने इस पुतली की नाभि बनाई। अपने महल की सीढ़ियों का खूबसूरत 'उतार' लेकर इसके द्वारा उन्होंने उसके पेट पर पड़ने वाली तीनों बरतें रच दीं। कामदेव के धनुष की डोरी भौंरों की लड़ी की होती है। इसका सांवलापन अनोखा ही हुआ करता है। यही आकर्षक सांवलापन लेकर उन्होंने इस गुड़िया की देह के रोयें बना दिए। महाराज कामदेव के भवन में दरवाजे के दोनों ओर जो भरे-भराये सोने के कलसे रखे रहते थे उनकी शोभा लेकर उन्होंने उस पुतली के दोनों स्तन रचे। अपने लतामण्डप की बेलों के मुलायमपन से उसकी दोनों बाँहें बनाईं। कामदेव के विजयशंख की बनावट और उस पर पड़ी हुई धारियां मशहूर हैं; इनके खूबसूरत ढांचे की नकल पर उन्होंने उसकी गरदन का निर्माण कर दिया। महाराज काम-देव के कानों में लटकने वाले सुन्दर झुमरे आम की कोंपलों के होते हैं; इनकी लाली बड़ी चित्ताकर्षक हुआ करती है। इस मनोहारिणी लालिमा से उन्होंने उस गुड़िया के सुन्दर ओठ रचे। ओठों की उपमा लोग अक्सर कन्दूरी या बिम्बाफल से दिया करते हैं। पर बिचारे बिम्बाफल तो इस पुतली के ओठों की परछाईं-मात्र थे; वे स्वयं उसके ओठों की नकल पर रचे गए थे। कामदेव अपने तीरों का काम फूलों से लेते हैं; इन फूलों की शोभा से उन्होंने अपनी पुतली की निर्मल मुस्कराहट बनाई। महाराज कामदेव की सवारी जब चला करती है, तो उसकी सूचना देती हुई आगे-आगे एक दूती चलती है। यह दूती सुरीली कोयल है। इसकी कूक के मिठास से उन्होंने इस गुड़िया या पुतली की बोली का निर्माण किया। मलयपवन महाराज कामदेव के सब सिपाहियों के सरदार हैं; इन सरदार की मोहिनी महक जगद्विख्यात है। इसी महक से कामदेव ने उसकी सुगन्धित साँस की रचना की है। भुवनविजयी मदन महीप की विजयिनी ध्वजा सदा ही फहराती रहा करती है। यह ध्वजा चंचल मछलियों की बनी है; इन्हीं मछलियों की मस्ती और चपलता से उन्होंने इस पुतली की दोनों आँखें बनाईं। अपने धनुष की कमान से उन्होंने उसकी दोनों भौंहें रच दीं। कामदेव का

सबसे पक्का मित्र सुधाकर अर्थात् चन्द्रमा है। पर सुधाकर होने पर भी इसकी कमी यह है कि इसमें कलंक लगा हुआ है। इस कलंकी चन्द्रमा से यदि किसी का मुँह बनाते हैं तो वह मुँह भी कलंकी हो जाता है। इसलिए कामदेव को यह करना पड़ा कि उन्होंने चन्द्रमा के कलंक वाले हिस्से को छोड़कर शेष बचे हुए चमकीले और मनोहर चन्द्रमा की चमक ले ली; इससे अपनी पुतली का मुँह बनाया। इसके बालों के लिए उन्होंने अपने खेलने के मोर को ले लिया और उसके फूलदार पंखों वाली पूंछ के ढंग पर उन बालों की रचना कर दी।

इस प्रकार अच्छे-से-अच्छा मसाला और सामान लगाकर, सौन्दर्य के सुघड़ कारीगर कामदेव ने इस अवन्तिसुन्दरी रूपी निराली पुतली को बनाया। बनाने के पश्चात् उसे पूरा कर चुकने पर अन्त में उन्होंने उसके बाहरी रूप-रंग पर आखरी हाथ लगाया और उसे फूलों के पराग एवं कस्तूरी-मिश्रित चन्दन के रस से नहला-धुलाकर ऊपर से बारीक पिसा हुआ कपूर का चूर्ण उस पर छिड़क दिया।

इस प्रकार परम रूपवती मालवराजनन्दिनी अवन्तिसुन्दरी इस समय कामदेव के हाथ की बनी हुई इसी सुन्दर गुड़िया के रूप में सजी-सजाई खड़ी थी। बल्कि वह एक तरह से साक्षात् लक्ष्मी की तरह शोभायमान हो रही थी।

राजकुमारी के सामने ही राजवाहन खड़े थे। उन्हें अपने सम्मुख देख उसकी नजर उनके ऊपर जा पड़ी। वह इस रूप के देवता को देखकर बड़े अचम्भे में पड़ गई। क्षण-भर के लिए तो उसे ऐसा लगा कि मैंने मनचाहा वर पाने की इच्छा से अभी-अभी जिन भगवान् कामदेव की पूजा की थी, वे ही साक्षात् आकर खड़े हो गए हैं। राजवाहन को आँख भरकर देखते ही अवन्तिसुन्दरी की अजीब दशा हो गई। भावनाओं के आवेश में उसकी सारी देह पर एक लहर-सी दौड़ गई और वह कांप उठी। ऐसा मालूम हुआ मानो धीमी-धीमी बयार के झोंके ने किसी बेल को झकझोर डाला है और वह कांपती हुई डोल रही है।

अवन्तिसुन्दरी अभी तक सहेलियों के साथ खेलती रही थी, इस कारण कुछ थक गई थी। थोड़ी देर यहां बैठकर वह आराम ले रही थी। इसी बीच इधर राजवाहन आ निकले थे। उन्हें इस प्रकार देखने के उपरान्त उसे कुछ लज्जा अनुभव हुई और उसके मन में कई तरह के विचार उठने लगे।

इधर राजवाहन ने भी अवन्तिसुन्दरी को सामने देखा। वे आश्चर्य से चकित होकर सोचने लगे कि यह इतना रूप-लावण्य कहां से आया? इरादा करके, अपनी मरजी से तो विधाता ऐसी स्त्री को बना नहीं सकते। क्योंकि जब और इतनी स्त्रियां उन्होंने बनाईं तो उनमें से एक भी स्त्री इस ढंग की वे नहीं बना सके। जरूर यह उनके हाथों अचानक ही बन पड़ी है।

इसी तरह सोचते हुए राजवाहन हैरान होकर और कुछ-कुछ उस पर मुग्ध-से होकर उसे देखते रह गए।

जब राजकुमारी ने देखा कि कोई अजनबी युवक उनकी ओर एक टक देख रहा है तो उन्हें बड़ा संकोच हुआ। वे हटकर अपनी सहेलियों की ओट में हो गईं। परन्तु अपने को रोक फिर भी नहीं सकी। सखियों के पीछे से भी अपनी लचकीली भौंहों को तनिक उकसाकर तिरछी नजरों से वे उन्हें देखने लगी। राजकुमारी स्वयं तो असाधारण सुन्दरी थी ही, पर राजवाहन का रूप-लावण्य भी ऐसी चकाचौंध पैदा कर रहा था कि उसने राजकुमारी के नयन-मृग को फंसाये रखने में एक जाल का काम किया। उनकी ओर से नजर हटाने की उन्हें सुध ही नहीं रही।

अवन्तिसुन्दरी के रूप ने राजवाहन के हृदय पर वह असर किया जो आग की लपटों में घी किया करता है। इस कुमारी बाला को देखकर नव-युवक राजकुमार के चित्त में सहज ही प्यार के भाव उठने लगे। राजकुमारी की तिरछी चितवन ने इसे और भी उकसा दिया। अब तो ऐसा मालूम देने लगा जैसे दोनों के बीच कामदेव प्रकट हो गए हों और उन्होंने राजकुमार के हृदय को अपने पैने बाणों से घायल करना आरम्भ कर दिया।

राजकुमारी भी सोचने लगी कि जैसा सौंदर्य इनके है ऐसा तो हर-

एक के होता नहीं। न जाने ये किस नगर में रहते हों ? इतना निश्चित है कि इनके आस-पड़ोस की युवती स्त्रियां उन्हें देखने को लालायित होती होंगी, और इन्हें निकलते बैठते देखकर उनकी आँखों को बड़ा सुख मिलता होगा। धन्य है इनकी माता जिन्हें ऐसी हीरे-सी सन्तान मिली। पुत्र तो परिवारों में बहुत सी स्त्रियों के हुआ करते हैं, पर ये जिसके पुत्र हैं वह मां तो इन सब पुत्रवाली स्त्रियों के बीच हीरे-मोती की तरह जगमगाती होगी। न मालूम वह कौन असाधारण और अलौकिक स्त्री हो ? अच्छा यहां पर ये न जाने किस कारण आये हैं ? कैसा अद्‌भुत इनका रूप है ! कामदेव भला इस सौन्दर्य के आगे क्या ठहरेगा ! मेरी भी अजीब हालत है, ज्यों-ज्यों इन्हें देखती हूँ त्यों-त्यों मन में एक टीस-सी उठती जाती है। काम की भी लीला अद्‌भुत है! कामदेव का मन्मथ नाम सम्भवत: इसीलिए है कि वे मन को मथा करते हैं। मैं जो इन्हें देख रही हूँ, इस कारण इस मन्मथ को शायद ईर्ष्या हो आई है, तभी तो यह मेरे मन को मथकर अपने को 'यथा नाम तथा गुण' सिद्ध कर रहा है ! क्या करूँ ? इस युवक के विषय में कोई बात कैसे मालूम करूं ?

राजनन्दिनी अवन्तिसुन्दरी के मन में इसी तरह के विचार उठते रहे। उनकी यह दशा उनकी सहेली बालचन्द्रिका ने देखी, तो वह अन्दर की बात ताड़ गई। उसे राजवाहन और राजकुमारी की मानसिक दशा का भान हो गया। उन दोनों का एक-दूसरे को देखते रहना और इस प्रकार मुग्ध अवस्था में खड़े रह जाना, इन सब बातों से वह समझ गई कि ये दोनों एक-दूसरे की ओर खिंच चुके हैं।

बालचन्द्रिका ने पहले तो सोचा कि राजकुमार राजवाहन का सब ब्योरा सहेली से खोलकर कह दूँ। फिर उसने देखा कि यहां तो तमाम स्त्रियां मौजूद हैं। इनके सामने सब बात विस्तार से बतलाना ठीक नहीं होगा। इसलिए बहुत मामूली ढंग से, जिसमें और सब लोग कोई गैर-मामूली बात न समझ बैठें, वह कहने लगी—

"राजकुमारी, यह जो महानुभाव सामने खड़े हैं, एक ब्राह्मण युवक

हैं। इनका नगर में बड़ा नाम है। ये तरह-तरह के कलाकौशल व शिल्प के बड़े अच्छे जानकार और युद्धविद्या से बड़े निपुण कवि हैं। अध्यात्म-ज्ञान इनका इतना बढ़ा-चढ़ा है कि इन्हें देवता तक सिद्ध हैं। रत्नों की परख करना भी इन्हें बहुत अच्छा आता है। तन्त्रविद्या और चिकित्सा-शास्त्र का भी इनका अनुभव बड़ा गहरा है। ऐसे व्यक्ति तो आदर-सत्कार और सेवा के योग्य हुआ करते हैं। आप भी इनका यथोचित मान-आदर कीजिए।

बालचन्द्रिका की बात सुनकर राजकुमारी को मन-ही-मन बड़ा सन्तोष हुआ। उसे ऐसा लगा, जैसे सहेली ने उसीके मन की बात दुहरा दी है। राजवाहन को देखकर वे उनकी ओर खिंच तो चुकी ही थीं। परन्तु प्यार के मारे इस समय भी उनके चित्त में बड़ी व्याकुलता-सी अनुभव हो रही थी। जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली हिलोरें धीमी हवा तक से चलायमान हो उठा करती हैं, उसी तरह उनकी दशा हो रही थी। इस समय राजवाहन उन्हें कामदेव से भी अधिक सुन्दर जान पड़ रहे थे।

राजकुमारी ने तुरन्त एक बढ़िया-सा आसन उनके लिए बिछा दिया। राजवाहन उस पर बैठ गए। इसी समय राजकुमारी की सहेलियां बहुत से अच्छे-अच्छे सुगन्धित फूल, अक्षत, कपूर, पान आदि सब वस्तुएँ ले आईं। इनके द्वारा राजकुमारी ने अच्छे ढंग से उनका आदर सत्कार किया।

जिस समय यह सब आयोजन चल रहा था, उस समय भी कुमार राजवाहन का आकर्षण अवन्तिसुन्दरी की ओर बराबर बना रहा। उन्हें इस बात से बड़ी हैरानी हुई कि केवल इसी राजकन्या की ओर उनके मन का खिंचाव क्यों हुआ? सहसा उनके कुछ पिछले संस्कार जाग उठे। उन्हें ऐसा खयाल हुआ कि हो न हो, यह मेरे पिछले जन्म की स्त्री 'यज्ञवती' है। इसी कारण इसकी ओर मेरे मन में भार्यापन का यह भाव उठा है। उन ऋषि ने भी कहा था कि जब तुम्हारे शाप का समय बीत जायगा, तो तुम दोनों को अपने-अपने पिछले जन्म की जाति की याद हो आवेगी। इस लिए इस समय जिस प्रकार मुझे इसके यज्ञवती होने का भान हो गया

है, उसी तरह इसे भी मेरे पिछले जन्म की याद अवश्य हो आई होगी। राजवाहन ने सोचा—अच्छा, इस बात को मालूम करना चाहिए। ऐसा करता हूँ कि इस समय इशारों ही इशारों में, किसी दूसरे पर डालकर, कुछ पिछली बातें इससे कहता हूँ। इन्हीं के द्वारा बहुत सम्भव है कि इसको पिछले जन्म की याद हरी हो जाय।

राजवाहन यह सब सोच ही रहे थे, तब तक पास के तालाब का एक हंस किलोलें करने के इरादे से उधर चला आया। धीरे-धीरे वह अवन्तिसुन्दरी के बिलकुल नजदीक आ पहुँचा। उसे देखकर राजकुमारी ने चाहा कि उसे पकड़ ले। उसने बालचन्द्रिका को इशारा किया। वह उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ी। इसी समय राजवाहन ने सोचा कि अब अपनी बात छेड़ने का अच्छा अवसर है। राजवाहन बातचीत करने में तो खूब चतुर थे ही। उन्होंने दिलबहलाव के लिए एक छोटा-सा किस्सा छेड़ दिया; कहने लगे—

"इस हंस को देखकर मुझे एक पुरानी बात याद हो आई है। पिछले समय में शाम्ब नाम के कोई राजा थे। वे एक बार अपनी प्रियतमा पत्नी के साथ जल-विहार करने एक सरोवर पर गये। उसमें बहुत से लाल-लाल कमल खिले थे। उन्हीं के अन्दर कहीं एक हंस भी सोया हुआ था। राजा ने उसे देख लिया और चुपके से जा पकड़ा। पकड़कर कमल ककड़ी के सूंते निकाल, उससे उन्होंने उसके पैर बांध दिये। खेल-खेल में ऐसा मजेदार काम कर लेने पर राजा बड़े खुश हुए। प्रसन्नता-भरी मुस्कराहट से उनका चेहरा खिल उठा। हंस को काबू करके उन्होंने अपनी प्यारी रानी पर एक प्रेम-भरी नजर डाली और बोले—'देखो प्यारी, इस हंस को मैंने बांध लिया है। अब यह कैसे शान्त और चुपचाप बैठे हैं, मानो कोई ऋषि-मुनि हों। तुम चाहो तो इसे अपने संग ले चलो।' वास्तविक बात यह थी कि 'वह हंस' एक ऋषि थे। उन्होंने राजा शाम्ब को शाप दे दिया और कहा—'राजा, तुमने बिना कारण हमारा यह अपमान किया है। हम ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए इन दिनों यहां एकान्त में बैठे थे; और इन कमलों के बीच एक साधना में लगे हुए थे।

तुमसे तो हमने कुछ भी नहीं कहा। आनन्द से हम चुपचाप पड़े थे। तुम्हें राजा होने का इतना घमण्ड कि बिना किसी तरह की छेड़छाड़ के व्यर्थ ही तुमने हमारा तिरस्कार किया। तुम बड़े पापी हो। जाओ, तुम्हारी यह स्त्री तुम से अलग हो जायगी ! अब तुम इसके वियोग का दुःख झेलो।'

हंस को इस तरह आदमी के समान बोलते देख और उसका शाप सुनकर राजा शाम्ब का चेहरा उतर गया। उन्होंने तुरन्त उस हंस के पैर खोल दिए और स्वयं बड़े दुखी हुए। अपनी स्त्री को वे प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। उसके विछोह को सहना उनके लिए महाकठिन था। ऋषि की बात सुनते ही वे उनके सामने धरती पर गिर पड़े। फिर उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हुए बड़ी दीनतापूर्वक कहने लगे—

'महात्मन् ! मुझसे बड़ा भारी पाप हो गया। परन्तु यह मैंने जान-बूझकर नहीं किया। अनजाने में ही मुझसे यह भूल हो गई है, मुझे क्षमा कर दीजिए !'

राजा को इस तरह दीनतापूर्वक क्षमा मांगते देख ऋषि को दया आ गई। वे समझ गए कि अनजाने ही इसने यह काम कर डाला है। उस पर तरस खाकर उन्होंने कहा—'अच्छा, तुम्हारी बात से मालूम पड़ता है कि जान-बूझकर बुरे इरादे से तुमने यह काम नहीं किया। इसलिए घबड़ाओ नहीं। इस जन्म में तुम्हें इस शाप का फल नहीं भोगना पड़ेगा। परन्तु यह बात भी तुम जानते हो कि मैं जो-कुछ कह चुका, वह व्यर्थ तो जा नहीं सकता। इसलिए ऐसा होगा कि अगले जन्म में जब यह तुम्हारी रानी दूसरी देह में होगी, उस समय तुम इसे देखकर इसकी ओर आकर्षित हो जाओगे। फिर इसके प्रेमी बनकर तुम जब इससे मिलोगे, उसके बाद दो महीने तक तुम्हारे पैर सांकल में बँधे रहेंगे। इस बँधी हुई हालत में तुम्हें अपनी स्त्री के बिछुड़ने का दो महीनों तक क्लेश झेलना पड़ेगा, क्योंकि तुमने दो पल तक हमारे पैर बांधे रखे हैं। दो महीने बीत जाने पर फिर तुम अपनी प्यारी स्त्री के साथ बहुत

समय तक राज्य का सुख उठाओगे।'

यह कहने के बाद ऋषि ने फिर अन्त में उन पर दया करके इतना और कह दिया—'अगले जीवन में इस शाप का फल भोगने से पहले तुम दोनों को अपने पिछले जन्म की सब बातें याद आ जायँगी, और एक-दूसरे के साथ अपने आपसी सम्बन्ध का भी स्मरण हो आयगा।' "

इतनी बात सुनाकर कुमार राजवाहन, अवन्तिसुन्दरी को लक्ष्य करके बालचन्द्रिका से कहने लगे—"उस घटना को याद करते हुए मेरे विचार से इस हंस को बन्धन में डालने का काम न करो तो अच्छा है।"

राजपुत्री अवन्तिसुन्दरी इस किस्से को बड़े ध्यान से सुन रही थीं। राजवाहन की बातों से उन्हें अपने पिछले जन्म का सब हाल याद आ गया। उन्होंने राजवाहन पर एक निगाह डालकर मन-ही-मन कहा—'अरे, ये तो मेरे वही पति हैं!' यह खयाल आते ही उनका राजवाहन के प्रति प्रेम जाग उठा। वे तनिक मुस्कराईं, फिर उस कहानी के छूटे हुए अंश को पूरा करती हुई कहने लगीं, "महानुभाव, पिछले समय में महाराज शाम्ब ने यज्ञवती के अनुरोध पर ही उस हंस को पकड़कर बाँधा था। यदि यज्ञवती इतनी जिद न करती तो उनसे ऐसा काम क्यों होता? वस्तुतः बात तो यह है कि जो लोग महामना और उदार प्रकृति के हुआ करते हैं, उन्हें कभी-कभी ऐसा काम भी करना पड़ता है जो उनके योग्य नहीं होता।"

इसके बाद उन दोनों में कुछ देर तक इसी तरह की दो-एक बातें हुईं। यहाँ तक कि दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया और पिछले जन्म के नाम भी दोनों को एक-दूसरे के मालूम हो गए। आपस के परिचय के लिए दोनों ने पिछले जन्म के कुछ संस्मरण भी सुनाये और एक-दूसरे की निशानियाँ भी बतलाईं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि दोनों एक-दूसरे पर पूरी तरह आसक्त हो गए।

ये बातें हो ही रही थीं कि मालवराज की पटरानी उधर आती दिखाई दीं। उनके साथ राजपरिवार की और भी बहुत सी महिलाएँ थीं।

रानी को आते हुए बालचन्द्रिका ने दूर से ही देख लिया। उसे डर हुआ कि कहीं इन दोनों के प्रेम का यह भेद खुल न जाय, इसलिए उसने तुरन्त हाथ से संकेत कर दिया। राजवाहन और पुष्पोद्भव—दोनों इस इशारे को समझ गए, और दोनों-के-दोनों उसी बाग में, पेड़ों की ओट में चले गए।

राजकुमारी फिर अपनी सहेलियों के साथ खेलों में लग गई। महारानी आकर लड़कियों के इस खेल-कूद को दिलचस्पी से देखती रही। थोड़ी देर ठहरकर वे फिर महल की ओर चलने को हुईं। राजकुमारी को भी उनके साथ ही जाना था। वह बिचारी उठकर उनके पीछे-पीछे चल दी। पर उसका मन तो कहीं और ही था। उसे कुछ और उपाय नहीं सूझा, केवल तालाब के हंस को सुनाकर राजवाहन के लिए वह धीरे-धीरे इतना जरूर कहती गई—"हे राजहंस-कुल-तिलक ! इस खेल के बाग में आनन्द-विहार की इच्छा लेकर तुम मेरे पास आये, परन्तु मैं ऐसी अभागिन रही कि मुझे तुम्हें छोड़कर असमय ही चले जाना पड़ रहा है। क्या करूँ ? तुम जानते हो मैं बेबस हूँ। मां के पीछे-पीछे मेरा चला जाना जरूरी है। उन्हें छोड़कर इस समय मैं अकेली तो रह नहीं सकती। समय देखो, मेरी कितनी मजबूरी है। मैं जानती हूँ कि तुम इतने प्यार और चाव के साथ आये थे, पर क्या करूँ ? देखो, इतनी ही बात पर कहीं तुम अपना वह प्रेम मेरी ओर से हटा मत लेना।"

तालाब के इस हंस के बहाने से राजवाहन को ये बातें कही गई थीं। उन्होंने भी इन्हें सुनकर सब मतलब अच्छी तरह समझ लिया। वे उस समय आड़ में खड़े थे, इसलिए कुछ उत्तर तो दे ही नहीं सकते थे।

राजकुमारी अपनी बात पूरी करके धीरे-धीरे चल दीं। जाते-जाते भी मुँह फिराकर उन्होंने उस ओर देखा, जिधर ओट में राजवाहन खड़े थे। उस समय राजकुमारी की आँखों से बड़ी बेबसी और कातरता टपक रही थी। धीरे-धीरे वे महल की ओर चली गईं।

अपने महल में आकर राजकुमारी ने सहेली बालचन्द्रिका से

कुमार राजवाहन का नाम मालूम किया और उनके कुल, परिवार आदि का परिचय प्राप्त कर लिया।

अब राजकुमारी को उनकी बार-बार याद आने लगी। उन पर अनुरक्त होने से वे बड़ी बेचैन हुआ करतीं। काम के तीरों से राजकुमारी का हृदय घायल हो गया था। इसलिए राजवाहन के विरह में अब उन्हें दिन-रात बड़ी व्यथा अनुभव होने लगी। वे दिनोंदिन दुबली होती गईं। कृष्ण पक्ष में जैसे चन्द्रमा की कला दिनोंदिन पतली होती जाती है, वैसे ही उनके शरीर की दशा होने लगी। यहां तक कि उनका खाना-पीना भी छूट गया। वह एक अकेले कमरे में पड़ी रहतीं। इन दिनों उनकी देह में बड़ी दाह अनुभव होती थी, इस कारण उनकी सहेलियों ने उन्हें फूलों के बिछावन पर लिटा दिया था। उनके शरीर पर दिन-रात चन्दन का रस छिड़का जाता और घिसे हुए चन्दन का लेप रहता। बेहद दुबली हो जाने से उनकी देह उन फूलों के बिछौने पर ऐसी मालूम देती जैसे कोई बड़ी मुलायम बेल वहां डाल दी गई है। बेचैनी के कारण वे पड़े-पड़े करवटें बदलती रहती थीं।

जब सहेलियों ने देखा कि राजकुमारी प्रेम की आग में इस तरह जल रही है, उनका मुलायम और सुन्दर शरीर झुलसा-सा जा रहा है, और उनकी हालत दिनोंदिन गिरती जाती है, तो वे बड़ी दुखी हुईं। साथ ही सोच में भी पड़ गईं। परन्तु अपनी ओर से उनकी सेवा और देखभाल करने में उन्होंने कोई कमी नहीं की। राजकुमारी की देह में गरमी और जलन बहुत पड़ती थी। यह देखकर सहेलियों ने उनके कमरे में सोने के कलसे ला रखे। इनमें खस, कपूर, चन्दन आदि का जल भरा रहता। इसी को राजकुमारी के देह पर बारम्बार छिड़का जाता। उनके पहनने के लिए कमल-ककड़ी के सूतों के बने हुए बहुत बारीक, झीने और ठंडे कपड़े बनवा लिये गए। इन्हीं को राजकुमारी पहने रहतीं। उनकी देह को ठंडी-ठंडी बयार मिलती रहे, इसके लिए नीलकमल की पंखुड़ियों के पंखे बनाये गए। इसी तरह दाह और गरमी को दूर करने वाली बहुत सी चीजें ला-लाकर,

सहेलियां, उस राजनन्दिनी के ताप को कम करने की कोशिश करने लगीं।

परन्तु इन सब शीतल उपचारों से भी राजकुमारी को शान्ति नहीं मिली। जैसे गरम तेल में ठंडे पानी की बूंद और भी छनछना उठती है, इसी प्रकार इन सब ठंडक देने वाली चीजों से उनके तन का और मन का दाह बढ़ता ही गया। राजकुमारी की ऐसी गिरती हुई हालत देखकर उनकी प्यारी सहेली बालचन्द्रिका भी बड़ी व्याकुल हो गई। उसे कुछ न सूझ पड़ा कि अब क्या करूँ!

इसी समय राजकुमारी ने बालचन्द्रिका को अपने पास बुलाया। उनकी आँखों में आँसू भर आए। अपने अधमुँदे नयनों को एक तरफ फिराकर वे उसकी ओर कच्ची नजर से देखने लगीं। इस समय भी उनकी साँसें गरम-गरम चल रहीं थीं, जिनके कारण उनके ओंठ मुरझाये जा रहे थे। बड़े भरे हुए गले और कांपती हुई आवाज में वे विलाप करती हुईं धीरे-धीरे उससे कहने लगीं—"प्यारी सखी! दुनिया के लोग कहा करते हैं कि रूप के देवता कामदेव के पास फूलों के हथियार हैं, और उनके पास पाँच ही तीर हैं। इसी पर शायद उनका नाम 'कुसुमायुध' और 'पंचवाण' पड़ गया है। पर यह बात निरी झूठ है। मैं तो उनके अनगिनत फौलादी तीरों से छिदी जा रही हूँ। इस छिदन से मेरी देह जली जाती है। सब लोगों के कहने-सुनने से मैं ठंडक के लिए चन्द्रमा की चांदनी में जा बैठती हूँ। पर चन्द्रमा से तो समुद्र की आग ही भली। क्योंकि वह आग तो, जब समुद्र के अन्दर बैठती है, तभी वह सूखा करता है, बाहर निकल जाने पर वह सूखना बन्द हो जाता है। पर इस चन्द्रमा का तो यह हाल है कि यह बाहर से छूकर ही मेरी देह को सुखाये और जलाये डाल रहा है। तुम लोग इसे शीतकिरण-हिमांशु आदि क्यों कहा करती हो? इसमें तो नाम को भी ठंडक या कोई दूसरा गुण नहीं है। मुझे तो इसमें सब ऐब-ही-ऐब दिखाई पड़ते हैं। तभी तो इसका नाम 'दोषाकर' पड़ा है। देखो न, इसका हाल क्या है! इसकी बहन लक्ष्मी का घर 'कमल' है, उस अपनी सगी बहिन का घर भी तो यह नहीं छोड़ता, उसे भी बरबाद कर देता है! ऐसी हालत में इस चन्द्रमा का मुझे क्या सहारा?

तुम कहती हो कि मलयाचल की ओर से बहकर आती हुई दक्खिनी बयार में बैठ जाया करो, उससे ठंडक और चैन मिलेगी। पर मेरे मन में यह विरह की आग ऐसी दहकती है कि जब यह बयार आकर हृदय को छूती है, उसी समय वह खुद गरम पड़ जाती है। ऐसी हालत में वह मुझे ठंडक क्या देगी, और वह मेरे किस काम की ?

तुमने मेरी चारपाई पर नई-नई और ठंडी-ठंडी कोंपलों का बिछावन लगा दिया है। पर इन पत्तियों का गुलाबी सिंदूरी-सा रंग देखते ही मुझे ऐसा लगता है, जैसे कामाग्नि की लपटें बिछी पड़ी हों; इनसे तो मेरी देह में दाह और भी बढ़ जाता है।

वह मलयाचल का बसन्ती चन्दन घिसघिसकर तुम मेरे ऊपर लगाती हो, पर उससे भी उल्टे मेरे जलन ही पैदा होती है। ऐसा मालूम देता है कि चन्दन पर पहले जो सांप लिपटे हुए थे, उनका तेज़ जहर शायद इसके अन्दर मिल गया है। इसीसे अब यह ठंडक नहीं देता बल्कि आग लगाता है।

जब इन सब ठंडक देने वाली चीजों का मेरे ऊपर यह असर है, तो फिर दूसरे शीतल उपचार और उपाय क्यों करती हो ? इन सबको तू बन्द कर दे। तू तो मेरी सब हालत जानती है। यह बात भी तुझसे छिपी नहीं कि मेरे अन्दर यह दाह किसलिए है।

सखी, यह तो काम-ज्वर है और इसका दूर करना उन्हीं राजकुमार के वश का है जो उस दिन बाग में मिले थे। याद है उनका वह रूप-लावण्य ? वह कामदेव को भी जीत लेने वाला उनका सौन्दर्य ? पर हाय, वे भी क्या मुझे मिल सकेंगे ? नहीं, सखी ! उनका आना असम्भव है ! बतला, मैं अब क्या करूँ ?"

राजनन्दिनी अवन्तिसुन्दरी की इन बातों को सुनकर बालचन्द्रिका समझ गई कि उसकी सहेली को यह कामोन्माद हो गया है; जोकि अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुका है। उसने राजपुत्री की कोमल देह पर निगाह डाली। बिना ही किसी रोग के उसकी छीजती हुई देह को देखकर उसे

पहले से ही इस बात का सन्देह हुआ था; पर अब तो वह पूरी तरह समझ गई कि इस राजदुलारी का मन उस राजकुमार के हाथों बिक चुका है।

इस समय देखा जाता तो राजकुमारी के इस दुःख को दूर करने का और कोई उपाय न था। बालचन्द्रिका मन-ही-मन सोचने लगी कि "क्या करूँ ? अब तो राजकुमार को लाये बिना काम बनता दिखाई नहीं देता, क्योंकि और कोई उपाय समझ में नहीं आता। चलूं, उन्हीं को जल्दी से बुला लाऊँ। देखती हूँ कि यदि कुछ भी देर लगी तो प्रेमानन्द से इसकी और भी नाजुक हालत हो जायगी। कुछ-कुछ तो मैंने उस बाग में ही समझ लिया था। जब इन दोनों की देखादेखी हुई, तभी मैं जान गई थी कि प्रेम की चोट दोनों-के-दोनों खा बैठे हैं।

कैसी हैरानी की बात है कि कामदेव का नाम तो 'विषम सायक' है—उसके तीरों की मार एक-जैसी नहीं पड़नी चाहिए। पर इन दोनों को ही उसके तीर ठीक एक-से लगे हैं। दोनों-के-दोनों एक समान घायल हुए पड़े हैं।

जब मेरी इस सहेली की तरह राजकुमार भी चुटैल हुए बैठे हैं, तो उन्हें यहां बुला लेना भी सुगम ही होगा।..."

ये सब बातें सोचते हुए बालचन्द्रिका ने कुमार राजवाहन के पास चलने का निश्चय कर लिया। पर इससे पहले उसने अवन्तिसुन्दरी की देखभाल के लिए, ऐसी समझदार और सीखी हुई कुछ सहेलियां तथा दासियां रख दीं, जो अच्छा-बुरा अवसर देखकर हर काम बड़ी सावधानी के साथ करती रह सकती थीं। यहां का यह सब प्रबन्ध करके वह राजकुमार के भवन पर पहुँची।

जाकर देखा तो जैसा उसका अनुमान था, कुमार राजवाहन की हालत वैसी ही निकली। वे बिचारे भी नरम पत्तियों के ठंडे बिछौने पर पड़े थे। काम-ज्वर के ही वे भी शिकार थे। इस बुखार की गरमी से उनकी देह इतनी तप रही थी कि नीचे बिछी हुई कोंपलें मुरझा गई थीं। उनकी आँखों के आगे भी हर समय राजनन्दिनी अवन्तिसुन्दरी की मूर्ति घूमती रहती थी।

ऐसा जान पड़ता था जैसे कामदेव ने मारे तीरों के उनके हृदय को तरकस बना डाला हो। राजकुमार इस समय भी राजकुमारी की ही चर्चा पुष्पोद्भव से कर रहे थे। इसी समय बालचन्द्रिका पहुँची।

राजवाहन ने देखा कि यह तो उनकी प्रणयिनी की ही प्यारी सहेली आई है। इससे उनके चित्त को बड़ी शान्ति मिली। कुमार के लिए बालचन्द्रिका का इस समय आ पहुँचना ऐसा ही हुआ जैसे कोई आदमी देर से इधर-उधर किसी बूटी को खोज रहा हो, और वही अचानक उसके पैर के नीचे पड़ जाय।

बालचन्द्रिका यद्यपि इस समय इन दोनों के बीच प्रेमदूती बनकर आई थी, पर शिष्टाचार और सभ्यता को वह नहीं भूल सकती थी। उसने आते ही सबसे पहले विधिपूर्वक राजकुमार को नमस्कार किया। उसके दोनों मिले हुए हाथ जिस समय ऊपर सिर पर जाकर लगे, उस समय ऐसा जान पड़ा मानो माथे पर कमल की एक कली रख दी गई है। उसकी जुड़ी हुई गुलाबी हथेलियां मस्तक पर एक गहने की तरह बड़ी खूबसूरत दिखाई पड़ रही थीं।

राजकुमार ने हाथ के इशारे से उसे बैठ जाने के लिए कहा। वह राजनन्दिनी की सबसे प्यारी और अन्तरंग सहेली थी, इस कारण उसे उन्होंने उसके योग्य अच्छी मुनासिब जगह पर बिठलाया। बैठ जाने के बाद बालचन्द्रिका ने नम्रतापूर्वक राजकुमार को एक बढ़िया कपूर पड़ा हुआ और खुशबूदार पान भेंट किया। इसे राजकुमारी ने उन्हीं के लिए खास तौर से भेजा था।

पान स्वीकार करके कुमार ने अपनी प्रेयसी का हाल पूछा। इस पर बालचन्द्रिका बड़ी विनय के साथ कहने लगी—

"कुमार! उस बिचारी का हाल आप क्या पूछ रहे हैं! खेल वाले उस बगीचे में जिस दिन से उसने आपको देखा, तभी से आपके प्रेम में वह दीवानी हो गई है। प्रेम के देवता कामदेव ने उसे एकदम मथ-सा डाला है। उसके अन्दर आपके अनुराग की आग हर समय सुलगती रहती है, जिसके

मारे उसकी सब देह तपने लगी है। इस जलन की शान्ति के लिए वह फूलों के बिछौने पर पड़ रहती है, पर इससे भी उसे चैन नहीं मिलता। तब फिर वह बिचारी क्या करे ? कोई तरकीब उसकी समझ में नहीं आती।

परन्तु कुमार, आप इस सबका उपाय जानते हैं। ऐसे प्रेम-रोगी को तभी शान्ति मिलती है, जब उसे अपने प्यारे की छाती से लिपटने का सुख मिल जाय। यह सब आपके ही हाथ में है। पर इसका मिलना आज उसे दुर्लभ हो रहा है। यह चीज उस बिचारी के लिए ठीक वैसी ही है, जैसे कोई बौना आदमी किसी ऊँचे पेड़ का फल तोड़ लेना चाहे।

मैं और क्या कहूँ, उसने स्वयं अपने हाथ से एक चिट्ठी लिखकर मेरे सुपुर्द की है,और यह काम मेरे ऊपर डाला है कि मैं इसे आपके हाथों में दूँ।"

इतना कहकर राजकुमारी का पत्र उसने राजवाहन के हाथों में थमा दिया। उन्होंने उसे बड़े आदर के साथ ले लिया और यत्नपूर्वक खोला। उसमें एक छोटा-सा पद लिखा था—

एक एक से प्रेम के हे देवता सुकुमार !
वह तुम्हारा भुवन मोहन रूप,
कुसुम-कोमल किरण-कान्त अनूप,
देख पाई उस घड़ी क्यों हाय,
हो रही जो अब विकल असहाय !!

वह अतुल लावण्य वे संलाप—
दे रहे स्मृति-रूप यह संताप !!
बस, किसी के प्रेम में तल्लीन—
दीप की लौ जल रही रसहीन।

सोचती मैं—तन मृदुल ज्यों फूल
किन्तु मन फिर क्यों कठिन प्रतिकूल ?
तुम जलाओ, हो चलूं मैं क्षार
किन्तु उमड़ा आ रहा यह प्यार !
प्रेम के हे देवता सुकुमार !!

इस पढ़कर राजकुमार बालचन्द्रिका से बोले—

"सुन्दरी, तुम तो जानती हो कि यह पुष्पोद्भव मेरा परम मित्र है। यह मेरे साथ सदा छाया की तरह रहता है। तुम इसकी प्रियतमा हो। जैसा यह मेरा अन्तरंग सखा है, उसी तरह तुम भी उस परमरूपवती राजदुलारी की सबसे प्यारी सहेली हो। जिस प्रकार मैं और पुष्पोद्भव, मूर्ति तथा छाया की तरह हैं, उसी के समान तुम और राजकुमारी भी शरीर एवं प्राण के तुल्य हो। में जानता हूँ कि तुम जो उनके लिए इस तरह इधर-उधर घूम रही हो, यह मानो उन्हीं के प्राण विचर रहे हैं।

वास्तविक बात तो यह है कि आज हमारा और उनका आपस में जो यह प्रेम दिखाई दे रहा है, इसकी जड़ जमाने वाली तुम्हीं हो। इस प्रेम की लता में जल सींचने के लिए तुम्हारी चतुराई ने इसके चारों ओर थांवला बनाने का काम किया है। तुम जो कहो, मैं वह सब करने को तैयार हूँ !! इस पत्र में, उस सुन्दरी राजकुमारी ने मेरे मन की कठोरता का उलहना दिया है। ठीक है ! पर तुम ही सोचकर देखो, उस दिन बाग में केवल तनिक-सी देर के लिए उनकी झांकी मुझे मिली थी; पर उसी बीच मेरा हृदय छीनकर वे अपने घर जा बैठीं। बतलाओ यह कितना बड़ा अन्धेर है ?... खैर, यह बात तो वे स्वयं ही जानती हैं कि किसका चित्त कठोर है और किसका कोमल !

तुमने मुझसे वहां चलने और उन्हें धीरज देने की बात कही है। पर तुम जानती हो कि राजकुमारियों के महल में पहुँचना कितना कठिन काम है ? मैं इसका कोई उचित उपाय सोचूंगा, और कल-परसों तक उनसे भेंट करूँगा। मेरा हाल तो तुम देख ही चली हो, यही सब उन्हें सुना देना।

अन्त में एक बात के लिए मैं तुमसे विशेष अनुरोध करूँगा। राजकन्या कितनी मुलायम और नाजुक है, यह तो तुमसे बढ़कर और कौन जान सकता है ? उनके जैसा कोमल तो सिरस का फूल भी शायद न हो। ऐसे सुकुमार शरीर पर जब इस तरह की मुसीबत आती है, तो चित्त को बड़ा खटका रहता है। तुम ऐसा उपाय करती रहना कि उनकी देह को

तनिक भी ठेस न लगने पाए।"

राजवाहन की इन बातों से बालचन्द्रिका समझ गई कि उनके हृदय में राजकुमारी के लिए कितना प्यार है। यह बात जान लेने से उनके मन को बड़ा सन्तोष हुआ। इसके बाद वह राजकुमारी के महल की ओर चली गई।

कुमार राजवाहन को जिस समय से बालचन्द्रिका मिली, तब से उनका चित्त कुछ-कुछ ठिकाने आया। अब जाकर उन्हें थोड़ा घूमने-फिरने की भी इच्छा हुई। पर इसके लिए उन्हें उसी बाग की याद आई, जहां प्रियतमा अवन्तिसुन्दरी की छवि पहले-पहल उन्हें देखने को मिली थी। उसके विरह का यह समय बिताने के लिए वे पुष्पोद्भव को संग लेकर उसी बगीचे की ओर निकल गए।

वहाँ पहुँचकर उन्हें फिर अपनी प्रणयिनी की याद आ गई और उसकी सुन्दर मूर्ति उनकी आँखों के सामने खड़ी हो गई। उन्हें लगा कि उसकी वे चकोर की-सी आंखें सहेलियों की ओट में से अब भी उनकी ओर ताक रही हैं और शरत्काल के चन्द्रमा जैसा वही मुख अपनी झांकी उन्हें दिखा रहा है! राजकुमार धीरे-धीरे टहलते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ अवन्तिसुन्दरी आकर बैठी थी। उन्हें याद आने लगा कि वे इन्हीं पेड़ों की छाँह में बैठी थी। उस जगह वे हरी-हरी पत्तियां और फूल अब तक पड़े हुए थे, जिन्हें राजकुमारी ने अपने हाथों से बीना था। जिस पेड़ के नीचे उन्होंने भगवान कामदेव की पूजा की थी वह स्थान भी वैसा-का-वैसा ही बना हुआ था। राजवाहन वहां आकर खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि उस राजदुलारी के पैरों की छाप अब तक वहां की ठंडी रेतीली जगह पर पड़ी हुई है। उनके लिए आम की डालियों पर से मुलायम-मुलायम पत्तियाँ छांटकर जो बिछावन तैयार किया गया था, वह भी अब तक उसी तरह बना था। राजकुमारी इस पर थोड़ी देर आराम करके इसे उसी तरह छोड़ गई थीं। राजवाहन इन सबको बड़ी देर तक देखते रहे।

उन्हें खयाल आया कि उस राजनन्दिनी के साथ-साथ और उसके

आस-पास एक-से-एक सुन्दर इतनी स्त्रियां थीं, तो भी उस अकेली का रूप उन सबमें सबसे अलग चमकता था। उन सबके बीच वह ऐसी जान पड़ती थी, जैसे माथे के ऊपर तिलक झलका करता है। जब उसके रूप की झांकी उन्हें मिली थी, उस समय की छोटी-से-छोटी बात भी उन्हें बार-बार याद आने लगी।

इसके बाद अचानक उनका ध्यान बदल गया। बाग में इस समय भी धीमी-धीमी बयार चल रही थी, और उसमें आम की गुलाबी-गुलाबी नई कोंपल डोलती जाती थीं। राजकुमार को ऐसा लगा जैसे ये चारों ओर आग की लपटें उठने लगी हैं। पर यह वास्तव में उसी प्रेम का खेल था। उनके हृदय में प्यार की जो आग जल रही थी, उसी के कारण उन्हें बाहर भी ये लपटें-सी दिखाई पड़ने लगीं। वे चौंककर अपने चारों ओर के पल्लवों को देखते रह गए।

इतने में पास के पेड़ों पर कोयल कूक उठी, तोते चहक उठे और भौंरों की गुंजार चारों ओर से आने लगी। इन मीठे शब्दों को सुनकर भी राजकुमार को कोई खुशी नहीं हुई; वे उल्टे अनमने-से हो गए। उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि ये सब कामदेव के भेजे हुए गुप्तचर हैं और उससे उनकी चुगली कर रहे हैं। इन मधुर शब्दों का सुनना उन्हें असह्य हो गया। वे बेचैन होकर इधर-उधर टहलने लगे, पर कहीं भी उनका मन नहीं लगा। राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी के ध्यान में लीन होने के कारण उन्हें प्रेम का उन्माद-सा हो गया, और कहीं पर जमकर बैठ सकना उनके लिए असह्य प्रतीत होने लगा।

कुमार राजवाहन इसी हालत में थे कि उन्हें सामने से दो आदमी आते दिखाई दिये। कुछ पास आने पर उन्हें पता लगा कि एक ब्राह्मण आ रहा है। इस व्यक्ति ने बेल-बूटेदार महीन और बढ़िया कपड़े पहने हुए थे। इसके कानों में सोने के जड़ाऊ कुण्डल जगमगा रहे थे। पहनावा-ओढ़ावा, ढंग का और अच्छा होने से यह आदमी खूबसूरत जँच रहा था। इसके साथ-साथ एक और आदमी आ रहा था जिसका सिर मुड़ा

हुआ था ।

यह ब्राह्मण मनमौजी ढंग से राजवाहन की ओर चला आया। पास आकर उसने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनकी तरफ ज़रा ध्यान से देखने लगा। राजकुमार सुन्दर और रोबदार व्यक्ति थे। उनके चेहरे से तेज बरसा करता था, और मुखमण्डल के चारों ओर प्रकाश का एक घेरा-सा खिंचा रहता था। उनकी इस असाधारणता से खिंचकर वह ब्राह्मण वहीं खड़ा हो गया।

राजकुमार ने उसे आदर के साथ अपने पास बुला लिया और उसका परिचय आदि मालूम करते हुए उन्होंने उससे पूछा कि वह क्या-क्या काम और कौनसा हुनर जानता है।

इसके उत्तर में उसने बतलाया—"मेरा नाम विद्येश्वर है । मैं जादूगरी के खेल दिखलाया करता हूँ। उसने यह भी कहा कि बहुत से देशों में राजा-महाराजाओं को अपने खेल दिखलाता और उनका दिल-बहलाव करता हुआ मैं घूमता-घामता चला आ रहा हूँ; उज्जैनी में मैं आज ही आया हूँ।"

फिर कुमार के मुख पर एक गहरी नजर डालकर वह पूछने लगा—"महानुभाव, आपका यह मुखमण्डल तो सदा हँसी और खुशी से जगमगाता रहना चाहिए, इस पर ऐसी उदासी और फीकापन क्यों है ?" यह कहते हुए उसने फिर एक अर्थ-भरी दृष्टि उनके चेहरे पर डाली और मुस्कराने लगा।

राजवाहन कुछ नहीं बोले। परन्तु पुष्पोद्भव उसे देखते ही उससे कुछ अपना काम निकालने की बात सोच रहे थे; वे बड़े तपाक से उठकर उससे मिले और कहने लगे—

"आइए, आइए, इधर बैठ लीजिए।" इसके बाद उन्होंने कहना शुरू किया, "विप्रवर, आप तो दुनिया के सब लोक-व्यवहारों को भली भाँति जानते हैं। आपको मालूम ही है कि दो भलेमानसों में शुरू-शुरू की बात-चीत होकर ही, आपस में मित्रता हो जाया करती है। फिर आपकी तो

हमारे साथ काफी देर से बातचीत हो रही है। इसलिए हम और आप कभी के मित्र हो चुके। मित्रों से क्या छिपाव ? दुनिया की ऐसी कौनसी बात है जो मित्रों से न कही जा सके ? सुनिए, ये मेरे मित्र एक राजकुमार हैं। बात यह है कि इसी बाग में बसन्तपंचमी के दिन मालवा के महाराज की लड़की आई हुई थी। उसकी और हमारे इन कुंवर जी की अचानक देखादेखी हो गई। इसी में दोनों का एक-दूसरे से गहरा प्रेम हो गया। अब ये दोनों मिलें कैसे ? इसका कोई उपाय समझ में नहीं आता। यही कारण है कि इन राजकुमार की यह दशा हो रही है।"

पुष्पोद्भव की बातें राजवाहन भी सुन रहे थे। उन्हें बड़ी शरम मालूम हुई। उनके सुन्दर चेहरे पर लाली दौड़ गई। इसी समय विद्येश्वर की नजर उन पर पड़ी, वह मुस्कराने लगा। फिर उनसे बोला—"राजकुमार, जब तक यह सेवक मौजूद है तब तक आपका ऐसा कोई काम नहीं जो पूरा न हो सके। मैं ऐसा कर दूँगा कि इस जादूगरी की माया से मालवराज भी चक्कर में आ जायँगे। आप देखते रहें, सब शहर वालों के सामने, उनके देखते हुए, मैं उनकी लड़की का ब्याह रचूंगा, और आपको उनके महल में पहुँचा दूँगा। आप इतना करें कि किसी सहेली के द्वारा उस राजकुमारी को यह सब पहले से कहला दें।"

विद्येश्वर का अपनी बात पर इतना विश्वास और भरोसा देखकर राजवाहन मन-ही-मन उससे बहुत सन्तुष्ट हुए। दुनिया में ऐसे अकारण-बन्धु कम ही मिला करते हैं। जादूगरी यद्यपि बनावटी कौशल-मात्र है, पर इसमें भी हाथ की सफाई तो होती ही है। इससे भी बड़े-बड़े काम निकल सकते हैं। विद्येश्वर की बातों से इतना तो मालूम ही होता था कि वह अपने फन में उस्ताद है। उसकी बातचीत की होशियारी भी इतनी ही देर में पता चल गई थी। यह आदमी ऊपरी या बनावटी मुहब्बत और असली प्यार की बातों को भी खूब पहचानता था। जरा-सी देर के भीतर बातों-ही-बातों में, उसने इन लोगों से दोस्ती गांठ ली। राजवाहन को उसकी योग्यता पर विश्वास हो गया। उन्होंने उसका बड़ा आदर किया और इस

बातचीत के उपरान्त उसे विदा किया ।

इस विद्येश्वर के बारे में राजवाहन बाद को भी सोचते रहे । सब बातों पर विचार करके उन्होंने विद्येश्वर की हाथ की सफ़ाई और जादूगरी में उसकी निपुणता पर भरोसा करने का ही निश्चय किया । उन्हें अब अपनी मनोकामना पूरी होती दिखाई दी ।

बाग में से उठकर पुष्पोद्भव के साथ वे घर आये । आते ही उन्होंने बालचन्द्रिका को बुलवाया और उसे सब बातें बतलाईं । उसी के द्वारा उन्होंने अपनी प्रियतमा को इस सिलसिले में एक संदेशा भेजा और कहलाया कि इस-इस तरह एक ब्राह्मण जादूगरी के खेल दिखलायेगा और अन्त में इस तरकीब से हम दोनों का मिलन होगा ।

बालचन्द्रिका के जाने के बाद सारे दिन राजवाहन के मन में बड़ी गुदगुदी-सी मचती रही । उनका ध्यान उस जादूगर की ओर ही लगा रहा। वे सोचते कि आज की यह इतनी लम्बी रात न जाने कैसे कट पावेगी । किसी तरह जल्दी से अगला दिन आए ! बैठे-बैठे वे सारे दिन इसी उधेड़-बुन में लगे रहे ।

आखिर अगला दिन आया। विद्येश्वर सवेरे तड़के ही उठा और झटपट तैयार हो गया । वह वस्तुतः जादूगरी के खेलों में खूब होशियार था । जादू के सभी कामों में उसकी अच्छी गति थी । वह यह बात भी खूब अच्छी तरह समझता था कि कौन-कौनसे अवसरों पर श्रृंगार, वीर, करुण या भयानक आदि रसों की सृष्टि करनी चाहिए । दर्शकों के भावों और उनकी मनोवृत्ति को भी वह ठीक-ठीक पहचान लेता था । अपने खेल के लगभग सभी तरीकों की उसे पूरी जानकारी थी । विद्येश्वर के पास साज-सामान और नौकर-चाकर बहुत से थे । इन सबको साथ लेकर वह प्रातःकाल के समय मालवराज के महल की ओर चला और सदर फाटक के पास आकर उसने दरबान से अपने आने की वजह बतलाई ।

बाहर की ड्योढ़ी के दरबान ने अन्दर वाले दरबान को सूचना दी। इस प्रकार भीतर महल में खबर पहुँची। अन्दर के दरबान ने महाराज

के पास जाकर उन्हें नमस्कार किया और सूचना दी कि महाराज, एक बड़ा नामी जादूगर आया है।

जादूगर का नाम सुनते ही महल के भीतर धूम मच गई। वहां के बाल-बच्चे, नौकर-चाकर, दास-दासियां, यहां तक कि रानियां भी तमाशा देखने के लिए लालायित हो उठीं। मालवराज को स्वयं भी खेल देखने की उत्सुकता हुई। उन्होंने विद्येश्वर को अन्दर के एक बड़े कोठे में बुलवा लिया।

विद्येश्वर ने जाकर बड़ी सभ्यता और शिष्टाचार के साथ झुककर महाराज को आशीर्वाद दिया, फिर उनकी आज्ञा होते ही खेल शुरू किया।

विद्येश्वर का इशारा पाते ही संगी-साथियों ने बाजे बजाने आरम्भ कर दिये। गायिकाएँ गाने लगीं। मदमस्त कोयल की कूक की तरह इनकी खूब मीठी और सुरीली तानें उठने लगीं। बाजों और गानेवालियों का ऐसा जोड़ मिला कि दर्शकों का ध्यान उधर ही खिंच गया। गाने का खूब समा बँधा। दर्शक लोग इसीमें तन्मय हो गए और सबका चित्त प्रसन्न हो उठा। तमाशा दिखाने वालों ने इसी बीच सब तैयारी कर ली और मोर-पंखियां घूमने लगीं। इस समय तक खेल के चारों ओर भीड़ खूब अच्छी जमा हो गई थी और लोगों पर यहां के वातावरण का पूरा-पूरा असर हो चुका था। विद्येश्वर अपनी अधमुँदी आंखों से सबकी ओर देख रहा था। वह थोड़ी देर चुप बैठा रहा, फिर उसने अपना काम शुरू किया।

लोगों ने देखा कि एकाएक कहीं से बहुत से फनियर साँप निकल पड़े हैं। ये सब-के-सब बड़ा तेज़ और भयानक जहर उगल रहे थे। सांपों के सिरों पर मणियाँ रखी हुई थीं, जो चमचमा रही थीं। ये सांप इस समय यहां फिरते हुए ऐसे दिखाई पड़ रहे थे, मानो दिया लेकर राजमहल की आरती उतार रहे हों। इन्हें देखकर दर्शकों को बड़ा डर लगा।

इतने में न जाने कहां से बहुत से गिद्ध उतर आए। उन्होंने उन बड़े-बड़े नागों को चोंचों में दबा लिया और आसमान में उड़ने लगे।

इसके बाद विद्येश्वर ने दूसरा खेल दिखलाया। लोगों को एकदम

दैत्यराज हिरनाकुस की शक्ल सामने दिखाई दी। इसके मुकाबिले में भगवान नरसिंह प्रगट हुए और उन्होंने हिरनाकुस का पेट फाड़ डाला।

इसी तरह के और कई खेल उस जादूगर ने दिखलाये। दर्शक लोग तो इन्हें देखकर हैरान हुए ही, महाराज भी चकित रह गए। सारे खेल दिखा चुकने पर विद्येश्वर ने उनसे कहा—"महाराज, अब खेलें समाप्त करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि अन्त में आप ऐसा खेल देखें जो शुभ और मंगलकारी हो। भगवान् आपका सदा भला करें और आपको अच्छे-से-अच्छे दिन देखने को मिलें। आपका शुभ चाहते हुए अब मैं एक ऐसा खेल दिखलाता हूँ जिसमें एक राजकुमारी आयेगी। इसकी सूरत शक्ल ठीक आपकी पुत्री से मिलती-जुलती होगी। इसी के साथ बड़ा सुन्दर और शुभ लक्षणों वाला एक राजकुमार प्रकट होगा। इन दोनों का आपस में विवाह-कार्य सम्पन्न होता हुआ दिखाई पड़ेगा। आपकी अनुमति हो तो खेल आरम्भ करूँ?" यह अनोखा खेल देखने के लिए महाराज उत्सुक हो उठे। उनकी आज्ञा पाकर विद्येश्वर बड़ा खुश हुआ। वह समझ गया कि इधर तो महाराज प्रसन्न होकर मुझे इनाम देंगे, उधर कुमार राजवाहन का काम बन जाने से पुष्पोद्भव के द्वारा भी खूब धन मिलेगा। इस धन पाने की कल्पना से उसका चेहरा खिल गया।

अब विद्येश्वर ने अपनी आंखों में एक खास तरह का सुरमा लगाया। इसकी तासीर बड़ी विचित्र थी। इस सुरमे के लगाने का यह असर हुआ कि वहां जितने दर्शक बैठे थे, वे सब-के-सब चक्कर में पड़ गए। असलियत किसी को मालूम नहीं हो सकी। विद्येश्वर ने अब चारों ओर एक निगाह डाली। लोग यही समझते हुए तमाशा देखने लगे कि यह भी जादूगरी की ही माया है। महाराज समेत सब दर्शक बड़े चकित और हैरान-से होकर यह अन्तिम खेल देखने लगे।

क्षण-भर में ही सजे-सजाये राजकुमार राजवाहन वहाँ आ पहुँचे। विवाह के समय की प्रफुल्लता से उनका चेहरा चमक रहा था। राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी को भी पहले से खबर थी। वह भी तरह-तरह के गहनों से

सजी हुई वहां आ गई। सामने जादू की करामात से यज्ञकुण्ड बन गया। उसके पास दोनों को बिठाकर मन्त्र आदि पढ़े जाने लगे। विवाह की सब रस्में बड़ी होशियारी के साथ पूरी कर दी गईं और यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके उन दोनों का गँठ-जोड़ करवा दिया गया। दोनों का ब्याह हो गया।

जब सब विधि पूरी हो चुकी तब अन्त में ब्याह करवाने वाले पुरोहित ने ऊँचे स्वर से कहा—"हे माया-पुरुषो! अब आप लोग अपने-अपने स्थानों को लौट जाइए।" यह सुनते ही वे आदमी, राजकुमारी, यज्ञकुण्ड, अग्नि आदि सब-के-सब जहां-के-तहां लुप्त हो गए।

इस मौके पर राजवाहन भी जादू के मायापुरुष ही समझे जा रहे थे। परन्तु वे किस प्रकार कौशलपूर्वक गुप्तरीति से महल में ले जाय जायँगे, यह पहले से तय कर लिया गया था; उसी तरकीब से वे महल के अन्दर पहुँच गए।

मालवराज विद्येश्वर की जादूगरी के इस खेल पर हैरान रह गए। उन्होंने उसकी बड़ी सराहना की। अन्त में उस ब्राह्मण को बहुत-सा धन इनाम में देकर उन्होंने उसे विदा किया। इसके बाद महाराज भी चले गए।

उधर अवन्तिसुन्दरी और उसके साथ-साथ राजवाहन महल के अन्दर जा ही चुके थे। राजकुमारी के संग उनकी वे ही प्यारी सखी सहेलियाँ अब भी थीं। ये दिन-रात उनके आसपास रहा करती थीं। महारानी का महल अलग था। ऐसी दशा में राजकन्या का परिवार-कुटुम्ब सब-कुछ, ये सखियां ही थीं। ये इन दोनों दूल्हा-दुलहिन को बड़े सुन्दर सजे-सजाये भवन में ले गईं।

इस प्रकार कुछ तो भगवान् ने कृपा की और कुछ भाग्यवश विद्येश्वर के द्वारा इन्सानी मदद मिल गई। इन दोनों की सहायता से कुमार राजवाहन की मनोकामना पूरी हो गई। वे वहीं महल में राजकुमारी के साथ रहने लगे।

ब्याह के बाद अवन्तिसुन्दरी उनसे बहुत शरमाई। पर राजवाहन

बड़े प्यार से उसके साथ मिलते और बड़ी नरमी से व्यवहार करते।

धीरे-धीरे उनकी प्रेमपूर्ण चेष्टाओं से उसकी लज्जा का परदा हटने लगा। वह उनसे अकेले में भी मिलने-जुलने लगी। पर राजकुमार एकान्त में भी उससे अधिक छेड़छाड़ नहीं करते थे। इसलिए जोर-जबरदस्ती का डर उसके चित्त से हट गया और उनके लिए उसके हृदय में प्यार उत्पन्न हो गया। धीरे-धीरे वह उनके पास आकर बैठने भी लगी। उनकी बातों में उसे बड़ा रस मिलता, पर वह स्वयं कुछ न बोलती।

राजकुमार चाहते थे कि वह उनकी बातों का कुछ जवाब् दे। उसकी मिठास-भरी आवाज सुनने को वे अक्सर ललचाते। इस इच्छा के लिए उन्हें बहुधा तरसना पड़ता, पर उनके सामने अवन्तिसुन्दरी से बोल ही नहीं निकलता था।

यह देखकर राजवाहन ने एक उपाय निकाला। उसे तरह-तरह की बड़ी आश्चर्यजनक बातें, विचित्र-अद्भुत कहानियां, और देश-विदेशों के हाल सुनाने लगे। उनके वर्णन बड़े हृदयग्राही होते थे।

राजनन्दिनी अब प्रायः उन्हीं की शय्या पर लेट जाती और इन किस्सों को सुना करती। इन्हें सुनते-सुनते बीच-बीच में वह अनायास ही कुछ-न-कुछ कह पड़ती थी। कभी-कभी कोई बात भी पूछ बैठती।

इस प्रकार राजकुमार राजवाहन ने धीरे-धीरे अवन्तिसुन्दरी को चौदहों भुवनों के बड़े-बड़े अद्भुत वृत्तान्त सुना डाले।

पूर्व पीठिका

षष्ठ उच्छ्वास

राजवाहन पर क्या बीती

इस प्रकार राजकुमार राजवाहन के मुख से हर रात को लोक-लोकान्तरों की नई-से-नई बातें और विचित्र-विचित्र वर्णन सुनकर राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी बड़ा अचरज किया करती । वह धीरे-धीरे उनके साथ हिलमिल गई । अब वह उनसे अच्छी तरह बातचीत भी करने लगी । एक दिन इसी तरह की कोई आश्चर्यजनक घटना सुनते-सुनते वह तल्लीन हो गई और विस्मय के मारे उनकी ओर आँखें फाड़े हुए थोड़ी देर तक देखती रह गई; फिर मुस्कराकर कहने लगी—"प्रियतम, आपने तो सचमुच बड़ी सुन्दर-सुन्दर कहानियां कही हैं ! इन्हें सुनकर मैं धन्य हो गई । अपने इन कानों से मैंने आज तक ऐसी निराली और शिक्षाप्रद बातें कभी नहीं सुनी थीं । आज ये कान तृप्त हो गए । इन ज्ञानवर्धक कथाओं से मेरे मन का अज्ञान भी बहुत-कुछ दूर हुआ है । ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने इस अंधेरमय हृदय को एक दीपक के द्वारा प्रकाशित कर दिया हो । यह आपकी सेविका, आपके चरणों की जो सेवा करती रही है, उसी का शायद इसे इतना सुन्दर और मीठा फल प्राप्त हुआ है ।

आप मुझे इतने प्रेम से ऐसी मनोरंजक और शिक्षाप्रद बातें बतलाया करते हैं, यह मेरे ऊपर आपका कितना भारी उपकार है! इसका बदला मैं भला क्या दे सकती हूँ ! मेरे पास है ही क्या ? मेरा सब कुछ तो अब आपका हो चुका !···"

इतना कहते-कहते अवन्तिसुन्दरी कुछ भावावेश में आ गई। वह राजवाहन के पास एक ही पलंग पर लेटी हुई थी। थोड़ा रुककर और उनके ऊपर एक प्यार-भरी नजर डालकर वह फिर कहने लगी——

"सचमुच, मेरे पास और है ही क्या ? हाँ एक चीज अब तक मेरी है, मेरे अपने वश की है; उस पर मेरा एकाधिकार रहा है।···"

राजकुमारी पर शायद अब एक नशा-सा चढ़ आया था। सुन्दर राजवाहन की ओर वह इस समय एकटक देख रही थी। वह कहती गई——

"प्राणेश्वर ! मेरे प्रियतम ! यह मेरा अधर अवश्य ऐसा है कि इसे केवल सरस्वती देवी ने ही मेरे मुख का स्पर्श करते समय चूमा है। उन्हीं के द्वारा यह भले ही जूठा हुआ हो और तो किसी की मजाल नहीं जो इसे चूम सका हो। मेरी यह छाती——इसका भी सोने के आभूषण पहनते समय कमलासना लक्ष्मी ने भले ही स्पर्श कर लिया हो, और किसकी हिम्मत जो इसका आज तक आलिंगन ले सका हो ? जो-कुछ है, यही मेरे पास है। ये सब भी अब आपके हैं !···"

इतना कहते-कहते राजकुमारी विह्वल-सी होकर राजवाहन के हृदय पर ढुलक गई। उसकी छातियाँ राजकुमार के हृदय से आ लगीं। इस सुंदरी के आत्मसमर्पण का यह दृश्य बड़ा विचित्र और मादक था। पलंग पर चित लेटे हुए राजवाहन के ऊपर अपनी उभरी हुई छातियों के साथ झुकती हुई अवन्तिसुन्दरी को देखकर खयाल आता था कि जैसे आकाश पर वर्षासुन्दरी ने झुककर अपने भरे हुए पयोधर फैला दिये हैं।

इस झुकने के साथ ही उसने अधीर-सी होकर राजकुमार के गुलाबी-गुलाबी निचले ओंठ को चूम लिया। राजवाहन का यह लाल उज्ज्वल अधर उस समय चमकीले माणिक्य की तरह उसे बड़ा प्यारा लगा। इसे देख कर मौलसिरी की उस कली का ध्यान आता था जिसमें से फूटती हुई लाल-लाल किरणों-जैसी पुष्पकेसर उभर रही हो।

राजकुमारी की आँखों में अब प्यार और मस्ती अच्छी तरह झलक आई। जैसे बरसात में केला खूब फूल उठता है और उसमें रंगीन कलियाँ

चटक आती हैं, उसी तरह राजकुमारी की ये कँटीली और चमकदार आँखें, कामावेश में प्रदीप्त हो उठीं। मस्ती के मारे उसके बालों के गुच्छे अस्त-व्यस्त-से होकर लहराने लगे और ऐसा प्रतीत हुआ मानो बहुत से भौंरे बेचैन हुए इधर-उधर घूम रहे हैं। इन बालों में रंग-बिरंगे फूल गुँथे हुए थे, जिनसे ऐसा लगता था कि इनमें जगह-जगह चाँद टँके हैं। इनके कारण चित्र-विचित्र से होकर ये बाल बड़ी बहार दिखा रहे थे और सुन्दर मोरपंखों के गुच्छे को भी मात करते थे।

राजकुमारी द्वारा इस प्रकार राजवाहन के निचले ओंठ का चुम्बन लेते ही दोनों पर नशा-सा छा गया और दोनों मस्ती में एक-दूसरे से लिपट गए। उनमें तरह-तरह की काम-किलोलें हो चलीं और बारम्बार सुरत-क्रीड़ा होने लगी। जब खूब अच्छी तरह आनन्द भोग करके दोनों थक गए, तो उन्हें नींद आ गई।

सोते-सोते सपने में दोनों ने क्या देखा कि सामने एक बूढ़ा हंस बैठा है, जिसके पैर कमल-ककड़ी के रेशों से बँधे हुए हैं।

यह सपना देखने के साथ ही दोनों जाग उठे। देखा, तो राजकुमार राजवाहन के दोनों पैर चांदी की सांकल में जकड़े रखे हैं। उनके दोनों गुलाबी-गुलाबी पैरों के चारों ओर बँधी हुई वह सफेद सांकल ऐसी लग रही थी मानो कमलों के धोखे में चन्द्रमा की सफेद किरणें नीचे उतर आई हैं और इनके चारों ओर लिपट गई हैं।

राजवाहन को इस तरह जंजीर में बँधा देखकर राजकुमारी डर के मारे घबरा गई। वह एकदम चिल्लाकर कह उठी—"हाय! यह क्या हुआ?" साथ ही उसके मुँह से चीख निकल गई।

राजपुत्री का चीखना था कि उस महल में चारों ओर शोरगुल मच गया। सब लोग घबरा उठे। ऐसा जान पड़ा कि मानो आग लग गई है या कहीं से भूतप्रेत आ घुसे हैं। वहाँ की सब औरतें रोने-चिल्लाने लगीं, बहुत सी तो काँप चलीं। किसी को यह नहीं सूझा कि इस समय किया क्या जाय। न आगे की ही किसी को कुछ सुध रही। राजकुमार राजवाहन के महल

में रहने का गुप्त भेद किसी पर खुल न जाय, इस बात की व्यवस्था करने का भी ध्यान किसी को न आया। सब स्त्रियां और दास-दासियां धरती पर लोट-लोटकर अपने-अपने सिर पीटने लगीं। यह चीखना-चिल्लाना और रोना-पीटना इतनी ज़ोर का हुआ कि औरतों के गले फटने-से लगे और रोते-रोते उनके गालों पर से आँसुओं की धारें बह चलीं। चारों ओर कुह-राम मच गया।

इस हंगामे में राजमहल के पहरेदार एकदम दौड़ पड़े। ये लोग 'क्या हुआ', 'क्या हुआ' कहते हुए एकाएक अन्दर घुस आये। और समय तो इन लोगों को बिना हुक्म अन्दर आने की रोक थी, पर इस गड़बड़ी में किसी को इस बात का ध्यान न रहा। पहरेदारों ने देखा तो सामने एक राजकुमार पैरों से बँधा हुआ पड़ा है।

दूसरा कोई मामूली आदमी होता तो वे उसे तुरन्त पकड़ लेते, पर राजवाहन के रोब के कारण वे उन्हें हिरासत में नहीं ले सके। उन्होंने तुरन्त जाकर सब हाल चण्डवर्मा से कहा।

चण्डवर्मा ने जब यह बात सुनी तो बहुत बिगड़ा। वह नाराज होता हुआ तुरन्त अन्दर महल में आया। वहां का सारा दृश्य देखकर उसकी आँखों से आग-सी बरसने लगी। जब राजवाहन के ऊपर उसकी निगाह पड़ी तो वह तुरन्त बोला—"अरे, यह तो वही नौजवान है जो अपने को ब्राह्मण मशहूर किये हुए है। यह उसी पुष्पोद्भव का ही मित्र है जो किसी परदेसी बनिये का लड़का है और अपने रुपये के घमण्ड के मारे उछला पड़ता है। उस दुष्टा बालचन्द्रिका ने जिसके कारण मेरा भाई मारा गया, इसी पुष्पोद्भव से शादी की थी। यह ब्राह्मण महाशय तो खूब निकले! कहिए, आप तो अपनी खूबसूरती के घमण्ड में फूले नहीं समाते थे? कलाकार भी आप बहुत बनते थे! दूसरों को तरह-तरह से धोखा देने की तरकीबों में भी आप बड़े होशियार मालूम पड़ते हैं! तभी शहर वालों को बेवकूफ बना रखा था और झूठमूठ ही यह असर जमा दिया था कि मुझे देवता सिद्ध हैं। धर्म का यह बनावटी चोला तो जनाब ने खूब

पहना ? ऊपर से इस तरह का दिखावा और अन्दर-अन्दर से दुराचार-भरी हरकतें ! बड़ा पापी निकला यह तो ! मुझे यह आदमी स्वभाव से ही नीच और लम्पट जान पड़ता है । क्यों बोलता क्यों नहीं ?"

फिर अवन्तिसुन्दरी को मुखातिब होकर कहने लगा—

"मुझे हैरानी तो इस दुष्टा पर है । मेरे-जैसे नरकेसरी से तो इसने घृणा की और मेरा अपमान तक किया । इसमें क्या कोई लाल लगे थे जो इस पर निछावर हो गई ? यह बड़ी नीच और कुलटा है । इसने तो अनार्य लोगों-जैसी हरकत की है और हमारे कुल में बट्टा लगा दिया । अच्छी बात है जिसे यह अपना पति बना बैठी है उसे आज ही सूली पर लटकाता हूँ ! अब यह तमाशा देखें !"

चण्डवर्मा इसी तरह की बड़ी सख्त और चुभने वाली बातें कहता रहा । इन दोनों को उसने खूब झिड़का । पर न तो राजवाहन और न अवन्तिसुन्दरी, दोनों में से कोई कुछ न बोला । इस तरह अपनी बातों का कोई असर न होते देख वह और भी भड़क उठा । क्रोध के मारे उसका बुरा हाल हो गया । अब उसके माथे पर एकदम बल पड़ गए और बड़ी भयानक त्योरियां चढ़ गईं । वह एकाएक यमराज की तरह उठा । उसकी बाँहें तो फौलाद-जैसी कठोर थीं ही । उन्हीं से उसने राजवाहन के दोनों हाथों को पकड़कर उन्हें एकदम घसीटा । राजकुमार के गुलाबी-गुलाबी हाथ इस समय भी उसी तरह कमलों-जैसे बड़े सुहावने लग रहे थे । उनकी हथेलियों पर चकवा-चकवी और कमल आदि के आकार की जो रेखाएँ पड़ी हुई थीं, वे भी साफ-साफ दिखाई दे रही थीं ।

चण्डवर्मा ने यद्यपि बड़ी असभ्यता और क्रूरता से भरी हुई हरकत की थी, पर इससे राजवाहन तनिक भी विचलित नहीं हुए । वे स्वभाव से ही बड़े धीर और गम्भीर आदमी थे । कठिन समयों में भी दृढ़ता और मर्दानगी उनमें बराबर बनी रहती थी । इस मुसीबत का उन पर एक ही असर हुआ, वह यह कि उनमें असाधारण क्षमता और सहनशक्ति आ गई । उन्होंने समझ लिया था कि यह दैवी आपत्ति है और इसे झेलकर

पार होना ही पड़ेगा। इसी कारण उन्होंने न तो चण्डवर्मा को कोई जवाब दिया और न उसकी चेष्टाओं का कुछ प्रतिकार किया। तब वह उन्हें कारागार में डाल रखने की आज्ञा देकर और बक-झक कर चला गया।

इस समय अवसर देखकर उन्होंने जल्दी से बहुत धीमे-धीमे अवन्तिसुन्दरी को केवल इतना कहा—"प्रिये! उस हंसवाली कहानी को याद करो; घबराओ नहीं, केवल दो महीने की बात है।"

ज्यों ही यह मुसीबत आकर पड़ी, राजकुमारी तो बेहद घबरा गई थीं। उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था कि 'बस, अब मैं प्राण तज दूँगी!' राजकुमार भी उसके मन की हालत समझ रहे थे, इसलिए ऐसे समय उन्होंने अपनी प्रियतमा को धीरज देना बहुत जरूरी समझा और उपर्युक्त बात कही। इसके बाद से वे वैरी के कब्जे में आ गए और वन्दी-गृह में पहुँचा दिये गए।

महल की यह घटना मालवा के बड़े महाराज मानसार और महारानी को भी मालूम हुई। जब उन्हें पता चला कि राजकन्या के साथ, इस-इस ढंग से जिसका ब्याह हो गया था, वह एक बहुत सुन्दर नवयुवक है, तो वे अपने इस दामाद को चाहने लगे। इतना ही नहीं वे उसके तरफदार भी बन गए। चण्डवर्मा तो राजवाहन को तुरन्त उसी समय मरवा डालना चाहता था, पर बूढ़े महाराज और महारानी ने कहला भेजा कि इन्हें यदि मारा गया तो हम अपने प्राण दे देंगे। इन दोनों की इस बात से चण्डवर्मा कुछ ठंडा पड़ गया।

इस प्रकार इस समय राजकुमार राजवाहन के प्राण बच गए। इतना तो उन दोनों ने कर दिया, पर इस मुसीबत से कुमार का पूरी तरह छुटकारा वे नहीं करा सके, क्योंकि राजकाज के मामलों में अब उनकी कुछ चलती नहीं थी।

चण्डवर्मा स्वभाव से बड़ा उग्र और क्रोधी था। जब उसने बड़े महाराज का यह रुख देखा तो सारा हाल महाराजकुमार दर्पसार को कहला भेजा। वे कुबेर पर्वत पर तपस्या के लिए गये हुए थे। उन्हें समाचार

भेजकर उसने पहले तो तुरन्त पुष्पोद्भव की सब धन-सम्पत्ति जब्त करके उन्हें परिवार समेत जेल में डाल दिया, फिर जैसे किसी शेर के बच्चे को पिंजरे में रखा जाता है उस तरह राजवाहन को लकड़ी के एक कठघरे में बन्द करवा दिया। कुमार के पास सौभाग्य से मातंगवाली अंगूठी अभी थी जिसे उन्होंने अपने सिर के घने बालों में छिपा रखा था। इसके असर से उन्हें भूख प्यास आदि का क्लेश नहीं होने पाया।

चण्डवर्मा ने पिछले दिनों अंगदेश के राजा सिंहवर्मा की कन्या अम्बालिका की चर्चा सुनी थी। उसने झट उनसे कहला भेजा कि इसका ब्याह हमारे साथ कर दो। सिंहवर्मा ने अस्वीकार कर दिया। इस कारण चण्डवर्मा अंगदेश पर चढ़ाई करना चाहता था। इन्हीं दिनों वह उधर कूच करने वाला था। तब तक राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी की यह घटना हो गई। राजवाहन को कठघरे में डालकर वह अब उन्हें अपने साथ-ही-साथ अंगदेश की ओर ले चला, क्योंकि उसे किसी पर भरोसा नहीं था और बड़े महाराज का रवैया देखकर तो वह और भी चौकन्ना हो गया था।

इस प्रकार एक बड़ी भारी सेना लेकर चण्डवर्मा अंगदेश की राजधानी चम्पा में जा धमका। उसकी सेना के भार से चम्पा की धरती काँप उठी। परन्तु चम्पा के राजा सिंहवर्मा भी बड़े तेजस्वी और दबंग आदमी थे। उन्हें दूसरा शेर समझा जाता था। उनका पराक्रम बड़े-बड़े सूरमा तक नहीं झेल पाते थे। उन्होंने जब चंडवर्मा की मालव सेना को देखा तो बड़े क्रोध में भर गए। सिंहवर्मा बड़े आत्माभिमानी व्यक्ति थे। सम्मान और गौरव का एक तरह से उन्हें अवतार कहना चाहिए। इसलिए सेना कम होते हुए और अकेला होने पर भी दब तो वे सकते ही नहीं थे। इसके विरुद्ध अपने सामने शत्रु को देखकर फिर धीरज रखना उनके लिए कठिन हो जाता था। इसी कारण चण्डवर्मा को सिर पर देख, अब क्षण-भर को भी देर करना उन्हें असह्य हो गया।

वैसे तो चण्डवर्मा के हमले की खबर पाकर उन्होंने भी अपने बहुत से साहाय्य-पत्र भिन्न-भिन्न मित्र-राज्यों को भेज रखे थे और अपने सहायक

राजाओं को सेना सहित बुलवाया हुआ था। उनके बहुत से मित्र राजा उन्हें सहायता देने के लिए आ भी रहे थे। थोड़े ही दिनों के भीतर बहुत जल्द ही ये सब आ पहुंचने वाले थे। पर चम्पा-नरेश ने इतनी भी प्रतीक्षा नहीं की। उन्होंने आव देखा न ताव, अपने किले के परकोटे का कुछ हिस्सा तोड़कर उसमें से फौज के साथ वे बाहर निकल आये और चण्डवर्मा की बेशुमार फौज से जाकर भिड़ गए।

दोनों ओर से बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। पर सिंहवर्मा की सेना बहुत थोड़ी थी। वह सब-की-सब कुछ ही देर में काम आई। अकेले सिंहवर्मा कितनी देर जूझते? उन पर एक-साथ सैकड़ों हथियार गिरने लगे। इनकी चोट से उनका जिरहबख्तर टुकड़े-टुकड़े हो गया और शरीर के नाजुक हिस्से में बड़ी गहरी चोटें आईं। वह अब तक हाथी पर सवार हुए युद्ध कर रहे थे, इस कारण कुछ बचे हुए थे। इसी समय चण्डवर्मा उनके पास अपना हाथी ले आया। चण्डवर्मा जवान था और बल भी उसमें बड़ा अमानुषिक था। इसलिए अपने हाथी पर से वह घायल सिंहवर्मा के हाथी पर जा कूदा और उन्हें पकड़ लिया। इस प्रकार अंगराज वैरी के फंदे में आ गए।

चण्डवर्मा चाहता तो उन्हें मरवा डालता। पर उनकी लड़की अम्बालिका के रूप की उसने बहुत चर्चा और बड़ाई सुनी थी। सैकड़ों-हजारों सुन्दरियों में वह एक ही समझी जाती थी, जैसे मणि-मोतियों में हीरा हो। इस कारण चण्डवर्मा के मन में इसे ले लेने की बड़ी चाह थी। उसने कुछ सोचकर सिंहवर्मा को मरने नहीं दिया। वैसे तो सिंहवर्मा को इतने घाव हुए थे कि यदि उनकी देखभाल न होती तो वे स्वयं ही मर जाते। पर चण्डवर्मा ने उनके जख्मों में से हथियारों की किरचें निकलवा कर मरहम-पट्टी करवा दी और जब उनके बच जाने की सम्भावना हो गई तो इसके बाद उन्हें जेल में भिजवा दिया।

लड़ाई के उपरान्त राजकुमारी अम्बालिका चण्डवर्मा के कब्जे में थी। उससे ब्याह करने का मुहूर्त छांटने के लिए उसने ज्योतिषियों को बिठाया। इन लोगों ने गणना की और बतलाया—"आज की रात में ही

ब्याह की लगन है ; रात बीतते उन्हें इस राजकुमारी से ब्याह कर लेना चाहिए ।"

इस व्यवस्था के अनुसार चण्डवर्मा के विवाह की सब तैयारियां होने लगीं; उसने हाथ में कंगन बांधा ।

इसी समय अचानक कुबेर पर्वत पर से लौटकर एणजंघ नाम का हरकारा आ गया । यह दूत बड़ी तेज चाल से चलने वाला था । इसके द्वारा महाराज दर्पसार ने चण्डवर्मा को अपना जवाबी संदेशा भेजते हुए कहलाया—'तुम मुझे बड़े मूर्ख जान पड़ते हो । भले आदमी, जिस व्यक्ति ने राजकन्या के महल में घुसकर हम लोगों को अपमानित और कलंकित कर डाला है उस पर दया दिखाने का क्या मौका हो सकता है । बड़े महाराज तो बूढ़े हो चुके—वे सठिया गए हैं । बुढ़ापे के मारे उनके मन में तो मान-अपमान की भावना ही जाती रही है । इसीसे वे इस दुराचारिणी लड़की की तरफदारी कर रहे हैं । पर यदि वे कुछ अंडबंड बकते हों तो क्या मुझे भी उनकी हां-में हां मिला देनी चाहिए ? हम तुम्हें आज्ञा भेजते हैं कि इस आदमी का जिसने विषय-वासना और कामुकता के पीछे पागल होकर यह कुकर्म किया है, तुरन्त वध कर डालो । मारना भी इसे किसी ऐसे निराले उपाय से जिससे दूसरों को भी सबक मिले । इसके कत्ल कर देने की सूचना हमें तुरन्त भेजो, ताकि उसे सुनकर हमारे कानों में ठंडक पड़े । साथ ही उस दुष्टा लड़की को और उसके भाई कीर्तिसार को भी हाथ-पैर बंधवाकर कारागार में डलवा दो ।"

दर्पसार के इस संदेश को पाकर चण्डवर्मा बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने अपने आस-पास बैठे हुए सरदारों पर एक संतोष-भरी नजर डालते हुए राजवाहन के लिए हुक्म दिया—"इस पापी को, जिसने इस तरह हमारे राजकन्याओं के महल में घुसकर उसे अपवित्र और बदनाम किया है कल सवेरे ही इस महल के फाटक पर ले जाया जाय । हाथियों के सरताज 'चण्डपोत' को भी झूल आदि से सजाकर वहीं मौजूद रखो । अपने विवाह-संस्कार के बाद

वहाँ से उठकर मैं स्वयं ही इस दुराचारी को समझूँगा। उस हाथी पर सवार होकर पहले तो मैं इसे उसका खिलौना बनाऊँगा; फिर वहीं से हम सब उस ओर चलेंगे जहाँ हमारे वैरी की मदद के लिए कुछ राजा लोग अपने-अपने दल-बल के साथ बढ़े आ रहे हैं। इन सबका खजाना और हाथी-घोड़े आदि छीनकर अपने कब्जे में किये जायँगे।" इतना कहकर उसने इधर-उधर बैठे हुए सामन्तों पर फिर एक दृष्टि डाली।

दूसरे दिन ज्यों ही प्रभात की लाली चमकी, उसी समय सन्तरी लोग राजवाहन को महल के अहाते में ले आये। वहीं पर चण्डपोत भी तैयार लाकर खड़ा कर दिया गया। यह हाथी उस समय खूब मस्त हो रहा था और मद की धारें उसके माथे से चुई पड़ती थीं।

ज्यों ही यह सब तैयारी हो चुकी और राजवाहन के कुचले जाने का समय आया त्यों ही ज़रा देर पहले एक विचित्र घटना घटी। उनके दोनों पैरों में बँधी हुई वह चाँदी की सांकल एकदम आप-से-आप खुल पड़ी। वहाँ से उठकर वह एक बहुत सुन्दर परी बन गई। चन्द्रमा की कला की तरह यह परी बेहद उजली और चमकीली दिखाई देने लगी। उसने तुरन्त राजवाहन के चारों ओर घूमकर एक चक्कर काटा और हाथ जोड़कर उनसे कहने लगी—

"महानुभाव, मुझ पर आप कृपा की दृष्टि रखिए और ज़रा-सा ध्यान देकर मेरी बात सुन लीजिए। मेरा नाम सुरतमञ्जरी है और मैं एक देवकन्या हूँ। मेरे पिता का नाम सोमरश्मि है। मैं एक बार आकाश-मार्ग से जा रही थी। कुछ हंस भी वहीं पास में उड़ते हुए चल रहे थे। उन्होंने मेरे मुँह को देखकर समझा कि यह कोई नीला कमल है। बस वे लोभ के मारे मेरे मुँह के ऊपर आये। मैं उन्हें हाथों से दूर हटाने लगी, पर वे मुझ पर एकदम टूटे-से पड़ते थे। इसी छीनाझपटी में मेरे गले के हार की एक लड़ टूटकर गिर गई। नीचे हिमालय का एक सरोवर था। इसमें खूब साफ पानी भरा था। यह अधिक गहरा भी नहीं था। इसी में महर्षि मार्कण्डेय डुबकियाँ ले-लेकर आनन्द से स्नान कर रहे थे। वह लड़ी अचानक उन्हीं के

माथे पर जाकर पड़ी। इसमें क्योंकि मणियाँ पिरोई हुई थीं, इस कारण जब यह गिरी उस समय उनके सफेद बालों पर मणियों की किरणें भी पड़ीं, जिससे उनकी सफेद-सफेद जटाएँ और भी सफेद होकर चमक उठीं। खैर, मुसीबत यह आई कि इस चोट से क्रुद्ध होकर महर्षि ने मुझे शाप दे डाला। वे बोले—'अरी दुष्टा, तुझे अपने हीरे-जवाहरात का इतना घमण्ड है? जा तू निर्जीव होकर धात की बन जा।'

मैंने उनके आगे हाथ जोड़ लिए और सारी बात समझाकर उनसे बड़ी अनुनय-विनय की। इस पर वे कुछ शान्त हुए और उन्होंने शाप का असर कम करके आपके लिए बतलाते हुए कहा कि 'अच्छा, तू उन राजकुमारों के कमलों-जैसे सुन्दर दोनों पैरों में बेड़ी बनकर केवल दो महीनों तक पड़ी रहेगी। इसके बाद तेरा छुटकारा हो जायगा।'

उन्होंने यह भी कहा—'तू, उन राजकुमार पर आई हुई विपत्ति का अन्त करेगी और उनकी देह में बल-सामर्थ्य बनाये रखेगी।'

इस प्रकार एक भारी अपराध के कारण मैं चांदी की जंजीर बन कर वहीं गिर पड़ी।

उन्हीं दिनों वीरशेखर नाम के विद्याधर कैलाश पर्वत पर आये हुए थे। इनके पिता का नाम मानसवेग था जो इक्ष्वाकु वंश के राजा वेगवान के लड़के थे। उन्होंने मुझे वहाँ पड़ा देखा तो उठाकर अपने अधिकार में कर लिया।

इधर ऐसा हुआ था कि विद्याधरों के सम्राट् नरवाहनदत्त के साथ वीरशेखर के पिता का कुछ झगड़ा हो गया था। नरवाहनदत्त बड़े नामी और विख्यात व्यक्ति थे। वत्सराज के कुल का उन्हें दीपक समझना चाहिए। इतने बड़े और प्रसिद्ध व्यक्ति से वैर बाँधना हँसी-खेल नहीं था, पर वीर-शेखर बड़े हठी थे। उन्होंने नरवाहनदत्त को नीचा दिखाने का पक्का प्रण कर लिया था।

उन दिनों मर्त्यलोक में मालवा के राजा दर्पसार का अच्छा दबदबा था। वीरशेखर ने सोचा कि यह आदमी नरवाहन दत्त से टक्कर ले सकता

है, इसलिए वे उनसे जाकर मिले ।

दर्पसार ने वीरशेखर की बात मान ली । वीरशेखर युवक तो थे ही, सुन्दर भी थे । वे दर्पसार को पसन्द आ गए । इसलिए उन्होंने उनके साथ अपनी बहन अवन्तिसुन्दरी को ब्याहने का भी वचन दे दिया ।

एक बार की बात है कि रात के समय बड़ी अच्छी चाँदनी खिली हुई थी । आकाश भी इस उजली सफेद चांदनी से जगमग-जगमग हो रहा था। वीरशेखर को ऐसे समय अपनी भावी प्रियतमा अवन्तिसुन्दरी का खयाल आया और उसे देखने की बड़ी इच्छा हुई । यहाँ तक कि उनसे रहा नहीं गया और वे उज्जैनी की ओर चल दिए । उज्जैनी इस चांदनी में अमरावती की तरह चमचमा रही थी । वहाँ पहुँचकर वीरशेखर राजकुमारी के महल के पास आये । उन्हें कोई देख न ले इसलिए वे अन्तर्धान-विद्या के बल से अदृश्य होकर महल में घुसे। चलते-चलते वे अवन्तिसुन्दरी के कमरे में जा पहुँचे ।

परन्तु यहाँ आकर क्या देखते हैं कि अवन्तिसुन्दरी तो आपकी गोद में लेटी है । आप उसे ऐसी-ऐसी मनोहर और रसीली कहानियाँ सुना रहे थे जिनसे अमृत-सा झर रहा था। यह दुनिया कैसे-कैसे बनी, इस समय इसमें कहां-कहां क्या-क्या हो रहा है, अन्त में कैसे प्रलय हुआ करती है, इसी तरह की अनेक अद्भुत और आश्चर्यजनक बातें उनमें थीं । इन कहानियों का आनन्द लेते-लेते अवन्तिसुन्दरी के मन में उमंगें उठने लगीं और उस पर मस्ती की एक लहर-सी दौड़ गई। इसके बाद आप दोनों आनन्दयोग में लीन हो गए। अन्त में थककर दोनों सो गए ।

वीरशेखर ने आप दोनों को इस हालत में देखा तो बड़ा रुष्ट हुआ । पहले तो उसने यही निश्चय किया कि आपको मार डाले, परन्तु आपका कुछ ऐसा रोब था कि उसे अपना हाथ रोक लेना पड़ा ।

आप दोनों उस समय एक-दूसरे से लिपटकर खूब आनन्द में सोये हुए थे । उसे कुछ दैवी प्रेरणा हुई, इसलिए उसने केवल इतना किया कि मेरे द्वारा, जो कि चाँदी की साँकल के रूप में उसके पास थी, आपके

दोनों पैरों को बांध दिया। नींद में आपको इसका कुछ पता नहीं चला। इस प्रकार आपके पैर बांधकर वह गुस्से में भरा हुआ वहां से तेजी के साथ निकल आया।"

वह परी राजवाहन को उनके सम्बन्ध का यह हाल सुनाकर तनिक रुक गई, फिर कहने लगी——

"कुमार, अब आज मेरे शाप का अन्त हो गया है। आपकी परवशता और बन्धन के वे दो महीने भी आज पूरे हो चुके। अब आप हर्षित हों, और मुझे बतलावें कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ।"

इतना कहकर उस परी ने झुककर राजवाहन को नमस्कार किया।

राजवाहन ने उससे केवल इतना कहा——"तुम इसी समय जाकर मेरी प्राणेश्वरी को भी यह सब हाल सुना दो, जिससे उसे धीरज बँधे।"

इसके बाद उन्होंने उसे विदा कर दिया।

यह बात हो ही रही थी कि इतने में हल्ला-गुल्ला मचा और उसी के बीच यह सुनाई पड़ा——"अरे, मारा गया! चण्डवर्मा मार डाला गया! किसी अजनबी आदमी ने छुरी के एक ही वार में उसे खत्म कर डाला!"

इसी समय लोग जहां-तहां यह कहते सुने गए——"सिंहवर्मा की लड़की अम्बालिका के साथ ब्याह करके चंडवर्मा ज्यों ही उठा और उसने अम्बालिका का हाथ पकड़ना चाहा, त्यों ही किसी हिम्मती आदमी ने उसकी बाँह कसकर पकड़ ली और उसे जोर से अपनी तरफ खींचकर छुरी के एक ही हाथ में उसका काम तमाम कर दिया।"

मारने वाले की चर्चा करते हुए लोग कहने लगे——"यह आदमी बेहद साहसी मालूम पड़ता है। वहां पर यह चुपके से न जाने किस तरह आ गया? इस समय भी वह बेधड़क राजमहल में घूम रहा है और लाशों-पर-लाशें बिछाता जा रहा है। महल का आंगन सैकड़ों लाशों से पट गया है।"

ये आवाजें राजकुमार राजवाहन के कानों में भी पड़ीं। उनके पैरों

की सांकल तो खुल ही चुकी थी, इसलिए पास खड़े हाथी चण्डपोत पर वे एकदम उछले। उसके महावत को उन्होंने दूर ढकेल दिया और स्वयं उस पर जा बैठे। इसके बाद बड़ी तेजी के साथ उन्होंने वह हाथी राजमहल के अन्दर की ओर दौड़ाया। रास्ते में बहुत से पैदल सिपाही जहां-तहां खड़े थे, पर उस मदमस्त हाथी की झपट के मारे सब तितर-बितर हो गए और उसके लिए अच्छा-खासा रास्ता मिल गया। वह उन्हें लिये हुए अन्दर जा पहुँचा। भीतर घुसते ही राजवाहन बड़ी जोर से गरजे। ऐसा मालूम हुआ मानो आसमान में ढेर-के-ढेर बादल गड़गड़ा उठे हों। उसी गम्भीर और ऊँची आवाज में उन्होंने कहा—"कौन है? यह बलिष्ठ आदमी कौन है जिसने इतना भारी काम कर दिखाया है? कोई भी व्यक्ति ऐसा कठिन पराक्रम का काम सहज नहीं कर सकता। जिस आदमी ने इतनी हिम्मत दिखाई है, वह तुरन्त इधर आ जाय और यहां मेरे साथ इस हाथी पर बैठ ले। मेरे पास आ जाने पर फिर उसका बाल भी बांका नहीं हो सकता। इस हाथी पर आ बैठने के बाद उससे यदि देवता या राक्षस भी लड़ेंगे तो वे भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाएँगे।"

राजवाहन की इतनी बात सुनते ही वह साहसी आदमी जो अभी तक वहां प्रलय-सी मचा रहा था, एकदम निकल आया। वह उन्हें देखते ही बेहद प्रसन्न हो उठा। उसने पहले तो हाथ जोड़कर राजवाहन को प्रणाम किया, फिर झटपट ऊपर की ओर कूदा। हाथी राजकुमार के इशारे पर झुक आया था; वह आदमी उछलकर हाथी की देह से आ लगा और झट ऊपर चढ़ गया।

राजवाहन ने उसे चढ़ते-चढ़ते ही देख लिया। मारे खुशी के उनकी आंखें चमक उठीं। उनके मुँह से निकल पड़ा—"अरे, यह तो अपना प्यारा मित्र अपहारवर्मा है!"

अपहारवर्मा हाथी पर राजवाहन के पीठ पीछे बैठने जा रहे थे। उनके हाथ राजकुमार की बगलों की ओर बढ़े। पर कुमार ने उनके हाथों को आगे से ही थाम लिया और पकड़कर उन्हें अपनी छाती से चिपटा लिया।

अपहारवर्मा की बाँहें तब तक कुमार की बगलों में से होती हुई उनकी पीठ पर जा मिलीं। इस प्रकार दोनों ने एक दूसरे को बाँहों में लिपटाये हुए खूब मिलकर भेंट की।

इस मिलाभेंटी को दोनों ने तुरन्त खत्म किया, क्योंकि इस समय तक चण्डवर्मा के बहुत से योद्धा इन पर टूट पड़ने के लिए बढ़े आ रहे थे। वे सब लोग भी बड़े लड़ाकू सूरमा थे और उन्हें भी अपने बल-पराक्रम पर गर्व था। उन वीरों ने धनुष, चक्र, लौह दण्ड कर्पण, कुन्त, पट्टिश, मुशल, तोमर आदि बहुत तरह के हथियार ले रखे थे। राजवाहन और अपहारवर्मा पर अब उन लोगों की ओर से हथियारों की वर्षा-सी होने लगी। उन्होंने इनके हाथी को चारों ओर से घेरकर इनके ऊपर टूट पड़ना चाहा। परन्तु अपहारवर्मा में बहुत ही असाधारण बल था। उस अकेले ने ही अपनी शक्ति और युद्ध-कौशल के द्वारा उनमें से बहुतों को मार गिराया।

इसी समय यह देखने में आया कि मालवों की इस उमड़ती हुई सेना पर बाहर से आती हुई एक और भारी सेना चढ़ दौड़ी। उसने चण्डवर्मा की सेना को चारों ओर से घेर लिया।

जब तक ये दोनों सेनाएँ आपस में जूझें, तब तक हाथी पर सवार एक आदमी राजवाहन की ओर बढ़ा। इसका रंग कनेर के फूलों का-सा बहुत साफ और गोरा था। इसके काले-काले बाल ऐसे लग रहे थे जैसे नीली झिण्टी के फूलों के गुच्छे हों। हाथ-पैर इस व्यक्ति के बड़े मुलायम और गुलाबी कमलों-से प्रतीत होते थे। आँखें भी इसकी बड़ी-बड़ी और कानों तक खिंची हुई थीं; इनके अन्दर की सफेदी दूध जैसी लगती थी और काला हिस्सा भी अच्छा पानीदार तथा साफ-साफ दिखाई पड़ रहा था। इस आदमी की कमर में जड़ाऊ छुरी घुसी हुई थी। इसने कपड़े रेशमी पहने थे। इसकी छाती खूब चौड़ी थी, परन्तु पेट, इसके विपरीत, बहुत तंग था। यह व्यक्ति बाण चलाने में बड़ा होशियार और फुर्तीला जान पड़ता था, क्योंकि चारों ओर के सैकड़ों शत्रुओं पर

यह अकेला ही बाण बरसा रहा था। जिस हाथी पर यह बैठा था उसकी कनपटियों के नीचे के हिस्से को अपने पैर के अँगूठों से रगड़ते हुए इसने बड़े जोर की ठोकर मारी और तेजी के साथ इसे राजवाहन के हाथी के पास बढ़ा लाया। इस आदमी को राजकुमार का हुलिया शायद पहले से बतला दिया गया था। इस कारण उनके पास आकर यह बोला—"महाराज कुमार राजवाहन तो यही जान पड़ते हैं।" इसके बाद उसने राजवाहन को हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

इतने में उसकी दृष्टि अपहारवर्मा पर भी पड़ गई। उन्हें देखकर उसने कहा—"आपने जो रास्ता बतला दिया था, उसी से होते हुए अंगराज के सहायक राजाओं की इन सेनाओं को यहां तक लाया गया है। युद्ध की अब यह स्थिति है कि इस समय तक बैरियों की सेना या तो मारी जा चुकी या तितर-बितर हो गई है। उनके भागते हुए सैनिकों का यह हाल है कि यदि चाहें तो औरतें और बच्चे तक उनके हथियार छीन सकते हैं। अब और बतलाइए क्या-क्या काम करना है?"

यह समाचार पाकर अपहारवर्मा बहुत प्रसन्न हुए और राजवाहन से कहने लगे—"कुमार, यह आपके सामने जो सेवक खड़ा है, इस पर एक बार अवश्य दृष्टि डाल लीजिए। यह आपकी कृपा का योग्यपात्र और अधिकारी भी है। इसका नाम धनमित्र है। यह मेरा परम आत्मीय और घनिष्ठ है। इस व्यक्ति को आप यही समझें कि इसके रूप में 'मैं' हूँ।

यह इसी का काम है कि अंगराज सिंहवर्मा के सहायक राजाओं की सेनाएँ कुशलपूर्वक आकर शत्रु को पराजित कर सकीं। इसीने अंगराज को कारागार से छुड़ाया है। उनका खजाना और सारी सेना, जो तितर-बितर हो चुकी थी, इसी ने इकट्ठा करके सम्हाला है। यह हमारा अपना आदमी है। यदि इसमें कोई हानि न हो तो जब आप अलग अकेले में दूसरे सब राजाओं से भेंट करें तो उनके साथ-साथ इसे भी आज्ञा दीजिए कि यह भी आपकी सेवा में उपस्थित रह सके।"

राजकुमार राजवाहन ने कहा—"अच्छी बात है, जैसा तुम्हें अच्छा

मालूम पड़े वैसी व्यवस्था कर लो।"

इसके बाद अपहारवर्मा जिस-जिस रास्ते से बतलाते गए उसी ओर से होते हुए कुमार राजवाहन चम्पा के बाहर एक स्थान पर पहुँचे। यहां एक बहुत बड़ा बड़ का पेड़ था। इसके नीचे एक ऐसी जगह चुनी गई थी, जहां रेशम-सी मुलायम और साफ बालू बिछी थी। इस स्थान पर गंगा की लहरों से टकराकर आती हुई ठंडी-ठंडी हवा भी बह रही थी। यहीं पर राजकुमार हाथी से उतर पड़े। अपहारवर्मा उनसे पहले ही उतर चुके थे। उन्होंने कुमार के उतरते समय उन्हें सहारा दिया। यह स्थान गंगा का रेतीला प्रदेश था। यहाँ की ऊँची-नीची जगह को उपहारवर्मा ने जल्दी से अपने हाथ के द्वारा ही एकसार कर दिया। यहीं पर धीमे-धीमे आकर राजवाहन आनन्दपूर्वक बैठ गए। कुमार राजवाहन के डीलडौल और चाल-ढाल सभी में धीरता और गम्भीरता भरी रहती थी। वे बड़े बोझ-वजन के आदमी थे। उन्हें देखकर इस समय तो अनायास किसी गजराज का ध्यान आता था। यहाँ उन्हें बैठते देख यह खयाल हुआ कि गंगा की इस ठंडी रेतीली जगह पर कोई मस्त गजराज आकर मज़े से बैठ गया है।

राजकुमार राजवाहन बैठे ही थे कि इतने में धनमित्र आया और उसने उन्हें झुककर नमस्कार किया। उसके साथ-साथ उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत भी आ गए। साथ ही मिथिला के प्रहारवर्मा, काशीराज कामपाल तथा चम्पा-नरेश सिंहवर्मा भी उपस्थित थे। इन सबको एकाएक और एक ही साथ आया हुआ देखकर राजवाहन अत्यन्त प्रसन्न हुए। हर्ष के मारे उनके मुँह से यही निकला—"अरे! ये तो अपने सभी मित्र इकट्ठे ही आ पहुँचे! आज हम लोगों का भाग्य एकदम से कैसे जाग गया?" फिर उन्होंने सबकी बड़े प्रेम और आदर के साथ आवभगत की और हर एक के साथ जी खोलकर मिलाभेंटी की।

इन सबमें काशीराज कामपाल, मिथिलापति प्रहारवर्मा और

अंगराज सिंहवर्मा, ये तीनों उनकी पिताजी की आयु के थे और बुजुर्ग होते थे। ये लोग मित्र राजाओं के रूप में आये थे। राजवाहन ने इनका अपने पिताजी की तरह मान-आदर किया। ये तीनों राजा वृद्ध हो गए थे। इनके सिर के बाल भी पक चुके थे। इन लोगों के मस्तक प्रेम और आनन्द में विभोर होने के कारण कुछ-कुछ हिल और काँप-से रहे थे। इन्होंने ललक-कर, बड़ी अधीरता और स्नेह के साथ राजवाहन को हृदय से लगाया।

कुमार राजवाहन के हर्ष का इस समय क्या पूछना था! आज इतने दिनों बाद ये सब आत्मीयजन आकर मिले थे, इसलिए आपस में सबकी बड़े प्रेमपूर्वक बातचीत चलने लगी। सब एक-दूसरे को अपने हालचाल सुनाने लगे।

आरम्भ की मिलाभेंटी और बातचीत के बाद सब मित्रों ने बड़ी उत्सुकता के साथ पहले कुमार राजवाहन से उनका हाल जानना चाहा। इसलिए उन्होंने अपनी आपबीती बतलाकर फिर सोमदत्त और पुष्पो-द्भव का भी हाल सुनाया। इसके पश्चात् उन्होंने कहा कि भाई, सब मित्र बारी-बारी से अपना-अपना हाल सुनायें तो बड़ा सुन्दर रहे। इसे सबने पसन्द किया। राजकुमार एक के बाद दूसरे से सबका वृत्तान्त पूछते गए। इनमें सबसे पहले अपहारवर्मा ने अपनी आपबीती छेड़ी।

१
अपहारवर्मा की आपबीती

अपहारवर्मा कहने लगे—"युवराज, आप जब इस ब्राह्मण का काम कर देने के विचार से पाताल में उतर गए, तब हम सब मित्र आपको खोजने के लिए निकले। मैं भी चला और देश-विदेशों में घूमता हुआ अंग-राज्य में जा निकला। वहाँ बहुत से लोगों से मिलना हुआ। इनके साथ इधर-उधर की बातचीत में पता चला कि राजधानी चम्पा से बाहर निकल कर गंगा के किनारे एक ऋषि रहते हैं; उनका नाम मरीचि है। मालूम हुआ कि वे बड़े त्यागी और तपस्वी हैं। तप करते-करते उन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई है। मेरी इच्छा हुई कि चलूँ उनसे ही आपकी गतिविधि के बारे में कुछ मालूम करूँ।

उनका पता लगाते-लगाते मैं उसी स्थान पर जा पहुँचा। उनके आश्रम में देखा तो एक आम के छोटे से पेड़ की छाँह में कोई बाबाजी बैठे हुए हैं। उनकी देह की रंगत बदली हुई थी और दशा कुछ अजीब-सी थी। ऐसा लगा, जैसे उनके दिमाग की हालत बिगड़ गई है। फिर भी उन्होंने एक पाहुने की तरह ही मेरी अच्छी आवभगत की। मने थोड़ी देर वहाँ आराम किया, फिर उनसे पूछा—"महाराज, ऋषि मरीचि का बड़ा नाम है, वे कहाँ हैं? मेरे एक आत्मीय सज्जन किसी काम से बाहर चले गए हैं, इन्हीं के बारे में जानना चाहता हूँ कि वे इस समय कहाँ हो सकते हैं। इधर चारों ओर ऐसा मशहूर है कि मरीचि महाराज को दिव्य दृष्टि प्राप्त

है और तपस्या के असर से उन्हें सब बातें मालूम हो जाती हैं। वे बड़ी दूर-दूर की चमत्कारपूर्ण बातें बतला देते हैं।"

मेरी बात सुनकर बाबाजी ने गरम-गरम और बड़ी गहरी साँस ली। फिर कहने लगे—"भाई, जैसा तुम कह रहे हो इसी तरह के एक ऋषि पहले यहाँ थे तो जरूर, पर उनके साथ विचित्र घटना हो गई।

एकबार ऐसा हुआ कि यहाँ की काममंजरी नाम की एक स्त्री उनके पास आई। यह बड़ी नामी वेश्या है; सारे अंगदेश में इसकी चर्चा फैली हुई है। इधर की सब वेश्याओं में यह सबकी सिरमौर समझी जाती है। वेश्या उनके पास रोती हुई आई। मारे आँसुओं के इसकी छाती भीग रही थी, और वह बहुत ही दुखी प्रतीत होती थी। उसने आते ही ऋषि को प्रणाम किया। शोक में उसके बाल तो बिखरे हुए थे ही, उन्हें अस्त-व्यस्त दशा में इधर-उधर फेंकती हुई वह उनके सामने धरती पर लोट गई।

ज्यों ही वह आई, उसी समय उसकी माँ और घर के दूसरे लोग भी रोते-बिलखते उसके पीछे-पीछे भागते हुए आ पहुँचे। सब-के-सब उन्हीं मरीचि के सामने एक-साथ भूमि पर लोटने लगे। ऋषि को बड़ी दया आई। उन्होंने बहुत नरमी के साथ सबको धीरज दिया और वेश्या से पूछा कि उसे किस बात का दुःख है।

यह सुनकर काममंजरी पहले तो कुछ लजाई; दुखी तो वह थी ही, फिर जैसे कोई बड़े गौरव की बात कह रही हो, इस तरह बोली—

"भगवन्! मेरी-जैसी अभागिन इस योग्य कहाँ जो उसे दुनिया का कोई सुख मिल सके! इसलिए मैंने सोचा है कि कम-से-कम मेरा परलोक ही सुधर जाय। आप संसार के दीन-दुखियों पर सदा कृपा किया करते हैं, इस बात में आपका बड़ा नाम है—यही सुनकर मैं अब आपके चरणों का आसरा लेने आई हूँ।"

काममंजरी ने इतना कहा ही था कि उसकी माँ ने मरीचि के सामने हाथ जोड़ लिये और जमीन पर खूब झुककर नमस्कार किया। उसका सिर खुला हुआ था। उसके बाल हालांकि सफेद पड़ चुके थे फिर भी उनमें

रंगबिरंगी चुटीला गुँथा हुआ था। यह उन बालों में बड़ा अद्‌भुत प्रतीत हो रहा था। सिर के नीचे झुकते ही उसका यह चुटीला भी धरती को छूने लगा।

उसकी माँ कहने लगी—"महात्मा जी, इस लड़की की बातें आपने सुन ही लीं। यह जो आपके पास इस तरह उदास होकर आ पहुँची है, इसमें आखिर दोष किसका है? समझ लीजिए कि मैं ही दोषी हूँ। मैं खुद माने लेती हूँ कि सारा अपराध आपकी इस दासी का ही है; मैं ही अपराधिन हूँ। परन्तु मेरा यह अपराध इतना ही है कि मैं जिसे अपना कर्तव्य समझती हूँ उसका अच्छी तरह पालन करना चाहती हूँ। इसीलिए मैं इससे बार-बार आग्रह करती रहती हूं कि यह अपने काम को और पेशे को ठीक-ठीक चलावे।

महाराज आपसे छिपा नहीं कि हम वेश्या हैं। वेश्या की माँ पर यह भार होता है और इस बात की उस पर जिम्मेदारी भी हुआ करती है कि वह अपनी लड़की को अपने हुनर और पेशे के योग्य बनावे। इसी खयाल को सामने रखते हुए बचपन से ही उसे अपनी लड़की को ढंग पर लाना होता है, और उसे काबिल बनाना पड़ता है।

वेश्या के लड़की जहाँ पैदा हुई कि हम उसकी खास तौर से देखभाल करने लगती हैं। छुटपन से ही उसके हल्दी-तेल आदि का उबटन कर-करके उसकी देह के हर हिस्से को साफ और नीरोग बनाकर रखती हैं। शुरू ही से उसे नपा-तुला और इस तरह का खाना दिया जाता है कि उससे देह पुष्ट भी होती रहे और रस-रक्त आदि धातुएँ सही तथा सम हालत में रहें। उसे खाने से लड़की का रंग, चमक-दमक, ताकत और बुद्धि बढ़ती रहे।

हम लोगों में लड़की को मर्दों की संगत से बहुत बचाकर रखा जाता है। यहाँ तक कि पाँचवे साल के आगे उसके बाप को भी उसे ज्यादा देखने-भालने नहीं दिया जाता। लड़की की माँ का कर्तव्य होता है कि बच्ची के जन्मदिन और तीज-त्योहार आदि के मौकों पर उसकी मंगल-कामना के लिए कुछ-न-कुछ पूजन और उत्सव कराये। धीरे-धीरे लड़की को

पढ़ाना भी होता है। वात्स्यायन कामशास्त्र आदि काम-विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों को तो दूसरी सहायक किताबों के साथ-साथ, जरूर ही पढ़ाना पड़ता है। इनके सिवा नाचना, गाना, बजाना, अभिनय करना, चित्र खींचना, खाना बनाना, तरह-तरह के इत्रों और खुशबुओं की पहचान करना, फूलों के हार गूँथना, कई तरह की लिपियाँ सीखना, वक्रोक्ति-श्लेष आदि के द्वारा बातचीत करने में होशियारी हासिल करना—इन सब कलाओं और विद्याओं में वेश्या की माँ को अपनी लड़की के लिए अच्छी तरह शिक्षित करना होता है। इतना ही नहीं, न्याय, व्याकरण और ज्योतिष की भी मोटी-मोटी बातें बतलानी होती हैं। रोजी कैसे कमाई जाती है, यह भी उसे सिखाना माँ का काम है। इसके साथ ही शिष्टतापूर्वक हँसी-मजाक करना, मुर्गा, तीतर आदि की लड़ाइयाँ लड़ाना, शतरंज और जुआ खेलना, सम्भोग-सहवास के समय करने योग्य व्यवहार—ये सब बातें भी अच्छे जानकार और विश्वासी आदमियों के द्वारा खास तौर पर सिखलानी होती हैं। माँ का ही यह काम है कि उत्सव-मेले आदि के अवसरों पर लड़की को खूब यत्नपूर्वक सजाकर बहुत से साजिन्दों के साथ उसका आम लोगों में प्रदर्शन करवाये। खास-खास मौकों पर या जैसा प्रसंग हो उसके माफिक उसकी लड़की अच्छी तरह गा-बजा या नाच सके, इसके लिए पहले से छाँटकर अच्छे-अच्छे उस्तादों को नौकर रखना होता है और उनके द्वारा उसे अपने फन में होशियार बनाना पड़ता है—यह सब भी माँ का ही काम है। अच्छे-अच्छे मशहूर वीनकार या मृदंग बजाने वाले उस्तादों को अपना कर, उनके द्वारा अपनी लड़की के नाम की चर्चा दूर-दूर तक फैलानी पड़ती है, जिससे आगे अपने पेशों में उसे सफलता मिले। हाथ देखने वाले और शुभ-अशुभ लक्षण बताने वाले ज्योतिषियों को भी फाँसना होता है। इनके जरिए अपनी लड़की के बारे में ऐसी भविष्यवाणियाँ करानी पड़ती हैं कि वह बड़ी होनहार और सुलक्षणा है। माँ को ही अपनी लड़की के रूप-शील, अच्छे स्वभाव, मीठी बोली तथा हस्तकौशल की चर्चा रईसों और शौकीन मिजाज वाले लोगों में चलवाते रहने के लिए बहुत से नौसिखिए, खुशामदी,

दलाल, नक्काल और भांड बनाने पड़ते हैं, व भिखमंगों को मुँह लगाना पड़ता है।

यह भी माँ का ही काम है कि जब कोई नौजवान मन की मुराद पूरी करने के लिए उसकी लड़की को अपना प्रेमपात्र बनाना चाहे तो उससे ज्यादा-से-ज्यादा नजराना ठहराये। माँ को ही अपनी लड़की के लिए ऐसा प्रेमी खोजना पड़ता है जो जात और खानदान का घटिया न हो, सुन्दरता और धनदौलत भी जिसके पास हो, लड़की के लिए कुरबानी कर सकता हो, दिल का खुला और उदार हो, दुनियादारी के कामों में होशियार हो, उसे कोई-न-कोई हुनर या दस्तकारी भी आती हो, स्वभाव से अच्छा और बातचीत का मीठा हो, रहन-सहन उसका उजला और साफ हो, अपने मामलों में खुदमुख्तार हो और खुद अपनी कमाई पर ही वह निर्वाह भी करता हो। इस तरह का नौजवान अगर लड़की की मुहब्बत में खुद आ फँसे तब तो बहुत ही अच्छा है, नहीं तो उसे बाहरी हाव-भाव, दिखावटी मुहब्बत और भाव-भंगियों से प्रेम में दीवाना बनाना पड़ता है। ऐसा आदमी खोजकर तब उसे अपनी लड़की सौंपनी होती है।

जब ऐसा सर्वगुणसम्पन्न आदमी नहीं मिलता तो अपना फायदा सोचकर अच्छे-से-अच्छे आदमी को छाँटना पड़ता है। अगर कोई प्रेमी या गाहक अपने घर का खुदमुख्तार नहीं है, पर बहुत गुणी और बुद्धिमान है, तो उससे कम नजराना लेकर भी सिर्फ इस खयाल से लड़की उसे दे देनी होती है कि जब आगे वह खूब कमाने लगेगा तो रुपया-पैसा लड़की को ही मिलेगा। कोई प्रेमी खुद कमाऊ न हो, पर लड़की का और उसका दिल मिल जाने से उन दोनों का भीतर-ही-भीतर मिलन हो चुका हो, तब ऐसी हालत में उस प्रेमी गाहक के माँ-बाप तक पहुँचना पड़ता है और उनसे रकम वसूल करनी होती है। यह सब सूझ-बूझ और समझदारी के काम माँ को ही करने पड़ते हैं।

कई मौके ऐसे आते हैं, जब कोई गाहक सुख और आनन्द तो उठा लेता है, पर देने के नाम पर फूटी कौड़ी भी उसके पास नहीं होती; इस

हालत में माँ को ही अपना सुभीता देखकर किसी हाकिम या अफसर की शरण लेनी पड़ती है; इन लोगों की तृप्ति करके तब इनके द्वारा उस गाहक की दाढ़ों के नीचे से पैसा निकालना पड़ता है। लड़की के भाग्य से जब ऐसा कोई गाहक मिल जाय, जो केवल भोग-विलास का प्यासा न होकर लड़की से सच्चा प्रेम करने लगे तब माँ को ही अपनी बेटी को इस बात के लिए तैयार करना पड़ता है कि वह उसी एक की बनकर रहे। किसी और की तरफ आँख उठाकर भी न देखे।

भगवन्! आप समझ सकते हैं कि हर रोज प्रेम करने का दिखावा और हर एक को आत्मसमर्पण करने का नाटक हम अपनी मर्जी से नहीं करतीं; यह तो हमें खास वजह से करने पड़ते हैं। ऐसा करके ही हम उन धूर्तों से रुपया वसूल कर पाती हैं, जिन पर हमारा पाना उधार रह जाता है। ऐसे नादिहन्द लोग बहुत से होते हैं और उनके साथ तदबीरें भी हम लोगों को बड़ी-बड़ी विचित्र करनी पड़ती हैं। जैसे अगर कोई गाहक आनन्द-भोग तो कर लेता है, और बेहद लालची होने से पैसा नहीं खर्च करना चाहता, तो हम लोग उसे तब तक घेरे रहती हैं और पकड़कर बिठाये रखती हैं जब तक हमारी उजरत उससे वसूल न हो जाय। जब कोई गाहक लड़की पर दिली मुहब्बत तो रखता हो, पर लोभी होने से खर्च न कर पाता हो, तो हमें पड़ोसी चकलों के ठेकेदारों की मदद लेनी पड़ती है। ये लोग उसे बढ़ावा देकर चंग पर चढ़ाते हैं, तब जाकर उससे रुपया खर्च करवाया जा सकता है। अगर कोई ऐसा गाहक घुस आवे जो बिलकुल फटे हाल हो, तो हम लोग खुद तो उसके साथ भी बड़ी शिष्टता से पेश आती हैं, पर दूसरे साथियों से उसे गालियाँ दिलवाकर और झिड़कवाकर निकलवा देती हैं। ऐसे आदमी को अपनी लड़की के जरिए तब तक घेर कर रखा जाता है, जब तक उसकी असली हालत नहीं खुल जाती।

इन सब बातों को सुनकर आप सहज ही जान सकते हैं कि इस तरह के जिन-जिन उपायों से हम लोग रुपया पैदा करती हैं, वे कितने अनिश्चित होते हैं और उनके द्वारा कैसे-कैसे अनर्थ खड़े हो जाते हैं। इन झंझटों से

बचने के लिए अन्त में माँ को ही ऐसे मालदार लोगों की खोज करनी पड़ती है, जो सहूलियत से रुपया दे सकते हों, लोगों में जो बदनाम भी न हों, और आये दिन की मुसीबतें हटा सकने की भी जिनमें ताकत हो। ऐसे धनी-मानी लोगों को ढूँढ़-ढूँढकर हमें उनके साथ अपनी लड़कियों को मिलवाना पड़ता है।

यहाँ तक मैंने पेशा करने वाली लड़की की माँ के बोझ और जिम्मेदारी की बातें कहीं। अब आप विचार सकते हैं कि खुद लड़की का भी तो कुछ अपना फर्ज होना चाहिए।

हमारे लोगों में पेशा कमाने वाली लड़की का यह फर्ज या कर्तव्य समझा जाता है कि अपने मिलने वाले के सामने वह जावे तो खूब सजधज करके, पर खुद न तो उस पर रीझे और जहाँ तक बने, उसका अपने साथ संयोग न होने दे। अगर किसी मिलने वाले के साथ उसका प्रेम भी हो जाय तो भी उसे चाहिए कि अपनी माँ या दादी का कहना कभी न टाले और उनकी पाबन्दी में रहे।

महात्मा जी, मेरा और इस लड़की का झगड़ा इसी बात पर है कि यह हम लोगों के लिए भगवान् के बनाये हुए इस वेश्या-धर्म की मर्यादा को तोड़ डालना चाहती है। बात यह है कि कहीं से एक ब्राह्मण नौजवान आ गया है। उसके पास और तो कुछ है नहीं, कोरा रूप-ही-रूप है। उसके ऊपर यह खुद अपना पैसा खर्च करती है। उसके साथ मौज उड़ाते हुए इसे एक महीना हो गया है।

पहले हमारे यहाँ बहुत से मालदार और शौकीन गाहक आया करते थे। पर अब उस नौजवान के मारे उन गाहकों के साथ मिलने से यह लगातार इन्कार करती रही है, इसलिए वे भी नाराज हो-होकर बैठ रहे। इसने हम लोगों का घर बरबाद कर दिया। मैंने इसे बहुत समझाया और उसके साथ मिलने से मना भी किया, पर इसने एक नहीं मानी। मैंने इससे यह भी कहा कि बेटी देख, तेरी बुद्धि आजकल कुछ खराब हो गई है, तेरी इन बातों से हम लोगों का भला नहीं होगा। पर मेरी इन बातों

का भी इस पर कोई असर न हुआ।

आखिर को तंग आकर मैंने इसे उससे मिलने से रोका। जब इस तरह कई बार रोकने की नौबत आई तो यह रूठ गई, और यहाँ बनवास के लिए भाग आई।"

अपनी इतनी लम्बी रामकहानी कह चुकने के बाद वेश्या-लड़की की वह माँ रुआसी हो आई। फिर वह कहने लगी—

"भगवन्! आप ही इसे समझा दीजिए। अगर यह फिर भी अपना हठ नहीं छोड़ेगी तो मजबूर होकर हम सब लोग भूखे-प्यासे यहीं बैठे रहेंगे।"

यह सब हाल सुनकर मरीचि को उन लोगों पर बड़ी दया आई। वे उस वेश्या की लड़की से बोले—

"भद्रे, तुझे अभी अनुभव नहीं है। जंगल का रहना बड़ा कठिन है। इसे दुःखों और क्लेशों की खान समझ। बन में लोग रहते इसलिए हैं कि उससे मोक्ष या स्वर्ग मिले। परन्तु मोक्ष तो ऐसा है कि उसके लिए मनुष्य को बहुत गहरा ज्ञान होना चाहिए। इतना अधिक ज्ञान हर एक को नहीं हो पाता, इसलिए मोक्ष का प्राप्त करना महाकठिन काम है। दूसरा रहा स्वर्ग; इसके लिए बनवास की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह उन्हें भी मिल सकता है जो अपने-अपने कुल-धर्म का पालन करें। यह काम प्रायः हरएक कर सकता है। यह सहज भी है। मोक्ष के लिए जंगल में रहना और तप करते हुए ज्ञान की प्राप्ति में लग जाना, यह तेरे सामर्थ्य से बाहर की बात है। इसे रहने दे। तेरे लिए तो यही ठीक है कि तू अपनी माँ का कहना मान।"

उनकी यह बात सुनकर वह वेश्या की लड़की बड़ी दुःखी होने लगी, और बोली—

"भगवन्! अगर आज यहाँ जंगल में आपके चरणों का आसरा मुझे न मिला, तो फिर मुझ अभागिन के लिए एक ही उपाय रह जायगा; मैं भगवान् अग्निदेव की शरण लूंगी।"

इस पर वे मुनि कुछ सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उसकी माँ से बोले——

"अच्छी बात है, तुम इस समय तो घर लौट जाओ। कुछ दिनों तक इन्तजार करो। यह लड़की बहुत आराम में पली है, इसलिए इसकी देह मुलायम है । यह तप का जीवन नहीं बिता सकेगी। जंगल की कठोर दिनचर्या से यह जल्दी ही ऊब जायगी। मैं भी बीच-बीच में इसे समझाता रहूँगा। खयाल यही है कि बहुत जल्द यह अपनी असली हालत में आ जायगी।"

उनकी यह युक्तियुत बात सुनकर उसकी माँ निरुपाय-सी हो गई और 'बहुत अच्छा' कहकर उठ खड़ी हुई। वह स्वयं और उसके साथ आये हुए उसके कुनबे के दूसरे सब लोग वापिस लौट गए।

इन लोगों के चले जाने के बाद वेश्या की वह जवान लड़की उठी। उसने उन ऋषि को बहुत झुककर और बड़े विनयपूर्वक प्रणाम किया। फिर अपने पिछले सब कपड़े उतार डाले और बहुत सादा, धुले हुए कपड़े पहन लिये। अपनी देह का बहुत बनाव-सिंगार भी उसने छोड़ दिया। अब वह बड़े भक्ति-भाव से वहाँ रहने लगी। प्रायः भजन-चिन्तन में ही उसके दिन बीता करते।

वह सवेरे बहुत तड़के उठ जाती और नित्यकर्म से निपटकर, उस तपोवन के छोटे-छोटे पौधों के थाँवलों में पानी देती। इसके बाद पूजन के लिए फूल चुन लाती। आश्रम के पालतू पशु-पक्षियों को खिलाना और बलिवैश्व देव का काम भी वही किया करती। इसके बाद शिवजी की पूजा के लिए चन्दन, फूल, मालाएँ, धूप, दीपक आदि सजाकर रखती और आरती के समय गाने-बजाने तथा नाचने का भी सब बन्दोबस्त वही पहले से कर रखती थी। बचे हुए समय में अकेली बैठकर कुछ पढ़ती-पढ़ाती और धर्म-चर्चा किया करती।

आश्रम में मरीचि के साथ कभी वह सांसारिक विषयों पर बात-चीत करती और कभी धन-दौलत की सारता-असारता के बारे में तर्क

वितर्क किया करती थी। आत्मा-परमात्मा से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान के विषय में जितनी समझ उसे थी, उसी के अनुसार थोड़ी-बहुत चर्चा इस बारे में भी करती रहती थी।

मरीचि उसकी इस प्रवृत्ति और कामकाज में उसकी लगन के कारण उससे संतुष्ट होने लगे। धीरे-धीरे उसकी ओर उनका ध्यान भी विशेष रूप से रहने लगा। वह लड़की भी इस बात को ताड़ गई।

एक बार ऐसा हुआ कि मरीचि अकेले बैठे थे। वे आजकल उस पर विशेष कृपा-दृष्टि रखने लगे थे। वह लड़की वहीं अकेले में उनके पास चली आई और बोली––

"महाराज, दुनिया में प्रायः सभी लोगों ने 'धर्म' के साथ-साथ उसकी बराबरी पर लाकर 'अर्थ' और 'काम' को भी जोड़ दिया है; मुझे तो ऐसे सब लोग बड़े मूर्ख मालूम पड़ते हैं; आपका इस विषय में क्या विचार है?"

इतना कहकर वह कुछ मुस्कराने-सी लगी।

मरीचि ने उसे टाला नहीं, बल्कि उसका उत्साह बढ़ाते हुए कहा–

"सुन्दरी, कहो तो सही, 'धर्म' ही क्यों इतना ऊँचा है? 'अर्थ' और 'काम' की अपेक्षा 'धर्म' को ही तुम किस बात में बड़ा मानती हो?"

उनकी इस बात से वह कुछ लजा गई और ढीली-सी पड़कर कहने लगी––

"मुझ-जैसी स्त्री से महाराज को 'अर्थ' और 'काम' के बड़प्पन या छुटपन का ज्ञान हो, यह भी एक अद्‌भुत बात है! मैं समझती हूँ कि आप मेरा उत्साह बढ़ाने के लिए ही मुझसे ऐसा प्रश्न कर रहे हैं। इस दासी पर यह आपकी कृपा ही है। इस विषय में अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार मैं यह समझ पाई हूँ कि धर्म के बिना अर्थ और काम की उत्पत्ति नहीं हो सकती, परन्तु धर्म के लिए इन दोनों की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म बुद्धि को एकाग्र करने से मिलता है। इससे फिर ऐसा स्थायी

सुख प्राप्त हो जाता है जिसकी कभी समाप्ति नहीं होती। अर्थ और काम में तो बाहरी साधनों की जरूरत पड़ती है, परन्तु धर्म के लिए यह बात नहीं है। जब मनुष्य को तत्त्व-ज्ञान हो जाता है, तो इससे भी धर्म बढ़ता ही है। धर्म में अर्थ और काम ज़रूर ही बाधक हो जाय, यह बात भी नहीं है। यदि कभी इनसे बाधा पड़ जाती है, तो थोड़े ही यत्न से वह हट भी सकती है। इस तरह का क्षणिक दोष दूर होकर धर्म के द्वारा पुनः मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

धर्मात्मा पुरुषों को राह में ऐसी विघ्न-बाधाएँ आ पड़ने के बहुत से उदाहरण हैं; जैसे प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार, पितामह ही तिलोत्तमा को चाहने लगे थे। भवानीपति ने भी मुनि की एक हजार पत्नियों को कलंकित कर डाला था। भगवान् विष्णु १६ हजार रानियों के साथ विहार करते थे। प्रजापति अपने निज की लड़की पर ही मोहित हो गए थे। इन्द्र का गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ सम्भोग तो प्रसिद्ध ही है। चन्द्रमा ने गुरु की स्त्री तक से सहवास कर लिया था। सूर्य घोड़ी के साथ दुष्कर्म कर बैठे थे। पवन देवता के भी केसर की स्त्री के साथ समागम की बात आती है। देवताओं के गुरु बृहस्पति अपने बड़े भाई उतथ्य की स्त्री के साथ मिल बैठे थे। ऋषि पराशर ने धीवर की लड़की योजनगन्धा के साथ सहवास किया था। व्यास जी ने अपने भाई विचित्रवीर्य की स्त्री से नियोग किया था और अत्रि ऋषि को हिरनी के साथ अपनी काम पिपासा शान्त करनी पड़ी थी।

देवताओं के ऐसे-ऐसे कितने ही दुराचारों के उदाहरण हैं। वे लोग असुरों को अधर्मी और दुराचारी होने का जो दोष और उलहना दिया करते हैं, वह बेकार ही है। परन्तु क्योंकि देवता लोग ज्ञानवान थे, इसलिए ज्ञान की आड़ में ये सब बातें छिप गई हैं। इन लोगों की ऐसी बातों से इनके धर्म-कर्म में कोई बाधा नहीं पड़ी। ये सब-के-सब सीमातीत विषय-भोग करते हुए भी पहले जैसे देवता और ऋषि ही बने रहे। असल बात तो यह है कि धर्म के प्रभाव से मन साफ और स्वच्छ होना चाहिए। यदि मन शुद्ध है तो

उस पर रज या मैल पड़ भी जावे तो भी उसका कोई गहरा असर नहीं होता ।

इन्हीं सब कारणों से मैं यह समझ पाई हूँ कि अर्थ और काम तो धर्म के सोलहवें हिस्से तक भी नहीं पहुँच पाते ।"

उस वेश्या की इन बातों से और इतिहास के इन उदाहरणों से मरीचि का मन चंचल हो उठा । इस युवती की ओर वे कुछ खिंचे और कहने लगे—

"हे विलासिनी,तुम ठीक कहती हो । तुम्हारा जीवन-दर्शन सही मालूम पड़ता है । तत्त्वज्ञानी लोगों के विषयोपभोग से धर्म में बाधा नहीं आती । अच्छा, यह तो धर्म की बात रही । पर अर्थ और काम कैसे हैं, इसके सम्बन्ध में तो हम जन्म से ही कुछ भी नहीं जानते । इनके विषय में हम जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं । इनके ठीक स्वरूप को जानने की भी हमारी इच्छा है । यह बात भी मालूम होनी चाहिए कि अर्थ और काम के सहायक तत्त्व क्या हैं और इन दोनों का फल क्या होता है ।"

वह सुन्दरी वेश्या कहने लगी—

"महाराज, पहले मैं अर्थ की बात कहती हूँ । अर्थ या धन को भिन्न-भिन्न उपायों से पैदा किया जाता है; उसे निरन्तर बढ़ाना होता है और एकत्रित धन की रक्षा करनी होती है । धन की अनेक किस्में हैं, जैसे खेती, पशुपालन, वाणिज्य-व्यवसाय आदि । अर्थ के फल भी बहुत से हैं; इनमें उसका तरह-तरह से भोग करना, तीर्थ-यात्रा करना और योग्य व्यक्ति को दान कर देना आदि मुख्य हैं ।

'काम' के विषय में यह कहा जा सकता है कि जिन स्त्री-पुरुषों के हृदय विषयासक्त हो उठते हैं, उनके आपसी मिलन में एक खास तरह के स्पर्श का अनुभव ही 'काम' है । यह स्पर्श अत्यन्त सुखदायक होता है । काम के सहायक तत्त्व हैं सौन्दर्य और उज्ज्वल आकर्षक रूप । इस काम का फल है क-दूसरे को रस-विशेष या परमानन्द का आदान-प्रदान करना । यह आनन्द एक-दूसरे के आलिंगन और चुम्बन से पैदा होता है और इसकी य़ाद बड़ी मधुर होती है । इस काम-सुख के मिल जाने पर प्राणी इस पर गर्व

करता है और इसका बखान भी किया करता है। काम का आनन्द ऐसा है कि इसको स्वयं ही उठाया जा सकता है; इसे इन्द्रिएँ बड़ी स्पष्टता के साथ अनुभव कर लेती हैं।

काम का यह आनन्द या सुख क्या वस्तु है,इसका शब्दों द्वारा •उत्तर देना असम्भव है। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव की ही चीज है। इससे बढ़िया और ऊँचा सुख संसार में नहीं होता। इस काम-सुख के लिए ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहने वाले मनुष्य कष्टसहन, तप, दान आदि किया करते हैं। इसी के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होती हैं और इसी को पाने के लिए समुद्रों को पार करना या पहाड़ों को लांघना आदि बड़े-बड़े विशाल साहस के कार्य किये जाते हैं।"

ये बातें सुनकर मरीचि बड़े अचरज में पड़ गए। वे उस वेश्या की लड़की की ओर देखते रह गए। वह सुन्दरी जलती हुई दीपशिखा के समान स्थिर और शान्त बैठी थी।

मालूम नहीं कि दैवयोग से ऐसा हुआ या उस वेश्या की चतुराई के कारण, अथवा खुद मरीचि की बुद्धि ही उस समय मैली पड़ गई थी, परन्तु सबका फल यह निकला कि मरीचि का नियम-धर्म सब छूट गया। वे उस वेश्या पर पूरे लट्टू हो गए। मरीचि इस समय अपना ज्ञान और विचार सब खो बैठे। वे बिलकुल बुद्धू-से बन गए। अपने को उन्होंने इस वेश्या के हाथों में पूरी तरह सौंप दिया और वे उसी के इशारों पर चलने लगे।

धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आ गया कि तपोवन में उस सुन्दरी का रथ आ पहुँचा। उस पर चढ़ाकर वह उन्हें इस आश्रम से बहुत दूर नगर में ले गई। जाते समय रथ जिस रास्ते से चला वह खूब सजा-सजाया था। मरीचि को लेकर वह अपने आलीशान महल में आई और उसने घोषणा करवा दी—'कल काम-महोत्सव होगा।

अगले दिन मरीचि ने सुगन्धित जल से स्नान करके चन्दन आदि लगाया और फूलों के खूब बढ़िया हार पहने। अब वे अच्छे शौकीन और

विलासी लोगों की तरह बन-ठनकर तैयार हुए। कहाँ तो वह उस तपोवन वाले मरीचि थे और कहाँ अब वेश्या के विलास-मन्दिर के ये मरीचि ! उनके अन्दर से तप,साधना आदि करने की वे सब इच्छाएँ अब समाप्त हो चुकी थीं जो प्रायः ऋषि-मुनियों के मन में उठा करती हैं। उस वेश्या का उनके ऊपर इतना मोहक असर हो चुका था कि उसके बिना उन्हें घड़ी-भर भी चैन नहीं पड़ता था। उसके आँख से ओट होते ही उन्हें कुछ भी अच्छा न लगता और अपने पास से उसके दूर होते ही वे उदास हो जाते।

निश्चित समय पर वह वेश्या मरीचि को रथ पर बैठाकर उत्सव-स्थान की ओर ले चली। इस रथ की सुन्दरता और सड़क की सजावट का क्या कहना था ! धीरे-धीरे वे दोनों काम-महोत्सव के अत्यन्त रमणीक उपवन में जा पहुँचे। यहाँ आकर वह युवती मरीचि को ऐसी जगह ले गई जहाँ उस देश के राजा बैठे थे। उन्हें चारों ओर से बड़ी सुन्दर-सुन्दर सैकड़ों स्त्रियाँ घेरे हुई थीं।

राजा ने उस वेश्या को और मरीचि को देखा। वे एकदम खूब प्रसन्न हो उठे। मरीचि को उन्होंने एक बढ़िया आसन पर बिठाया। राजा का चेहरा खुशी के कारण खिला पड़ता था। वे उस वेश्या से बोले—"तू तो अब ऋषिवर के साथ ही बैठ।"

राजा की ओर से ऐसा आदेश मिलने पर उसने बड़ी नज़ाकत और हाव-भाव के साथ झुककर उन्हें नमस्कार किया; फिर मुस्कराती हुई जाकर मरीचि के साथ उसी आसन पर बैठ गई।

इतने में उस उत्सव-मंडली के बीच से एक और सुन्दरी उठी और हाथ जोड़े हुए राजा से कहने लगी—

"महाराज, इसने तो मुझे सचमुच ही जीत लिया। इस कारण मैं आज से इसकी बाँदी बनना मंजूर करती हूँ।" इतना कहकर उसने महाराज को फिर झुककर नमस्कार किया।

उस सुन्दरी की इस बात पर वहाँ के सब लोग बड़े चकित हुए। पर जिन्हें असली बात मालूम थी वे सब स्त्रियाँ इस बात से खूब प्रसन्न हो

उठीं और आनन्द-उल्लास के मारे वहाँ सब तरफ खूब शोर-गुल होने लगा।

इसके बाद मरीचि के पास बैठी हुई उस सुन्दरी वेश्या को राजा ने शाबाश दी और उसकी बड़ी सराहना की। उसे उन्होंने बहुत से हीरे-जवाहरात, बढ़िया-बढ़िया गहने और अनेक दास-दासियाँ इनाम में दीं। राजा की इस मेहरबानी पर वह वेश्या बड़ी खुश हुई; उसके चेहरे से संतोष झलकने लगा। उसने उनके प्रति अपनीकृ तज्ञता प्रकट की और उपकार के बोझ से बहुत दबी हुई-सी होने का दिखलावा किया।

उसे राजा के द्वारा इस प्रकार सम्मानित होते देख दूसरी बड़ी-बड़ी वेश्याओं ने और शहर के धनी-मानी लोगों ने भी उसके काम की बड़ी तारीफ की। इसके बाद सब लोगों ने उसे विदा किया।

वहां से मरीचि के साथ आकर यह वेश्या अपने घर लौटी और आते ही उनसे बोली—"भगवन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ; आपने इस दासी पर बड़ी कृपा की। अच्छा, यह तमाशा तो अब खत्म हुआ; अब मुझे अपने पेशे और दूसरे काम-काज में लगने दीजिए।"

मरीचि उसकी यह बात सुनकर बड़े हैरान हुए। वे तो उसके प्रेम में पूरी तरह डूब चुके थे। उन पर मानो एकदम बिजली-सी गिरी। वे मूढ़ की भाँति सन्नाटे में रह गए और बड़ी दीनता के साथ गिड़गिड़ाते हुए कहने लगे—

"प्रिये, यह क्या? एकाएक इतनी उदासीनता कैसी? हमारी ओर तुम्हारा वह प्यार किधर गया?"

उनकी बात सुनकर वह वेश्या मुस्कराती हुई बोली—

"महात्मन्! सुनिए, असल बात यह है कि आज जिस वेश्या ने राजा के और सारे राज-परिवार के सामने मुझसे हार खाई है, उसके साथ एक बार मेरी कुछ कहा-सुनी हो गई थी। बात-ही-बात में उसने मुझे यह ताना दिया था —'ओ हो, तू तो ऐसी शेखी मार रही है जैसे 'मरीचि' को फंदे में फाँस लाई हो!' बस, इसी मामले में हम दोनों की शर्त लग गई। तय यह हुआ कि अगर मैं आपको फुसलाकर

अपने प्रेम-पाश में बाँध लाऊँ, तब तो उसे मेरी गुलामी करनी पड़ेगी; और अगर ऐसा न कर सकूँ तो मैं उसकी लौंडी बनकर रहूँगी। आपकी मेहरबानी से मैं अपने कौशल में सफल हो गई। मेरे प्रेम की यही वास्तविकता थी। अब कहिए ?"

उस मक्कार और धूर्त वेश्या की जब इस तरह की एक झिड़की उस मूर्ख मरीचि पर पड़ी और जिस समय वह उसके द्वारा इस तरह दुत्कारा गया तो उसकी आँखें खुलीं। उसे बेहद पछतावा हुआ। वह शून्य-हृदय-सा होकर चुपचाप अपने आश्रम को लौट आया।"

इतना कह चुकने के बाद वे बाबा जी मुझसे बोले—

"महानुभाव, आप यह समझ लीजिए कि उस वेश्या द्वारा जिस तपस्वी को ऐसा बुद्धू और बेवकूफ बना दिया गया था, वह मैं ही हूँ। उस कुलटा ने अपने छल, बल और कौशल से पहले मेरे मन में जैसा प्रबल अनुराग भर दिया था, उसी तरह अब उसने ही घोर वैराग्य भर दिया है। मैं फिर ठीक राह पर आ गया हूँ और समझता हूँ कि मुझसे आपका कुछ मतलब निकल सके, इसके योग्य मैं फिर अपने-आपको बना सकूँगा। यह काम संभवतः शीघ्र ही हो जायगा। तब तक आप अंगदेश की इस चम्पा नगरी में ही निवास कीजिए।"

ऋषि मरीचि की ये बातें सुनकर मैं बड़ा हैरान हुआ। उनकी दशा पर मेरे मन ने दुःख भी अनुभव किया। उनके साथ यह बातचीत होते-होते सूर्यदेव अस्त हो गए। मुझे ऐसा लगा कि मरीचि ने अपने हृदय से मोह रूपी जो अन्धकार निकाल फेंका था, उससे छू जाने के डर से ही मानो सूर्य भगवान् कहीं छिप गए हैं।

साँझ हो चुकी थी और उसका राग अर्थात् लाली, पश्चिम के आसमान पर झलकने लगी थी। यह राग भी मुझे प्रतीत हुआ कि मरीचि के हृदय का त्यागा हुआ 'राग' ही है। तपोवन के तालाब में खिले हुए कमलद मुँद चुके थे। इन्हें शायद ऋषि की वेदनापूर्ण आपबीती सुनकर

वैराग्य हो गया था, इसी कारण मुरझा आये थे।

इस समय तक संध्या-उपासना का समय हो गया। मुनि ने मुझसे अपने साथ ही यह धार्मिक कृत्य करने के लिए कहा, इसलिए मैंने वहीं उनके साथ-साथ संध्या अग्नि-होत्र आदि किया। रात को उन्हीं के दिये हुए कुछ कन्द-मूल ले लिये। इसके पश्चात् सोने के समय मैंने उनको कई एक कथाएँ और सामयिक घटनाएँ सुनाई। उन्हें सुनते-सुनते जब मुनि की आँख लग गई, तब मैं भी सो गया और वह रात मैंने वहीं बिताई।

सवेरा होते ही मैं उठा। देखा, तो सूर्य उदय होने वाला था। उदयाचल पर उसकी लाल-लाल किरणें बड़ी सुहावनी लग रही थीं। इसके सामने यदि वहाँ स्वर्ग के कल्पवृक्ष की लाल-लाल कोपलें होतीं, तो वे भी फीकी जान पड़तीं। मैंने उठकर सूर्य नारायण को नमस्कार किया, फिर ऋषि मरीचि को प्रणाम करके चम्पा की ओर चल दिया।

रास्ते में मुझे एक ओर जैनियों का विहार दिखाई पड़ा। कुछ आराम कर लेने की इच्छा से मैं इसके अन्दर गया। विहार में तो कोई भी आदमी दिखाई नहीं दिया। पर विहार के बाहर पास में ही लाल अशोक के कुछ पेड़ खड़े थे, इनके झुरमुट में जाकर देखा तो एकान्त में एक जैन साधु बैठा हुआ था। पहले तो मैंने समझा कि वह ध्यान में मग्न बैठा है। पर जब उसके निकट पहुँचा तो मालूम हुआ कि वह समाधि में नहीं है, बल्कि बेहद दुर्बल पड़ जाने के कारण सुस्त और उनींदा-सा हो गया है। उसे शायद कोई मानसिक रोग या चिन्ता थी, जिससे वह इतना दुर्बल हो गया था। उसका रंग भी बड़ा खराब था। कुरूप और भद्दा तो वह इतना पड़ गया था कि उसे बदशक्ल लोगों का सरदार समझा जाता था। उसके मुँह पर मैल थी, तह-की-तह फूली रखी थी। मैंने उसकी ओर ध्यान से देखा तो मालूम पड़ा कि उस बेचारे के आँसू निकल रहे हैं। आँसुओं की बूँदें उसके मुँह पर से होती हुई, उसकी छाती पर गिर रही थीं।

मैं जाकर उसके पास बैठ गया। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा—"साधु जी महाराज, आपका कैसा हाल है? एक ओर तो आप यह तप कर रहे हैं,

और उसके साथ-साथ रोते भी जाते हैं। आपकी बात अगर छिपाने के लायक न हो तो बतलाइए। मैं चाहता हूँ कि आपका कष्ट कुछ मालूम हो।"

साधु बोला—"भाई, मैं इसी चम्पा के निधिपालित सेठ का लड़का हूँ। मेरा नाम वसुपालित है। मैं बचपन से ही सूरत-शक्ल का अच्छा नहीं था, इसलिए लोग मुझे 'विरूपक' कहने लगे। मेरा विरूपक नाम ही फैल भी गया; इसी नाम से सब लोग मुझे बुलाने लगे।

इसी शहर में एक जगह 'सुन्दरक' नाम का एक आदमी रहता था। अपने नाम जैसा ही वह सुन्दर भी था और कई तरह के हुनर तथा दस्तकारी भी जानता था। मतलब यह कि सुन्दर होने के साथ-साथ वह आदमी गुणी भी था, परन्तु धन इसके पास अधिक नहीं था।

शहर के कुछ धूर्त और चालाक लोग, जिनकी रोटी ही दूसरों को लड़ाने-भिड़ाने पर चला करती थी, ऐसे निकले कि उन्होंने सुन्दरक को तो उसकी खूबसूरती के नाम पर उकसाया और मुझे धन का जोश दिलाया। इस तरह हम दोनों में दुश्मनी पैदा करवा दी।

एक बार ऐसा हुआ कि एक जगह मजलिस जुड़ी हुई थी। हम दोनों ही उसमें मौजद थे। उन धूर्तों ने पहले तो ऐसी चाल चली कि किसी बात पर हम दोनों ने एक-दूसरे के द्वारा अपना-अपना अपमान समझा, इस कारण दोनों में इन लोगों ने कहा-सुनी करवा दी। बाद को उसे शान्त करवाकर खुद ही फैसला देने बैठ गए और कहने लगे—देखो भाई, कोई आदमी खूबसूरती या पैसे के जोर पर जवाँ-मर्द नहीं समझा जा सकता। हम तो तुम दोनों में उसे मर्द जानें जिसकी जवानी पर कोई बढ़िया रंडी रीझ जाय। आजकल की बाजार की औरतों में काममंजरी सबकी सरताज समझी जाती है, इसलिए काममंजरी तुम दोनों में से जिसे चाहने लगे वही बाजी मार जायगा।

हम दोनों ही इन लोगों की चाल में आ गए। इसे मंजूर करके दोनों ने काममंजरी के पास अपना-अपना संदेशा देकर नौकर भेजे। अन्त को कुछ ऐसा हुआ कि मुझे ही उसने पसन्द किया और मेरे ऊपर ही उसका

रुझान हुआ।

एक निश्चित समय पर हम दोनों जाकर उसके घर पर बैठ गए। दोनों को बारी-बारी से देखकर वह मेरी तरफ बढ़ी। मेरी ओर ही उसने बार-बार तिरछी नजरों से देखा। उसका अपने कटाक्ष-भरे नयनों से बार-बार मेरी ओर देखना, मुझे ऐसा लगा कि जैसे नीले कमलों की माला उसने मेरे गले में डाल दी हो। मेरी ओर उसका रुझान देखते ही मुन्दरक लज्जा से पानी-पानी हो गया; उसने सिर नीचा कर लिया।

बस, फिर क्या था! यह मैदान मारते ही मैं अपनें को बड़ा मालदार, रईस, और तकदीर का सिकन्दर समझ बैठा। मैं उसके यहाँ बड़े शौक से जाने-आने लगा। मैंने अपनी देह, रुपया-पैसा, घरबार, कुटुम्ब परिवार और जिन्दगी तक सब-कुछ उसी पर वार दिया। अन्त को जो हुआ करता है वही हुआ। उस वेश्या ने आखिर मेरे पास केवल लंगोटा ही बाकी छोड़ा। धीरे-धीरे मेरा सब-कुछ उसने लूट लिया। जब मैं अपना सर्वस्व उसके पीछे स्वाहा कर चुका तो एक दिन उसने मुझे अपने घर से निकाल दिया। लोग मेरा खूब मजाक उड़ाने लगे। शहर में जितने बड़े बूढ़े और संजीदा आदमी थे, उन्होंने भी मुझे धिक्कारा। चारों तरफ की यह फटकार और हँसी मुझसे नहीं सही गई, इसलिए में इस विहार में चला आया। यहां एक जैन मुनि रहते थे। उन्होंने मुझे उपदेश दिया और मोक्ष का रास्ता बतलाया। दुनिया की ओर से अब मुझे घोर वैराग्य हो गया है। यहीं पर मुझे एक और खयाल आया। मैंने मन में सोचा कि जो अभागा रंडी के घर तक से निकालकर बाहर किया गया है, उसे तो लंगोटी बाँधना भी नहीं फबता। यह विचार आते ही मैंने कोपीन भी छोड़ दी।

अब मेरी जो दशा है उसे तुम देख ही रहे हो। मैल-कुचैल की ढेरों कीचड़ मेरे ऊपर चढ़ी रखी है। सिर के बाल मैंने सब चुनवा दिये थे, इसलिए खोपड़ी में बेहद कल्लाहट और दर्द रहता है। खाने-पीने का कहीं कुछ ठिकाना नहीं। न कोई बैठने की ही जगह है। सोने के लिए

चारपाई या बिछौने की बात तो बहुत दूर रही । इस वैराग्य की जिन्दगी में मैं ऐसा फँसा हूँ, जैसे कोई जंगली हाथी नया-नया पकड़कर लाया गया हो। यहाँ की इन घोर यंत्रणाओं और कष्टों से बेहद तंग आकर मेरे मन में तरह-तरह के विचार उठते रहे। मैं सोचने लगा कि मैंने तो वैश्य-कुल में जन्म लिया है; मैं द्विजन्मा हूँ। इस जैनपन के पाखंड-भरे रास्ते पर चल पड़ना मेरा काम नहीं था। मेरे पुरखे तो वेद-शास्त्रों और स्मृतियों के बताये हुए मार्ग पर ही चलते रहे हैं। मैं ऐसा अभागा निकला कि मैंने अपना यह हाल कर लिया। यह दिगम्बरी भेस, जिससे सब नफरत करते हैं, मैं अपनाये बैठा हूँ। यही मेरे इन सब घोर दुःखों का घर है। तिस पर अपने प्राचीन देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, वरुण आदि सबकी निन्दा, इन जैनियों में लगातार सुनने को मिलती है। इससे तो मौन के बाद भी मुझे घोर नरक मिलेगा। मैंने जो रास्ता पकड़ा है, उसमें तो ठगी और अधर्म के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता, सब लोग इसका मजाक उड़ाते हैं सो अलग। इससे तो अच्छा यह था कि पाप या अधर्म हो जाने के बाद आगे से मैं अच्छे आचरण करता और धर्म के अनुसार जीवन बिताता।"

इसी तरह के वहुत से विचार हर रोज मेरे दिमाग में चक्कर काटा करते हैं। अपनी बेवकूफी मैं समझ चुका हूँ। आज भी यहां एकान्त में —इन अशोक-वृक्षों के कुंज में—मैं अकेला आ बैठा था और अपनी पिछली नासमझी पर विचार कर रहा था। यही सब सोचते-सोचते मेरे आँसू बह निकले।"

उस विरूपक की इन बातों से और उसकी ऐसी दशा को देखते हुए मुझे उस पर बड़ा तरस आया। मैंने कहा—

"भाई, क्षमा करना। अभी एकदम तो मैं तुम्हारी कुछ मदद शायद न कर सकूँ। इस समय तुम यहीं रहते रहो। कुछ दिनों बाद तुम देखोगे कि वही वेश्या आयगी और तुम्हारे पास से लूटा हुआ

सब धन-जेवर वह तुम्हारे हवाले कर देगी। अभी तो यह बात असंभव-सी जँचेगी, पर दुनिया में ऐसे भी उपाय हैं, जिनसे यह बात होकर रहेगी। तुम थोड़े दिन इन्तजार करो।"

मेरी बात से उसे बड़ी तसल्ली हुई। इसके बाद वह उठकर विहार की ओर चला गया। मैंने भी नगर का रास्ता पकड़ा और चलते-चलते चम्पा में पहुँचकर नगर के अन्दर आया।

यहाँ मैं कई दिन तक रहा। लोगों से बातचीत करके मैंने शहर का बहुत सा हालचाल मालूम कर लिया। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि यहाँ धनी और मालदार तो बड़े-बड़े हैं, पर हैं सब-के-सब बड़े कंजूस। यहां के इन रईसों से हर आदमी जला-भुना बैठा है। सब लोग इनके मारे त्राहि-त्राहि करते थे।

मेरे मन में आया कि इन लखपती बनियों को यह दिखला देना चाहिए कि रुपया-पैसा और धन-दौलत हमेशा रहने वाली नहीं है; यह नाशवान चीज है, जिससे ये लोग ज़रा अपने आपे में आ जायँ। फिर मैंने सोचा कि ऐसा करना सहज तो है नहीं।

कुछ दिनों तक मैं इसी मामले पर सोचता-विचारता रहा। अचानक एक बार मुझे चौर्यशास्त्र के रचयिता आचार्य कर्णीसुत का ध्यान आया। मैंने सोचा कि इस शहर में क्यों न इन्हीं आचार्य के मार्ग पर चलकर अपना काम निकाला जाय? अन्त को यही करने की मैंने अपने मन में ठान ली।

यह हुनर अच्छी तरह सीखने के विचार से मैं जुए के अड्डों पर जाने लगा और जुआरियों के गिरोह में रहकर पांसे के उस्ताद खूब होशियार अच्छे-अच्छे जुआरियों की सोहबत में मैंने बैठना शुरू किया। धीरे-धीरे जुए की सब चालें और चालबाजियाँ मैंने जान लीं और जुआ खेलने की असली कलें—जो गिनती में २४-२५ के लगभग बैठती हैं—मैंने सब सीख लीं।

जुए के इन अड्डों में अब मुझे बड़ा आनन्द मिलने लगा। कौड़ियाँ

किस तरह की हों, उन्हें पकड़ना कैसे चाहिए, कौड़ी डालने की जगह किस तरह की रखी जाय, यह सब मैं ज़ान गया। जुआरियों की असली चीज, उनके हाथ की सफाई हुआ करती है। यह निगाह में बहुत मुश्किल से आती है। इसे भी मैंने पकड़ लिया।

इन जुआरियों की बातें बड़े मजे की होती थीं। कहीं लोग अपनी चालाकी के घमंड में एक-दूसरे पर छींटेबाजी कर रहे होते। कहीं जान की बाज़ी लगी हुई होती और बड़े-बड़े झगड़े-टंटे खड़े होते जाते। किसी जगह नाल लेने वाले बैठे होते; ये जीतने वालों से अपना पैसा बटोरने के लिए और उनके दिलों में जगह बनाये रखने के लिए ऐसे मीठे ढंग से पेश आते कि देखते ही बनता था। इनकी बातचीत में न्याय और इन्साफ की बड़ी चर्चा रहती थी और उसकी शक्ति तथा प्रताप की ये लोग बात-बात में दुहाई देते थे।

इन जुआरियों में कई बातें अजीब देखने में आईं। जब कभी ताकत-वर और गिरोहबन्द जुआरी दाँव हार जाते तो उनके डर के मारे लोग उन्हें धीरज बँधाने और तसल्ली देने की बातें कहा करते, पर जब कमजोर हारते, तो यही लोग उनकी बेवकूफी दिखलाकर उन्हीं को झिड़का करते थे। इनके अन्दर बैठ-बैठकर मैं यह बात खूब सीख गया कि गैर लोगों को भी अपना तरफदार किस चालाकी से बनाया जाता है। जुए में लगातार रहने के कारण मैं भारी या हल्के दावों की घुमाव के साथ ऐसी-ऐसी व्याख्याएँ करने लगा था कि दर्शक लोग भी अपना रुपया दाँव पर लगाने के लिए ललचा उठते। उस समय तो देखते ही बनता था, जब कोई जुआरी दाँव जीत लेता और जीते हुए रुपयों में से हिस्सा बाँटकर देने की उदारता दिखलाया करता। दाँव जीत लेने की खुशी में ये लोग अक्सर अपने आसपास के और जान-पहचान वालों को थोड़ा-बहुत पैसा बाँट दिया करते थे। इन खेलों के बीच में बड़ी गन्दी-गन्दी गालियाँ शुरू हो जातीं और शोरगुल मच जाया करता था। मुझे ये सब बातें देखने-सुनने में बड़ा मजा आता था। इन जुआरियों में बैठते-बैठते मेरा यह हाल हो गया कि अब इस चीज में मेरा मन बेहद

लगता और इससे जी कभी भरता ही नहीं था ।

एक बार की बात है कि अपनी असावधानी के कारण वहाँ एक जुआरी दाँव हार गया। मुझे इस मौके पर कुछ हँसी आ गई। अब तो वह बहुत बिगड़ा। गुस्से के मारे उसकी आँखें लाल सुर्ख हो गईं। मेरी ओर वह ऐसे घूरने लगा मानो जला डालेगा। मुझसे कहने लगा—

"क्यों रे, तू हँसी के बहाने क्या मुझे खेलना सिखाना चाहता है ?" इसके बाद अपने साथी की तरफ इशारा करके बोला—

"यह बिचारा तो नौसिखिया है; इसे फिर समझ लूँगा। तू बड़ा होशियार बनता है, आ पहले तेरे साथ ही खेल लूं।"

जुए घर का ठेकेदार भी उसकी बात मान गया; उसने झट खेलने की अनुमति दे दी। अब वह मेरे साथ जुट गया। परन्तु मैंने ऐसे-ऐसे हाथ दिखाये कि वहाँ के सब लोग दंग रह गए। मैंने खेलते-खेलते उससे १६ हजार की गिन्नियाँ जीतीं। खेल खत्म होने पर इनमें से आधी तो मैंने नाल लेने वाले और दूसरे जुआरियों में बाँट दीं और बाकी अपने लिए रख लीं। इसके बाद मैं उठ खड़ा हुआ। मेरी इस उदारता पर वहाँ के जुआरी और ठेकेदार, सभी बड़े खुश हुए और सबने मेरी बहुत-बहुत तारीफ की। इसके बाद वहाँ के ठेकेदार से उन लोगों ने कहा—'आज तो दावत होनी चाहिए।' उसने इस बात के लिए मुझसे अनुरोध किया। मैंने इसे झट स्वीकार कर लिया और वहीं जुए के अड्डे पर खूब दिल खोलकर मैंने सबको दावत दी। इसके बाद मैं घर लौट आया।

मुझे जुए का यह चस्का लगाने वाले आदमी का नाम विमर्दक था। यह बड़ा भरोसे का आदमी था उसे मेरा जिगरी दोस्त समझना चाहिए। इस विमर्दक के द्वारा ही चम्पा का अन्दरूनी और असली सब हाल मुझे मालूम हुआ। शहर में कहाँ-कहाँ क्या-क्या काम होते हैं, या कौन-कौनसी घटनाएँ घटित होती हैं, यह भी उसी से पता चलता था। वहाँ के आदमियों के स्वभाव और उनकी प्रकृति भी मुझे विमर्दक द्वारा ही मालूम पड़ी। मतलब यह कि शहर और यहाँ के आदमियों से अब मैं अच्छी तरह

वाकिफ हो गया था।

यहाँ यह बात भी बतला देना जरूरी है कि इस जुए के अड्डे पर जुआ खेलने के साथ-साथ मैंने चोरी आदि के हुनर भी अच्छी तरह सीख लिए थे।

अब मैंने अपने पिछले निश्चय के अनुसार चोरी की मुहिम पर निकलने का इरादा किया और एक रात को जब बहुत घना अँधेरा था, मैं चल दिया। वह रात मुझे बहुत अच्छी तरह याद है। उसका अन्धेरा इतना गहरा और घना था कि शायद महादेव जी के गले की कालोंछ भी इतनी ज्यादा काली न होगी।

बाहर चलने से पहले मैंने नीले रंग के कपड़े का लबादा ओढ़ा और एक तेज कटार बांध ली। चोरी में काम आने वाला सामान लेना भी जरूरी था, इसलिए मैंने सेंध लगाने का सफेदा, कतरनी, जंबूर, नपैना, गोह, रस्सी, आदमी के सिर का लकड़ी का खोल, बेहोश करने वाली बुकनी, जादू की सलाई, जेबी लालटेन, दिया बुझाने वाले पतंगों की डिबिया आदि सब सामान साथ बाँध लिया और चल दिया। जाकर मैंने एक बड़े कंजूस रईस के मकान में सेंध लगाई। सेंध के छेद में से एक दूरबीन के सहारे घर के भीतर की सब गतिविधि मैं देखता रहा। जब मैंने ठीक मौका देखा तब बेधड़क मानो वह मेरा अपना घर हो, उस कंजूस के घर में घुस गया। अन्दर टटोलने पर सहज ही वह बसनी मेरे हाथ लग गई जिसमें माल भरा था। इसे लेकर मैं बाहर निकल आया और सड़क पर आ गया।

रात इस समय भी अँधेरी ही थी और आसमान में काले-काले बादल घिरे हुए थे। इनके कारण उस सड़क पर अँधेरा और गाढ़ा हो गया था। चलते-चलते मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सामने बिजली कौंध गई हो। मेरे आगे एकदम प्रकाश-सा चमक उठा।

बात यह हुई कि एक जवान औरत जिसकी देह पर सोने के जड़ाऊ गहने जगमगा रहे थे, एकाएक मेरे सामने पड़ गई। मुझे तो यह खयाल हुआ

कि यह शायद इस नगर की देवी जी हैं, जो रात के इस सन्नाटे में प्रकट हो गई हैं और चोरी की वारदातों से रुष्ट होकर इस बाधा-विघ्न-विहीन समय में बाहर निकल खड़ी हुई हैं।

वह स्त्री भी शायद मुझे देखकर एकदम सहम गई थी, इसलिए मैंने यही मुनासिब समझा कि उससे बात करूँ। बड़ी नरमी के साथ कुछ दया-भाव दिखलाते हुए मैंने उससे पूछा—"देवी, तुम कौन हो और कहाँ जा रही हो?"

मेरा अनुमान ठीक था। उस स्त्री का गला डर के मारे रुँध गया था। वह बोली—"महानुभाव, इस नगर में कुबेरदत्त नाम के एक वैश्य रहते हैं। वे एक भारी रईस और नामी आदमी हैं। मैं उन्हीं की कन्या हूँ। जिस समय मैं पैदा हुई थी, उसी समय मेरे पिता जी ने यहाँ के एक धनी युवक को वचन दे दिया था कि वे मेरी शादी उसी के साथ करेंगे। उस समय वे भी बहुत मालदार थे। पर जब उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया, तो बाद में उनका खर्च बढ़ गया। वैसे भी वे खुले दिल के आदमी थे और उदारता के साथ खर्च करते थे, इसलिए गरीब-मोहताजों को उन्होंने बहुत सी सम्पत्ति दे डाली। अन्त में वे गरीब हो गए। अपने रुपये से उन्होंने गरीबों की गरीबी एक तरह से खुद ही खरीद ली थी। उदार वे इतने थे कि लोग उनकी बेहद बड़ाई करते थे। यहाँ तक कि उनका नाम ही 'उदारक' पड़ गया था। इन्हीं नवयुवक के साथ मेरा ब्याह होना था।

पर अब, जब मैं सयानी हुई और माता-पिता ने देखा कि उदारक निर्धन हो गए हैं तो उन्होंने उनके साथ तो मेरा ब्याह नहीं किया, बल्कि एक और व्यक्ति के साथ वे अब मेरा सम्बन्ध कर देना चाहते हैं। इनका नाम 'अर्थपति' है। ये अपने नाम के अनुरूप खूब मालदार हैं और सौदागरों की एक कम्पनी के मालिक भी हैं। ये कहीं बाहर के रहनेवाले बनिए हैं। मेरा यह मनहूस ब्याह इनके साथ आज सवेरे ही होने वाला था। मेरे मनोनीत पति को इस बात का पता चल गया। उन्होंने मुझे घर से निकल चलने का संदेश भेजा, इसलिए अपने घर वालों को झाँसा देकर और

उनकी आँख बचाकर मैं निकल आई हूँ। इस रास्ते को मैं छुटपन से ही जानती हूँ। इधर मेरे मन में उनसे जा मिलने की लौ भी लगी हुई है। ऐसे समय में प्रेम के देवता भी मेरे मददगार हैं। इसी कारण इस अँधेरी रात में मैं उनके घर की ओर निकली जा रही हूँ। आप मुझे जाने दें। यदि चाहें तो मेरे ये सब गहने आप ले लीजिए।" यह कहते-कहते उसने अपने सब जेवर उतारकर मेरे हाथ में थमा दिए।

मुझे उस स्त्री की सब बातें सच मालूम हुईं और उसके ऊपर बड़ा रहम आया। मैंने उससे कहा—"बेटी, डरो मत, चलो, तुम मेरे साथ-साथ आओ। मैं तुम्हें उनके घर तक पहुँचाये देता हूँ।"

यह कहकर मैं उसके आगे-आगे चल दिया। हम अभी तीन-चार कदम ही बढ़े होंगे कि उसी समय पुलिस के बहुत से चौकीदार आ पहुँचे। उनके हाथों में खूब तेज़ मशालें थीं। इनकी रोशनी से वहाँ का सब अन्धेरा पल-पल में गायब होता जा रहा था। प्रायः सभी सिपाहियों ने हाथों में डंडे ले रखे थे। कुछ के हाथों में तलवारें भी थीं।

इन्हें दूर से देखते ही वह लड़की काँपने लगी। मैं धीरे-धीरे उससे बोला—"बेटी, डरना मत। मेरे भी ये दो हाथ भगवान ने दिये हैं। और तलवार मेरे पास भी है। तेरा ख्याल करते हुए मैंने एक सहज तरकीब भी सोच ली है। देख, मैं अभी-अभी जमीन पर लेट जाता हूँ, और ऐसा जाहिर करूंगा कि जैसे मुझे साँप ने डस लिया है। जब ये लोग पास आ जायँ और पूछें तो इनसे कहना, आज ही रात को हम शहर में आये थे। अमुक पंचायत-घर में जाकर हम उतरे। ये मेरे मालिक हैं। इन्हें वहीं एक कोने में अचानक फनियर साँप ने काट खाया। यहाँ मेरा अपना या सगा सम्बन्धी और कोई नहीं था, इसलिए मैं ही इन्हें धीरे-धीरे ज़हर उतारने वाले के पास लिये जा रही थी, परन्तु यहाँ बीच में ही ये बेहोश होकर गिर पड़े हैं। आप में से अगर कोई मन्त्र-तन्त्र या झाड़-फूंक करना जानते हों तो मुझ पर रहम करें, और इन्हें जिला दें। मैं उनका गुन-एहसान जिन्दगी-भर नहीं भूल सकती। इनके जीवन के लिए मैं अपनी जान तक

दें देने को तैयार हूँ।

मेरी यह बात उस लड़की ने तुरन्त मान ली, और वह ऐसा करने पर तैयार हो गई। इस समय तक भी वह बेहद डरी हुई थी, लेकिन कठिनाई यह थी कि उसके सामने और कोई चारा नहीं था। इस कारण मेरे कहने के अनुसार उसने यही सब करने का संकल्प किया। अस्तु,

उन लोगों के आ पहुँचने से पहले ही मैं साँप काटे हुए आदमी की तरह बहाना करता हुआ लेट गया। वे जब आये तो उस लड़की ने वैसे ही सब बातें कह दीं। डर के मारे उस समय उसकी आवाज़ थरथरा गई थी और वह खड़ी-खड़ी काँप रही थी। परन्तु भाग्य से उन लोगों ने यह खयाल किया कि यह बिचारी अपने आदमी की मुसीबत के कारण और अँधेरी रात में यहाँ अकेली होने से डर गई है।

उन पुलिस वालों में एक आदमी झाड़-फूँक जानता भी था। वह अपने को पूरा विष-वैद्य समझ बैठा था। उसने आगे बढ़कर मुझे देखा, और मेरे ऊपर अपने तन्त्र-मंत्र झाड़-फूँक की आजमाइश की, पर ये सब बेकार रहे।

यह देखकर वह बोला—"यह तो बिलकुल ही मर चुका है। जान पड़ता है कि काले नाग ने इसे सूंघा है, देखो न कैसा गुमसुम और बेजान पड़ा है। इसकी देह भी नीली पड़ चुकी है।"

फिर उसने मेरी आँख की पुतली देखी और कहने लगा—"इसकी तो निगाह भी जाती रही। सारे-का-सारा जिस्म ठंडा पड़ चुका है। अब इसमें दम नहीं रहा।"

इसके बाद वह उस लड़की से बोला—"बेटी, अब तू रंज मत कर। इस समय तो कुछ नहीं हो सकता, कल आकर हम लोग इसका दाह कर देंगे। जो होना था वह तो हो ही चुका। तकदीर पर किसका बस है?"

इतना कहकर वह और उसके साथी सब पहरेदार आगे की ओर टहल गए। जब वे बहुत दूर निकल गए तो मैं उठ बैठा और उस लड़की को लिये हुए 'उदारक' के घर पहुँचा। मैंने जाते ही सीधे-सादे ढंग पर उसे

यही कहा कि 'भाई, मैं एक चोर हूँ। रास्ते में मुझे यह लड़की आती हुई मिली। इसकी बातों से पता चला कि यह बहुत पहले से तुम्हें अपना हृदय सौंप चुकी है। अपने इस प्रेम के भरोसे पर ही यह तुम्हारे पास आ रही थी। इसे अकेला देख और इसकी रामकहानी सुनकर मुझे इस पर तरस आ गया और मैं इसे तुम्हारे पास तक ले आया हूँ। यह लो इसके सब गहने।'

यह कहते हुए मैंने उसके वे सब जड़ाऊ गहने भी उसे सौंप दिये। इसमें कोई शक नहीं कि ये ज़ेवर बड़े सुन्दर थे। इनमें जुड़े हुए नग बेहतर चमक रहे थे। ऐसा जान पड़ता था मानो ये ज़ेवर अपनी इन आँखों से इस घने अँधेरे को जलाये दे रहे हैं।

वह उदारक या धनमित्र, अपनी उस प्रेयसी को देखकर पहले तो लजाया-सा, कुछ हैरान भी हुआ, फिर बड़ी खुशी-खुशी वह उसे घर के भीतर पहुँचा आया। कुछ देर बाद लौटकर मुझसे कहने लगा—

"महानुभाव, आज रात के ऐसे भयानक समय में आपने जो इन्हें मेरे घर तक पहुंचाया है, इसके लिए मैं आपको किन शब्दों में और क्या कहूँ? मुझसे कुछ कहते नहीं बनता। आपने तो इस समय जैसे मेरी बोलती ही बन्द कर दी है। समझ नहीं पड़ता कि क्या कहूँ? यदि कह दूँ कि आपका यह काम बड़ा अद्भुत हुआ है तो मुझे हैरानी इस बात से होती है कि आपके स्वभाव में कोई विचित्रता या असाधारणता दिखाई ही नहीं देती। यह भी नहीं कहते बनता कि आज तक किसी ने ऐसा क़ाम नहीं किया, क्योंकि हर आदमी किसी विशेष काम को ही कर पाता है, सब कामों को सब आदमी कर ही नहीं सकते। यह बात भी आपके लिए मेरे मुँह से नहीं निकलती कि दूसरे मामूली आदमियों की तरह आप लोभी नहीं हैं, या आज आपने अपनी सज्जनता पूरी तरह से दिखला दी है, क्योंकि मेरी दृष्टि में आपने जैसा भारी और महत्त्व का काम किया है, उसको देखते हुए ऐसी बात कहना शोभाजनक नहीं जान पड़ता। आपने उदारता दिखलाई है, ऐसा कह देना भी तब तक मुनासिब नहीं जब

तक कि आपके मन की पूरी बात का पता न चल जावे। आजकल यह कह देने की बहुत चाल है कि श्रीमन् जी, आपने तो इतना भारी उपकार करके इस दास को सदा के लिए मोल ले लिया है। पर मैं यह बात भी कहने के अयोग्य हूँ, क्योंकि मैं बहुत ही सादा और तुच्छ व्यक्ति हूँ। मुझ इस नाचीज़ को आप इतनी भारी कीमत देकर खरीद सकते हैं, यह सोचना भी आपकी बुद्धि का अपमान करना है। कभी-कभी यह कहने को मन होता है कि मेरी प्राणेश्वरी मुझे पहुँचा देने के बदले आप मेरा यह शरीर ले लीजिए। पर सोचता हूँ कि यदि मेरी यह प्रियतमा मुझे न मिलती तो मेरा यह शरीर ही न बचता, यह तो एक तरह से आप की ही देन है, इसे आपके अर्पण क्या करूँ ? अन्त में मैं इसी नतीजे पर आ पाया हूँ कि अब आगे से आप मुझे अपना सेवक समझें और सेवक की तरह ही मेरे ऊपर अपनी कृपा-दृष्टि बनाये रहें। मैं आज से सचमुच ही आपका दास हुआ।"

यह कहते-कहते वह मेरे पैरों पर आ पड़ा।

मैंने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वास्तव में वह आदमी बड़ा सज्जन था और दूसरे के उपकार को बहुत मानता था। उस दिन से वह मेरा पक्का मित्र बन गया।

कुछ देर बाद मैंने उससे पूछा—"अच्छा, यह तो बतलाओ, अब तुम्हें करना क्या है ?"

वह कहने लगा—"मैं देख रहा हूँ कि अब यह देश मुझे छोड़ना पड़ेगा। सोचता हूँ कि आज ही रात को चल दूँ, क्योंकि इसके माँ-बाप की बिना रज़ामन्दी, इसके साथ ब्याह करके मैं जिन्दा नहीं बच सकूंगा। या फिर आप ही बतलाइए मैं क्या करूँ ? क्योंकि अब तो जो आप कहेंगे वही मुझे करना है।"

मैंने कहा—"ठीक है, पर मेरा विचार तो यह है कि जो लोग होशियार और समझदार होते हैं, वे किसी एक ही जगह को स्वदेश या विदेश की निगाह से नहीं देखा करते। तुम भी यह झगड़ा छोड़ो। अब

कल्पना करो कि तुम अपनी प्रेयसी के साथ आज इसी समय चल खड़े होते हो। सोचो क्या हाल होगा? बात यह है कि एक तो वह बेहद नाजुक है, फिर जगह-जगह जंगली रास्ते पड़ेंगे। इनमें चलने से तुम्हें और उसे बड़ा कष्ट होगा और यात्रा की बहुत सी मुसीबतें सामने आवेंगी। यह देश छोड़ना तो तुम इसीलिए चाहते हो न कि मुसीबत से बचो? पर ऐसा करने में तो शुरू से ही विपत्ति-पर-विपत्ति दिखाई देती है। इस तरह करने में देह का बल भी नष्ट होगा और दिमाग को भी परेशानी रहेगी। इन बातों से आगे बड़ी निराशा का सामना करना पड़ेगा। इस सबसे यही अच्छा है कि अपनी स्त्री को भी यहीं रखो और स्वयं भी यहीं रहो। मेरा यह विचार है कि इसे अभी इसके पिता के घर ही पहुँचा दो। थोड़े दिन यह वहीं रहे। वहाँ से युक्तिपूर्वक तुम्हारे साथ ही इसका ब्याह करवाया जाय। इसलिए चलो, इसे लेकर इसके मकान पर ही चलें।"

मेरी बात सुनकर धनमित्र ने तनिक भी आगा-पीछा नहीं किया और मेरी राय के साथ तुरन्त अपनी भी सहमति प्रकट कर दी।

इसके बाद हम दोनों उस लड़की को उसी समय उसके घर पर ले गए। वह अन्दर मकान में चली गई। इसी समय हम दोनों ने एक काम यह किया कि उस लड़की को अपना एक तरह का जासूस बनाकर उसके बाप के घर का भेद ले लिया। उस स्त्री के पास कुछ अपना निज का रुपया भी था; इसे वह आते समय घर पर ही छोड़ आई थी। यह धन मिट्टी के बर्तनों में जमीन के अन्दर गड़ा रखा था। उससे भेद पाकर हम दोनों उसे वहाँ से चुरा लाये और शहर के बाहर एक जगह ले जाकर दबा दिया।

यह काम करके जब हम शहर को लौटे तो बीच में फिर पुलिस मिली। हमने सोचा, अब क्या करें? पर भाग्य से वहीं पर रास्ते में एक मस्त हाथी पड़ा था। उसके ऊपर महावत लेटा हुआ था। पुलिस को देख, हम दोनों उसकी रस्सी पकड़कर उसके ऊपर चढ़ बैठे। हाथी के गले में जो रस्सी बंधी थी, उसमें पैर डालकर मैंने ज्यों ही उसे उठाया, त्यों ही उसने महावत को नीचे गिराकर उसकी चौड़ी छाती पर अपने दांत का तिरछा

वार किया। इस चोट से महावत का पेट तक चिर गया और उसकी अन्तड़ियां निकलकर हाथी के दाँत में ही लग गईं। हाथी यहीं तक नहीं रुका, वह उन पुलिस वालों पर टूट पड़ा और उनके पीछे-पीछे भागकर उसने उन्हें तितर-बितर कर दिया। इस मस्त हाथी पर चढ़े हुए हम दोनों उस ओर निकल गए जिधर अर्थपति का घर था। कुबेरदत्त अपनी उस लड़की का अब इसी अर्थपति के साथ ब्याह करना चाहता था। हमने इस मस्त और पागल हाथी के द्वारा अर्थपति का मकान तहस-नहस करवा डाला। इसके बाद हम उसे एक पुराने बाग में हाँक ले गए। यहाँ ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की डाल पकड़कर हम दोनों इस पर से उतर गए और अपने घर आकर तथा नहा-धोकर दोनों सो गए। उस रात-रात में हमने इतना काम कर डाला।

सवेरा होने पर हम उठे। सूरज नारायण अभी पूरे नहीं निकले थे। उनका लाल चमकीला बिम्ब पूर्व के समुद्र में से उठ रहा था। ऊपर निकलकर यह ऐसा मालूम देने लगा मानो उदयाचल की यह माणिक्य की बनी हुई लाल-लाल चोटी है। इसे देखकर खयाल होता था कि सामने शायद कल्पवृक्ष खड़ा है और उसके ऊपर ये ढेर-की-ढेर सोने की कोंपलें निकली हुई हैं।

उठकर हम दोनों ने हाथ-मुँह धोये और नहा-धोकर संध्या-पूजा की। इस समय तक शहर में भी चारों ओर लोग उठ चुके थे और अपने-अपने काम-काज में लग रहे थे। कारबारी लोगों की भीड़-भाड़ के कारण शोरगुल होना आरम्भ हो चुका था।

मैं और धनमित्र घर से निकल पड़े और एक-दूसरे के पीछे-पीछे शहर में घूमते हुए चल दिए। जाकर देखा तो अर्थपति और कुबेरदत्त के घरों पर, अर्थात् वर और कन्या दोनों पक्षों में बड़ा हल्ला-गुल्ला मचा हुआ है। कुबेरदत्त के घर चोरी हो गई थी, इसलिए अर्थपति ने तुरन्त बहुत-सा रुपया-पैसा भेजकर, कुबेरदत्त का नुक्सान भरा और उसे तसल्ली दी। परन्तु साथ-साथ यह ठहरा दिया कि आज तो नहीं, थोड़े दिनों बाद,

इसी महीने के भीतर-भीतर कुबेरदत्त अपनी लड़की का ब्याह उसके साथ कर देगा।

इस प्रकार धनमित्र की भावी पत्नी के व्याह का झंझट एक महीने के लिए टल गया।

अब मैंने एक और प्रपंच रचा। धनमित्र को अकेले में बुला, उसे बढ़िया ढंग की बनी हुई एक चमड़े की थैली का बड़ा सा बटुआ देकर मैंने उससे कहा कि वह इसे ले जाकर अपने यहाँ के महाराज के पास जाय और उन्हें यह भेंट करके कहे——

"महाराज, मैं यहाँ के करोड़पति वसुमित्र का लड़का हूँ। मेरा नाम धनमित्र है। आप तो जानते ही हैं कि मेरे पिता जी करोड़ों की सम्पत्ति के मालिक थे। उनके देहान्त के बाद मैं भी उन्हीं की तरह बहुत सा दान आदि करता रहा। दुर्भाग्यवश मेरा कारोबार बिगड़ गया, और असली पूंजी भी मारी गई। अब मेरा यह हाल है कि भिखारी तक मेरी बात नहीं पूछते। मेरा रुपया मारे जाने पर भी अब एक और अन्याय मेरे साथ होने जा रहा है। व्यापारी कुबेरदत्त, जिसने मेरे पिता जी के समय में अपनी लड़की मेरे साथ ब्याहने की बात पक्की की थी, अब अपने वचन से मुकर रहा है। वह उसे अब अर्थपति नामक एक और धनी के साथ ब्याह देना चाहता है। जब मुझे इस बात की खबर मिली तो मुझसे यह अपना और अपने बाप-दादों का अपमान सहन नहीं हुआ; मैं प्राण दे देने के लिए शहर के पास एक सुनसान घने जंगल में पहुँचा। वहाँ ज्योंही अपने गले पर मैंने तलवार चलानी चाही कि एक जटाधारी साधु कहीं से आ निकले। उन्होंने मुझे ऐसा करने से रोक दिया, और कहने लगे——'तू यह आत्महत्या करने पर क्यों उतारू हुआ है?'

मैंने कहा–'मैं निर्धन तो हो ही गया हूँ, साथ ही बड़ा भारी अपमान भी मुझे सहना पड़ा है। इसी से जीने की इच्छा नहीं होती।'

जान पड़ता था कि वे महात्मा बड़े दयालु थे। उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा——'बेटा, तू अभी नासमझ है। अपनी हत्या से बढ़कर कोई दूसरा

'पाप दुनिया में नहीं है। जो लोग समझदार होते हैं, वे अपने-आपको व्यर्थ में सताते नहीं हैं, और मुसीबतों से अपना छुटकारा कर लेते हैं। धन पैदा कर लेने के तो संसार में बहुत से उपाय हैं, परन्तु कटा हुआ गला दुबारा जुड़ जाय और आदमी फिर से जी उठे, ऐसा एक भी उपाय नहीं। ऐसी दशा में इस तरह अपना गला काट डालने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? यह काम मत करो। सम्भव है कि रुपया तुम्हें अभी इसी समय न मिले, इसलिए मेरी बात ध्यान से सुनो।

मुझे एक मंत्र सिद्ध हो गया है। इसके प्रभाव से मैंने एक चमड़े का थैला या बटुआ बनाया है। इसे 'जादू का बटुआ' समझो। यह लाखों रुपये दे देता है। मैं जिन दिनों आसाम में था तो वहां के गरीब लोगों की मैंने इसी बटुए से मदद की। निर्धन गरीबों को उनकी ज़रूरत की सब चीज़ें मैं इसी के सहारे दिया करता था। बहुत समय तक मैं यही करता रहा। इधर बुढ़ापे में आकर मुझे हविस ज़्यादा बढ़ गई और मैंने चाहा कि सारी दुनिया का इससे भला हो जाय। यह एक तरह से मेरी मूर्खता थी, क्योंकि मैं इस सारी धरती पर स्वर्ग को उतार लाना चाहता था। पर अब देखता हूँ कि मुझ अकेले से यह काम पूरा नहीं हो सकता। तू ही इसे ले जा।

इस बटुए में एक यह भी विशेषता है कि मुझे छोड़कर इससे एक तो बनिये मालदार हो सकते हैं, दूसरे वेश्याओं को भी यह फलता है। इस बटुए के होते हुए एक बात ध्यान में रखना। वह यह कि अन्याय और बेइन्साफी से यदि किसी का पैसा तुम्हारे हाथ लगा हो तो वह उसी के मालिक को लौटा देना। साथ ही न्यायपूर्वक ईमानदारी से जो पैसा कमाओ उसे भी पूजा, पाठ, धर्म, कर्म के कामों में लगाते हुए ब्राह्मणों को दान देते रहना।

इस बटुए से धन कमाने की विधि यह है कि इसे ले जाकर किसी शुद्ध पवित्र जगह में उसी तरह स्थापित करना जिस तरह देवता की मूर्ति स्थापित की जाती है। इसके पश्चात् यदि इसका नियम से पूजन करते रहोगे तो यह सवेरे के समय सोने से भरा हुआ मिला करेगा। बस यही

इसकी विधि है ।'

यह कहते हुए उन साधु महात्मा ने वह बटुआ मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं हाथ जोड़े हुए उनकी बातें सुन रहा था; मैंने तुरन्त सिर झुकाकर इसे ले लिया। बटुआ देकर वे साधु मेरे देखते-देखते पहाड़ की एक कन्दरा में चले गए ।

घर आकर मैं इसके बारे में सोचता-विचारता रहा। मैंने सोचा कि यह बटुआ मामूली बटुआ तो है नहीं; यह भी एक तरह का 'रत्न' है, और रत्न का उपयोग राजा की आज्ञा बिना करना नहीं चाहिए। इस विचार से मैं इसे आपकी सेवा में ले आया। अब महाराज जैसी आज्ञा दें वैसा करूँ ।"

तुम्हारी यह बातें सुनकर महाराज अवश्य यही कहेंगे—"भद्र, तुम्हारे व्यवहार से हम बहुत प्रसन्न हैं । जाओ, तुम इस थैली को ले जाओ और तुम्हीं इसे काम में लाओ ।"

इस पर तुम फिर कहना—"महाराज, आप कृपा करके इस बात का प्रबन्ध कर दें कि इसे कोई चुरा न ले जाय ।"

राजा तुम्हारी बात सहज मान लेंगे और पहरे आदि का कुछ इन्तज़ाम कर देंगे। इसके बाद तुम घर आ जाना। आते ही पहले दान आदि करना, फिर इसकी कायदे के साथ विधिपूर्वक स्थापना करके हर रोज़ इसकी पूजा करना शुरू कर देना। रात को हम दोनों चोरी से जो धन ले आया करेंगे, वही इसमें भर दिया जाया करेगा। सवेरे लोगों के सामने इसे खोल-कर इसमें से उसे निकाला करना। यह बात फैलते देर तो लगेगी नहीं। धीरे-धीरे कुबेरदत्त के कानों तक भी पहुँचेगी। वह एक लोभी ठहरा। तुम्हारे मालामाल होने की बात सुनते ही अर्थपति को छोड़कर वह तुम्हारी तरफ दौड़ेगा और धन पाने के लोभ में लड़की के साथ ही फिर तुम्हारी आव-भगत कर निकलेगा ।

जब अर्थपति को यह बात मालूम पड़ेगी तो वह ज़रूर चौंकेगा और नाराज़ भी होगा। वह खयाल करेगा कि मैं क्या किसी से कम अमीर

हूँ ? अपने रुपये-पैसे की ज़्यादती के घमण्ड में आकर वह कुछ ऐसी तदबीरें करेगा जिससे तुम्हारे साथ कुबेरदत्त की लड़की का ब्याह न होने पावे। उस समय हम फिर ऐसी चाल चलेंगे और ऐसी तरकीब की जायगी कि अब की बार अर्थपति का दिवाला ही पिट जाय।

एक बात और है, हम लोग लगातार जो चोरियाँ करते, उनके बारे में बहुत सम्भव था कि लोगों को शक पैदा होने लगता; पर इस बटुए की करामात का खयाल करके लोग यही समझते रहेंगे कि इन लोगों के पास रुपया इस जादू के बटुए की बदौलत ही आता है। इस तरह चोरी की बात भी ढकी रहेगी।"

मेरी इस तरकीब को सुनकर धनमित्र बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने इसी के अनुसार सब काम करना शुरू कर दिया।

इधर मैंने एक काम यह किया कि जुए के अपने पुराने साथी विमर्दक को अर्थपति के पास भेजकर उसके यहां नौकर रखवा दिया और उससे कह दिया कि तू ऐसी बातें करना जिनसे अर्थपति और धनमित्र में आपस की दुश्मनी और बढ़े। वह इसी तरह करने भी लगा।

धनमित्र ने अब धीरे-धीरे उस 'जादू के बटुए' का सब प्रपंच अच्छी तरह फैला दिया। रोज़ सवेरे-सवेरे यह बटुआ ढेरों सोना देने लगा। इसके चमत्कार की बात धीरे-धीरे कुबेरदत्त के कानों तक भी जा पहुँची। उसने धनमित्र के फिर मालदार हो जाने की खबर पाते ही अर्थपति की ओर से अपना मुंह मोड़ा। वह अब फिर यह ज़ाहिर करने लगा कि मैं तो धनमित्र को ही अपनी लड़की ब्याहना चाहता हूँ। उसका बदला हुआ रुख अर्थपति भी समझ गया। उसने इन दोनों के ब्याह में अड़ंगा लगाना शुरू किया।

इन्हीं दिनों एक और घटना हुई। नगर की नामी वेश्या काममंजरी की एक छोटी बहिन थी। उसका नाम रागमंजरी था। ऐसी खबर सुनने में आई कि ज़िले-भर के नामी और मशहूर लोगों की ओर से बुलाई गई एक महफिल में उसका नाच-गाना होगा और वह अपनी कला का प्रदर्शन करेगी। यह सुनते ही शहर के तमाम आदमी बड़ी उत्सुकता से महफिल

में आये। अपने मित्र धनमित्र के साथ मैं भी उसमें गया। नियत समय पर रागमंजरी स्टेज पर उतरी और उसका नाच शुरू हुआ। इसे देखते-देखते मेरी विचित्र दशा हो गई। मेरा मन एक तरह से दूसरा रंगमंच बन गया। वह लड़की बेहद खूबसूरत थी और उसका तिरछी नज़रों से देखना तो गज़ब का ही था! उसके इन कटाक्षों का बार-बार गिरना क्या था, मानो नीले कमलों की वर्षा हो चली हो। मेरी आँखों के सामने उन श्यामल कमल फूलों का एक परदा-सा छा गया। उसकी गाई हुई श्रृंगार रस की चीज़ें और ऊपर से तरह-तरह की भावभंगियाँ इन सबने मिलकर मेरे लिए न जाने कहाँ से कामदेव को लाकर खड़ा कर दिया। उन्होंने उस नीले परदे को भेदकर मेरे सीने को अपने अनगिनत वाणों से छेद डाला। मैं उस समय आपे में नहीं रह गया। रागमंजरी के उन हावभावपूर्ण नीले कमलों जैसे श्यामल कटाक्षों से मुझे एक बार तो ऐसा लगा, मानो एक काली-सी ज़ंजीर बनकर कहीं से आ गई है। खुद रागमंजरी मुझे नगरदेवता-सी जान पड़ी। उस तन्मयता की हालत में मुझे कुछ निराली ही कल्पना हो आई। मुझे खयाल आया कि अरे मैं तो शहर-भर में चोरियाँ करता फिरता हूँ। शायद इसी से रुष्ट होकर ये नगर की देवी आ गई हैं और इन्होंने मुझे इस काली-काली ज़ंजीर में बाँध लिया है।

मैं इन्हीं कल्पनाओं में उलझा हुआ था कि नाच खत्म हुआ। लोगों में चारों ओर से उसकी बड़ी बड़ाई होने लगी। अपनी इस सराहना से रागमंजरी भी खिल उठी। इसके बाद मैं नहीं कह सकता कि अचानक ही या इरादतन, जान-बूझकर अथवा दिली चाह की वजह से उसने मुझे कई बार देखा। उसका यह देखना यों ही कौतुकवश या खेल-खेल में हुआ हो, ऐसी बात तो शायद नहीं थी। क्योंकि अपनी भौं को कमान की तरह तान-कर पूरे हावभाव के साथ उसने कई बार तिरछी निगाहें मेरे ऊपर डालीं। एक बात और, उसने मुझे देखा भी चुपके से। उसकी सहेलियाँ तक यह बात नहीं जान पाईं। देखने के साथ ही बहाने से उसने अपने उजले दांत भी ज़रा-ज़रा खोले, मानो चाँदनी खिल उठी हो। फिर तनिक सा

मुस्कराकर वह बैठ गई ।

मैंने अनुभव किया कि रागमंजरी के नाच से अकेले मेरा ही यह हाल नहीं था, वहाँ बैठे तमाम दर्शकों की आँखें उसी पर लगी थीं और सभी के दिल उसके पीछे-पीछे घूम रहे थे ।

अपनी उसी हालत में मैं घर आया । अब मेरे मन में केवल एक रागमंजरी का ही खयाल चक्कर काटने लगा । मैं जितना इसे हटाता, उतने ही हठ के साथ यह बार-बार आ धमकता । इसने मेरी भूख-प्यास सब हर ली । अपने को छिपाने के लिए मैंने सिरदर्द का बहाना किया और एक अकेली जगह में जाकर पड़ गया । चारपाई पर लेटते ही मेरे हाथ-पाँव सब ढीले पड़ गए ।

धनमित्र मेरी इस हालत को ताड़ गया । वह प्यार-मुहब्बत की बातों को अच्छी तरह समझता था और काम-शास्त्र में खूब गहरा पैठ चुका था । वह मुझे ढूंढता हुआ वहीं अकेले में आ पहुंचा और कहने लगा——

"कहो दोस्त, यह क्या हाल हो गया है ? खाना-पीना तक सब छूट गया ? तुम चाहे कुछ कहो या न कहो, पर मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि वह गाने वाली लड़की भी तकदीर की बड़ी सिकन्दर है, जिसके लिए तुम्हारा दिल इतना हठ बाँध गया है । अच्छा, एक बात का तो तुम इतमीनान रखो, तुम्हारी तरह वह लड़की भी जल्दी ही घायल दिखाई देगी । महाराज कामदेव उसे भी तीरों के बिछौने पर सुलाये बिना छोड़ेंगे नहीं, क्योंकि उसके रंग-ढंग भी मैंने अच्छी तरह देख लिए हैं ।"

थोड़ी देर चुप रहकर धनमित्र फिर बोला——

"वैसे तो मैंने यह बात देखी है कि जब दो स्त्री-पुरुष एक-दूसरे को पाने के लिए एक-सा हठ पकड़ लें तो उनके मिलने में फिर कुछ कठिनाई नहीं रह जाती । पर यह रागमंजरी कुछ अनोखे ढंग की है । हालाँकि यह एक वेश्या की लड़की है, पर इसमें उन लोगों की तरह रुपये पर गिर पड़ने की आदत नहीं जान पड़ती । एक बार की बात है कि उसकी बहन ने उसके लिए किसी मालदार गाहक को पटाया । जब यह रागमंजरी ने सुना

तो वह कुलीन और ऊँचे घर की स्त्री की तरह बड़े आत्माभिमान और गौरव के साथ बोली—"मैं रुपये-पैसे का नज़राना नहीं चाहती, मैं तो गुणों की भूखी हूँ। बिना विवाह-सम्बन्ध किये कोई मेरी जवानी पर हाथ नहीं डाल सकता।"

जब उसकी ये बातें काममंजरी और उसकी माँ माधवसेना के कानों में पड़ीं तो उन्होंने उसे समझाना शुरू किया। इन दोनों ने बहुत चाहा कि वह इस तरह का हठ छोड़ दे, पर वह किसी तरह नहीं डिगी। अन्त में हारकर वे दोनों रोती-झींकती हुई राजा के पास फरियाद लेकर पहुँचीं और कहने लगीं—

"महाराज,आपको अपनी दासी रागमंजरी का तो खयाल ही होगा। इसको भगवान् ने जैसा रूप दिया है, उसी तरह गाना-बजाना, दस्तकारी और दूसरे हाथ के काम भी इसे बहुत अच्छी तरह आते हैं। स्वभाव की भी नम्र और सुशील है। हम दोनों को इससे बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं। इससे यह आशा भी थी कि यह हमारी मनचाही को पूरा करेगी। पर आज हमारी उन सब आशाओं पर पानी फिर गया है; हमारे वेश्याओं के खानदान में, पुराने समय से जो कुल-रीति चली आ रही है वह अब टूटा चाहती है। क्योंकि यह रागमंजरी अब रुपये-पैसे से ध्यान हटा रही है। धन-दौलत के मुकाबले में यह अब अपनी जवानी को गुणों के ऊपर न्यौछावर कर देने के लिए उतारू हो गई है। जिस तरह ऊँचे घरानों की गृहस्थिन औरतों में होता है, उस ढंग से अब यह चलना चाहती है। उन्हीं की तरह आचार-विचार के पावन करने पर यह आमादा है और किसी का कहना नहीं मानती, न कोई बात सुनती है। इसे हम दोनों ने बहुत मनाया, समझाया, पर यह टस से मस नहीं होती। अगर महाराज की कृपा हो जाय और आप हुक्म कर दें, तो शायद वह ठीक राह पर चल निकले। इसी से हम आपकी सेवा में आई हैं।"

इन दोनों के अनुरोध से राजा ने भी उसे समझाया, पर उसने उनके कहने पर भी ध्यान नहीं दिया। वह उसी तरह अपने हठ पर जमी

रही—'मैं तो ब्याह हो जाने पर ही किसी से मिलूँगी ।'

तब इसकी माँ और बहन रोती-पीटतीं फिर राजा के पास पहुँचीं, और कहने लगीं—"महाराज, हमारी इतनी प्रार्थना तो मंजूर होनी ही चाहिए कि अगर कोई ऐयाश आदमी हमारी मरजी के खिलाफ इस बच्ची को बहका ले और धोखा देकर इसे बिगाड़े तो उसे चोर की तरह कत्ल किये जाने का हुक्म आप दे दें ।"

इतनी बात सुनाकर धनमित्र मुझसे कहने लगा—"इस हालत में इतनी बात तो साफ ही है कि रागमंजरी की ये माँ और बहन बिना रुपये के आपके साथ उसे नहीं मिलने देंगी । यह भी निश्चित है कि केवल रुपया-पैसा भेंट कर देने वाले के साथ भी वह राजी नहीं होगी । ऐसी दशा में क्या उपाय किया जाय, यह सोचना चाहिए ।"

मैंने धनमित्र से कहा—"इसमें अधिक सोचने-विचारने की तो कोई बात मालूम नहीं पड़ती । सीधा-सादा रास्ता यही है कि रागमंजरी को तो अपने रूप, गुण, शील और सौजन्य के द्वारा अपनी तरफ झुका लें और उसकी माँ-बहन को गुप्त रूप से रुपया-पैसा देकर सन्तुष्ट कर दें ।"

यह बात धनमित्र की समझ में आ गई ।

इसके बाद मैंने एक काम किया । चुपके-चुपके पता लगाया तो मालूम हुआ कि काममंजरी की एक कुटनी है । यह उसकी गुप्त दूती थी । इसका नाम धर्मरक्षिता था । यह बौद्ध भिक्षुणी थी । इसे अच्छी-अच्छी खाने-पीने की चीजें और कुछ बढ़िया कपड़े आदि देकर मैंने अपनी तरफ मिला लिया । इसके द्वारा मेरे और काममंजरी के बीच यह शर्त ठहरी कि अगर बदले में रागमंजरी मुझे मिले तो धनमित्र वाला वह 'जादू का बटुआ' उसे दे दिया जायगा ।

काममंजरी ने इसे खुशी-खुशी मान लिया । उधर रागमंजरी मेरे रूप-गुण पर मोहित तो हो ही चुकी थी, इसलिए वह बटुआ भिजवाकर मैंने उससे विधिपूर्वक विवाह कर लिया । इस विवाह से पहले यह निश्चित हुआ था कि अमुक रात को 'जादू का बटुआ' धनमित्र के यहाँ से चुरवाया

जायगा। उससे पहले ही दिन दूसरे कामों के बहाने मैंने शहर के धनी और प्रतिष्ठित आदमियों को बुलवाकर इकट्ठा कर लिया। इन्हीं में अर्थपति का नौकर बना हुआ मेरा अन्दरूनी मित्र विमर्दक भी आया। उसने किसी बात पर इन लोगों के सामने सबको सुनाते हुए, अपने मालिक अर्थपति का पक्ष लिया और धनमित्र के खिलाफ खड़ा होकर उसे खूब खरी-खोटी सुनाईं।

धनमित्र उससे बोला—"भले आदमी, तेरा क्या मतलब है जो दूसरों के लिए मुझे बुरा-भला कह रहा है ? मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी तेरा कुछ बिगाड़ा हो ?"

परन्तु विमर्दक फिर भी उससे बिगड़ा ही रहा। वह उसे डाट-फटकार बतलाता हुआ कहने लगा—"तुम्हें अब अपने रुपये-पैसे का बड़ा घमण्ड हो गया है। तभी दूसरे की स्त्री को हथिया लेना चाहते हो। एक आदमी ने तो रुपया खर्च किया और उसे उसके मां-बाप से अपने लिए तय किया और एक आप हैं जो बीच में ही अपने पैसे का लालच उसके माँ-बाप को दे रहे हैं और उन्हें बहकाकर उस स्त्री को खुद हड़प लेने की ताक में हैं ! इस पर कहता है कि मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ?...

आज यह बात कौन नहीं जानता कि अर्थपति पुराने व्यवसायी हैं, और एक कम्पनी के मालिक हैं ? यह भी किसी से छिपा नहीं कि विमर्दक उनका कौन है। लोग अच्छी तरह जानते हैं कि वह उनके प्राणों की जगह है। उनके लिए अगर अपनी जान भी देनी पड़े तो भी विमर्दक पीछे नहीं हट सकता; उनके लिए वह ब्रह्महत्या तक कर डालने से चूकने वाला नहीं।

जान पड़ता है तुझे अपने जादू के बटुए का घमण्ड हो गया है और यह उसी की गरमी है। इसका उपाय तो बड़ा सहज और मेरे हाथ में है; इसके लिए तो मेरा केवल एक रात-भर का जाग लेना ही काफी है।"

विमर्दक को इस तरह अकारण बरसते देख वहाँ बैठे उन भले आदमियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने बीच में ही उसे बोलने से रोक दिया

और वहाँ से निकाल दिया ।

धनमित्र अन्दर से तो सब बात समझ ही रहा था, पर ऊपर से उसने बड़ा बुरा माना । यहाँ तक कि उसने लोगों से कहा—

"यह तो साफ-साफ ही मेरे बटुए को चुरा लेने की ताक में है । मुझे अब इससे खतरा पैदा हो गया है, मैं महाराज से कहूँगा ।"

और वह सचमुच ही राजा के पास जाकर विमर्दक की शिकायत कर आया। उसने उनसे अपने 'जादू के बटुए' की चोरी की जाने की बात भी बनाकर कह दी ।

तब महाराज ने अकेले में अर्थपति को बुला भेजा और उससे पूछा—"भद्र, तुम्हारे यहाँ क्या विमर्दक नाम का कोई आदमी है ?"

उस मूर्ख ने जवाब देते हुए कहा—"हां महाराज, है तो । वह मेरा बड़ा पक्का मित्र है । कहिए, उससे कुछ काम है ?"

राजा कहने लगे—"उसे बुला सकते हो ?"

अर्थपति बोला—"जी हाँ, अभी बुलाये लाता हूँ ।"

इतना कहकर वह विमर्दक को बुलाने चल दिया । अपने घर आकर उसने देखा तो विमर्दक उसे नहीं मिला । तब वह रण्डियों के मुहल्ले में जुए के अड्डे पर तथा बाज़ार हाट की ओर सब जगह ढूँढ आया, परन्तु उसका कहीं पता नहीं चला ।

विमर्दक उसे मिलता भी कैसे ? उसे तो मैंने आपका (कुमार राजवाहन का) सब हुलिया और पहचान बताकर आपकी खोज के लिए उसी दिन उज्जैन की ओर रवाना कर दिया था ।

जब अर्थपति को वह कहीं न मिला तो उसे खयाल हुआ कि कहीं विमर्दक से कोई ऐसा कसूर न हो गया हो जिसका सम्बन्ध मुझसे निकले ।

कुछ तो इसी डर से और कुछ अपने बुद्धूपन के कारण अर्थपति जब फिर राजा के पास गया तो कहने लगा—

"महाराज, मेरे यहाँ तो विमर्दक नाम का कोई आदमी नहीं है ।"

उसके इस सफेद झूठ पर राजा बहुत बिगड़े । इधर जब धनमित्र

ने राजा के पास जाकर सब बात खोल दी, तब तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अर्थपति को पकड़वा लिया और हथकड़ी-बेड़ी डलवाकर कैद कर दिया।

उधर वह 'जादू का बटुआ' पाकर काममंजरी बहुत खुश हुई। अब वह उसे 'दुहने' की तैयारियां करने लगी। जब उसने सुना कि इस बटुए के 'फलने' के लिए धोखेधड़ी और छल-फरेब का कमाया हुआ रुपया फेर देना ज़रूरी है, तब उसे उस जैन साधु विरूपक की याद आई। विरूपक को उसने लूट-लूटकर बरबाद कर दिया था।

अब वह उसकी सब धन-सम्पत्ति लेकर उसके पास उसी जैन विहार में पहुँची। वहाँ सब रुपया विरूपक को लौटाकर उसने उससे बड़ी नम्रता के साथ माफी माँगी। इसके बाद अपने किये पर पछतावा करती हुई वापिस आ गई।

मैं बीच-बीच में विरूपक से मिलता रहता था। मैंने उसे समझा-बुझाकर जैनियों के पाखण्ड-जाल से छुड़ाया। वह खुशी-खुशी फिर अपने प्राचीन वैदिक मत का अनुयायी बन गया।

घर लौटकर काममंजरी बहुत पाक साफ बनकर रहने लगी। उस 'जादू के बटुए' से फायदा उठाने की आशा में उसने खूब दान देना और खैरात बाँटना शुरू कर दिया, जिससे लोगों में उसकी बड़ी वाहवाही होने लगी। पर थोड़े ही दिनों में उसके पास केवल एक लोटा, थाली और चूल्हा ही बाकी रह गया।

जब उस रण्डी की यह गत हो गई और यहाँ तक नौबत आ गई, तब मैंने धनमित्र को इशारा किया। वह राजा के पास गया और उनसे उसने कहा—

"महाराज, इस शहर की वेश्या काममंजरी को तो आप जानते ही हैं। यह कितनी लालचिन है, यह बात इसी से पता चल सकती है कि लोगों में इसका 'लोभमंजरी' नाम मशहूर हो गया है। इसके जान-पहचान के लोग इसकी बड़ी बुराई और बदनामी करते हैं। यही औरत आजकल

धन-दौलत की तो कौन कहे, ऊखली व मूसल तक को बेपरवाही के साथ त्यागे दे रही है। मुझे ऐसा लगता है कि मेरा 'जादू का बटुआ' इसी के हाथ लग गया है। इसी कारण यह ऐसा कर रही है। उस बटुए की करामात कुछ ऐसी है कि उसे पाते ही आदमी बड़ा दानी और त्यागी बन जाता है। वह वैश्यों और वेश्याओं को ही फलता भी है, दूसरों को उससे फायदा नहीं पहुँचता, ऐसी उसके बारे में प्रसिद्धि है। इन सब कारणों से मुझे वह बटुआ काममंजरी के पास होने का सन्देह होता है।"

राजा ने तुरन्त काममंजरी और उसकी माँ को बुला भेजा।

रागमंजरी से मेरा ब्याह हो जाने के बाद से काममंजरी और उसकी माँ के साथ मेरा गहरा हेलमेल हो गया था। जब राजा की ओर से इनको बुलावा आया तो मैं बहुत चिन्तित-सा बनकर काममंजरी को अलग ले गया। मैंने उससे कहा—"आपने पिछले दिनों घर की जो तमाम चीज़-बस्त इधर-उधर दे डाली है और बेहद दान-खैरात की है, इसके कारण बाहरी दिखावा कुछ ज़्यादा हो गया है। मामूली लोग चौंक-से उठे हैं कि आखिर इन लोगों में दान और त्याग की भावना एकाएक क्यों उमड़ आई? महाराज तक भी यह बात पहुँची होगी। मेरे खयाल में उन्हें शायद इस बात का शक हो गया है कि हो न हो, वह जादू का बटुआ इन लोगों के हाथ लग गया है। ज़रूर यही पूछने के लिए उन्होंने आपको बुलाया होगा। आप दोनों से वे कुरेद-कुरेदकर इस बारे में पता लगायेंगे। तब आपको सब बात बतलानी पड़ेगी और मेरे लिए यह कहना ही होगा कि 'उनके' ज़रिये यह चीज़ हमारे हाथ आई है। उसके बाद मेरा क्या होगा यह भी तय ही है—राजा किसी नई और निराली तरकीब से मुझे मरवा डालेंगे। मेरे मर जाने पर आपकी यह बहन भी ज़िन्दा नहीं रह सकती। इसके बाद आपका अपना सगा-सम्बन्धी कौन बच रहेगा, यह आप जानें। जादू का बटुआ तो धनमित्र को वापिस लौट ही जायगा। मैं देखता हूँ कि यह एक बड़ी भारी आफत आई है, इससे चारों ओर अनर्थ-ही-अनर्थ पैदा होते दिखाई देते हैं। बतलाइए, इस हालत में क्या उपाय

किया जाय ?"

मेरी ये बातें सुनकर काममंजरी बड़े सोच में पड़ गई। वह एकाएक कुछ नहीं कह सकी। वह सीधी अपनी माँ के पास गई और उसे बुला लाई। मां ने जब यह सब सुना तो उसके एकदम आँसू उमड़ आए। वह बोली—"बेटा, तुम ठीक कहते हो ! ज़रूर यही बात है। हमारी नासमझी और बेवकूफी से यह भेद तो बहुत-कुछ खुल ही चुका है। राजा जब बार-बार पूछेंगे, तो दो-चार बार बात को टाल जाने या छिपा लेने पर भी अन्त को यह कहना ही पड़ेगा कि हाँ, यह चीज़ चोरी से आई है और इस तरह तुम्हारे जरिये से हमें मिली है। तुम्हारा नाम बीच में आते ही फिर रागमंजरी क्या और उसकी यह बहन क्या, हम सब पर, सारे ही घर पर आफत आयगी, सारा कुनबा बरबाद होगा। अब ऐसी हालत में एक बात हो सकती है। मेरी समझ में तो यह आता है कि इस सारी मुसीबत को अर्थपति के सिर मढ़ दिया जाय। अर्थपति के बारे में यह बात उड़ चुकी है कि इसने अपने नौकर विमर्दक से धनमित्र का जादू का बटुआ चुरवा लिया है। यह बात भी शहर-भर में सब लोग जानते हैं कि उस यमदूत अर्थपति के साथ हम लोगों का खूब मेल-जोल है। ऐसी दशा में राजा से क्यों न यही कह दिया जाय कि महाराज, वह जादू का बटुआ हमारे पास है और हमें अर्थपति से मिला है। ऐसा करके ही अपने-आपको बचाया जा सकता है।"

माँ की यह बातें काममंजरी को भी पसन्द आईं और मैंने भी उनकी राय में अपनी राय मिला दी। इसके बाद दोनों माँ-बेटी राजा के पास गईं।

राजा ने जब उनसे इस सम्बन्ध में पूछताछ की तो कहने लगीं—"महाराज, वेश्याओं के यहाँ आकर जो लोग तरह-तरह की चीज़ें दे जाया करते हैं, उनका नाम-धाम खोलने का हम लोगों में चलन नहीं है। वैसे भी ईमानदारी और हलाल का पैसा लेकर तो लोग रण्डियों में आया नहीं करते।"

इन दोनों के इस हीले-हवाले को देखकर और बहकावे की बातें सुनकर राजा ने आँख टेढ़ी की और कहने लगे कि अगर ठीक-ठीक

नहीं बतलाओगी तो नाक-कान कटवा दिये जायँगे। इस धमकी का इन पर तुरन्त असर हुआ। परन्तु इन कुटनियों ने तब भी अर्थपति को ही फँसाया और उसी बिचारे को चोर बतलाकर पकड़वा दिया।

अर्थपति पर राजा पहले ही नाराज़ थे। अब इस चोरी में उसका नाम आते ही वे उसे प्राणदण्ड देने को तैयार हुए।

तब धनमित्र बीच में पड़ा। उसने हाथ जोड़कर बहुत अनुनय-विनय करते हुए राजा से निवेदन किया—"महाराज, अपराध तो यह बड़ा भारी है, परन्तु प्राचीन काल से ही राजा चन्द्रगुप्त मौर्य वैश्यों के लिए यह व्यवस्था कर गए हैं कि ऐसे अपराधों पर प्राणदण्ड इन लोगों को न दिया जाया करे। यदि महाराज इसके कुकर्मों से रुष्ट हैं तो इसकी सब धन-सम्पत्ति छीनकर इसे देश-निकाला दे दें। इस पापी के लिए यही बहुत है।"

धनमित्र की इस बात को महाराज मान गए। उन्होंने अर्थपति को सब नगर-निवासियों के सामने ही अपने राज्य से निकाल दिया। अर्थपति को अपने धन का बड़ा घमण्ड था, परन्तु इस समय उसकी देह पर केवल फटे-पुराने चिथड़े ही रह गए थे, और कोई चीज़ वह साथ नहीं ले जा सका।

इधर धनमित्र का बड़ा नाम हो गया। उसने अर्थपति के प्राण बचा दिए, यह बात दूर-दूर तक फैल गई और उसकी जगह-जगह बड़ाई होने लगी। राजा भी धनमित्र पर प्रसन्न थे।

अर्थपति की धन-सम्पत्ति राज्य की ओर से ज़ब्त कर ली गई थी। धनमित्र ने देखा कि बिचारी काममंजरी मुसीबत में है। क्योंकि उस जादू के बटुए से लाखों रुपया मिलने के चक्कर में वह सब तरह से बरबाद हो चुकी थी, इसलिए उसने महाराज से बिनती की कि इस बिचारी को यदि अर्थपति की सम्पत्ति में से कुछ मिल जाय तो इसके दिन सुधर जायँ।

धनमित्र के इस अनुरोध को भी महाराज ने मान लिया और काममंज़री को अर्थपति की जायदाद में से कुछ हिस्सा दिलवा दिया।

अब धनमित्र के रास्ते से अर्थपति रूपी रोड़ा साफ हो चुका था,

इसलिए उसने एक अच्छा दिन छँटवाकर कुबेरदत्त की लड़की से विवाह कर लिया ।

मेरा भी रागमंजरी से विवाह हो ही चुका था । इधर धनमित्र को मनचाही लड़की दिलवा देने और विरूपक को उसकी धन-सम्पत्ति वापिस करवा देने के ये दोनों संकल्प भी मेरे पूरे हो गए । जादू के बटुए की करामात की आड़ में मालदारों का रुपया उड़ा-उड़ाकर मैंने रागमंजरी का घर भी सोना-चांदी और हीरे-जवाहरात से भर दिया। शहर के कंजूस पूंजीपतियों की इतनी ज़बरदस्त चोरियाँ की गईं कि ये कौड़ी-कौड़ी के मोहताज हो गए । इनमें से बहुतेरे तो भीख माँग निकले । वे लोग खप्पर लिये हुए उन्हीं भिखारियों के घरों पर दिखाई देने लगे जिन्हें किसी दिन वे स्वयं मुश्किल से कुछ डाला करते थे, क्योंकि उन लोभी मालदारों का रुपया चुरा-चुराकर मैं इन्हीं गरीब मंगतों में बाँट दिया करता था ।

इस प्रकार अब चम्पा में मुझे कोई विशेष काम नहीं रह गया । मेरे दिन बड़े आनन्द से कटने लगे । परन्तु मैंने देखा है कि आदमी चाहे कितना ही चतुर और होशियार क्यों न हो, वह भाग्य के लेखे को नहीं मिटा सकता। जो होनहार होता है, वह अवश्य होकर रहता है ।

एक बार ऐसा हुआ कि रागमंजरी किसी बात पर रूठ गई। उसे मनाने के लिए प्यार में मैंने उसे थोड़ी-सी शराब दी। उसके चखने के बाद उसी में से मुझे भी बार-बार पीनी पड़ी । उससे मुझे नशा हो गया ।

बहुधा ऐसा देखने में आया है कि आदमी के शील और संस्कार बड़े प्रबल हुआ करते हैं। नशे या पागलपन के अन्दर जब मनुष्य बुरे रास्ते पर पड़ जाता है, तब इन्हीं के प्रभाव के कारण उसकी अच्छे काम करने की ओर ही प्रवृत्ति रहती है। मुझे खूब नशा चढ़ आया था। उसी की झुंग में मैंने रागमंजरी से कहीं कह डाला—"आज एक ही रात में इस शहर को खाली करके मैं तेरा घर भर डालूँगा।" उसे यह तो पता था नहीं कि मैं चोरी किया करता हूँ, इसलिए मेरी इस बात से चोरी की ओर

प्रवृत्ति देखकर वह बड़ी दुःखी हुई। उसने मेरे आगे हाथ जोड़कर मुझे सैकड़ों कसमें दिलाईं और इस काम से रोका, पर मैंने उसकी एक न सुनी। जैसे मस्त हाथी जंजीर तोड़कर भाग निकलता है, उसी तरह मैं नशे में भरा हुआ तलवार लेकर अकेला घर से निकल पड़ा। नौकर-चाकर तक मैंने साथ में कोई नहीं लिया। केवल रागमंजरी की एक नौकरानी मेरे पीछे-पीछे जरूर चली आई। इसका नाम शृगालिका था।

कुछ दूर आने पर मुझे सामने पुलिस के चौकीदार आते दिखाई दिए। मैं बेधड़क इनसे लड़ पड़ा। तब इन लोगों ने मुझे चोर समझकर पकड़ लिया और मारना-पीटना शुरू किया। पर इनकी मार-पीट से भी मुझे कोई विशेष क्रोध इन पर नहीं आया। मैं नशे में तो था ही, हाथ-पैर भी ढीले पड़े हुए थे। उन्हीं अवश हाथों से मैं इस तरह तलवार घुमाने लगा, मानो इनके साथ खिलवाड़ कर रहा हूँ। इतने पर भी मेरी तलवार से दो-तीन चौकीदार मारे गए। इसके बाद मैं गिर पड़ा। इस समय नशे के कारण मेरी आँखें चढ़ी हुई थीं और लाल सुर्ख पड़ रही थीं। इतने में ही रोती-चिल्लाती शृगालिका भी दौड़ी हुई मेरे पास आ पहुँची। सिपाहियों ने तब तक मुझे बाँध लिया था।

जब मैंने देखा कि मेरे तो हाथ-पाँव बँधे हैं और कोई आफत आना चाहती है तो मेरा नशा तुरन्त हिरन हो गया। मैं होश में आ गया और तुरन्त बुद्धि से मैंने समझ लिया कि मेरी अपनी बेवकूफी के कारण मुझ पर अब यह जबरदस्त मुसीबत आने वाली है।

मुझे इस समय तक शहर के लोग अच्छी तरह पहचानने लगे थे। धनमित्र के साथ मेरी मित्रता की बात भी मशहूर हो गई थी और रागमंजरी का तथा मेरा ब्याह हो चुका है, यह बात भी सबको मालूम थी। मैंने सोचा कि यह कसूर तो मुझसे हुआ है, पर मेरे कारण धनमित्र और रागमंजरी को भी जलील होना पड़ेगा और वे दोनों भी जरूर ही कल हिरासत में ले लिए जावेंगे। मैंने सोचा कि ऐसी हालत में मुझे वह काम करना होगा कि जिससे मेरे पकड़े जाने पर भी वे दोनों बच जायँ। वे अगर

छूटे रहे तो बाद में कभी मुझे भी इस आपत्ति से छुटकारा दिला सकेंगे।

यह सब सोचते हुए मैंने झट एक तरकीब निकाली और शृगालिका से कहने लगा—"अरी ओ बुढ़िया! जा, जा, तू उसी लालचिन रण्डी के पास लौट जा। उस धोखेबाज रागमंजरी के साथ तूने ही तो धनमित्र का ताल्लुक करवाया है। खैर, उस दुष्टा के घर का तो सफाया हो चुका। इस धनमित्र को भी किसी दिन मैं अच्छी तरह समझूँगा। इसे अपने जादू के बटुए का बड़ा घमण्ड हो गया था। यह धूर्त ऊपर से तो मेरा दोस्त बना रहा और अन्दर-अन्दर इसने ये कारनामे किये? आज बिलकुल ठीक काम हो गया, इस पाजी का वह बटुआ भी गायब हुआ और तेरी उसी लौंडिया रागमंजरी के भी जेवर और नकदी सब उड़ गए। चलो बहुत अच्छा रहा, आज मेरे जी का कांटा निकला। अब मैं इतमीनान से मरूँगा।"

वह शृगालिका इशारों को खूब समझने वाली और बड़ी धूर्त औरत थी। मेरी सब बातें समझकर वह दूर से ही अपनी आँखों में तुरन्त आंसू ले आई। गला भी उसका भर आया। उसने एकदम हाथ जोड़ लिये और उन पुलिस वालों को खूब झुककर दूर से ही नमस्कार करती हुई धीरे-धीरे झट उनके पास पहुँच गई। फिर बड़ी शान्ति और दीनता के साथ उनसे बोली—"भलेमानसो, बस तनिक देर रुक जाओ। मेरे घर चोरी हो गई है। इस लड़के से अपने चोरी गये माल के बारे में मैं ज़रा मालूम कर लूँ।" उसकी बात से पुलिस वाले वहीं खड़े हो गए।

तब तक वह मेरे नजदीक आ गई और बोली—"बेटा, मुझसे जो कसूर हो गया उसे माफ कर दो। तुम धनमित्र से भले ही वैर मानो, क्योंकि उसने तुम्हारी स्त्री की इज्जत ली। पर अपनी उस रागमंजरी का तो कुछ खयाल करो। उसने तो तुम्हारी बेहद सेवा की है। उस पर तरस खाओ। रण्डी बिचारी का तो जेवर ही सब कुछ है। मेहरबानी करके बतला दो कि उसके गहने कहाँ रखे हैं!" यह कहती हुई वह मेरे पैरों पर आ पड़ी।

उसकी बात सुनकर मैंने ऐसा दिखलाया जैसे मैं कुछ पसीज गया हूँ। मैं बोला—"अच्छी बात है, मेरा क्या, मैं तो अब मौत के हवाले हो चुका।

उस बिचारी के साथ बैर बाँधे रखने से भी अब क्या फायदा? आ सुन, तुझे वतला ही दूँ।" ऐसा कहते हुए मैंने उसके कान की ओर अपना मुँह बढ़ाया और इस तरह बहाना किया जैसे उसके कान में वह चोरी की बात कह रहा हूँ। मैंने धीमे-धीमे परन्तु झटपट उसे सब समझा दिया कि आगे इस-इस तरह यह-यह काम करना।

मेरी बात सुनकर उसने भी ऐसा दिखाया जैसे चोरी की सब चीजें मैंने ठीक-ठीक बतला दी हों। फिर वह कहने लगी—"बड़ी उम्र हो तुम्हारी बेटा! सदा सुखी रहो! भगवान ऐसी दया करें कि महाराज तुम्हारी बहादुरी और हिम्मत से खुश होकर तुम्हें जल्दी ही छोड़ दें और ये सब भलेमानस लोग भी तुम पर मेहरबानी रखें......।" इस प्रकार कहती हुई शृगालिका पल-भर में ही रफूचक्कर हो गई।

इधर पुलिस वाले मुझे कोतवाली ले गए। वहाँ से कोतवाल साहब के हुक्म पर मुझे जेल भेज दिया गया।

जेल में मैं जिस जगह बन्द था वहाँ अगले दिन जेलर महाशय पधारे। इनका नाम कान्तक था। आप बड़े गरवीले और शानदार व्यक्ति थे; साथ ही अपने को खूबसूरत समझने वाले आदमियों में से आप जान पड़ते थे। बाप के मरने के बाद अभी हाल में ही आपको उनकी यह जगह मिली थी। आपमें जवानी की पूरी उमंग थी, इसी कारण वास्तविक जीवन का अनुभव आपको बहुत कम हो पाया था। आपने आते ही मुझे डांटा, और फरमाया—

"अगर धनमित्र वाला जादू का बटुआ तूने न लौटाया और शहर वालों का चोरी का माल वापिस न किया तो याद रख, अट्ठारह तरह की सांसतें तुझे भोगनी पड़ेंगी और आखिर में फांसी की वह टिकटी तो है ही।"

मैंने भी तनिक-तनिक मुस्कराते हुए कहा—

"जनाब सुनिए, भले ही जन्म-भर का चोरी किया हुआ माल वापिस कर दूं, परन्तु धनमित्र, जिसने अर्थपति की औरत को उड़ाया, जो मेरा बनावटी मित्र बना रहा और अन्त में बैरी निकला, उसका जादू का

बटुआ मिल जायगा, यह आशा मुझसे किसी तरह पूरी नहीं हो सकती। यह बटुआ न देने में यदि अनन्त कष्ट और यातनाएँ भी मिलें, तो उन्हें भोग लूँगा। इस बात की मैंने पक्की प्रतिज्ञा कर रखी है।

मेरी बातें सुनकर कान्तक कुछ नहीं बोला; वह चला गया।

अब जेल में यह हाल कि कभी तो मुझ पर डांट-फटकार पड़ती, और कभी बहलाया-फुसलाया जाता। हर रोज मुझसे पूछताछ की जाती, और तरह-तरह के सवाल-जवाब होते रहते। कुछ दिन इसी तरह कटे।

ईसी बीच एक दिन मैंने अनुभव किया कि अब मुझे खाना-पीना कुछ-कुछ मेरे मन के माफिक मिलने लगा है। इस तरह अच्छे खान-पान के कारण थोड़े ही दिनों में मेरी देह की चोटें ठीक हो गईं, घाव भी भर गए और मैं अच्छा स्वस्थ हो गया।

एक बार ऐसा हुआ कि दिन ढलने का समय था और सांझ होने जा रही थी। धूप पीली-सी पड़ चुकी थी। उसका रंग हल्का बसन्ती-सा ऐसा लग रहा था, जैसे विष्णु भगवान का पीताम्बर हो। इसी समय जेल के भीतर शृगालिका आई। वह इस समय अच्छे साफ कपड़े पहने थी और उसके चेहरे से खुशी टपक रही थी। शृगालिका के साथ एक नौकर भी था। वह तो दूर खड़ा रहा, परन्तु खुद शृगालिका ज़रा बढ़कर मेरे नजदीक खिसक आई और बोली—

"बेटा जी, तुम्हें बधाई देती हूँ। अब दिन फिर आए हैं और भाग्य तुम्हारे माफिक मालूम देता है। तुमने जो तदबीर बतलाई थी वह ठीक उतरी। तुम्हारे कहने के अनुसार मैं धनमित्र के पास गई थी। मैंने उससे कहा—'आपके मित्र इस समय ऐसी-ऐसी मुसीबत में फँस गए हैं। उन्होंने आपके लिए अपना यह सन्देश कहला भेजा है कि भाई धनमित्र, मैं चकले में आने-जाने की वजह से शराब पी निकला था। इसकी लत पड़ जाने से ही आज कैद में आ पड़ा हूँ। तुम इतना करो कि आज ही सीधे महाराज के पास चले जाओ और उनसे कहो कि 'महाराज, आपकी मेरे ऊपर सदा कृपा-दृष्टि रही है। पहले भी आपकी ही दया से मुझे अर्थपति

द्वारा चुराया हुआ वह जादू का बटुआ मिल गया था। आज मेरे सामने फिर एक कठिनाई आ पड़ी है।'

महाराज को सम्भवत: मालूम ही होगा कि उस काममंजरी की बहन रागमंजरी का ब्याह हो चुका है। उसका पति एक गुणी आदमी है। वह कला-कौशल का जानकार, काव्य-साहित्य में अच्छी गति रखने वाला और रसिक पुरुष है। दूसरे अनेक हुनर जानने के साथ-साथ जुए की कला में भी वह बड़ा निपुण है। गुणी होने से इसके साथ मेरा मेल हो गया। आपस की इस घनिष्ठता के कारण मैं इसकी स्त्री को भी गहने-कपड़े आदि कभी-कभी भेज दिया करता था। इसके साथ मेरा ऐसा ही बरताव था, जैसा अपने अपने सगे-सम्बन्धियों से होता है। पर इस स्त्री का वह पति दिल का काला निकला। उस जुआरी ने मेरे इस व्यवहार को शक की नज़र से देखा। उसने ऊपर से तो मुझसे कुछ कहा नहीं, परन्तु किया यह कि मेरा वह जादू का बटुआ चुरा लिया। साथ ही अपनी स्त्री रागमंजरी के गहनों की पिटारी भी वह उड़ा ले गया। कुछ और भी चुरा लेने के इरादे से वह इधर-उधर घूम-फिर रहा था। इतने में पुलिस वालों को सन्देह हुआ और उन्होंने उसे पकड़ लिया। जब पुलिस उसे ले चली तो रागमंजरी की नौकरानी रोती हुई उसके पीछे-पीछे चली। उसने इसकी बड़ी मिन्नत की। इस पर उस जुआरी को खयाल हो आया। शायद पिछले स्नेह के कारण वह कुछ पसीज गया और गहनों की पिटारी उसने जहाँ छिपा दी थी वह जगह उस नौकरानी को बतला दी। पर मेरे जादू के बटुए का पता उसने नहीं दिया। यदि महाराज की दया हो जाय और किसी तरकीब से उसे बहलाया-फुसलाया जा सके तो मेरा बटुआ भी मुझे मिल सकता है।'

शृगालिका कहने लगी—'मैंने धनमित्र को समझाया और कहा कि जब इस तरकीब से तुम राजा से कहोगे तो वे उनकी जान नहीं लेंगे और बहला-फुसलाकर ही तुम्हारी चीज़ उनसे निकलवा लेने की कोशिश करेंगे। बस, यही हम चाहते भी हैं।

धनमित्र ने मेरी बात ध्यान से सुनी। उस पर आपका पूरा असर

था और आपकी बतलाई हुई तरकीब पर उसे पूरा भरोसा भी था। इसलिए बिना किसी तरह के डर या हिचक के वह सीधा महाराज के पास चला गया और उनसे कहकर सब काम ठीक कर आया।

इधर आते समय आप चुपके से अपनी जो निशानी मुझे दे आये थे, वह दिखाकर मैंने रागमंजरी से रुपये के लिए कहा। निशानी देखकर उसे विश्वास हो गया कि रुपया आपने ही मंगाया है, इसलिए देने को राज़ी हो गई। जरूरत के मुताबिक मैंने उससे रुपया लिया और आपकी बताई हुई युक्ति से राजकुमारी अम्बालिका की धाय मंगलिका को खुश कर लिया। उसी को बीच में डालकर उसके सहारे राजकुमारी और रागमंजरी में गहरी मित्रता करवा दी। अब मैं हर रोज नई-से-नई भेंट की चीज़ें राजकुमारी के लिए ले जाती। वहाँ महल में पहुंचकर उसके दिल-बहलाव के लिए बड़ी रसीली और चित्त लुभाने वाली कहानियाँ उसे सुनाया करती। इस तरह थोड़े ही दिनों में राजकुमारी मुझे बहुत चाहने लगी। उसकी मेरे ऊपर बड़ी मेहरबानी हो गई।

एक बार ऐसा हुआ कि राजकुमारी महल में अपने कमरे पर ही थीं। मैं भी वहीं थी। उनका करनफूल हालांकि अपनी जगह पर ही लटक रहा था पर मैंने ऐसा दिखाया जैसे वह अपनी जगह से खिसक गया है। मैं उसे सम्हालने में लग गई। फिर मैंने ऐसा प्रगट किया, मानो मेरा ध्यान किसी और तरफ हो और मैं दुचित्ती हो गई हूँ। इसी बीच मैंने उस करनफूल को गिरा दिया और फिर झटपट धरती पर से उठा लिया।

इतने में ही किसी काम से जेलर कान्तक राजकुमारी वाले महल के भीतरी आंगन में आया। उस समय हम लोगों के सामने ही कबूतरों की जोड़ी खेल रही थी। दो कबूतर एक-दूसरे पर चढ़े हुए मस्ती में दीवाने थे। उन्हें उड़ा देने के बहाने मैंने हँसते-हँसते वही करनफूल फेंक मारा। परन्तु फेंका उसे इस तरह कि वह जाकर कान्तक के लगा। कान्तक तो जैसे इसी बात पर खुशी के मारे खिल गया। वह मुंह उठाकर मुस्कराने लगा। उन कबूतरों को इस तरह एकाएक करनफूल फेंककर दुत्कार देने की मेरी चेष्टा

पर राजकुमारी अम्बालिका यों ही कौतुकवश हँसने लगी। उसी समय मैंने इशारों-ही-इशारों में कुछ ऐसी हरकत की, जिससे कान्तक को यह खयाल पैदा हुआ कि राजकुमारी की हँसी में उनके मन की अन्दरूनी चाह भी छिपी हुई है। अब तो कान्तक का अजीब हाल हो गया। ऐसा जान पड़ा जैसे उसे कामदेव ने धनुष तानकर, विषैले फलकों वाले तीरों से छेद डाला हो। वह बेवकूफ आदमी जैसे-तैसे करके बड़ी कठिनाई से वहाँ से टला।

साँझ होते ही मैंने एक बेंत की पिटारी के अन्दर खुशबू में बसा हुआ पान, एक जोड़ी कीमती कपड़े और कुछ गहने रखे। उसे बन्द करके उसके ऊपर राजकुमारी अम्बालिका की अंगूठी की मुहर बना दी। फिर इसे एक लड़की के हाथों में पकड़ाकर इस तरह ले चली, जैसे यह राजकुमारी का सरकारी उपहार रागमंजरी के लिए ले जा रही हूँ। इसे लिये हुए मैं कान्तक के घर पहुँची। वह मुझे देखकर बेहद खुश हुआ। ऐसा लगा जैसे वह प्रेम के अथाह समुद्र में डुबकियाँ भर रहा हो और एकाएक उसे अब नाव मिल गई हो। मैंने उसे यह पिटारी नजर की और राजकुमारी की विरह दशा का वर्णन किया। उनकी बड़ी-बड़ी विकट दशाओं का मैंने उसके सामने चित्र-सा खींच दिया। इस तरह उस बुद्धू को एकदम पागल बना डाला। मेरे चलते समय उसने मुझसे राजकुमारी की कोई चीज निशानी के तौर पर माँगी। इसपर अगले दिन जाकर मैं बोली—"लीजिए, आपकी प्रेयसी ने आपके लिए यह सामान भेजा है," और मैंने अपने मुँह का कुतरा हुआ पान, अपने ही साज-सिंगार का बचा-खुचा कुछ सजावट का सामान—चन्दन, पाउडर वगैरा—उतरे हुए हार और एक मैला रूमाल, यह सब उसके आगे रखते हुए राजकुमारी की ओर से उसकी नजर किये।

इन्हें बड़ी मुहब्बत से लेकर उसने भी कुछ चीजें दीं और कहा कि ये राजकुमारी के लिए हैं; उनकी नजर करना। वे चीजें मैं उससे ले आई और मैंने इधर-उधर फेंक दीं।

इस तरह जब कान्तक के दिल की मुहब्बत की आग खूब भड़क

चुकी, तब मैंने खुद ही एक दिन अकेले में उसे बढ़ावा दिया और उकसाते हुए कहा—'लल्ला जी, आप भी कैसे आदमी हैं कि कुछ करते ही नहीं। मुझे तो मेरे एक पड़ोसी ज्योतिषी ने आपको देखते ही एक दिन यह कहा कि ये जेलर साहब मामूली आदमी नहीं हैं, इनके तो राजसी चिह्न हैं। उसने गिनती करके बतलाया कि यह राज्य आपके ही हाथ आयेगा। मैं देख रही हूँ कि सब लक्षण वैसे ही होते भी जा रहे हैं। देखिए,राजकुमारी जी आपको चाहने ही लगीं। इधर राजा के उनको छोड़कर कोई और सन्तान नहीं है। राजकुमारी के साथ आपका ताल्लुक हो जाने की बात मालूम होने पर यदि वे रुष्ट भी हो गए तो भी इस डर से कि उनकी इकलौती बेटी का कुछ बुरा-भला न हो जाय, वे आप दोनों के इस सम्बन्ध को तोड़ेंगे नहीं। मेरा तो खयाल है कि वे आपको युवराज बना सकते हैं। इस प्रकार राजकुमारी के साथ आपका यह सम्बन्ध एक और भी काम बना रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि आप देर क्यों कर रहे हैं और राजकुमारी तक पहुँच-कर उन्हें अपना क्यों नहीं लेते ? मुझे ऐसा लगता है कि राजकुमारी के महल के अन्दर पहुँच होने की तरकीब आप शायद नहीं जान पाए हैं। पर इसके तो कई एक उपाय हैं। सबसे सहज तो यही है कि आपके इस जेलघर की दीवार और महाराज के सरकारी बाग की भीत, इन दोनों के बीच कुल छः गज का अन्तर है। आप ऐसा कीजिए कि अपने किसी ऐसे चोर के जरिए, जिसका हाथ खूब साफ हो, एक बड़ी सेंध लगवा दीजिए, बस उसी में से होकर आप महाराज के बाग में घुस आवेंगे। बस आप हमारे बाग के अन्दर किसी तरह से आ भर जाइए, फिर तो आपकी हिफाजत का सब काम हमारे ऊपर रहा। आप जानते ही हैं, कि राजकुमारी की सखी-सहेलियाँ और दासियाँ उन्हें कितना चाहती हैं; वे इस भेद को किसी तरह खुलने नहीं दे सकतीं।'

मेरी बातें सुनकर कान्तक बोला—'ठीक कहती हो, तुमने अच्छा सुझाया। आजकल मेरी जेल में एक ऐसा चोर है भी। खोदने और सेंध लगाने की कला में वह बड़ा पक्का है; उसे दूसरा 'भगीरथ' समझो।

वह अगर मेरे कहे में आ गया तो पल-भर में काम बना देगा।'

मैंने कहा—'ऐसा कौन सा कैदी है? आप उससे काम क्यों नहीं लेते?'

उसने तुरन्त यह कहकर कि 'वही, जिसने धनमित्र का जादू का बटुआ चुराया है' आपका ही संकेत किया।

तब मैंने उससे कहा—'आप ऐसा कीजिए। उस चोर से आप कहें कि मेरा यह काम अगर तुम पूरा कर दोगे तो मैं एक ऐसी निराली जुगत रचूँगा, जिससे तुम जेलघर से साफ छूट जाओगे। इसके लिए कसम खाकर उससे आप बात पक्की कर लें। जब आपका काम निकल जाय, तो उसके फिर से हथकड़ी-बेड़ी डाल दें और राजा से कहें—"महाराज, इस चोर के साथ सभी उपाय बरत लिये गए, पर यह बड़ा ढीठ है। यह धनमित्र से बेहद बैर मानता है। उसका चमड़े का बटुआ यह किसी तरह नहीं देगा।" आपकी यह बात सुनकर महाराज उसे जरूर फाँसी दे देंगे। उसे फांसी लगते ही यह कांटा दूर हो जायगा। आपका काम तो बन ही चुकेगा और इस बात का भेद भी फिर किसी पर कभी नहीं खुल सकेगा।

जब मैंने ये सब बातें उसे खूब समझाकर कहीं तो वह बड़ा खुश हुआ। अब मुझ पर ही उसने यह भार भी डाल दिया है कि मैं तुम्हें लालच देकर इस काम के लिए राजी कर लूं! वह कान्तक इस समय बाहर खड़ा हुआ है। इस बारे में अब जो भी बात आ पड़ेगी, उसका उपाय तुम्हें ही सोचना है।"

शृगालिका की ये सब बातें सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उससे कहा—"मैं तो तुझे उस समय बहुत ही थोड़ी बात कह पाया था। इस सारे मामले में तेरी अपनी चतुराई और होशियारी बहुत ज्यादा है। अच्छी बात है, तू अब उसे यहाँ ले आ।"

थोड़ी देर में ही कान्तक शृगालिका के साथ अन्दर आ गया। ज़रा देर की बातचीत के बाद उसने तो मुझे जेल से छुड़वा देने की कसम खाई और मैंने उस काम को पूरा करने का पक्का वायदा कर दिया; साथ ही वचन दिया कि यह भेद कभी किसी पर नहीं खोलूंगा।

इसके बाद उसने मेरी जंजीरें खोल दीं। मैं आनन्द से नहाया-धोया, और तेल, फुलेल, चन्दन आदि लगाकर मैंने खूब अच्छी तरह खाया-पिया।

यह जेलघर ऐसा बना था कि हरदम जैसे अन्धेरे में ही डूबा रहता हो। रात आने की यहाँ ज़रूरत ही नहीं थी। फिर भी जब रात हो चुकी, तो मैंने वह जगह ठीक की जहाँ, सेंध लगानी थी। कान्तक के इशारे पर 'आलानकब' भी मुझे मिल गया था। इसके सहारे मैंने दीवार वाले अँधेरे कोने से शुरू करके राजकुमारी धाम की ओर खुलने वाली एक सुरंग खोद डाली।

सुरंग खोद चुकने पर मैं सोचने लगा कि अब यह आदमी आकर मुझे फिर जंजीरों में कस देगा। हालाँकि इसने मुझे छुड़वा देने का वचन दिया है, पर अपना काम निकल जाने पर यह मुझे राजा के द्वारा मरवा डालना चाहता है। ऐसे धोखेबाज़ को स्वयं ही मार डालने में भी क्या पाप है? इस धूर्त को मारकर यदि मैं भी अपनी बात से मुकर जाता हूँ, तो मुझे भी कोई दोष नहीं लग सकता।

मेरे सुरंग खोद चुकने पर कान्तक आया और मुझे जंजीर में फिर कस देने के इरादे से ज्यों ही वह नीचे झुका और उसने हाथ बढ़ाया त्यों ही मैंने उसकी छाती में जोर की लात मारी और उसे गिरा दिया। फिर उसी की छुरी से मैंने उसका सिर काट डाला।

शृगालिका बाहर मौजूद थी। वह इसी समय अन्दर आ गई। मैं उससे बोला—"भलीमानस, अब जल्दी बतला कि राजकुमारी का महल अन्दर से कैसा है। वह कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे बना हुआ है और किस जगह क्या-क्या चीज है? ऐसा न हो कि मेरी यह इतनी मेहनत और कोशिश बेकार हो जाय! मैं चोर ठहरा, आज इस महल में से कुछ-न-कुछ चुराकर ही लौटूँगा।"

उससे सब बात का ठीक-ठीक पता लेकर मैं महल के अन्दर घुसा। उसने जो-जो स्थान बतलाये थे, उन सब में अच्छी तरह घूम-फिरकर मैंने सारे महल को छान डाला।

अन्दर जाकर मैंने देखा तो जगह-जगह बड़े सुन्दर दीये जल रहे

थे। ये सब रंग-विरंगी मणियों के बने हुए थे। महल में चारों ओर खूब बढ़िया सजावट थी।

एक स्थान पर क्या देखता हूँ कि इधर-उधर चारों तरफ तो बहुत सी सखी-सहेलियाँ और दासियाँ लेटी हैं और उनके बीच में राजकुमारी सो रही है। ऐसा मालूम होता था कि ये परिचारिकाएँ तरह-तरह की खेलें खेलते-खेलते अन्त में थककर पड़ गई हैं। बीचोंबीच एक बढ़िया पलंग लगा हुआ था। इसके सिराहने और पैनाने की तरफ तरह-तरह के बहुत से फूल बिखरे पड़े थे। पलंग के ऊपर हंसों के मुलायम परों से भरा हुआ खूब गुदगुदा गदेला बिछा था और एक खूबसूरत तकिया रखा हुआ था। इस पलंग के पाये हाथी दांत के थे और सोये हुए सिंहों के आकार के बने हुए थे। इन सिंहों की देह में जगह-जगह खूब बड़े-बड़े और कीमती नग जड़े थे। इसी पलंग के ऊपर राजकुमारी सो रही थी।

सोते समय भी राजकुमारी को देखते ही बनता था। इनके दाहिने पैर की एड़ी का निचला हिस्सा ढका था, क्योंकि बायें पैर का अगला भाग इसके ऊपर रखा हुआ था। एड़ी के ऊपर गट्टे का जोड़ कुछ-कुछ उघर गया था और बहुत खूबसूरत दिखाई दे रहा था। दोनों टाँगें एक-दूसरी में लिपटी पड़ी थीं। मुलायम घुटने सिकुड़े रखे थे और जाँघें कुछ-कुछ उभरी हुई थीं। नितम्ब-प्रदेश पर से सरककर नीचे घुटी हुई एक बाँह का खुला हुआ अगला हिस्सा बड़ा सुन्दर लग रहा था। दूसरी बाँह मुड़ी हुई सिर के नीचे थी और उसकी मुलायम कोंपल-जैसी हथेली चित्त खुली रखी थी। दोनों नितम्ब, गोलाई लिये हुए नीचे की तरफ उतरते चले आए थे और कमर के नीचे का रेशमी कपड़ा इनके साथ-साथ, देह से बिलकुल सटा हुआ था। पेट बहुत छोटे से हिस्से में आ गया था और ज्यादा ढका नहीं था। राजकुमारी सोते-सोते गहरी साँसें ले रही थीं, इसलिए उनकी कठोर स्तन-कलिकाएँ कुछ काँपती जाती थीं। उनकी गरदन तनिक मुड़ी हुई और बड़ी प्यारी लग रही थी। इसमें निखर सोने की लड़ पड़ी थी, जिसके अंन्दर एक बड़े-से माणिक्य का तरल या लॉकेट पिरोया हुआ था। कुण्डल

कान के नीचे निश्चल पड़ा अपनी अधूरी झलक दिखला रहा था। कनपटी के पास बालों की लटें खूब कसी रखी थीं, हालाँकि ये बँधी हुई नहीं थीं। कान के ऊपर चित्त पड़ी हुई कनौती में जड़ाऊ कर्णफूल लगा था। इसमें से किरनों-पर-किरनें फूटी पड़ती थीं। इनके कारण कनपटियों पर की लटें पीली सुनहरी-सी पड़ रही थीं। राजकुमारी के मुँह पर ऊपरी होठ का अपना गुलाबीपन इतना चटकीला था कि नीचे के मुख-छिद्र की लकीर मुश्किल से नजर आती थी। बायाँ हाथ गाल के नीचे से पीछे की ओर निकला हुआ था। उसकी उंगलियाँ, ज़रा-ज़रा ऊपर कान की तरफ मुड़ रही थीं, इसलिए ऐसा लगता था कि कानों में पड़ा हुआ कर्णफूल, जो चमचमाहट पैदा कर रहा था, उसकी ओर यह हाथ मानो इशारा कर रहा है। राजकुमारी के ऊपर के गाल से एक आभा-सी फूटी पड़ती थी। यह आईने की तरह दमकता था और ऊपर छत के बेलबूटों व फूलपत्तियों की इसमें परछाईं पड़ रही थी। इसके कारण ऐसा प्रतीत होता था कि इस गाल के ऊपर खास तरह की चित्रकारी करके इसे सजाया गया है। राजकुमारी की दोनों आँखें बन्द थीं। उन्हें देखकर यह मालूम पड़ता था कि दो नीले कमल मुँदे रखे हैं। दोनों कमानीदार भौहें मानो कामदेव की पताका बनी हुई थीं। पर इस समय ये बिचारी हिल-जुल नहीं रही थीं, निश्चल पड़ी थीं। माथे पर कहीं-कहीं पसीने की नन्ही-नन्ही बूंदें छलक आई थीं। ये शायद खेल-कूद के बाद थकान के कारण हो गई थीं। इन बूंदों से माथे पर लगा हुआ चन्दन का तिलक घुट-सा चला था। उनके चाँद-से मुखड़े को बालों की बेल चारों ओर से घेरे पड़ी थी। राजकुमारी इस समय निश्चिन्तता के साथ सोई हुई थीं। एक बहुत ही सफेद चादर पर उनकी चमचमाती हुई देह कुछ आड़ी-तिरछी होकर इस तरह पड़ी थी कि देखकर शरद ऋतु के बादलों की गोद में कौंधती हुई बिजली का खयाल आ जाता था।

इस परमसुन्दरी राजदुलारी को इस हालत में लेटा हुआ देखकर मेरे मन की विचित्र दशा हो गई। कुछ देर तक तो अचम्भे में आकर मैं

जैसे-का-तैसा खड़ा रह गया । क्या चीज़ चुराने आया था, इसका भी कुछ ध्यान न रहा । ऐसा जान पड़ा जैसे मेरा ही मन कहीं चुराया गया है । तुरन्त विचार उठा कि यदि इस सुन्दरी सुलोचना को मैं न पा सका तो कामदेव मेरा जीना ही मुश्किल कर देगा ।

एक बार तो ऐसी इच्छा हुई कि इसे अभी चिपटा लूँ । फिर सोचा कि जब तक खुद इसका ही इशारा न मिले तब तक इसे छूना भी कठिन है, क्योंकि यदि तनिक भी छू लेता हूँ, तो यह भोली-भाली बालिका चौंककर ज़रूर चीख पड़ेगी । फिर तो मेरे मन के सुनहरी महल सब टूट-कर यहीं बिखर जायँगे; यहीं पर मेरा भी खात्मा हो जायगा । इसलिए एक काम करना ठीक रहेगा ।

इसके पश्चात् मैंने वहीं खूँटी पर टंगी हुई एक साफ़ चिकनी पट्टी उतार ली । इस पर लाख जैसी किसी चीज़ की रंगीन पालिश चढ़ी हुई थी । पास में एक जड़ाऊ संदूकची रखी थी जिस पर कीमती नग जड़े थे । उससे मैंने लिखने की बत्ती निकाली ।

राजकुमारी उस समय भी उसी तरह विचित्र और निराली मुद्रा में सोई हुई थी और बेहद खूबसूरत लग रही थी । उसके दोनों हाथ एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और मुझे कुछ कर गुज़रने पर उतारू देख, मानो हाथ जोड़कर मुझसे कह रही थी कि—'हाय ! यह काम न करो ।'

मैंने वहीं उसके पैरों के पास बैठकर उस पट्टी पर यह पद लिख दिया—

हाथ जोड़े,
    इस ढिठाई के लिए प्रिय ! हाथ जोड़े—
    दृग झुकाये कर रहा यह दास तुमसे कुछ निहोरे,
सो रही हो ?—
    तुम थकी बिखरी हुई सी हो रही हो—
    कौनसे सुख-स्वप्न में, शशिलोक में या तुम कहीं हो ?
क्या किसी दिन,

एक पल को भी सुमुखी ! बस, क्या किसी दिन—
हाय, जिसको पास लाने के लिए मैं पल रहा गिन—
मिल सकोगी ?—
काम-क्रीडा-संगिनी बन, मिल सकोगी ?
इस हमारी गोद में सुख-विह्वला-सी खिल सकोगी ?

इसके बाद उस पट्टी को मैंने उसके पैरों के पास रख दिया।

अब मैंने उसके सोने के पानदान में से एक खुशबूदार पान का बीड़ा निकाल ज़रा-सी कपूर की डली और सुगन्धित पान का मसाला मिलाकर उसे अपने मुंह में रखा। फिर उसी के रस से कलई पुती हुई दीवाल पर मैंने चकवा-चकवी के जोड़े की एक तस्वीर खींच दी। अन्त में उसकी अंगूठी से अपनी अंगूठी बदलकर मैं बड़े बेमन से जैसे-तैसे वहां से निकला और फिर उसी सुरंग में से होता हुआ कैदखाने में आ गया।

उसी जेल में शहर का अच्छा प्रतिष्ठित एक और व्यक्ति भी कैद था। इसका नाम सिंहघोष था। इन पिछले दिनों के अन्दर मेरी इससे अच्छी दोस्ती हो गई थी। मैंने वापस आकर इससे कहा—"भाई, तुम से जब पूछा जाय, तो जो-कुछ मैंने किया है और जैसे-जैसे कान्तक को मारा है, यह सब भेद तुम अधिकारियों को बतला देना। इस प्रकार ऐसे गुप्त रहस्य का पता देने पर तुम भी कैदखाने से छूट जाओगे।"

यह सब काम करके मैं शृगालिका के साथ वहाँ से निकल आया। मुख्य सड़क पर आते ही पहरेदारों ने मुझे फिर पकड़ा। तब मैंने सोचा कि मैं तो इतनी तेजी से निकल भाग सकता हूँ कि ये लोग मुझे हाथ भी नहीं लगा पायँगे। पर यह बिचारी शृगालिका पकड़ी जायगी। इसलिए मैंने एक उपाय किया।

मैं तुरन्त दौड़कर अपने-आप ही उन पहरेदारों के पास जा पहुँचा और जाते ही अपनी पीठ उनकी ओर करके खड़ा हो गया। अपने दोनों हाथ मैंने पीठ की ओर उल्टे करके उन लोगों की तरफ बढ़ा दिये। फिर

उनसे बोला—"लो भई, जो चोर समझो तो मुझे बाँध लो। तुम्हारा तो पकड़ने का काम ही है, बल्कि यह तुम्हारा अधिकार है । मगर यह बुढ़िया मुझे हरगिज़ न पकड़े; यह मुझे छू भी नहीं सकती ।"

श्रृगालिका मेरे इतना कहते ही सब मतलब समझ गई । वह उन लोगों के पास जाकर और उन्हें सलाम करके बोली—"भइया, मेरे इस लड़के को पागल मत समझ बैठना। इसके दिमाग पर किसी वायु का असर हो गया है । मैंने इसका बहुत इलाज करवाया । पिछले दिनों दवा-दारू माफिक आने से यह ठीक भी हो गया था । इसे ठीक जानकर और भरोसा करके मैंने इसे कैदखाने से निकलवाकर नहलाया-धुलाया और इसके चन्दन आदि लगवाया । नये कपड़े बदलवाकर इसे खीर खिलाई । इसके बाद इसकी तबियत देखकर इसे बिछौने पर सोने भेज दिया । आधी रात होते ही क्या देखती हूँ कि इसे वायु-रोग ने फिर आ दबाया है । इसने तो उसके बाद से यह कहना शुरू कर दिया कि मैं कान्तक को मारकर राजा की लड़की के साथ ब्याह करूंगा ।"

इस तरह की बातें कहता हुआ यह बड़ी तेजी से सड़क पर आकर भागने लगा । लड़के को इस हालत में देखकर और रात होने से मैं इसके पीछे-पीछे भाग रही हूँ । तुम लोग ज़रा मुझ पर तरस खाओ और इसे बाँधकर मेरे हवाले कर दो ।"

यह कहकर श्रृगालिका ने रोना-झींकना शुरू कर दिया । मैं तुरन्त उससे बोला—"अरी ओ बुढ़िया ! वायु-देवता को आज तक कौन बाँध पाया है । भला, ये कौए मुझे ... मुझ शिकरे को पकड़ेंगे? ... ये मुझे पकड़ने वाले होते कौन हैं ? ... तू चुप रह, बहुत बक-बक मत कर !" यह कहता हुआ मैं फिर भाग पड़ा।

तब वे पहरेदार श्रृगालिका से बोले—"ओ बुढ़िया ! हमें तो तू ही पागल दिखाई पड़ती है । इस सरासर पागल आदमी को कहती है कि यह पागल नहीं है ! और फिर तूने ही इसे खोल भी दिया है । अब भला इसे कौन बाँधे ?"

इस प्रकार उसे बक-झककर और उसी को बुरी-भली सुनाकर वे लोग चले गए। वह भी रोती-झींकती मेरे पीछे-पीछे भागती गई। मैं जाकर सीधा रागमंजरी के धर रुका। वह बिचारी इतने दिनों की जुदाई के कारण बहुत दुखी और व्याकुल थी। मैंने पहुंचते ही उसे सब तरह से तसल्ली दी और ढारस बँधाया। बाकी रात मैंने वहीं बिताई। प्रातःकाल मैं अपने मित्र उदारक अर्थात् धनमित्र से मिला।"

इतनी सब कहानी सुना चुकने के बाद अपहारवर्मा राजकुमार राजवाहन से बोले—"युवराज, इस प्रकार मैंने तमाम चक्करों में से निकलकर बड़ी मुश्किल से छुटकारा पाया। घर आकर मैं फिर ऋषि मरीचि के आश्रम पर पहुँचा। उस वेश्या के कुटिल मोह-जाल में से वे निकल तो चुके ही थे। इस समय तक अपनी घोर तपस्या के प्रभाव से उन्हें फिर दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई थी। उनसे मिलकर मुझे आपकी गतिविधि का पता चला और उन्हीं की कृपा से मैं इस स्थिति में आ गया कि आज मुझे आपके दर्शन प्राप्त हुए।"

अपना आगे का हाल सुनाते हुए अपहारवर्मा कहने लगे—

"उधर जेल में जो सिंहघोष रह गया था, उसने मेरे कहने के अनुसार महाराज को सब घटना बतला दी और कहा कि इस-इस तरह से कान्तक ने ऐसी-ऐसी धूर्तता की थी।

राजा ने उस पर प्रसन्न होकर उसे कान्तक की जगह दे दी। जेलर बन जाने पर सिंहघोष ने मेरे द्वारा बनाई गई उसी सुरंग के द्वारा मुझे फिर राजकुमारी अम्बालिका के महल में पहुंचा दिया। शृगालिका उस राजकन्या को मेरे रूप और गुण के बारे में पहले से ही बहुत-कुछ बढ़ा-चढ़ाकर सुनाती रही थी, जिसके कारण राजकुमारी भी मेरी ओर झुक चुकी थी। अन्त को राजकुमारी से मेरी भेंट भी हो ही गई।

इन्हीं दिनों मालवा का चण्डवर्मा सेना लेकर आया। चम्पा-नरेश से कहकर उसने उनकी पुत्री इसी अम्बालिका के साथ विवाह करना चाहा

था। परन्तु उन्होंने उसकी बात को स्वीकार नहीं किया। इस पर उसने क्रुद्ध होकर इस समय चम्पा को आकर घेर लिया था।

अंगराज ने जब देखा कि बैरी उनको घेरकर चारों तरफ से उनका सम्बन्ध काट देना चाहता है, तो उन्हें बेहद क्रोध आया। वे जोश में आकर तुरन्त उसके मुकाबले में आ गए। चण्डवर्मा का घेरा पूरा होने से पहले ही अंगराज ने अपने किले की बाहरी दीवाल तोड़ ली और वे उस पर टूट पड़े। महाराज स्वयं शत्रुओं के गोल में घुस गए। यद्यपि उनकी सहायता के लिए उनके मित्र राजाओं की सेनाएँ आ रही थीं और पास ही थीं, परन्तु उन्होंने उनके आ पहुँचने की प्रतीक्षा भी नहीं की।

अंगराज सिंहवर्मा बड़ी भयंकरता से लड़े। परन्तु वैरियों की सेना बहुत अधिक थी। युद्ध में अंगराज पर शत्रु चारों ओर से टूट पड़े। असंख्य शस्त्रों की चोटों से उनका कवच टुकड़े-टुकड़े हो गया और शत्रुओं ने उन्हें कैद कर लिया।

उनकी पुत्री राजकुमारी अम्बालिका को ज़बरदस्ती पकड़कर चण्डवर्मा उसे अपने निवासस्थान पर ले गया। उसने यह तय कर लिया कि रात बीतते ही मैं इससे ब्याह कर लूँगा। इसी इरादे से ब्याह का कंगन भी उसने अपने हाथ में बाँध लिया।

उधर धनमित्र के घर पर मैं स्वयं भी कुमारी अम्बालिका के साथ ब्याह करने के लिए हाथ में कंगन बाँधे हुए मौजूद था। मैंने धनमित्र से कहा—"भाई धनमित्र, इस समय चम्पा-नरेश की सहायता के लिए आये हुए मित्र राजाओं की सेनाएँ पास ही आ पहुँची हैं। तुम सब मुख्य-मुख्य और प्रतिष्ठित नागरिकों को लेकर उनकी अगवानी के लिए पहुँच जाओ। जब तक तुम वापिस लौटोगे और उन सेनाओं के साथ आकर शत्रु पर पीछे से हमला करोगे, तब तक इधर चण्डवर्मा का काम तमाम कर डाला जायगा।"

धनमित्र ने कहा—"अच्छी बात है, मैं जाता हूँ।" इतना कहकर वह उन्हें लेने चला गया।

इधर चण्डवर्मा के दिन भी पूरे हो गए थे। उसे भी इसी समय ब्याह का शौक पैदा होने को रह गया था ! मैंने देखा कि उसके घर में ब्याह पढ़ाने के लिए बहुत से ब्राह्मण जा रहे हैं। मैं भी उन्हीं में मिलकर उसके घर में घुस गया। भीड़-भाड़ में मेरे हथियारबन्द होने का किसी को पता न चला। चण्डवर्मा के घर में उत्सव की चहल-पहल थी। शादी-ब्याह का तरह-तरह का सामान ठीक किया जा रहा था। आने-जाने वाले लोगों की इतनी भीड़ थी कि उसमें से निकलना तक कठिन था।

कुछ देर बाद ब्याह का काम शुरू हो गया। पुरोहित ने अग्निदेव की साक्षी में राजकुमारी अम्बालिका का मुलायम हाथ 'पाणिग्रहण' के लिए बढ़ाया। उसे पकड़ने के लिए चण्डवर्मा ने भी अपनी बाँह फैलाई। इसी समय मैंने झपटकर चण्डवर्मा का हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी ओर खींचकर झटपट उसकी छाती में छुरी घुसेड़ दी। कुछ और लोग जो उसकी तरफ से बढ़े, उनको भी मैंने सीधा यमलोक भेज दिया।

चण्डवर्मा के मारे जाते ही घर-भर में कुहराम मच गया। पर मैं दूसरी ही धुन में था। मैं इधर-उधर राजकुमारी को ढूँढने लगा। थोड़ी देर में मैंने देखा कि वह सामने ही खड़ी है। उसकी मुलायम और प्यारी-प्यारी देह इस समय थर-थर काँप रही थी। मुझसे रहा नहीं गया और उसे चिपटा लेने की इच्छा से मैं उसे लेकर झटपट भीतर के सोने वाले कमरे में चला आया।

मैं उधर उसे लिये हुए कमरे में घुसा और इधर इसी समय आपका परिचित स्वर सुनाई पड़ा। मुझे पहले तो ऐसा मालूम पड़ा। जैसे सावन का पहला बादल गरज उठा है। आपकी आवाज़ पहचानकर मुझे बड़ी खुशी हुई।

बस यही मेरी रामकहानी है !"

अपहारवर्मा का यह सब हाल सुनकर राजकुमार राजवाहन को बड़ा अचरज हुआ; फिर वे प्रसन्न होकर और मुस्कराते हुए बोले—"अपहारवर्मा, तुमने सचमुच बड़ी मुसीबतें और कठिनाइयाँ झेलीं।

और चोरी-चकोरी के काम में तो तुमसे 'चौर्य-शास्त्र' के बनाने वाले कर्णीसुत भी हार गए ।"

इसके बाद उन्होंने उपहारवर्मा की ओर देखा और बोले—"अब तुम्हारी बारी है, तुम भी अपना हाल सुनाओ ।"

उपहारवर्मा ने बड़ी नम्रता से कुमार को नमस्कार किया और अपनी आपबीती सुनाने लगे ।

२
उपहारवर्मा की आपबीती

उपहारवर्मा अपना हाल सुनाते हुए बोले—

"युवराज, मैं आपकी खोज में घूमता हुआ विदेहराज की ओर निकल गया। जब उनकी राजधानी मिथिला के निकट पहुँचा, तो कुछ ऐसा प्रसंग आ गया कि मैं नगर के अन्दर न जाकर उसके बाहर ही एक मठिया में आराम करने लगा। वहाँ एक बूढ़ी साधुनी मिली। उसने मेरे लिए पानी-पत्ते का सब इन्तजाम अच्छी तरह से कर दिया और मैंने वहीं बाहर के बरामदे में थोड़ी देर विश्राम किया।

अचरज की बात यह हुई कि उस वृद्धा ने ज्यों ही मुझे देखा, उसी समय से उसकी आँखें भर आईं और बड़ी देर तक उसके आँसू गिरते रहे।

यह देखकर मैंने उससे पूछा—"माता जी, आप इस प्रकार रोती क्यों हैं ?"

वह बड़ी दीनता के साथ बोली—"बेटा, अभी बतलाती हूँ। तुझे शायद मालूम होगा कि इस मिथिला के पिछले राजा का नाम प्रहार-वर्मा था। मगध-नरेश राजहंस उनके बड़े मित्र थे। आपस की मित्रता के लिए बल और शम्बल का नाम दुनिया में मशहूर है। ठीक उन्हीं की तरह इन दोनों की भी आपस में बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। ये दोनों राजा तो परस्पर मित्र थे ही, परन्तु इन दोनों की रानियाँ प्रियम्वदा और बसुमती भी एक-दूसरी की बड़ी पक्की सहेली थीं। इनमें भी बड़ी गाढ़ी प्रीति थी।

जब बसुमती के पहला बच्चा होने को हुआ तो प्रहारवर्मा की रानी प्रियम्वदा को अपनी सखी के देखने की बड़ी इच्छा हुई। वह पति के साथ पाटलिपुत्र गई। उन्हीं दिनों मालव-नरेश के साथ मगधराज की बड़ी भारी लड़ाई हुई। उसमें कुछ ऐसी बात हो गई कि जिसकी तनिक भी सम्भावना नहीं थी, अर्थात् मगधराज को हारना पड़ा। मिथिला के प्रहारवर्मा पर मालवराज की कुछ दया हो गई, इसलिए उनकी कोशिश से वे जिन्दा बच गए। वे जब अपने राज्य को वापिस लौटे तो उन्हें मालूम हुआ कि उनके बड़े भाई संहारवर्मा के लड़के विकटवर्मा आदि ने गद्दी पर अधिकार कर लिया है और वे लोग सारे राज्य पर छा गए हैं।

यह सुनकर उन्होंने अपने भांजे सुम्हदेश के राजा से फौज की मदद लेनी चाही और उन्होंने उसकी ओर प्रस्थान किया। बीच में जंगल पड़ता था; उसके रास्ते में से गुजरते समय भीलों ने उन्हें लूट लिया। यहाँ तक कि उनके पास कुछ भी नहीं छोड़ा। मैं उस समय उनके छोटे लड़के को हाथों में लिये भागी, क्योंकि जंगली भील हम सब पर बड़े जोर के बाण बरसा रहे थे। भागते-भागते मैं जंगल में निकल गई और वहीं भटकती फिरी। वहीं मुझ पर एक बाघ झपटा। उसके पंजे की चोट खाकर मैं गिर पड़ी। मेरे हाथों से वह बच्चा भी छूट पड़ा और एक मुर्दा गाय की गोद में जा गिरा। वहीं वह लोप हो गया। उस मुर्दा गाय की गंध पाकर बाघ भी उसी ओर चला। पर वह ज्यों ही उधर बढ़ा कि किसी के धनुष से एकदम तीर छूटा और उस बाघ के प्राण-पखेरू उड़ गए। उस बच्चे को बाद में भीलों के लड़के उठा ले गए। मैं बेहोश पड़ी थी। उसी दशा में मुझे एक गड़रिया अपनी झोंपड़ी में उठा ले गया। उसने मुझ पर मेहरबानी की और मेरे घाव अच्छे किये। कुछ दिनों बाद मैं ठीक हो गई।

अब मुझे अपने मालिक मिथिला-नरेश के पास पहुँचने की सूझी। पर यहाँ मेरा कोई मददगार नहीं था, इस कारण मैं बड़ी बेचैन हुई। इन्हीं दिनों अचानक मेरी लड़की एक नौजवान के साथ वहीं मेरे पास आ पहुँची। वह मुझे मिलकर बहुत रोई। उसने सब हाल सुनाया कि वह किस तरह

महाराज के साथ से बिछुड़कर पीछे रह गई और कैसे-कैसे उसकी गोदी का दूसरा राजकुमार भीलों के सरदार के हाथ लगा। फिर उसने बतलाया कि उसके भी चोटें आ गई थीं और एक भील ने उसके भी घाव ठीक किए। परन्तु उसके अच्छे हो जाने पर उसने उसके साथ ब्याह करना चाहा। उसके इस रवैये से उसे बड़ी चिन्ता हो गई। इन नीच लोगों की संगत में रहने के कारण उसके मन में वैसे ही ग्लानि रहती थी। अब उस भील ने यह एक और अनोखा प्रस्ताव रख दिया। उसे इस समय सीधा इन्कार कर देना भी सहज न था, क्योंकि ऐसा करना फिर से एक मुसीबत को मोल लेना था। हालत में अपनी बेबसी और लाचारी से उसे बड़ी निराशा हुई। यहाँ तक कि उसने एक दिन एकान्त पाकर जंगल में अपना गला काट डालना चाहा। उस नौजवान ने अचानक उसे देख लिया। उसने उस जंगली भील को मारकर उससे उसका पीछा छुड़ाया। इसके बाद उसने अपना आगा-पीछा सोचकर उसी युवक के साथ ब्याह कर लिया।

जब मैंने उस नवयुवक से बातचीत की तो पता चला कि वह भी मिथिला-नरेश का ही एक कर्मचारी था। किसी कारण से राह में उसे अटकना पड़ा था और वह भी अचानक उसी रास्ते चला आया था, जहाँ वह अपनी जान देने पर उतारू हो गई थी।

उसके साथ-साथ चलकर हम दोनों महाराज प्रहारवर्मा के पास पहुँचीं और अपना सब हाल बतलाया। उन्हें तथा महारानी प्रियम्वदा को राजकुमारों के खो जाने की बात से बड़ा क्लेश हुआ।

उधर मिथिला-नरेश की उनके बड़े भाई के लड़कों के साथ लड़ाई हुई। महाराज प्रहारवर्मा सहज झुक जाने वाले नहीं थे। वे उन लोगों से बहुत दिनों तक लड़ते रहे। अन्त को उन्हें उनका कैदी होना पड़ा। महारानी को भी कैद कर लिया गया।

यह सब तो हो गया, पर मैं बड़ी अभागिन साबित हुई। मेरे इस बुढ़ापे में भी अब तक प्राण नहीं निकले थे। जिन्दगी मेरे लिए बोझ बन चुकी थी। अन्त को मैंने संन्यास ले लिया, और साधुनी हो गई।

मेरी लड़की की उम्र अभी कम थी। उसने दुनियाँ में कुछ भी नहीं देखा था। उसे सारी जिन्दगी बितानी थी। इसलिए वह विकटवर्मा —जोकि जीत चुके थे—की महारानी कल्पसुन्दरी के पास चली गई, और उनके यहाँ नौकर हो गई।

आज जब तुम आये तो तुम्हें देखकर मुझे पिछली सब बातें याद आ गईं। मैं सोचने लगी कि महाराज प्रहारवर्मा के दोनों कुँअर, अगर कहीं अच्छी तरह रहे हों और ठीक से उन्हें पाला-पोसा गया हो तो इस समय तक वे तुम्हारे-जितने ही बड़े हो चुके होंगे। वे दोनों आज होते तो महाराज के इन भतीजों की इस तरह जोर-जबरदस्ती करने की हिम्मत न पड़ती।'

इतना कहकर वह बूढ़ी संन्यासिन रोने लगी। उसके मन का गहरा दुःख और क्रोध इस समय पूरी तरह उमड़ आया था।

संन्यासिन की बातें सुनकर मेरी भी आँखों में आँसू आ गए। मैंने चुप-चाप धीरे-धीरे उससे कहा—"बूढ़ी अम्मा, तुम दुखी मत होओ, धीरज रखो। मेरी बात सुनो; तुम जिस समय जंगल में बेहोश पड़ी थीं, उस समय तुम्हारे मुंह से यह निकल रहा था कि 'भगवान् इन बच्चों की रक्षा करो!' कहीं जंगल में एक मुनि रहते थे। उनके कानों में तुम्हारे ये शब्द पड़े और उन्होंने मुझे उठा लिया। इसके बाद उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया। यह सब कहानी तो बड़ी लम्बी है। उसे इस समय कहना व्यर्थ है। संक्षेप में इतना ही समझ लो कि मैं वही राजकुमार हूँ। मैं अगर किसी तरह विकट-वर्मा को पा जाऊँ तो उसका काम तमाम कर डालना अब मेरे बाएँ हाथ का खेल है। पर उसके भाईबन्द बहुत से हैं। शहर के दूसरे मुख्य-मुख्य और प्रभावशाली आदमी भी उनसे मिले हुए हैं। मैं क्योंकि यहाँ रहता नहीं हूं, इस कारण मुझे इधर का कोई आदमी जानता नहीं। यहाँ तक कि माता-पिता भी मुझे नहीं पहचानते; अन्य लोगों का तो फिर कहना ही क्या? ऐसी हालत में बड़ी तरकीब से सब काम ठीक करना पड़ेगा।"

मेरी बात सुनकर उस वृद्धा ने रोते-रोते मुझे चिपटा लिया। मेरे सिर पर बहुत देर तक वह हाथ फेरती रही। फिर आशीर्वाद देकर भरे हुए

गले से कहने लगी—"बेटा, तुम्हारी बहुत उम्र हो। भगवान् तुम्हारा मंगल करें। जान पड़ता है आज हम लोगों के भाग्य फिर खुले हैं। मुझे ऐसा लग रहा है कि विदेह का राज्य अब फिर महाराज प्रहारवर्मा को मिल जायगा, क्योंकि आज तुम्हारे-जैसा वीर और विशालबाहु व्यक्ति उन्हें इस अपार शोक-सागर से उभारने के लिए खड़ा है। सचमुच महारानी प्रियम्वदा का भाग्य भी बड़ा प्रबल है!"

इस-तरह कहती हुई वह बूढ़ी स्त्री खुशी में भर उठी। फिर उसने मुझे बड़ी अच्छी तरह नहलाया-धुलाया और भोजन आदि करवाया। रात मैंने उसी मठ में एक जगह चटाई पर बिताई। वहीं लेटे-लेटे मैं सोचने लगा कि बिना कपट-भेस बनाये यह काम सिद्ध नहीं हो पावेगा। और स्त्रियों को कपट-लीला का घर समझो। इसलिए ऐसा किया जाय कि इस बूढ़ी को विकटवर्मा के रनवास में भेजूँ और इसके द्वारा पहले वहाँ का हालचाल मालूम करूँ। तब फिर कोई जुगत रची जा सकेगी।

मैं बड़ी देर तक इसी तरह की उधेड़-बुन में लगा रहा। रात बीतती हुई मालूम भी नहीं दी और दिन निकल आया। जब सवेरा हुआ तो ऐसा लगा, मानो पूर्वी महासागर में से सूरज देवता के निकलते ही उनके घोड़ों की साँस के ज़ोर से उड़कर रात कहीं दूर जा गिरी है। प्रातःकाल के सूर्य की हल्की-हल्की घाम बड़ी अच्छी मालूम पड़ रही थी। मुझे यह खयाल पैदा हुआ कि रात-भर समुद्र के बीच में पड़े रहने के कारण ही तो कहीं सूरज की गरमी कम नहीं पड़ गई है!

खैर, दिन निकलते ही मैं उठ बैठा और जल्दी-जल्दी सब कामों से निपट कर उन्हीं बूढ़ी अम्मा के पास जा पहुँचा। उनसे मैंने कहा—"अम्मा, तुम यह तो बतलाओ कि क्या उस दुष्ट विकटवर्मा के महल का कुछ अन्दरूनी हाल तुम जानती हो?"

मैं अभी अपनी बात पूरी कह भी नहीं पाया था कि सामने एक दूसरी औरत दिखाई पड़ी। उसे देखकर मेरी उस बूढ़ी धाय की आँखों में आँसू छलक आये। फिर भरे हुए गले से वह उस स्त्री को कहने लगी—

"बेटी पुष्करिका, देख, महाराज का यही वह कुँअर है। मैं निठुर बनकर इसे जंगल में छोड़ भागी थी, परन्तु यह मुझे फिर आ मिला है।"

यह सुनकर पुष्करिका बड़ी खुश हुई प्रसन्नतावश उसकी भी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बिचारी भी रोती रही और पिछली बातों की याद कर-करके विलाप करती रही। अन्त को उस बूढ़ी अम्मा ने उसे समझा-बुझाकर चुप कराया और उससे कहा कि तू अब विकटवर्मा के रनवास का भीतरी हाल इसे बतला।

वह मुझसे बोली—"कुँअर जी, सारे महल में इस समय कल्पसुन्दरी की तूती बोलती है। यह आसाम के राजा कलिन्दवर्मा की लड़की है। कल्प-सुन्दरी सब तरह के कामों में चतुर है और तरह-तरह के कला-कौशल और शिल्प में भी बड़ी होशियार है। रूप-सौन्दर्य में तो वह अप्सराओं तक को लजाती है। इस समय वह अपने मालिक विकटवर्मा को भी नहीं गिनती, और उस पर भी हावी है। विकटवर्मा की हालाँकि और भी रानियाँ हैं, पर आजकल तो वह एकमात्र कल्पसुन्दरी के हाथों में खेलता है।"

मैंने पुष्करिका से कहा—"तू एक काम कर। मैं तुझे ये तेल, फुलेल, इत्र आदि कुछ सजाव-सिंगार की चीजें और फूलों के हार दे रहा हूँ। इन्हें लेकर तू उसके पास जा। जब मौका देखे, तभी तू उसके सामने विकटवर्मा की बुराई करना और कहना कि वे तो तुम्हारी ख़ूबसूरती के पासंग-भर भी नहीं हैं। उसकी और भी जो-कुछ चुगली या निन्दा की जा सके करके तू उसकी ओर से कल्पसुन्दरी का चित्त फेरने की कोशिश कर। पुराने समय की वासवदत्ता आदि राजकुमारियों के हाल सुना-सुनाकर तू ऐसे इशारे करना कि अपनी बराबरी के और अपने-जैसे सुन्दर राजाओं के साथ ही ये सब राजकुमारियाँ ब्याह करती चली आई हैं। इस तरह करके उसके मन में तू एक पछतावा-सा पैदा कर दे। विकटवर्मा अपनी दूसरी रानियों के साथ चुपके-चुपके किस तरह के आनन्द और भोग-विलास करता रहता है, ये सब गुप्त बातें मालूम करके इनकी भी जानकारी तू उसे कराना। मतलब यह कि ऐसा यत्न कर जिसमें उसका दिल उससे फिर जाय।"

गले से कहने लगी—"बेटा, तुम्हारी बहुत उम्र हो। भगवान् तुम्हारा मंगल करें। जान पड़ता है आज हम लोगों के भाग्य फिर खुले हैं। मुझे ऐसा लग रहा है कि विदेह का राज्य अब फिर महाराज प्रहारवर्मा को मिल जायगा, क्योंकि आज तुम्हारे-जैसा वीर और विशालबाहु व्यक्ति उन्हें इस अपार शोक-सागर से उभारने के लिए खड़ा है। सचमुच महारानी प्रियम्वदा का भाग्य भी बड़ा प्रबल है!"

इस-तरह कहती हुई वह बूढ़ी स्त्री खुशी में भर उठी। फिर उसने मुझे बड़ी अच्छी तरह नहलाया-धुलाया और भोजन आदि करवाया। रात मैंने उसी मठ में एक जगह चटाई पर बिताई। वहीं लेटे-लेटे मैं सोचने लगा कि बिना कपट-भेस बनाये यह काम सिद्ध नहीं हो पावेगा। और स्त्रियों को कपट-लीला का घर समझो। इसलिए ऐसा किया जाय कि इस बूढ़ी को विकटवर्मा के रनवास में भेजूँ और इसके द्वारा पहले वहाँ का हालचाल मालूम करूँ। तब फिर कोई जुगत रची जा सकेगी।

मैं बड़ी देर तक इसी तरह की उधेड़-बुन में लगा रहा। रात बीतती हुई मालूम भी नहीं दी और दिन निकल आया। जब सवेरा हुआ तो ऐसा लगा, मानो पूर्वी महासागर में से सूरज देवता के निकलते ही उनके घोड़ों की साँस के ज़ोर से उड़कर रात कहीं दूर जा गिरी है। प्रातःकाल के सूर्य की हल्की-हल्की घाम बड़ी अच्छी मालूम पड़ रही थी। मुझे यह खयाल पैदा हुआ कि रात-भर समुद्र के बीच में पड़े रहने के कारण ही तो कहीं सूरज की गरमी कम नहीं पड़ गई है!

खैर, दिन निकलते ही मैं उठ बैठा और जल्दी-जल्दी सब कामों से निपट कर उन्हीं बूढ़ी अम्मा के पास जा पहुँचा। उनसे मैंने कहा—"अम्मा, तुम यह तो बतलाओ किक्या उस दुष्ट विकटवर्मा के महल का कुछ अन्दरूनी हाल तुम जानती हो?"

मैं अभी अपनी बात पूरी कह भी नहीं पाया था कि सामने एक दूसरी औरत दिखाई पड़ी। उसे देखकर मेरी उस बूढ़ी धाय की आँखों में आँसू छलक आये। फिर भरे हुए गले से वह उस स्त्री को कहने लगी—

"बेटी पुष्करिका, देख, महाराज का यही वह कुँअर है। मैं निठुर बनकर इसे जंगल में छोड़ भागी थी, परन्तु यह मुझे फिर आ मिला है।"

यह सुनकर पुष्करिका बड़ी खुश हुई प्रसन्नतावश उसकी भी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह बिचारी भी रोती रही और पिछली बातों की याद कर-करके विलाप करती रही। अन्त को उस बूढ़ी अम्मा ने उसे समझा-बुझाकर चुप कराया और उससे कहा कि तू अब विकटवर्मा के रनवास का भीतरी हाल इसे बतला।

वह मुझसे बोली—"कुँअर जी, सारे महल में इस समय कल्पसुन्दरी की तूती बोलती है। यह आसाम के राजा कलिन्दवर्मा की लड़की है। कल्पसुन्दरी सब तरह के कामों में चतुर है और तरह-तरह के कला-कौशल और शिल्प में भी बड़ी होशियार है। रूप-सौन्दर्य में तो वह अप्सराओं तक को लजाती है। इस समय वह अपने मालिक विकटवर्मा को भी नहीं गिनती, और उस पर भी हावी है। विकटवर्मा की हालाँकि और भी रानियाँ हैं, पर आजकल तो वह एकमात्र कल्पसुन्दरी के हाथों में खेलता है।"

मैंने पुष्करिका से कहा—"तू एक काम कर। मैं तुझे ये तेल, फुलेल, इत्र आदि कुछ सजाव-सिंगार की चीजें और फूलों के हार दे रहा हूँ। इन्हें लेकर तू उसके पास जा। जब मौका देखे, तभी तू उसके सामने विकटवर्मा की बुराई करना और कहना कि वे तो तुम्हारी खूबसूरती के पासंग-भर भी नहीं हैं। उसकी और भी जो-कुछ चुगली या निन्दा की जा सके करके तू उसकी ओर से कल्पसुन्दरी का चित्त फेरने की कोशिश कर। पुराने समय की वासवदत्ता आदि राजकुमारियों के हाल सुना-सुनाकर तू ऐसे इशारे करना कि अपनी बराबरी के और अपने-जैसे सुन्दर राजाओं के साथ ही ये सब राजकुमारियाँ ब्याह करती चली आई हैं। इस तरह करके उसके मन में तू एक पछतावा-सा पैदा कर दे। विकटवर्मा अपनी दूसरी रानियों के साथ चुपके-चुपके किस तरह के आनन्द और भोग-विलास करता रहता है, ये सब गुप्त बातें मालूम करके इनकी भी जानकारी तू उसे कराना। मतलब यह कि ऐसा यत्न कर जिसमें उसका दिल उससे फिर जाय।"

इसके बाद मैंने बूढ़ी धाय से कहा—"अम्मा, तू भी और सब काम छोड़कर कल्पसुन्दरी की ही टहल में जाकर लग जा और वहाँ हर रोज जो घटनाएँ घटें, उन्हें तू आकर मुझे बता जाया कर। मैं जानता हूँ कि तेरा चित्त इन बातों से हट चुका है, पर इस समय मेरे कहने से यह काम कर डाल। क्योंकि हम लोगों की इस मेहनत का फल बड़ा अच्छा निकलेगा, इसलिए अब इस काम की सफलता के लिए तू कल्पसुन्दरी के पीछे छाया की तरह लग जा।"

उन दोनों माँ-बेटियों ने मेरे कहने के अनुसार काम करना शुरू कर दिया। कुछ दिन बीतने पर धाय आकर मुझसे बोली—"बेटा, अब इस समय तक यह नौबत आ चुकी है कि कल्पसुन्दरी मन-ही-मन विकटवर्मा की ओर से बड़ी ग्लानि मानने लगी है। उसकी हालत ऐसी समझो जैसे नीम पर चढ़ी हुई चमेली हो। इस अवस्था तक मैं उसे ले आई हूँ, अब आगे बतलाओ क्या करना है।"

मैंने अपना एक चित्र खींच रखा था। वह उसे देकर मैंने कहा—"तू इसे कल्पसुन्दरी के हाथ में देना। इसे देखकर वह जरूर यह कहेगी कि क्या ऐसा रूपवान आदमी भी कोई है ?

तू जवाब में कहना—यदि ऐसा ही कोई हो, तब ?

तेरी इस बात का वह जो-कुछ जवाब दे, तू आकर मुझे बतलाना।"

इसके बाद मेरी तसवीर लेकर वह चली गई।

अगले दिन महल से लौटकर मुझसे अकेले में बोली—

"बेटा, मैंने जाकर उसे वह तुम्हारी तसवीर दिखलाई थी। वह बड़ी देर तक टिकटिकी बाँधे उसे देखती रही। फिर बोली—"यह दुनिया सचमुच सौभाग्यशालिनी है, जिसमें इतना सुन्दर आदमी मौजूद है ! ऐसा रूप-लावण्य तो कामदेव का भी नहीं हो सकता। यह तसवीर भी अनोखे ढंग से खींची गई है। यहाँ के सभी चितेरों को मैं जानती हूँ; उनमें से एक भी इस तरह का चित्र नहीं खींच सकता। यह किसका बनाया हुआ है ?"

मैंने मुस्कराकर कहा—"महारानी, आप कला की सच्ची परख

करना जानती हैं। ऐसी सराहना आपके ही मुँह से निकल सकती है। सचमुच, भगवान् कामदेव यदि इतने ही सुन्दर होते तो भी तसवीर में उन्हें इतना सुन्दर दिखला सकना असम्भव है। रूप-सौन्दर्य की बात तो ऐसी है कि यह धरती बहुत विशाल और लम्बी-चौड़ी है। इस पर भगवान् की माया से इतना खूबसूरत आदमी हो भी सकता है! अच्छा, आप मान लीजिए कि यदि इस तरह के असाधारण रूप-लावण्य का कोई युवक हो, और जैसा रूप है वैसे ही शील, स्वभाव, कला, कौशल, विद्वत्ता आदि गुण भी उसमें हों, साथ ही कुल भी उसका बहुत ऊँचा हो और वह कहीं आसपास ही हो, तो बतलाइए उसे क्या मिलेगा ?"

कल्पसुन्दरी कहने लगी—"अम्मा, तुमसे क्या कहूँ! यदि अपनी यह देह, यह मन और यह प्राण भी दे डालूँ तो भी ऐसे आदमी के लिए थोड़े हैं। बल्कि ये सब मिलाकर भी तुलना में उसके योग्य नहीं जँचते। ये सब-के-सब भी यदि उसे अर्पित कर दिये जायँ तो भी एक तरह से उसे कुछ नहीं मिला! तुम मेरी इस बात को हँसी में मत ले लेना। मुझे सचमुच ही इस आदमी के रूप-लावण्य को एक नजर भरकर देख लेने की बड़ी लालसा है। कोई ऐसा उपाय करो कि इसे देखकर आँखें ठंडी कर सकूँ! तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगी।"

धाय कहने लगी कि मैंने सारी बात खूब पक्की कर लेने के इरादे से फिर बातचीत शुरू की। मैंने कहा—"महारानी जी, एक राजकुमार है, जो गुप्त-रूप से घूम-फिर रहा है। पिछली बसन्तपंचमी के मेले पर जब आप सहेलियों के संग शहर के बाहर वाले बगीचे में गई थीं, उस समय की आपकी छवि मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। आप बेहद खूबसूरत लग रही थीं। ऐसा जान पड़ता था जैसे साक्षात् रतिसुन्दरी उतर आई हैं। आपके उसी रूप पर उस राजकुमार की अचानक नजर पड़ी। तभी से वह काम के बाणों का शिकार हो गया। शायद आपकी नौकरानी जानकर उसने मेरा पल्ला पकड़ा। मैंने भी यह बात देखी कि आप और वह दोनों ही रूप-लावण्य में और गुणों में बेजोड़ हैं। हर एक को देह की ऐसी छवि

और रूप-सम्पत्ति के साथ-साथ इस तरह के देवदुर्लभ गुण भला कहाँ मिलते हैं ? आप दोनों ही मुझे एक-दूसरे के लायक जँचे और आपकी जोड़ी मुझे बड़ी प्यारी लगी। इन सब बातों से लाचार होकर मैंने उस राजकुमार की आपके लिए दी हुई उपहार की चीजें भी ले लीं। वह फूलों की कलगी, हार और चन्दन आदि खुशबूदार चीजें, जिनसे मैंने आपका सिंगार किया था, उसी की दी हुई थीं। आपके प्रति अपना अगाध प्रेम प्रदर्शित करने के लिए उसने यह तसवीर खुद खींचकर आपके पास भेजी है। जिस तरह आज आपने अपना दिल खोला है और अब जो भाव प्रकट किये हैं वे यदि पक्के और सच्चे हैं तो आप आज्ञा भर दें, उसे हाजिर कर दिया जायगा। वह राजकुमार ऐसा-वैसा और मामूली आदमी नहीं है; बल, वीरता, बुद्धिमत्ता आदि सभी बातों में वह असाधारण है। उसके जोड़ का एक भी दिखाई नहीं देता। दुनिया का ऐसा कोई काम नहीं जो उसके लिए कठिन हो। आपका इशारा चाहिए, मैं आज ही उसे लाकर दिखलाती हूँ।"

मेरी बातें सुनकर कल्पसुन्दरी तनिक चुप हो रही। फिर कुछ सोचकर कहने लगी—

"अम्मा, तुमसे तो अब यह बात छिपाने की नहीं है, इसलिए कहे देती हूँ। मेरे पिता कलिन्दवर्मा और महाराज प्रहारवर्मा का एक-दूसरे के साथ बड़ा प्रेम था। साथ ही महारानी प्रियम्वदा भी मेरी माता की बड़ी प्यारी सहेली थीं। इन दोनों के जब तक कोई सन्तान नहीं हुई थी, उस समय इन्होंने आपस में यह प्रण किया था कि हम दोनों में जिसके लड़का हो उसके साथ, दूसरी जिसके लड़की हो, वह अपनी उस लड़की का ब्याह करेगी। मैं जिस समय हुई उस समय तक महारानी प्रियंवदा के कोई लड़का नहीं था। उधर विकटवर्मा के पिता ने मेरे पिताजी से मेरी मंगनी कर ली, इसलिए अकस्मात् उन्होंने मेरा यहाँ ब्याह कर दिया। अब मैं दिनोंदिन देखती हूं कि यह आदमी तो बड़ा निठुर है, साथ ही पितृद्रोही भी है। यह रूप या गुण किसी बात में भी मेरे साथ मेल नहीं खाता। घर-गृहस्थी के

व्यवहार भी इसे नहीं आते। ललित-कलाओं में इसे अनुराग नहीं। कविता, कहानी, नाटक, किसी बात का शौक यह नहीं रखता। केवल लड़ाई-भिड़ाई की बातों का पागलपन इस पर सवार रहता है। बहुत हुआ तो अपनी तारीफ के पुल बाँधने लगेगा। यह बात-बात में झूठ बोलता है। यह भी तो नहीं जानता कि किसे क्या चीज़ देनी या नहीं देनी चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि मुझे यह आदमी तनिक भी नहीं सुहाता।

इधर इन दिनों तो इसने हद ही कर दी है। उस रोज़ मैं बाग़ में गई हुई थी। सहेली पुष्करिका मेरे पास बैठी थी। इसने उसका भी लिहाज़ नहीं किया और उस रमयन्तिका को, जो हमारे यहाँ नाचा करती है, जाकर पकड़ लिया। यह नटनी आजकल मेरी सौत बनकर मुझसे डाह करने पर उतर आई है। अपनी ज़ात-औकात और दर्जा सब इसे भूल गया है। वह चम्पा की बेल, जो मैंने लगाई थी और जिसे बच्ची की तरह दूध पिला-पिलाकर मैंने बढ़ाया है, उसी के पास यह उस नटनी को ले गया। वहाँ बिठाकर खुद फूल चुन-चुनकर उसका अपने हाथों इसने बनाव-सिंगार किया। इसके बाद क्रीड़ापर्वत के भीतरी कमरे में ले जाकर उसी जड़ाऊ पलंग पर जहाँ मैं लेटा करती थी, यह उसे ले गया; और दोनों ने खूब जी भरकर आनन्द भोग किया। ये हैं इसकी करतूतें!

एक तो यह वैसे ही मुझसे मेल नहीं खाता, जिस पर मेरा अपमान करने को यह यहाँ तक उतर आया है। मैं भी अब इसकी परवाह क्यों करूं? माना कि कुछ परलोक का भय किया जाय। पर मुझे तो इसी ज़िन्दगी में इतने दुःख और क्लेश हैं कि उनके मारे परलोक की सुध ही नहीं आती। तुम तो स्त्री जाति के मन की हालत समझती हो। स्त्रियों का हृदय एक तरह से काम के वाणों का तरकस है। अनचाहे आदमी का संग उनको एकदम असह्य होता है और ऐसे व्यक्ति के सहवास से उन्हें दारुण दुःख हुआ करता है। इसलिए इस सुन्दर नौजवान के साथ तुम मुझे आज ही बाग के उस चमेली वाले घर में मिलवाओ। मैंने आज तो सिर्फ उसका थोड़ा-सा

हाल ही सुन पाया है, किन्तु इतने से ही मेरा मन उसकी ओर बेहद खिंच गया है। मेरे पास यह बहुत-सी धन-सम्पत्ति है। यह सब उसके चरणों में रख दूँगी और उसी की सेवा करते हुए ज़िन्दगी बिताऊँगी।"

कल्पसुन्दरी की ये बातें सुन मैंने उसे दिलासा देकर उसकी सब तरह से मदद करने का वचन दिया। इसके बाद तुम्हारे पास चली आई। अब तुम जैसे बतलाओ वैसे करूँ ?"

बूढ़ी धाय से यह सब बातें सुनने के पश्चात् मैंने उससे पूछकर यह मालूम किया कि विकटवर्मा का रनवास किस जगह पर है, उसके महल में पहरेदारों के पहरे कहाँ-कहाँ लगते हैं, और रानियों के खेल-कूद का बगीचा किस स्थान पर है।

इसी बातचीत में दिन ढल आया और भगवान् भुवन भास्कर का रंग लाल पड़ गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि अस्ताचल की चोटी पर से गिरने के कारण क्षुब्ध होकर उनका चेहरा लाल हो उठा है। क्रमशः सूर्यनारायण अस्त हो गए। सारे आकाश में अन्धकार-ही-अन्धकार भर गया। उस समय ऐसा लगा कि सूरज रूपी अंगारे को किसी ने पश्चिमी समुद्र के जल में डालकर बुझा दिया है और उस विराट् अंगारे का उठता हुआ वह धुआँ ही चारों ओर उड़-उड़कर छा गया है।

धीरे-धीरे तारे खिलने लगे। तारकराज चन्द्र भी आसमान में आ विराजे। चन्द्रदेव ने अपने गुरु बृहस्पति की भार्या से दुष्कर्म किया था। मेरे मन में भी आज पराई स्त्री कल्पसुन्दरी के साथ भोग करने की लालसा मुँह उठा चुकी थी। मुझे जान पड़ने लगा कि चन्द्रदेव चमक-चमककर अपने उस काम की खुशी के साथ सराहना कर रहे हैं और इसमें मेरे गुरु बनकर मुझे इसी राह पर चलने का संकेत करने के लिए उठे आ रहे हैं।

चन्द्रमा को देखकर मुझे तुरन्त कल्पसुन्दरी के काल्पनिक मुख-कमल का ध्यान हो आया। मालूम पड़ा, जैसे मुझे देखने की तीव्र लालसा से ही कल्पसुन्दरी का यह मुख उससे आगे-आगे पहले ही भागा चला आया है, और मुस्कराकर मेरी ओर निहार रहा है। उसकी इस मुस्कान से मेरे मन

में भी बड़े वेग से उमंगें उठने लगीं। मुझे ऐसा जान पड़ा कि कुसुमधन्वा कामदेव का तेज और भी प्रचण्ड हो उठा है, और वे अब भुवन-भर को जीत लेना चाहते हैं।

यह सब दृश्य देखता और कल्पनाएँ करता हुआ मैं चारपाई पर आ लेटा। लेटे-लेटे मैं सोचने लगा—'मेरा यह मतलब तो अब लगभग पूरा होने आया। परन्तु पराई स्त्री के साथ मिलने में धर्म का उल्लंघन तो होगा ही; इसका क्या उपाय हो?'

दूसरी ओर से मन ने कहा—'इसमें हर्ज ही क्या है? जहाँ अर्थ और काम के बारे में अपना मतलब पूरा होता हो, वहाँ पर-स्त्री-गमन को मनु आदि शास्त्रकारों ने भी वर्जित नहीं ठहराया। उन्होंने एक तरह से इसके लिए अनुमति ही दी है। फिर अपने माता-पिता को कैद से छुड़ाने के लिए ही तो मुझे यह अनीति की राह अपनानी पड़ी है। इसलिए बाद में अनेक अच्छे-अच्छे धार्मिक काम करके मैं इस पाप को धो डालूँगा और अपने को फिर धर्म की राह पर ले आऊँगा।'

अन्त में यह विचार आया कि इस सारी बात को सुनकर महाराज कुमार राजवाहन तथा दूसरे मित्र लोग न जाने क्या क्या कहेंगे?

इसी तरह की बातें सोचते-सोचते मैं सो गया। रात को सपने में मुझे गणेश जी ने दर्शन दिये। वे कहने लगे—

"पुत्र उपहारवर्मा, तू अपने मन में मैल और किसी तरह की ग्लानि मत ला, क्योंकि तू मेरा ही अंश है। वह सुन्दरी (कल्पसुन्दरी) भी वास्तव में पूर्वजन्म की गंगा है। इस गंगा को हमारे पिता महादेव जी अपनी जटाओं से सहला-सहलाकर खूब दुलार किया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि मैं गंगा के साथ खेल रहा था। वह विमाता होने से मेरी बाल-लीला पर झुंझला उठी और शाप दे बैठी कि 'जा, तू मनुष्य योनि में चला जा।'

इस पर मैंने भी उसे शाप दे डाला और कहा कि—'तू भी मनुष्य योनि में जा और स्त्री-शरीर धारण कर। जिस प्रकार इस समय नदी

होने से तेरा इस्तेमाल बहुत से आदमी करते हैं, इसी तरह स्त्री-शरीर में भी तेरा उपयोग कई आदमी करेंगे !'

मेरा शाप सुनकर गंगा ढीली पड़ गई। वह बड़ी नरमी से बोली—'अच्छा, तुमने भी मुझे इतना कठोर शाप तो दे डाला, पर अब इतनी दया कर दो कि पहले एक पुरुष के साथ रह चुकने के अनन्तर तुम्हारी ही चरण-सेवा का सौभाग्य मुझे मिले और फिर सदा ही तुम्हारा सहवास प्राप्त रहे।'

इसलिए पुत्र उपहारवर्मा, यह प्रसंग कुछ बुरा नहीं है, बल्कि स्वाभाविक और सुन्दर ही है। इस कल्पसुन्दरी के सम्पर्क को तुम किसी बुरी आशंका से मत देखो।"

सपने में ये सब बातें सुनकर मेरे चित्त को बड़ी तसल्ली हुई। जागने पर मन बहुत हल्का और प्रसन्न था। आज मेरी प्रियतमा कल्पसुन्दरी किस जगह आने के लिए संकेत भेजती है, इसी उत्सुकता में मेरा दिन कटा।

अगले रोज़ रात के समय मुझे उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचना था, इसलिए उस सारे दिन कल्पसुन्दरी से मिलने की उत्कण्ठा में चित्त बड़ा चंचल रहा। आज मानो कामदेव सब दुनिया को छोड़कर एकमात्र मेरे ऊपर ही अपने काम-बाणों की वर्षा करता रहा। धीरे-धीरे दिन ढल गया और ऐसा प्रतीत हुआ मानो सूरज देवता का सुनहरी प्रकाश से भरा हुआ सरोवर सूख चला है और केवल उसका कीचड़ अन्धकार रूप में चारों ओर फैला रह गया है।

अँधेरा होते ही मैंने काले कपड़े पहने। नीचे खूब मजबूत कवच बाँधा और हाथ में तलवार ली। कुछ और भी ज़रूरी चीजें साथ में रख लीं।

इसके पश्चात् धाय की बतलाई हुई निशानियों और संकेतों को याद करते हुए मैं चला और राजमहल के पास वाली पानी से भरी खाई के निकट जा पहुँचा। खाई के पास एक देवी माई का मन्दिर था। यहाँ पुष्क-

रिका ने पहले से ही एक मोटा और लम्बा बाँस छिपा रखा था। उसे खाई पर आड़ा रखकर मैं पार चला गया। इसी बाँस को खड़ा करके इसके सहारे राजमहल की बाहरी दीवार को फाँद गया। अन्दर पक्की ईंटों का बना हुआ महल का सदर दरवाज़ा था। उसी बाँस के द्वारा मैं इस पर चढ़कर ऊपर जाने वाले पक्के जीने से होता हुआ दूसरी ओर नीचे उतर गया।

यहाँ से महल का सरकारी बाग शुरू हो जाता था। इसमें मौलसिरी के पेड़ों की कतारों में से होता हुआ मैं चम्पा की झाड़ियों में घुसा और इसके बीच वाले रास्ते से थोड़ी दूर जाकर उत्तर की ओर मुड़ गया। यहाँ मुझे चकवा-चकवी की जोड़ी की बड़ी दर्द-भरी आवाज़ सुनाई दी।

इधर से मैं उत्तर की ओर पाढ़ल के पेड़ों के बीच में से चला। इस रास्ते पर महल की लम्बी-चौड़ी दीवार पड़ती थी। इसे बड़े सहज में छुआ जा सकता था। इसके साथ-साथ लगभग आधा फर्लांग गया। यहाँ से पूर्व की ओर मुड़ा। इधर के रास्ते पर बालू बिछी हुई थी। राह के दोनों ओर खजूर के पेड़ और चमेली के कुंज बड़े सुहावने लग रहे थे। यहाँ से होते हुए थोड़ा-सा उत्तर की ओर मुड़कर फिर पश्चिम की तरफ जाना होता था। इधर का रास्ता आमों के घने पेड़ों के बीच से होकर गया था। इसमें से होता हुआ मैं ऐसे स्थान पर आ पहुँचा जहाँ कुन्द का बहुत घना कुंज खड़ा था। इसके बीचोंबीच कीमती पत्थरों का सुन्दर चबूतरा बना हुआ था।

यहाँ एक छोटा-सा बक्स देखने में आया। इसके अन्दर बहुत धीमे-धीमे दिया टिमटिमा रहा था। मैंने इसका ढक्कन ज़रा-सा सरका कर उसके उजाले में चारों ओर देखा-भाला। इस जगह एक और दरवाज़ा था। इस पर लाल सुर्ख रंग के किवाड़ जड़े हुए थे। इन्हें देखकर दूर से ऐसा लगता था कि किसी ने नये मूँगों का ढेर लगा दिया है। किवाड़ों पर फूलों और खिलती हुई कलियों की चित्रकारी की गई थी। पास में नीचे ज़मीन पर लाल अशोक की टहनियाँ बिखरी पड़ी थीं।

इस दरवाजे से अन्दर घुसकर एक बहुत बढ़िया कमरा आता

था। यहाँ इस स्थान के चारों ओर पीले फूल की चमेली की झाड़ियाँ घनी कतारों में फैली हुई थीं। यही मानो उस गुप्त कमरे की चारों ओर से रखवाली करने वाली बाढ़ का काम कर रही थीं।

इस दरवाजे का किवाड़ खोलकर मैं भीतर कमरे में चला गया। अन्दर देखा तो फूलों के बिछावन से सजा हुआ एक बढ़िया और लम्बा-चौड़ा पलंग लगा हुआ है। पास में कमलिनी के नरम-नरम पत्तों से बनाये गए दोनों में तरह-तरह की ऐसी चीजें रखी थीं, जो रति-विलास के समय काम आया करती हैं। एक ओर हाथीदांत की बेंट का पंखा रखा हुआ था। पास ही एक तरफ सुगन्धित जल से भरी हुई सुराही लगा दी गई थी।

यहाँ बैठकर मैंने ज़रा देर आराम किया। कमरे में चारों ओर बड़ी बढ़िया महक बस रही थी। थोड़ी देर में ही किसीके आने की धीमी-धीमी आहट सुनाई दी। इसे सुनते ही मैं चुपके से कमरे के बाहर निकल आया और लाल अशोक वृक्ष के टहने से अपनी देह सटाकर, ज़रा आड़ में खड़ा हो गया। मैंने देखा तो वही सुन्दरी मद-भरी चाल से आ रही है। वह धीरे-धीरे कमरे में घुसी और चारों ओर देखने लगी। जब उसने वहाँ मुझे नहीं पाया तो वह बड़ी व्यथित हुई। क्षण-भर तो वह बेचैन-सी इधर-उधर ताकती रही। जब उससे नहीं रहा गया तो धीरे-धीरे सिसक-सिसककर रोने लगी। अनजान में ही उसके शोक-भरे गले से, विलाप के-से करुण स्वर फूट पड़े। प्यार के कारण उसकी आवाज़ काँपती हुई बड़ी मीठी हो गई थी। उसकी धीमी-धीमी और महीन आवाज़ सुनकर मुझे ऐसा लगा, मानो पास ही कहीं कोई राजहंसिनी मधुर स्वर में क्रन्दन कर रही है।

वह धीमे-धीमे कह रही थी—'हाय, मैं ठगी गई! यह तो साफ ही मुझे धोखा दिया गया है। अब मेरी ज़िन्दगी का कोई उपाय नहीं रहा। हाय रे हृदय! तूने, जो हो नहीं सकता था, उसे सहज संभव मान लिया? उस अनहोनी बात के न होने पर अब तू जलता क्यों है? भगवान् पंचवाण! मुझसे तुम्हारा क्या अपराध बन पड़ा जो मुझे इस तरह दहका रहे हो?

तिल-तिल करके मुझे क्यों सुलगाते हो, एकदम ही भस्म कर डालो !'

मुझसे अब और अधिक नहीं सुना गया। मैं झट आड़ में से निकलकर अन्दर आ गया और परदे के अन्दर से रोशनी में निकलकर खड़ा हो गया। मैंने कहा—"सुन्दरी, तुमसे भगवान् कामदेव का वास्तव में ही भारी अपराध हुआ है, क्योंकि उनकी प्राणप्यारी रतिसुन्दरी को तुमने अपने रूप-सौन्दर्य से नीचा दिखा दिया है। इतना ही नहीं, अपनी भौं-रूपी बेल से तुमने कामदेव की कमान को और अपनी काली-काली लटों की चमक से तुमने उसकी भ्रमर पंक्ति रूपी धनुष की डोरी को अपमानित कर डाला है। अपने तिरछे कटाक्षों की वर्षा से तुमने उसके सब अस्त्र-शस्त्र मिट्टी में मिला दिये हैं। तुम्हारे ओठों के गुलाबीपन के आगे उसकी केसरिया ध्वजा का कपड़ा फीका पड़ गया है और तुम्हारी महक-भरी सांसों के सामने उसका परम मित्र मलयपवन शरमाकर भाग गया है। उसकी कोयल भी तुम्हारी मिठास-भरी प्यारी बोली से मात खा चुकी है। लता की तरह मुलायम अपनी बाँहों से तुमने उसकी पुष्पपताका के ध्वजदण्ड को कहीं का नहीं रखा। महाराज अनंग ने संसार की विजय-यात्रा से पहले शुभ शकुन के रूप में जो दो कलसे भरवाकर रखवाये थे, वे तुम्हारे इन स्तनों की जोड़ी के आगे किसी काम के न रहे। तुम्हारी मनोहर नाभि के सम्मुख उस बिचारे का क्रीड़ा-सरोवर बेकार हो गया। वीरवर कामदेव ने संग्राम के लिए जो रथ तैयार करवाया था, वह तुम्हारे इस नितम्ब-युगल के सम्मुख बिलकुल भद्दा साबित हुआ है। महाराज के महल के बाहरी फाटक के दोनों ओर रत्नों-जड़े खम्भे तुम्हारी सुन्दर जांघों के आगे एकदम भौंडे मालूम पड़ते हैं। उनके कानों का गहना आम्रपल्लव तो तुम्हारे पैर के तलवों की भी बराबरी नहीं कर पाता !

इस तरह तुमने कामदेव का सरासर अपमान किया है ! बतलाओ, ऐसी दशा में मदनदेव यदि तुम्हारे हृदय पर अपने वाणों की चोट कर रहे हैं तो अनुचित क्या है ? हाँ, मेरे-जैसे निरपराध और बेकसूर को जो वे बेहद बेचैन और दुखी कर रहे हैं, यह उनका भारी अपराध है। सोचो,

इस बिचारे पर उन्होंने कैसी बेरहमी की है ? ऐसी हालत में, प्यारी ! अब तुम ही हम पर तरस खाओ । इस अनंगरूपी भुजंग ने हमें जो अकारण डस लिया है, इससे तुम ही जिला सकती हो । और वह इस तरह कि तुम्हारे तिरछे कटाक्षों में वह असर है जो अमृत के अन्दर हुआ करता है ; बस उसी कटाक्ष के साथ एक नज़र भरकर इधर देख लो । उसीसे निश्चय जानो इस अभागे प्राणी में फिर जीवन आ जायगा !"

इसी तरह की बातें करते-करते मैंने उसे लिपटा लिया। इसके पश्चात् उस परम सुन्दरी रमणी के साथ मैंने खूब अच्छी तरह आनन्द किया । वह भी काम-कला में खूब चतुर थी । हम दोनों तरह-तरह से रमण करते रहे । अन्त को तृप्ति का वह क्षण आ पहुँचा, जब उसकी मस्त गुलाबी आँखें मुंद-कर एक तरफ को झुकने लगीं और गालों के नीचे पसीने की बूँदें छलक आईं । उसके मुंह से 'सी' 'सी' की धीमी-धीमी और मीठी-मीठी आवाजें निकलने लगीं । वह इस समय बड़े अटपटेपन के साथ अपने दाँत और नाखून मेरी देह में जगह-जगह गड़ा रही थी । अंत को उसका अंग-अंग, देह का हर एक हिस्सा, ढीला पड़ता गया । जब मैंने देखा कि वह अब कराहने-सी लगी है, और कुछ-कुछ तंग हो रही है, साथ ही उसका शरीर थक गया है और तबियत भर चुकी है, तब मैंने भी अपने को ढीला छोड़ दिया । मैं भी उसी के साथ-साथ तृप्ति-शिथिल होकर पड़ गया । हम दोनों कुछ देर तक एक-दूसरे को लिये-दिये मस्ती में पड़े रहे । इसके बाद अलग हुए । दोनों को ही इस सहवास की समाप्ति पर बड़ा आनन्ददायक अनुभव हुआ । ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो हम दोनों बहुत पहले से ही एक-दूसरे के सुपरिचित हैं । इस मिलन के बाद दोनों में गहरी एकरूपता आ गई और एक-दूसरे को लिपटाये लेटे रहे ।

कुछ समय पश्चात् मुझे समय का ध्यान आया । मैंने गहरी साँस ली । अनायास मेरे मुँह से आह निकली, और मेरी आँखों में कुछ उदासी का-सा भाव आ गया । फिर एकाएक मैंने अपनी बाँहें फैलाकर उसे अपनी छाती से लगा लिया और कई बार चूमा । उसकी भी आँखों से प्रेम के

आवेश में आँसू बहने लगे और उसके गाल भीग गए

वह कहने लगी—"प्रियतम, अब जो तुम जा रहे हो तो समझ लेना कि मेरे भी प्राण तुम्हारे साथ ही चले। मुझे तुम अपने साथ-साथ लेते चलो। तुम्हारी इस दासी का अब तुम्हारे बिना जीना निष्फल है।"

यह कहते-कहते उसने अपने दोनों हाथ मेरे आगे जोड़ दिए। मैंने उससे कहा—"प्राणेश्वरी, तुम बड़ी भोली हो। ऐसा कौन आदमी है, जिसके दिल हो और वह प्यार चाहती हुई औरत की कामना पूरी करके उसका मन न रखे? परन्तु अब अगर तुम्हारे मन का भाव ऐसा है और मेरे प्रति तुम्हारा अनुराग अटल हो गया है तो इसकी सिद्धि का उपाय दूसरा है। इसके लिए मैं जैसे-जैसे कहूँ, तुम आँख मूँदकर वैसा करती चलो। अगर कर सकती हो तो सुनो—

तुम जाकर अकेले में राजा को मेरी सूरत-शक्ल से मिलता-जुलता हुआ चित्र दिखलाना और पूछना कि महाराज, बतलाइए, यह सूरत पुरुष-सौंदर्य की चरमसीमा तक पहुँचती है या नहीं? वह अवश्य यही कहेंगे कि—हाँ, है तो ऐसा ही।

तब तुम कहना—यदि यही बात है तो सुनिए। एक संन्यासिन को मैं जानती हूँ, वह देश-विदेश घूमी हुई और बहुत पहुँची हुई है। मैं उसे माता की तरह मानती हूँ। उसने यह तसवीर मुझे देकर कहा है कि—'बेटी, एक ऐसा मंत्र है जिसका जप करते हुए तुम ऐसी ही रूपवती हो सकती हो। इसके लिए तुझे अमावस को उपवास करना होगा। इसके बाद किसी शुद्ध पवित्र जगह पर पुरोहितों से एक यज्ञ करवाना। इन लोगों के यज्ञ कर चुकने पर वहाँ रात को तू अकेली रहना और उसी यज्ञ की अग्नि में सौ-सौ चन्दन और अगर की समिधाओं की आहुतियाँ देना। इसके बाद तुझे इसी में अंजलि भर-भरकर कपूर और बहुत से कीमती कपड़ों की आहुतियाँ डालनी होंगी। इतना करने पर तेरा रूप इस तसवीर वाले आदमी-जैसा हो जायगा। अब यदि तेरा पति ऐसा होना चाहे तो उसका यह उपाय है कि इस रूप को पा चुकने पर तू वहीं उस यज्ञकुंड के पास घंटा बजाना।

घंटे की आवाज पर तेरा पति तेरे पास आवे और अपनी सब गुप्त भेद की बातें तेरे सामने खोलकर आँखें बन्द किये हुए तेरा आलिंगन करे। ऐसा होने पर तेरे पास से यह सुन्दर रूप तेरे पति में आ जायगा और तेरी सूरत फिर पहले-जैसी हो जायगी।

यदि तुझे और तेरे पति को ऐसा करने की चाह हो, तो उन्हें ठीक-ठीक इसी विधि-विधान से चलना पड़ेगा; इसे तोड़ना ज़रा भी नहीं होगा।'

उस तपस्विनी ने यह भी कहा कि यदि तेरे पति ऐसी सुन्दर देह बनाना चाहें, तो पहले अपने मित्रों, मन्त्रियों और भाइयों के साथ सलाह कर लें, अपने यहाँ के मुख्य-मुख्य और प्रतिष्ठित नागरिकों से भी राय ले लें। ये सब लोग जब इस काम के लिए पूरे सहमत हो जायँ, तब इसमें उन्हें हाथ डालना चाहिए।'

राजा यह बात जरूर मान लेगा। तब तुम इसी बगीचे के चौराहे पर यज्ञ करवाना। यहीं पर अथर्ववेद में लिखी हुई विधि से पशु मार कर और उसी अग्नि में आहुति देकर ब्राह्मण लोग चले जायँ। यज्ञकुंड अकेला रह जायगा। इस समय इस कुंड में से बड़े जोर का धुआँ उठेगा। इस धुएँ की ओट में मैं घुसकर यहाँ इस लता-मंडप में आ बैठूँगा। जब खूब रात हो जाय, तब तुम विकटवर्मा को बुलवाना और उसके साथ हँसी-मजाक करते हुए उसके कान में कहना—

'तुम बड़े छलिया हो, किसी का किया हुआ उपकार भी तुमने कभी नहीं माना। अब मेरी मेहरबानी से जो रूप और सुन्दरता तुम्हें मिलेगी उसे देखकर दुनिया के सब लोग तुम्हें खूब सराहेंगे। पर मैं जानती हूँ कि तुम मेरे दिये हुए इस रूप को लेकर मेरी सौतों के साथ आनन्द-भोग किया करोगे; मेरी बात तक नहीं पूछोगे। तब फिर मैं अपने-आप अपने पैर में कुल्हाड़ी क्यों मारूँ ? मैं यह भूत जगाने का काम नहीं करूँगी।'

तुम्हारी बात सुनकर विकटवर्मा जो-कुछ कहे, वह तुम अकेली आकर मुझे बतलाना। इसके बाद मैं सब समझ लूँगा। अब तुम जाकर इतना काम और करना कि बाग़ में मेरे पैरों के निशान पड गए होंगे उन्हें पुष्करिका के

द्वारा मिटवा देना ।"

ये सब बातें सुनकर कल्पसुन्दरी बोली—"बहुत अच्छा, जैसा आप कहते हैं, मैं वैसा ही करूँगी ।"

उसने मेरी बातों को बहुत मन लगाकर सुना और उन्हें बड़े आदर तथा विश्वास के साथ लिया। मेरे साथ रात-भर रहकर भी अभी उसका जी पूरी तरह से भरा नहीं था। पर अब तो उसे जाना ही था। अपने मन पर काबू करके जैसे-तैसे वह रनवास की ओर गई और मैं भी जिस रास्ते से आया था उधर ही होकर अपने स्थान की ओर लौट आया ।

उस सुन्दरी ने महल में जाकर सब काम मेरे कहने के अनुसार ही किया। मूर्ख विकटवर्मा भी उसकी बातों में आ गया । उधर शहर के धनी-मानी लोगों में यह अद्भुत समाचार विचित्र ढंग से फैला। लोग आपस में बातचीत करते हुए कहते—

'अब तो राजा विकटवर्मा महारानी के मन्त्रबल से देवताओं-जैसा रूपवान और राजसी शरीर प्राप्त करेंगे। पर भाई, इसमें ज़रूर कोई भेद मालूम पड़ता है। कुछ भी हो ये अच्छे लक्षण नहीं हैं। भला इस बेवकूफी और खामखयाली का भी कुछ ठिकाना है ? अपने ही रनवास के बगीचे में अपनी पटरानी के द्वारा ही यह अनोखा काम करवाया जा रहा है ! तमाशे की बात यह कि बड़े-बड़े अक्लमन्द और देव-गुरु बृहस्पती जैसी बुद्धि रखने वाले मन्त्रियों ने भी छानबीन करके इस काम के लिए अपनी राय दे दी है। यदि इस तरह रूप बदलने लगे तो फिर उससे विचित्र बात और क्या हो सकती है ? अरे भाई, मुमकिन है किसी साधु या फकीर की करामात से ऐसा हो ही जाता है, क्योंकि तावीज, मंत्र और जड़ी-बूटियों के भी ऐसे-ऐसे चमत्कार हुआ करते हैं, जिनकी किसी को कल्पना तक नहीं होती।'

इसी तरह की अफवाहें उड़ते-उड़ते अमावस आ गई। जब रात हो आई और चारों तरफ घना अँधेरा छा गया, तब महल वाले बगीचे में से काले-लाल रंग का धुआँ उठने लगा। हवा के रुख पर चारों ओर दूध,

दही, घी, तिल, सफेद सरसों, चरबी, मांस, रुधिर आदि की आहुतियों से अजीब तरह की बड़ी बुरी चिरायँध, दूर-दूर तक फैलने लगी।

ज्यों ही अकस्मात् धुआँ रुका कि मैं झटपट वहाँ जा घुसा। वह सुन्दरी भी बाग में आ गई और मुझसे लिपटकर मुस्कराती हुई बोली—"तुम बड़े छली हो। लो, तुम्हारा मतलब पूरा हो गया। उस जानवर का अन्त आ पहुँचा है। उसे और अधिक लुभाने के लिए मैं तुम्हारे कहने के अनुसार उससे बोली—

"सुनते हो, तुम-जैसे धूर्त को मैं रूपवान् नहीं होने दूँगी। सुन्दर खूबसूरत हो जाने पर तो तुझे अप्सराएँ भी चाहने लगेंगी। इस दुनिया की आम औरतों का तो कहना ही क्या ? तुम्हारे-जैसे आदमी मोरों की तरह स्वभाव से ही चंचल हुआ करते हैं, और ऐसे निठुर होते हैं कि जहाँ मरजी आई हिलगकर रम जाया करते हैं।"

मेरी बात सुनकर वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा और बोला—"सुन्दरी, मैंने सचमुच बड़े-बड़े दुष्कर्म किये हैं, उन्हें माफ कर दो। आगे से मैं पराई औरतों का मन में ध्यान तक नहीं लाऊँगा। अब इस काम को जल्दी-जल्दी पूरा कर दो।"

उसे इस तरह गिड़गिड़ाता हुआ छोड़कर मैं ये ब्याह के कपड़े पहने हुए तुम्हारे पास आ गई हूँ। भगवान् अनंगदेव प्रेमाग्नि को साक्षी करके मुझे भार्या-रूप में तुम्हारे लिए अर्पित तो पहले ही कर चुके हैं। अब आज अग्निदेव की साक्षी में मैं अपने हृदय से अपने-आपको तुम्हारे अर्पण करती हूँ।"

यह कहते हुए उस सुन्दरी ने खड़े-खड़े अपने पैरों के पंजों से मेरे पैर जरा दबा दिये। फिर उसने पैर तथा एड़ियाँ उचकाकर अपनी दोनों बाँहें मेरी गरदन में डाल दीं और पीछे की तरफ हाथों की मुलायम अंगुलियाँ एक दूसरी में फँसाकर खूब कस लीं। इसके बाद मुझसे खूब चिपटकर मेरा मुँह उसने बड़ी होशियारी के साथ अपनी ओर लचा लिया। फिर अपना कमल-जैसा मुँह तनिक उठाकर मेरे कई एक चुम्बन ले लिये। इस समय उसकी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें खूब मस्त हो रही थीं।

मैंने उससे कहा—"प्यारी,तुम यहाँ इस चमेली के झाड़ के नीचे बैठ जाओ, मैं जा रहा हूँ। आज जो कुछ करना है, उसे ठीक से निपटा आऊँ।"

यह कहकर मैं उसे वहीं छोड़, उस स्थान पर गया जहाँ यज्ञ की आग खूब दहक रही थी। वहाँ पहुँचकर मैंने अशोक वृक्ष की डाल में लटका हुआ घंटा हिलाया। घंटा बड़ी जोर से टनटना उठा और ऐसा लगा मानो यमदूत ने विकटवर्मा को आवाज लगाई हो। इसके बाद मैंने अगर चन्दन आदि मिली हुई सामग्री की आहुतियाँ देना आरम्भ कर दिया।

इतने में विकटवर्मा वहाँ आया। वह मुझे देख शक में पड़ गया और अचरज के साथ खड़ा-खड़ा ही कुछ सोचने लगा।

मैं इसी समय उससे बोला—"भगवान् अग्निदेव को साक्षी करके तुम मुझे अब फिर सच-सच बतलाओ कि यह रूप पाकर तुम मेरी सौतों के साथ तो नहीं फंस जाओगे? तभी मैं अपने पास से यह रूप तुम्हें दूँगी।"

यह सुनते ही उसे फिर विश्वास हो आया। उसके मुंह से निकल पड़ा—"अरे, ये तो महारानी ही हैं! इसमें तो कोई छल-कपट नहीं मालूम पड़ता!" यह कहते हुए उसने फिर कसमें खाईं और बोला—"नहीं, नहीं, मैं तुम्हारे सिवा और किसी की ओर आँख उठाकर भी कभी नहीं देखूँगा, तुम सच मानो!"

मैं फिर मुस्कराकर कहने लगा—"कसम खाने से कुछ लाभ नहीं है। स्त्रियों में तो भला ऐसी कौनसी स्त्री है, जो खूबसूरती में मुझे नीचा दिखाये। हाँ, अप्सराओं की दूसरी बात है। उनके साथ अगर बिहार करना चाहो तो भले ही करना। अच्छा, अब तुम झटपट अपने गुप्त भेद की बातें मुझे कह सुनाओ, क्योंकि ऐसा हो जाने के बाद ही यह रूप तुम तक पहुँच पायगा।"

विकटवर्मा तुरन्त अपने रहस्य खोलने लगा। बोला—"सुनो, मेरे पिता के छोटे भाई प्रहारवर्मा इस समय कैद में हैं। मैंने मन्त्रियों के साथ सलाह करके यह तय किया है कि उन्हें भोजन में कुछ दिलवाकर मरवा डालूँ और अफवाह यह फैलाऊँ कि उन्हें हैजा हो गया है।

मेरी दूसरी गुप्त योजना यह है कि मैं पुंड्र देश को जीतना चाहता

हूँ। उस पर हमला करने के लिए छोटे भाई विशालवर्मा को एक भारी सेना देकर भेजने की मेरी इच्छा है।

तीसरी भेद की एक बात यह है कि हमारे शहर के प्रतिष्ठित नागरिक पांचालिक तथा सौदागरों के मुखिया परित्रात, ये दोनों मुझे अकेले में मिले थे। इन्होंने मुझे बतलाया कि खनति नाम के एक यूनानी के पास इतना बड़ा और बढ़िया हीरा है जिसकी कीमत में सारा राज्य भी लगा दिया जाय तो थोड़ा है। इन लोगों की सलाह है कि यह हीरा किसी तरह उस यूनानी से जरूर ले लिया जाना चाहिए। इसलिए अब इसे किसी तरकीब से कौड़ियों के मोल हथियाना होगा।

चौथी गुप्त बात यह है कि हमारे राज्य का शतहली नाम का एक गाँवों का मुखिया मेरा बड़ा पक्का और जिगरी दोस्त है। इसका अपने इलाके में बड़ा भारी असर है। यह चाहता है कि अपनी तरफ के अनन्तसीर नाम के एक जमींदार के विरुद्ध उसके किसानों को भड़काकर उनके हाथों उसे मरवा डाला जाय। शतहली का कहना है कि अनन्तसीर बड़ा घमंडी है और मेरे खिलाफ झूठी अफवाहें फैलाता रहता है। पर असल बात दूसरी ही है।

शतहली इस समय मेरे पास आया हुआ है और चाहता है कि अनन्तसीर का सफाया करने के लिए मैं कुछ लठैतों को लगा दूँ। असल बात यह है कि अनन्तसीर प्रहारवर्मा का तरफदार है, इस कारण मैं भी इस काँटे को निकाल फेंकना चाहता हूँ।

बस, ये ही भेद की बातें हैं, जिनकी तुरन्त ही मुझे व्यवस्था करनी है।''

विकटवर्मा की इतनी बात समाप्त होते ही मैं बोला—''बस, तेरी आयु भी इतनी ही है; ले अपने कर्मों का फल भोग!'' यह कहते ही मैंने तुरन्त छुरी से उसे काट डाला और टुकड़े-टुकड़े करके उसी आग में उसे होम कर दिया जिसमें अभी-अभी घी-सामग्री डाली गई थी। आग में इस समय भी खूब ऊँची-ऊँची लपटें उठ रही थीं। उन्हीं में वह जलकर

राख हो गया।

यह काम झटपट करके मैं तुरन्त प्यारी कल्पसुन्दरी के पास आया और उसे सब बात कह सुनाई। वह फिर भी स्त्री ही थी; इस भयंकर कांड से उसका चित्त एकदम डांवाडोल और बड़ा बेचैन-सा हो उठा। मैंने उसे उसी समय सब पिछली वात बतलाई और उसको समझा-बुझाकर शान्त कर दिया।

अब देवी का मन्त्र एक तरह से सिद्ध हो चुका था और मेरे चित्र वाला वह रूप क्रमश: पहले कल्पसुन्दरी को और उससे विकटवर्मा को प्राप्त हो गया था। मतलब यह है कि किंवदन्ती के अनुसार मैं अब 'रूप बदले हुए विकटवर्मा' था।

मैंने कल्पसुन्दरी का नरम हाथ पकड़ा और महल में सीधा उसके कमरे में पहुँचा। उसका हुक्म पाते ही महल की सब स्त्रियां और दास-दासियां आ गई और मेरी सेवा-टहल में लग गईं। वहां की रानियां और उनकी सब सखी-सहेलियाँ बड़ी हैरानी और अचरज में थीं। मैं कुछ समय तक उनके बीच आनन्द-विनोद में लगा रहा। इसके पश्चात् सबको विदा कर दिया।

अब केवल कल्पसुन्दरी मेरे पास रह गई। उसी को अपनी बाँहों में लिपटाये मैं पलंग पर आया। इस समय रात तो खूब हो ही चुकी थी, इसलिए हम दोनों लेट गए। मैंने उसे अपने हाथों और जाँघों में खूब अच्छी तरह ले लिया। फिर एक-दूसरे से चिपटे हुए हम दोनों खूब आनन्द करते रहे। वह छोटी-सी रात बीतती हुई मालूम नहीं पड़ी।

रात में ही कल्पसुन्दरी के द्वारा मैंने राजमहल के और परिवार के सब हालचाल और रंग-ढंग मालूम कर लिये।

सवेरे तड़के उठकर मैं नहाया-धोया, फिर मैंने पूजापाठ किया और मन्त्रियों से भेंट की। कुछ इधर-उधर की बातचीत के बाद मैंने मन्त्रियों से कहा—

"आप सबसे मुझे अब यह कहना है कि मेरे इस रूप के बदल जाने के साथ-ही-साथ मेरे स्वभाव में भी परिवर्तन हो चुका है। इस कारण अपनी

पिछली योजनाओं को बदलकर अब मैं इस ढंग पर नई व्यवस्था करता हूँ—

मेरे पितृ-स्थानीय महाराज प्रहारवर्मा, जिन्हें मैंने भोजन में जहर देकर मार डालने का सोचा था, उन्हें तुरन्त जेल से छोड़ दिया जाय और उन्हीं को पुनः इस राज्य की गद्दी पर बिठाया जाय। हम उनकी सेवा-सुश्रूषा करेंगे और उनके साथ अपने पिता-जैसा ही व्यवहार करेंगे। संसार में पिता के वध से अधिक भयंकर पाप भला क्या हो सकता है !"

फिर मैंने भाई विशालवर्मा को बुलाकर उससे कहा—"भैया, पुंड्र देश वालों की इस समय यह दशा है कि वहाँ भिखारियों को अच्छी तरह भीख भी नहीं मिलती। वे लोग मुसीबतों में हैं और परेशानियों के शिकार हो रहे हैं। यदि उन पर इस समय हमारा हमला हुआ तो वहाँ वाले उल्टे हमारे ही भरे-पुरे राज्य में आ घुसेंगे। इसलिए जिन दिनों वहाँ अच्छी खेती हो और बुवाई तथा कटाई होने लगे, तब उन पर हमला करना। अभी यह विजय-यात्रा करना ठीक नहीं।"

इसके बाद मैं शहर के उन दोनों साहूकारों से मिला और उनसे मैंने कहा—"देखो भाई, मुझे धर्म का पालन करते हुए राज्य करना है। इसलिए कम दामों में भारी कीमत की चीज मुझे नहीं लेनी चाहिए। इस कीमती हीरे को मेरी राय में उसके असली मूल्य पर ही खरीदा जाना ठीक है।"

अन्त में मुखिया शतह्ली से मैंने कहा—"मुखिया जी, अनन्तसीर को महाराज प्रहारवर्मा का तरफदार होने के कारण ही तो हम मारना चाहते थे ? परन्तु महाराज को तो हम अपना पिता मान चुके हैं। वे अब अपनी गद्दी पर बैठ गए हैं। ऐसी हालत में अनन्तसीर को क्यों मारा जाय ? अब आप भी उसके मामले को तूल मत दें।"

इन सब लोगों ने जब मेरी ये बातें सुनीं तो उन्हें मन-ही-मन महसूस हुआ कि उन्हें तो सब पुराने रहस्य और भेद की बातें मालूम हैं। उन्होंने समझ लिया कि ये विकटवर्मा ही हैं। मुझे और मेरे रूप को देखकर सब अचरज करने लगे। फिर इन लोगों ने मेरी और रानी कल्पसुन्दरी की

बहुत बड़ाई की। मन्त्र की ऐसी जबरदस्त करामात होती है, यह बात इन लोगों ने खूब जोर-शोर से चारों ओर फैला दी।

इसके बाद सब मन्त्रियों ने मेरे माता-पिता को जेल से निकाला। वे अपने उस राज्य की गद्दी पर फिर बिठाये गए। उस अपनी धाय के द्वारा मैंने जिस-जिस तरह से यह काम किया गया था, वह सब गुप्त-भेद, माता-पिता को कहला दिया। सारा हाल जानकर उन दोनों की खुशी का ठिकाना न रहा। मैंने जाकर उनके पैर छुए और सब प्रकार से उनकी सेवा-सुश्रूषा करने में लग गया। समय आने पर उन दोनों की आज्ञा से मुझे युवराज बनाया गया।"

अपनी यह सब आपबीती सुनाने के पश्चात् उपहारवर्मा कुमार राजवाहन से बोले—

"राजकुमार, इन सब उत्थान-पतन के दिनों में भी मेरी बुद्धि हमेशा अच्छी और ठीक दशा में रही। मैंने हालांकि तरह-तरह के आनन्द और सुख भोगे, पर आपसे दूर और अलग रहने के दुःख ने उन सबको फीका ही बनाये रखा।

इन्हीं दिनों अचानक मुझे पिता जी के मित्र श्री सिहवर्मा जी का एक पत्र मिला, जिससे मालूम हुआ कि चंडवर्मा ने चम्पा पर हमला कर दिया है। मैंने सोचा कि अपने मित्र का बचाव और वैरी का विनाश ये दोनों ही काम मुझे जरूर करने चाहिएँ।

इसलिए मैंने एक भारी सेना तैयार की और बहुत जल्दी से इस ओर कूच कर दिया। यहाँ आने पर मेरे भाग्य ही खुल गए और आपके चरणकमलों के दर्शनों का सुअवसर हाथ लगा। आज सचमुच मेरे लिए बड़े आनन्द और उत्सव का दिन है।"

उपहारवर्मा का यह हाल सुनकर कुमार राजवाहन कुछ हँसे और सब लोगों से कहने लगे—"देखो भाई, उपहारवर्मा ने यद्यपि धोखे से पराई स्त्री के साथ भोग किया है, पर इसके माता-पिता कारागार का कष्ट झेल रहे थे; उन्हें छुड़ाना था। दूसरे उनके उस दुष्ट वैरी विकटवर्मा को भी मारना

था। साथ ही अपना गया हुआ राज्य भी लौटाना था। इन्हीं सब कारणों से इसे ऐसा करना पड़ा। इतना होने पर भी इसको धर्म और अर्थ दोनों की ही सिद्धि हुई है। सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य बुद्धिमान होना चाहिए। फिर वह जो-कुछ भी करेगा बड़ी शान से और खूबसूरती के साथ करेगा।"

इसके पश्चात् कुमार राजवाहन अर्थपाल की ओर मुड़े। उसे प्रेमपूर्ण दृष्टि से कुछ देर देखकर कहने लगे—"अब तुम भी अपनी आपबीती सुनाओ।"

३

अर्थपाल की आपबीती

अर्थपाल अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"युवराज, मैं भी इन्हीं मित्रों के साथ-साथ निकला। मेरा और इनका इस समय एक ही काम था—आपकी खोज करना। इसी के लिए समुद्र तक अनेक देशों का चक्कर लगाते-लगाते मैं एक बार काशी-राज्य की राजधानी वाराणसी (बनारस) में पहुँचा।

यहाँ आकर मैंने भगवती भागीरथी के हीरे की कनियों-जैसे निर्मल और चमकीले जल में स्नान किया और मणिकर्णिका घाट पर अन्धकासुर-मर्दन भगवान् महादेव की पूजा की। इसके पश्चात् मैं मन्दिर की परिक्रमा करने लगा।

यहाँ मेरी दृष्टि एक ऐसे आदमी पर पड़ी जो खूब हट्टा-कट्टा और लम्बा-तगड़ा जवान था। इसके मोटे-मोटे और मजबूत बाजू ऐसे लगते थे मानो लोहे के मुद्गर हों। अपनी इन्हीं भुजाओं से वह जिरह-बख़्तर बाँधकर कुछ तैयारी-सी कर रहा था। उसकी आँखें सूजी हुई लाल पड़ रही थीं। शायद लगातार आँसू गिरने के कारण उसका यह हाल हुआ होगा।

मैंने अपने मन में सोचा कि यह आदमी तो बड़ा हिम्मती और कठोर जान पड़ता है। इसकी आँखें भी रूखापन-सा बरसा रही हैं। यह जिस तरह कस-कसाकर तैयार हो रहा है, उससे तो ऐसा लगता है कि यह कोई कठिन जोखिम का काम करने वाला है। इसे शायद अब अपने प्राणों का मोह नहीं रह गया। जान पड़ता है कि इसके किसी मित्र या हितैषी पर विपत्ति आ पड़ी है और उसीके लिए यह कोई दु:साध्य काम कर गुजरेगा।

इससे पूछना चाहिए कि क्या बात है । संभव है मुझे इसकी कुछ सहायता करने का मौका मिल जाय ।

यह सब सोचते-विचारते हुए मैं उसके पास पहुँचा और उससे पूछने लगा––"भाई, आप यह जो कवच बाँध रहे हैं, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आप कोई असाधारण काम करने का इरादा रखते हैं । क्या आप पर कोई मुसीबत या कष्ट आ पड़ा है ? यदि छिपाने की गुप्त बात न हो तो बतलाइए ।"

मेरी बात सुनकर उस आदमी ने मुझे बड़े मान-आदर के साथ लिया । मेरी ओर देखकर वह कहने लगा––"इसमें कोई हर्ज की बात नहीं है । सुनिए । आइए मेरे साथ चलिए ।"

इसके बाद हम दोनों चल दिए । एक कनेर के पेड़ के नीचे जाकर वह आदमी मेरे साथ बैठ गया और उसने अपना हाल सुनाना शुरू किया । कहने लगा––

"महानुभाव, मैं पूरब के देशों में मनमौजी ढंग से घूमता-फिरता रहा हूँ । मेरा नाम पूर्णभद्र है । मैं एक गाँव के मुखिया का लड़का हूँ । यद्यपि मेरे माता-पिता ने बड़े आदर-यत्न के साथ मेरा लालन-पालन किया था, पर मेरी तकदीर कि बचपन से ही मुझे चोरी की लत पड़ गई । एक बार यहाँ काशी में भी मैंने एक मालदार वैश्य के घर चोरी की । चोरी का माल मेरे पास से बरामद होने पर मैं पकड़ा गया । इसके बाद चोरी के अपराध में मुझे मौत की सजा मिली और मेरे मारने के लिए एक मस्त हाथी लाया गया । उसका नाम 'मृत्यु-विजय' था । यह हाथी बड़ा खूँखार था । इसी के पैरों-तले कुचलाकर मुझे मृत्युदंड दिया जाने वाला था । इस मौके पर यहाँ के प्रधानमन्त्री खुद आये थे, इनका नाम कामपाल था । ये राजमहल के फाटक की ऊपरी छत पर बैठे । इन्होंने मेरे कुचलने के लिए हाथी के हाँकने का हुक्म दिया । आदेश पाते ही महावत ने हाथी को बढ़ाया और वह अपनी सूँड को गोलाई में ऐंठता हुआ मेरी ओर लपका । इसी समय पास खड़ी हुई आदमियों की भीड़ में हल्ला-गुल्ला मचा । हाथी पर झूलते

हुए घंटे भी बज उठे। इन सबके कारण वहाँ बड़ा भारी शोर-गुल होने लगा।

मैं एकदम कूदकर उस हाथी के सामने आ खड़ा हुआ और बड़ी निर्भीकता के साथ मैंने उसे ललकारा। हाथी ने दौड़कर अपने दाँत से मुझ पर तिरछी चोट करनी चाही। मेरा इधर यह हाल था कि दोनों हाथ काठ में कस दिये गए थे। फिर भी मैंने लकड़ी के छेद में फँसे हुए हाथों को ही घुमाकर उसके दोनों दांतों के बीच सूँड पर दे मारा। इस चोट से घबरा कर वह पीछे लौट गया। महावत को इससे बड़ा क्रोध आया। उसने हाथी को बुरी तरह गाली देते हुए उस पर जोर-जोर से अंकुश चलाये और लातें भी खूब मारीं। जैसे-तैसे करके हाथी को वह फिर मेरे सामने लाया। मुझे अब दूना क्रोध चढ़ आया और मैंने ललकार कर पहले की तरह उस पर फिर चोट की। इससे वह बेतरह बौखला गया और अब की बार वह लौटकर उल्टा भाग ही पड़ा। मैं तब तक बड़ी तेजी से झपटकर महावत की ओर दो-चार कदम बढ़ आया और मैंने उसे चिढ़ाया। इस पर वह बहुत ही गुस्से में भर गया और हाथी को बड़े जोर से गालियाँ देता हुआ बोला—"अबे ओ हाथी के बच्चे! तुझ पर क्या मौत आ गई है?" इतना कहकर नोकीले अंकुश से उसने हाथी की कनपटी पर कस-कसकर लगातार खूब चोटें कीं। इस तरह मार-मारकर जैसे-तैसे वह उसे फिर मेरे सामने लाया।

यह देखकर मैं बड़ी हिकारत के साथ बोला—"हटाओ, हटाओ! इसे वापिस ले जाओ! यह भी कोई हाथी-में-हाथी है? इस कीड़े को मेरे सामने से दूर करो, कोई अच्छा तगड़ा ज़रा ज़ोरदार हाथी लाया जाय जिसके साथ थोड़ी देर खिलवाड़ तो कर लूँ। फिर तो मुझे मरना ही है।"

इस समय तक महावत उसी हाथी को फिर बढ़ा लाया था। पर अब की बार उसने मुझे क्रुध होकर जो गरजते सुना तो वह दूर से ही देखकर उल्टे पैर भागा। इस बार उसने महावत की मार और गालियों की भी परवाह नहीं की।

काशीराज के मन्त्री यह सब तमाशा ऊपर से देख रहे थे। उन्होंने मुझे बुलवाया और कहने लगे—"तुम तो बड़े हिम्मती निकले, इस मृत्यु-विजय हाथी को साक्षात् मौत ही समझो। यह बड़ा खूनी है, परन्तु तुमने इसे भी ऐसा बना दिया! देखो भाई, मेरी सलाह मानो तो तुम यह चोरी का काम छोड़ दो और हमारे आर्य लोगों में जैसे चला जाता है, उसी तरह सज्जनोचित ढंग से अच्छा आचार-विचार रखते हुए रहना शुरू कर दो। कहो, ऐसा कर सकोगे?"

मैं उनके इस अपनेपन से बड़ा प्रभावित हुआ। मैंने तुरन्त कहा—"जैसी आपकी आज्ञा!"

इसके बाद से वे मेरे साथ मित्रों-जैसा बरताव करने लगे। उनके साथ मेरी अच्छी घनिष्ठता हो गई। इस प्रकार मेरे दिन अब काशी में उनके पास ही बीतने लगे।

एक बार बातचीत के सिलसिले में मैंने अकेले में उनका पिछला हाल पूछा। वे सुनाते हुए कहने लगे—

"पाटलिपुत्र में महाराज रिपुंजय के यहाँ धर्मपाल के नाम के एक मन्त्री थे। यह वेद-शास्त्र के ज्ञाता, बड़े बुद्धिमान और नामी आदमी थे। उनके लड़के का नाम सुमित्र था। विद्या-बुद्धि आदि गुणों में वह भी अपने पिता-जैसे ही थे। उन्हीं सुमित्र का मैं छोटा भाई हूँ। वह एक माता से थे, मैं दूसरी माँ से हूँ। मैं छुटपन से ही कुछ उच्छृङ्खल प्रकृति का और आजाद तबियत का था। धीरे-धीरे मैं वेश्याओं में जाने-आने लगा था। परन्तु मेरे भाई क्योंकि धार्मिक स्वभाव के थे, इसलिए उन्होंने इसकी रोक-थाम करनी चाही। मैं भला क्यों मानने लगा? संक्षेप में इतना ही समझ लो कि मैं घर से निकल गया और मनमौजी ढंग पर इधर-उधर घूमता फिरा। इसी तरह सैर करता हुआ मैं इस काशी में आ निकला।

अचानक ऐसा हुआ कि एक दिन काशीराज चण्डसिंह की कन्या—कान्तिमती महल के बगीचे में शिवजी की पूजा की लिए आई हुई थी। वहीं बाग में वह सखी-सहेलियों के साथ गेंद खेलने लगी। मैंने उसे देखा तो

उस पर मेरी तबियत आ गई। बड़ी कोशिश करके जैसे-तैसे में उससे मिला भी। अब मैं रोज चुपचाप राजकुमारी के महल में जाकर उसके साथ आनन्द विहार करने लगा। यहाँ तक कि मुझसे उसके गर्भ रह गया और उसने एक लड़का जना। परन्तु उसी की दासियों और नौकरानियों ने, इस डर से कि कहीं भेद न खुल जाय, उस बच्चे को मरा हुआ बतलाकर क्रीड़ापर्वत के ऊपर ले जाकर डाल दिया। वहाँ से एक भीलनी के हाथों उस बच्चे को मरघट पर डलवा दिया गया। उसे वहाँ डालकर रात के समय जब वह वापस लौटी आ रही थी तो पक्की सड़क पर उसे सन्तरी मिले। उन्हें कुछ सन्देह हुआ और उन्होंने उसे पकड़ लिया। जब उसे डाँटा-डपटा गया और सख्त सजा देने की धमकी दी गई तो डरकर उसने भंडाफोड़ कर दिया। मैं उस समय वहीं महल में क्रीड़ापर्वत की एक गुफा के अन्दर निश्चिन्त पड़ा सो रहा था। उस भीलनी ने आधी रात के समय पहरेदारों को ले जाकर मुझे वहीं पकड़वा दिया। तुरन्त ही रस्सियों से मुझे बाँध लिया गया। फिर महाराज की आज्ञा से मुझे मरघट पर लाया गया और उनका हुक्म हुआ कि मेरा वध कर दिया जाय। मरघट पर पहुँचते ही वध करने वाले चाण्डाल ने मेरे ऊपर तलवार चलाई। परन्तु भाग्यवश कुछ ऐसा हुआ कि उसने तलवार उठाकर जो मारी तो उससे पहले-पहल मेरे हाथ की रस्सी कटी। इस कारण हाथ खुल गया। रात का समय था। मैंने लपककर उसी हाथ से उस चाण्डाल की तलवार छीन ली और उसको तुरन्त काट डाला। उसकी सहायता के लिए जब और दो-एक पहरेदार भागे आये तो मैंने उन पर भी हमला कर दिया और तुरन्त भाग निकला।

भागता-भागता मैं जंगल में जा घुसा। इस समय मैं बिलकुल अकेला और असहाय था। फिर भी मैं जंगल के अन्दर ही घूमता-फिरता रहा। एक दिन अचानक ऐसा हुआ कि वहाँ मुझे एक बड़ी रूपवती लड़की दिखाई दी। वह बैठी-बैठी रो रही थी। आँसुओं से उसका सारा चेहरा भीग गया था। उसके साथ एक नौकरानी भी थी। मुझे देखकर उसने पेड़ की नई कोंपलों-जैसे मुलायम और गुलाबी-गुलाबी-से अपने दोनों हाथ जोड़ दिये,

और सिर झुकाकर नमस्कार किया। उसकी दशा इस समय बड़ी अस्त-व्यस्त-सी हो रही थी और उसके सिर की घुँघराली लटें इधर-उधर बिखर आई थीं। मुझे प्रणाम करने के बाद वह सीधी मेरे पास चली आई और एक घने पेड़ के नीचे ठंडी छाँह में आकर मेरे नजदीक ही आकर बैठ गई।

मैंने उससे पूछा—"सुन्दरी, तुम कौन हो ? यहाँ किस जगह से आ रही हो ? मेरे ऊपर तुम्हारी आत्मीयता और कुछ कृपादृष्टि जान पड़ती है, जो इस प्रकार निस्संकोच चली आई हो। अपना कुछ हाल कहो।"

मैंने जब उसके हालचाल के सम्बन्ध में इस प्रकार अपनी उत्सुकता प्रकट की और उससे बातचीत आरम्भ की तो वह भी बोलने-चलने लगी। उसकी मीठी और सुरीली आवाज सुनकर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने मधु की वर्षा कर दी हो।

उसने कहा—"महानुभाव, मैं यक्षों के राजा मणिभद्र की पुत्री हूँ। मेरा नाम तारावली है। एक बार मैं महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा जी की पूजा करके लौट रही थी। रास्ते में मलयपर्वत के निकट काशी का श्मशान पड़ा। वहाँ एक रोता हुआ बच्चा मैंने देखा। उसे लेकर मैं चल पड़ी। जब मैं उसे लिये आ रही थी, तो बीच में उसके ऊपर मुझे बड़ी ममता हो आई और मैं उसे अपने माँ-बाप के पास ले गई। मेरे पिता उसे महाराज कुबेर के पास अलकापुरी ले गए। उन्होंने सारा हाल सुनकर मुझे बुलाया और कहने लगे—'पुत्री, इस बच्चे के लिए तेरे हृदय में कैसे भाव उठते हैं ?'

मैंने कहा—'महाराज, यदि सच सच कहूँ तो इसके लिए मेरे मन में अपने निज के पुत्र-जैसा प्रेम उमड़ता है।'

यह सुनकर यक्षराज कुबेर कहने लगे—'यह बिचारी ठीक कहती है।'

इसके पश्चात् उन्होंने इस सम्बन्ध में और बहुत सी बातें बतलाईं। उनकी बातचीत से मुझे पता चला कि पिछले समय में जो शौनक ऋषि हो गए हैं, वे बाद को शूद्रक के रूप में पैदा हुए और वे भी इस जन्म में कामपाल अर्थात् 'आप' हैं। इसी प्रकार पूर्व जन्म की बन्धुमती बाद को नियमवती हुईं और उन्होंने ही कान्तिमती के रूप में जन्म लिया है। वेदिमती,

विनयवती और सोमदेवी ये तीनों एक हैं। साथ ही हंसावली, शूरसेना और सुलोचना भी एक ही हैं। इन्हीं की तरह नन्दिनी, रंगपताका और इन्द्रसेना भी अलग-अलग नहीं है। शौनक के रूप में आपने जिस गोपकन्या के साथ अग्निदेव को साक्षी करके विवाह किया था, वही बाद में आर्यदासी के रूप में उत्पन्न हुई और वह आर्यदासी ही मैं 'तारावली' हूँ। आप जब शौनक से शूद्रक रूप में आये, तो मैं आर्यदासी बनकर आपकी पत्नी हुई थी। उस समय वह बालक मेरे उत्पन्न हुआ था और उसको विनयवती ने बड़े लाड़-चाव से पाला-पोसा था। वही बालक अब विनयवती के—जोकि अब कान्तिमती के रूप में है—उत्पन्न हुआ था। वह बिचारा कई बार मौत के मुँह से बचकर भाग्य से ही अब मेरे हाथ लगा। मैं उस बच्चे को महाराज राजहंस की रानी वसुमती को सौंप आई हूँ। राजहंस इस समय यक्षराज कुबेर की सलाह से जंगल में तपस्या कर रहे हैं। उनकी रानी के राजवाहन नाम का लड़का है। आगे चलकर वह चक्रवर्ती सम्राट् होने वाला है। उसी की सेवा के लिए मैंने वह बच्चा रानी वसुमती के हाथों में दे दिया है। आप किस तरह विपत्ति में पड़े, और फिर अपने सौभाग्य से किस-किस तरह यमराज के मुँह से निकल आये, यह मैं सब जानती हूँ। इस बच्चे को रानी वसुमती के सपुर्द करके मैंने घर के बड़े बूढ़ों की राय ली। उन सब की अनुमति पाकर अब मैं आपके चरण-कमलों की सेवा के लिए ही आ गई हूँ।"

उसकी ये सब बातें सुनकर मेरे मन में बड़े विचित्र भाव उत्पन्न हुए। इस समय मेरे सामने एक ऐसी स्त्री खड़ी थी जो अनेक जन्मों में मेरी धर्मपत्नी होती चली आई थी। उसके प्रति हृदय में अकस्मात् स्वाभाविक प्रेम उमड़ आया और मैंने उसे हृदय से लगा लिया। किसी अलौकिक स्नेह और आनन्द के कारण मेरे नेत्रों से जल बहने लगा। मैंने उस स्त्री को अपनाकर उसके चित्त को सब तरह से सान्त्वना दी।

मेरी यह पत्नी तारावली यक्षकन्या थी, इसलिए उसने अपने अद्भुत सामर्थ्य के द्वारा तत्काल एक बड़ा सुन्दर महल खड़ा कर लिया। उसमें

नौकर-चाकर साज-सामग्री किसी बात की कमी न रही। हम दोनों उसी महल में रहने लगे और दिन-रात नाना प्रकार के ऐसे-ऐसे सुख और आनन्द हमें भोगने को मिले जैसे कम-से-कम इस भूमि पर तो नहीं मिल सकते।

कुछ दिन इसी तरह बीते। थोड़े समय के बाद मैंने उस सुन्दरी से कहा—"प्यारी, आज मेरे मन में यह इच्छा हुई है कि काशी के राजा चण्डसिंह की, जो मेरे प्राणों के वैरी हो गए थे, खबर लेकर अपने वैर का बदला चुकाऊँ और जी की आग ठंडी करूँ।"

तारावली कुछ और समझी। वह कहने लगी—"प्रियतम, चलो। मैं तुझे वहीं लिये चलती हूँ। वहाँ कान्तिमती भी तुझे देखने को मिल जायगी!" इतना कहकर वह मुस्कराने लगी।

इस प्रकार सलाह करने के बाद तारावली मुझे आधी रात के समय राजा चण्डसिंह के महल में ले गई और उसने मुझे भीतरी कमरे में, जहाँ चण्डसिंह सो रहे थे, पहुँचा दिया। वहाँ जाते ही मैंने राजा के सिरहाने रखी हुई तलवार उठा ली और उन्हें जगाया। चण्डसिंह एकाएक अपने को इस हालत में पाकर काँपने लगे।"

मैं उनसे बोला—"यह मैं हूँ! आपका दामाद! मैं वही आदमी हूँ जिसने आपकी बिना मरज़ी आपकी लड़की से सम्बन्ध किया है। अब आपकी सेवा करके मैं अपना वह कलंक धोने आया हूँ।"

मुझे इस तरह एकाएक अपने नजदीक पाकर और ये सब बातें सुनकर चण्डसिंह बेहद डर गए थे। उन्होंने झट हाथ जोड़ लिये और कहने लगे—"नहीं, नहीं, अपराध तुम्हारा नहीं, मेरा ही था। मेरी लड़की को तुम्हारे-जैसा वर कहाँ मिल सकता था? तुमने उसका हाथ पकड़कर एक तरह से मुझे ही आभारी बना दिया था। परन्तु मुझ पर उस समय कुछ ऐसा भूत-सा सवार हो गया था कि मैं आपे में ही न रहा और तुम्हारे वध तक की आज्ञा मैंने दे डाली! खैर, अब ऐसा करो कि मेरा यह राज्य भी तुम्हीं ले लो और कान्तिमती को भी मैं अपनी मरज़ी से तुम्हारे अर्पण करता हूँ। और तो और, मैं अपना यह जीवन भी आज से तुम्हारे हाथों में

सौंपता हूँ।"

अगले दिन चंडसिंह ने अपनी सारी प्रजा को बुलवा भेजा। राज्य के सब बड़े-बड़े आदमियों को जोड़कर उनके सामने उन्होंने अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कर दिया।

ब्याह के बाद जब कांतिमती आई तो तारावली ने उससे उस बालक का सब हाल कह सुनाया। साथ ही सोमदेवी, सुलोचना और इंद्रसेना, इन सबका भी उसने पिछले जन्म का हाल बतलाया।"

काशी के मन्त्री यह सब रामकहानी सुना चुकने के बाद मुझसे बोले—"भाई, उसके बाद से महाराज ने मुझे यहां का मन्त्री बना दिया है। परन्तु मन्त्री-पद आदि यह सब ऊपरी दिखावा तो बाहरी लोगों के लिए है। असल में तो मैं अब यहाँ का युवराज हूँ। यह सारा राज्य मेरा है। इसके सब आनन्द-भोग और राजसी सुख मैं उठा रहा हूँ। यहाँ की धन-दौलत और सुन्दरी स्त्रियाँ सब मेरे लिए हाजिर रहती हैं।"

ये मन्त्री महोदय वास्तव में बड़े सज्जन और सहृदय पुरुष हैं। मुझ-जैसे प्राणी को भी उन्होंने अपने प्रेम और खातिरदारी से पूरा-पूरा अपने वश में कर लिया है। उनके हृदय में सभी के लिए, प्राणी मात्र के लिए, भाईचारे की भावना बनी रहती है।

अच्छा, अब आगे का हाल सुनो। कुछ समय बाद ऐसा हुआ कि इन मन्त्री जी के ससुर महाराज चंडसिंह को क्षय रोग हो गया। उसी में वह परलोकवासी हुए। उनके बड़े लड़के चंडघोष अर्थात् मन्त्री जी के बड़े साले, बहुत अधिक भोग-विलास में पड़े रहने के कारण तपेदिक से पहले ही मर चुके थे। इसलिए उनके दूसरे लड़के सिंहघोष को मन्त्री जी ने १५ साल की उम्र में राजगद्दी पर बिठाया।

आप देखिए कि इस धर्मात्मा पुरुष ने स्वयं राज्य नहीं लिया। सिंहघोष को ही राजा बनाकर उन्होंने बढ़े ढंग से उसी को इस तरह से ऊँचा उठाया।

अब जबकि सिंहघोष जवान हुआ तो उसे नशा चढ़ा। इस समय तक

कुछ लोग उसके बड़े जिगरी दोस्त बन गए थे। वे उसे छल-फरेब की बातें सिखाया करते और उसके साथ मिलकर तरह-तरह की कुमंत्रणाएँ करते। इन लोगों ने सिंहघोष को यह पढ़ाया —

"अरे, यह मन्त्री बड़ा बना हुआ है। इसे आप काला साँप समझिए। आपकी बहन को तो इसने जोर जबरदस्ती से ब्याह लिया था। इतना ही नहीं, बड़े महाराज आपके पिता जी जिस समय सोये हुए थे उस समय यह तलवार उठाकर उन्हें मारने चला था। महाराज तुरन्त भागे, वे इस से डरकर घबरा भी गए। इसी डर में उस समय अनुनय-विनय करके उन्होंने अपनी कन्या इसे दे दी। आपके बड़े भाई देवतास्वरूप चण्डघोष को तो उसने जहर देकर मार डाला! आपको भी यह बच्चा समझता है और जानता है कि यह कर-धर कुछ नहीं सकता। इसीसे आपकी यहाँ तक बेकदरी कर रखी है कि प्रजा के लोगों को आपके पास तक नहीं फटकने देता; खुद ही उनसे हेल-मेल बनाये रखता है। इसे डर है कि कहीं आप अपनी प्रजा के दिलों में जगह न कर लें। यह बड़ा कृतघ्न है और आपकी भी जड़ ज़रूर काटेगा। इसका उपाय यही है कि अब आप इसी को यमपुरी भेजने की कोशिश करें।"

इन मुसाहिबों ने सिंहघोष के कान खूब भरे। परन्तु यक्षिणी तारावली का सब पर ऐसा दबदबा और डर बैठा हुआ था कि मन्त्री जी का कुछ बिगाड़ करने की उसे हिम्मत नहीं हुई।

इधर इन्हीं दिनों ऐसा हुआ कि मन्त्री जी की दूसरी स्त्री कान्तिमती और महारानी सुलक्षणा का एक बार मिलना हुआ। रानी ने जब देखा कि कान्तिमती के चेहरे पर पहले की तरह रौनक नहीं है, वह कुछ बुझा हुआ-सा है, तो उन्होंने बड़े स्नेह और आदर से इसका कारण पूछा। कहने लगीं— "देवी जी, आपके मुँह पर पहले-जैसी प्रफुल्लता नहीं है। मुझसे आप छिपायें मत; मैं धोखे में नहीं आ सकती। असली बात बतलाइए। कारण क्या है जो इन दिनों आपका यह कमल-सा मुँह कुम्हलाया रहता है?"

कान्तिमती बोली—"महारानी जी, आपको तो याद होगा कि

मैंने आज तक कोई बात आपसे झूठ नहीं कही। यह भी ठीक-ठीक ही बतला दूँगी। आप जानती हैं कि तारावती मेरी सहेली भी है और सौत भी। उसकी न जाने अक्ल खराब हो गई है या क्या हुआ मैं नहीं कह सकती। बात यह हुई कि एक दिन मेरे पति उससे बातें करते-करते अचानक मेरे नाम से उसे पुकार गए। बस इतने पर ही वह तुनक गई। मैंने स्वयं और उन्होंने भी उसे बहुतेरा मनाया, प्यार में मैंने उसके पैर तक पकड़ लिये, पर उसने एक न मानी। हम दोनों से ही उसका कुछ वैर-सा हो गया और वह घर से चली गई। अब मेरे पति को बड़ा क्लेश रहता है। इसी कारण मेरा भी मन ठिकाने नहीं है।"

कान्तिमती की यह बात सुनकर महारानी सुलक्षणा कुछ नहीं बोलीं; वे चुपचाप चली गईं। महल में आकर उन्होंने अकेले में अपने पति राजा सिंहघोष से यह बात कही। यक्षिणी तारावली के मन्त्री कामपाल से अलग और दूर हो जाने की इस बात से राजा बेखटक हो गया।

इधर मन्त्री कामपाल की यह दशा हो गई कि अपनी प्यारी स्त्री तारावली के चले जाने से वे बड़े दुखी रहने लगे। उनके चेहरे की चमक और रौनक ही जाती रही। वे पीले-से पड़ गए। अंदर से उमड़ते हुए आँसुओं को वे बड़े धैर्य से जबरदस्ती रोके रहते; उनकी डबडबाई हुई आँखों से यह बात साफ झलकती। उनकी बातचीत में भी वह रस नहीं रहा। ऐसा प्रतीत होता मानो गरम-गरम उसासों ने उनकी वाणी का रस ही सोख लिया है। उनका वियोग-दुःख इन सभी बातों से हर समय टपकता-सा रहता था। फिर भी कचहरी-दरबार का सारा कामकाज वे करवाते चले जा रहे थे।

राजा सिंहघोष ये सब बातें ताड़ता रहा। उसने अपने आदमी जहाँ-तहाँ पहले से ही लगा रखे थे। इन लोगों ने मौका पाकर मन्त्री कामपाल जी को पकड़ लिया और राजा ने उसे तुरन्त कारागार में डलवा दिया। यह घटना आज ही घटित हुई है।

अब सिंहघोष ने उन पर और बीसियों तरह के लांछन तथा अपराध लगा दिये हैं। उसने जगह-जगह डोंडी पिटवा दी है और यह घोषणा

करवाई है कि मन्त्री कामपाल की दोनों आँखें निकलवाकर उनका वध करवा दिया जायगा ।"

इस प्रकार कनेर के नीचे बैठे-बैठे ही उस व्यक्ति ने यह सारा वृत्तांत मुझे सुनाया । फिर कहने लगा कि "मन्त्री जी की भावी मृत्यु के कारण ही मैं आज बहुत समय तक रोता रहा हूँ । मुझे और तो कुछ सूझता नहीं है, इसलिए चाहता हूँ कि उस साधु पुरुष के सामने ही मैं भी अपने प्राण छोड़ दूँ । इसीसे कमर कसकर तैयार हुआ हूँ । सोचता हूँ कि राजा के दो-चार पिट्ठुओं का सफाया करके मैं भी मर जाऊँगा ।"

उस आदमी की ये सब बातें सुन लेने के पश्चात् मुझे अब इस बात में तनिक भी संदेह न रहा कि ये मन्त्री मेरे पिता श्री कामपाल जी ही हैं । अपने पिता पर इस भयंकर विपत्ति की बात सुनकर मेरे भी आँसू आ गए । मैंने उस आदमी से कहा—"मित्र पूर्णभद्र, तुमसे अब क्या छिपाना ? मन्त्री श्री कामपाल जी के जिस पुत्र को यक्षकन्या ने महाराज राजवाहन की सेवा के लिए रानी वसुमती जी के हाथ सौंपा था, वह मैं ही हूँ । मैं इतनी ताकत और हिम्मत रखता हूँ कि हथियार खींचे हुए हजार-पाँच सौ योद्धा भी यदि आ जायँ, तो उनका भी काम तमाम करके अपने पिता जी को छुड़ा लूँ । तुम देखना कि मैं यही करूँगा भी । परन्तु एक समस्या बड़ी विकट है । वह यह कि इस सारे हुल्लड़ में पिताजी के ऊपर यदि कोई व्यक्ति हथियार चला बैठा तो फिर मेरे सारे किये-कराए पर पानी फिर जायगा ।"

मैं इस तरह कह ही रहा था कि उस कनेर के पेड़ के पास शहरपनाह की दीवार के छेद में से एक बड़े भयंकर सांप ने फन निकाला । मैंने झट एक मन्त्र पढ़ा और एक बूटी की सहायता से उसे कील कर पकड़ लिया ।

मैंने तुरन्त कहा—"पूर्णभद्र, हमारा काम बन गया है । आड़े समय में किसी संकट के आने पर ऐसा करूंगा कि मुझे कोई देख भी नहीं पायेगा । और जब चाहूँगा तभी इस साँप से पिताजी को कटवाकर इसके जहर से उन्हें इस तरह बेहोश और गुमसुम कर दूँगा कि वे मरे हुए की

तरह लगने लगेंगे। इस प्रकार लोगों का ध्यान उनकी ओर से हट जायगा।

अच्छा, अब आप एक काम कीजिए। अपने मन से डर तो निकाल दीजिए और जाकर किसी तरह मेरी माता को यह बतला दीजिए कि तुम्हारे जिस पुत्र को यक्षिणी ने ले जाकर महारानी वसुमती के हाथों सौंपा था, वह आ पहुँचा है। आप यह भी कहना, 'मेरे द्वारा आपके उस पुत्र को अपने पिता की मौजूदा हालत का पता चल गया है। वह अपनी बुद्धि और युक्ति से इसका उपाय भी कर रहा है।'

माता जी से कहना कि वे बेखटके होकर राजा को यह कहला भेजें कि महाराज, क्षत्रिय राजाओं का यही धर्म है; जो भी दुष्ट हो, उसे पकड़वा ही लेना चाहिए, फिर वह अपना या पराया चाहे कोई भी क्यों न हो। परन्तु इसके साथ-साथ पकड़े हुए व्यक्ति की स्त्री का अपना भी कुछ धर्म है। उसका परम कर्तव्य होता है कि वह अपने पति की अनुगामिनी बने। इस कारण मैं अपने स्वामी के साथ ही चिता पर सती होऊँगी। स्त्रियों की यही अन्तिम गति है, उनके लिए यही उचित भी है। अतः इसके लिए आप मुझे अनुमति प्रदान करें।

राजा सिंहघोष इस काम के लिए अवश्य अनुमति दे देगा। तब माता जी ऐसा करें कि दंड देने के स्थान पर एक ओर चिकोंदार तम्बू लगाकर उसके अन्दर रहें। ज्यों ही राजा की आज्ञा मिले, वे पिताजी को उसी तम्बू के अन्दर एकान्त जगह में ले आवें और उन्हें कुश के बिछौने पर लिटा दें। इसके बाद उनके साथ सती होने की तैयारी करें और वहीं उनके पास बनी रहें। मैं उस तम्बू के बाहर के हिस्सों में रहूँगा, और ठीक समय पर तुम्हारे (पूर्णभद्र के) साथ भीतर आ जाऊँगा। उसके बाद पिता जी को जिलांकर उस समय जो उपाय उन्हें उचित प्रतीत होगा, वही करेंगे।"

पूर्णभद्र यह योजना सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। बोला—"ठीक है, मैं अभी जा रहा हूँ। वह झटपट उधर गया और मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ पर दंड दिये जाने का ढिंढोरा पीटा गया था। उस स्थान पर एक बड़ा

घना इमली का पेड़ था। उसपर चढ़कर मैं एक मोटी डाल के ऊपर इस तरह छिपकर जा बैठा जिसमें मेरा शरीर दिखाई न पड़े। और बहुत से लोग भी उसी स्थान के चारों ओर इधर-उधर ऊँची-ऊँची जगहों पर जा बैठे थे। इनमें आपस में तरह-तरह की बातें चलने लगीं। कुछ लोग जोर-जोर से एक-दूसरे को इस घटना का हाल सुनाने और कुछ लोग धीरे-धीरे बातें करने लगे।

इतने में पिताजी को वहाँ लाया गया। उनके हाथ चोरों की तरह पीठ पीछे बाँध दिये गए थे। उनके पीछे-पीछे बहुत से लोगों की भीड़ शोर करती हुई चली आ रही थी। मैं जिस पेड़ पर छिपा बैठा था, उसके नजदीक ही उन्हें लाकर खड़ा कर दिया गया। इसके पश्चात् उनके वध के लिए आये हुए भंगी ने सबको सुनाते हुए कहा—"लोगो, सुनो, इस मन्त्री कामपाल ने राज्य हथिया लेने के लालच में पड़कर महाराज चंडसिंह और उनके बड़े पुत्र युवराज चण्डघोष को जहर देकर चुपके से मार डाला था। इसके बाद यह वर्तमान महाराज सिंहघोष को भी, जोकि अब पूर्ण युवा हो चुके हैं, मार डालने का इरादा कर रहा था। यहाँ के अन्य मन्त्री शिवनाग, स्थूण और अंगारवर्ष इन तीनों पर इस प्रधानमन्त्री को पूरा भरोसा और विश्वास था। इसलिए उन्हें मन्त्रणागृह में बुलाकर उन पर इसने महाराजा को मार डालने का यह भेद प्रकट किया। परन्तु ये तीनों मन्त्री स्वामिभक्त थे। उन्होंने यह भेद खोल दिया। तब इस पर अभियोग चलाया गया। न्यायाधीश का यह फैसला है कि यह व्यक्ति कामपाल राज्य के लोभ में फँस गया था। परन्तु क्योंकि यह ब्राह्मण है, इसलिए इसे अन्धा कर दिया जाय। इस फैसले के अनुसार इसकी आँखें निकाल लेने के लिए, इसे यहां पर लाया गया है। यदि आगे से कोई और आदमी ऐसे अन्याय का काम करेगा तो उसे भी महाराज इस मन्त्री की तरह यथोचित दंड देंगे।" यह घोषणा उस चांडाल ने तीन बार की। इसके बाद वह उन्हें मारने के लिए तैयार हुआ।

ढिंढोरा सुनते ही भीड़ में होहल्ला मचने लगा। इतने में मैंने

ऊपर से पिताजी के सिर पर वही फनफनाता हुआ काला साँप फेंका, और मैं इस तरह जैसे गिर पड़ा होऊं, पेड़ से कूद कर, झटपट भीड़ में जा मिला। साँप नीचे गिरते ही बिगड़ा और उसने तड़पकर झट पिताजी को डस लिया। मैं भी उसी समय भीड़ में से निकलकर आगे आया, और सांप के काटने की जगह बन्द लगाकर मैंने उनके प्राण बचाने का उपाय कर दिया।

परन्तु वे मेरे सिखावे के अनुसार मरे हुए का बहाना करके जमीन पर गिर पड़े। इतना काम करके मैं झटपट बोल उठा—"भाइयो, राजा का बुरा चाहने वाले को भगवान् स्वयं ही दंड दे देते हैं! यह बात यहाँ पर भी बिलकुल ठीक उतरी है। देखो न, राजा ने तो इसकी आँखें ही निकलवानी चाही थीं, परन्तु ईश्वर ने तो प्राण भी ले लिये!"

मेरी इस बात पर कुछ लोगों ने तो हाँ-में-हाँ मिलाई, पर कुछ लोग मुझे ही बुरा-भला कहने लगे।

उस फनियर साँप ने जिसने पिताजी को काटा था, उस चांडाल को भी डस लिया। इस घटना से लोग घबरा गए और मारे डर के रास्ता छोड़-छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। इस प्रकार भीड़ छँट गई। चांडाल ने जो रास्ता पाया तो तुरन्त निकल भागा।

इधर मेरी माताजी को पूर्णभद्र सब बातें समझा ही चुके थे। इस कारण ऐसे संकट के समय भी वे विशेष व्याकुल नहीं हुई। वे वहां बड़ी शान्तिपूर्वक पैदल चलकर आईं। कुटुम्ब की और स्त्रियाँ उनके पीछे-पीछे आ रही थीं। माताजी ने वहाँ आकर मेरे पिता जी का सिर अपनी गोद में ले लिया और वहीं बैठ गईं। फिर राजा से बोलीं—"महाराज, यह बात तो भगवान ही जानते होंगे कि मेरे पतिदेव ने आपका कुछ बिगाड़ा है या नहीं। मुझे इस बात से कुछ सरोकार भी नहीं है। मुझे तो उन्होंनें हाथ पकड़कर ब्याहा था। मैं आज अंत समय में यदि इनका साथ न दूँ तो आपके ही कुल में धब्बा लगेगा। इसलिए पति के साथ चिता पर चढ़ने की आप मुझे अनुमति दीजिए।"

सिंहघोष ये सब बातें सुनकर बड़ा खुश हुआ। उसने तुरन्त आज्ञा देते हुए कहा—"हाँ हाँ, ठीक तो है। हमारे कुल की शान के मुताबक खूब अच्छे ढंग से यह संस्कार होना चाहिए। पहले एक उत्सव हो, फिर विधि-पूर्वक हमारे बहनोई का मृतक-संस्कार किया जाय।"

इधर वह चाण्डाल जिसे साँप ने काटा था, वहीं ठंडा हो गया, क्योंकि मैंने सब मंत्रवैद्यों को उसकी झाड़-फूंक करने से मना कर दिया था। उसे मरा देख, सिंहघोष ने समझ लिया कि मन्त्री कामपाल भी साँप के जहर से मर चुका है, इसलिए उसने अपनी उदारता और बड़प्पन दिखाने के खयाल से इस बात की अनुमति दे दी कि मरे हुए कामपाल को उनके घर पर ले जाया जा सकता है।

इस प्रकार पिताजी को घर ले आया गया। वहाँ अकेली जगह में पृथ्वी पर डाभ का बिछौना डालकर उसके ऊपर उन्हें लिटा दिया गया। मेरी माताजी ने सती होने के लिए जेवर और फूल मालाएँ आदि पहनीं। फिर बड़ी रुँआसी होकर अपनी सखी-सहेलियों को उन्होंने बुला भेजा। सबसे आखिर में घर की देवी को कई बार सिर नवाया। उन्हें जल मरने को तैयार देख घर के नौकर-चाकर रोने लगे। इस पर उन्होंने धीरज देकर सबको शान्त किया। इसके पश्चात् जहाँ पिताजी लेटे थे, उस कमरे में वह अकेली पहुँचीं।

पूर्णभद्र मुझे उस कमरे में पहले ही पहुँचा गए थे। मैं पिताजी की जीवन-रक्षा के लिए ठीक समय पर जा पहुँचा। ठीक समय पर वहाँ मेरा आना ऐसा हुआ जैसे किसी के उद्धार के लिए विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ जी महाराज आ गए हों।

मैंने जाते ही साँप का जहर निकालकर पिताजी को ठीक कर दिया। वह इस समय तक अच्छी-भली हालत में आ चुके थे। इसी समय माताजी पहुँची। उन्होंने देखा कि पतिदेव ठीक हैं तो बेहद खुश हुईं। उन्होंने उनके चरण छुए। मारे खुशी के उनके आँसू निकल आये। इसके बाद माताजी ने मुझे छाती से लगा लिया। इस समय उनका मातृ-स्नेह उमड़ पड़ा। हर्ष

के आँसुओं के साथ-साथ उनका गला भर आया और गद्गद् होकर कहने लगीं—"बेटा, मैं पापिन तो तुझे पैदा होते ही छोड़ बैठी थी। ऐसी महा निर्दयी और कठोर माँ को तूने आकर सहारा क्यों दिया ? पर हाँ, तेरे ये पिताजी तो निरपराध ही थे। इन्हें मौत के पंजे से तुझे छुड़ाना ही चाहिए था। इस तारावली को तो देखो, कितनी कठोर निकली ? तुझे उसने महाराज कुबेर के पास से पाकर भी मेरे हवाले नहीं किया और रानी वसुमती के पास पहुँचाया। परन्तु एक तरह से उसने भी ठीक ही किया। महारानी वसुमती-जैसी बड़भागिन को ही तेरे बचपन की मीठी किलकारियों के अमृतमय शब्द सुनने को मिल सकते थे। मुझ अभागिन को वे कैसे नसीब होते जिसने पिछले जन्म में कोई पुण्य न किया हो ! आ, इधर आ, आज तो एक बार तुझे छाती से चिपटा लूँ !"

यह कहते हुए उन्होंने बार-बार मुझे छाती से लगाया, मेरा माथा चूमा और फिर गोद में बिठा लिया। तारावली को वे बहुत कुछ बुरा-भला कहती रहीं। माता की आँखों के प्रेमाश्रु टपक-टपककर मेरे ऊपर गिरने लगे। हर्ष और आनन्द के कारण उनका दुबला शरीर बार-बार काँप उठा था। इसी प्रकार बहुत देर तक वे मुझ पर ममता बरसाती रहीं। उस समय कुछ क्षण के लिए तो ऐसा लगा जैसे वे अपने आपे में न रहकर कुछ और ही हो गई हों।

मेरे पिताजी को भी ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे नरक से स्वर्ग में आ गए हों। पूर्णभद्र ने उन्हें विस्तार से सब हाल सुनाया कि किस-किस तरह क्या-क्या हुआ। उन्होंने उस भयानक विपत्ति से छुटकारा पाकर सही-सलामत घर आ पहुँचने पर अपने भाग्य को बड़ा सराहा और अपने को देवराज इन्द्र से भी अधिक भाग्यशाली माना।

मैंने अपने माता-पिता के आगे अपने विषय की बात बहुत संक्षेप में रखी, परन्तु उतना सुनकर ही उन्हें बड़ा आनन्द और अचरज हुआ। मैंने उनसे कहा—"अब आप बतलाइए कि हमें क्या करना है और जो कुछ जैसे करना है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।"

पिताजी कहने लगे—"बेटा, हम लोगों का यह घर अस्त्र-शस्त्रों का एक विशाल भंडार है। इसमें इतने हथियार हैं जिसकी कोई इन्तहा नहीं। चारों ओर खूब लम्बे-चौड़े परकोटे से भी यह घिरा हुआ है। इसकी खाई को सहज में कोई लाँघ नहीं पायेगा। ऐसे बहुत से सरदार और सामन्त मेरे साथी हैं जिन पर मैंने बड़े-बड़े उपकार किये थे। प्रजा में भी बहुतेरे इस प्रकार के व्यक्ति मौजूद हैं, जो मुसीबत में मेरा साथ नहीं छोड़ेंगे। इनके अतिरिक्त सैकड़ों-हजारों जुझाऊ वीर भी अपने-अपने मित्रों तथा स्त्री-पुत्रों सहित मेरे पास हैं। मेरा विचार है कि इन सबकी सहायता से हम यहाँ डटे रह सकते हैं। इसलिए अभी कुछ समय तक हम यहीं रहें और यहीं से सिंहघोष के विरुद्ध कार्यवाही करते रहें। इसके साथ-साथ ऐसी कोशिश जारी रखें कि राजा के मन्त्री, सेनापति आदि उसके अन्दरूनी साथियों के अन्दर किसी तरह फूट पड़े और बाहर प्रजा तथा उसके विरोधी लोग भी उसके विरुद्ध भड़क उठें। जो-जो उसके विरुद्ध होते जायँ, उन्हें हम अपनी ओर मिलाते चलें। उन लोगों का उत्साह बराबर बढ़ता चले, इसके लिए हमें अपने काम में तनिक भी ढिलाई नहीं आने देनी चाहिए। इस प्रकार धीरे-धीरे यह नौबत आ जाय कि प्रजा को और सिंहघोष के सहज वैरी बहुत से राजाओं को हम विरोधी दल में खड़ा कर लें। जब इतना काम हो जायगा तब हम इस मूजी सिंहघोष की जड़ काट पाएँगे।"

उनकी बातें ध्यान से सुनकर मैंने कहा—"ठीक है, ऐसा ही कीजिए। इसमें कुछ हर्ज नहीं है।" इस प्रकार मैंने पिताजी की सम्मति का पूरी तरह से समर्थन किया। इसके उपरान्त अपनी सब तैयारियाँ करके और मोरचे बाँधकर हम लोग बैठ गए।

सिंहघोष को जब यह हाल मालूम हुआ, तो उसे मन-ही-मन पछतावा हुआ, परन्तु बाहर से वह हमारे साथ पूरी तरह लड़ता रहा। साथ ही घेरा डालना, रसद रोकना, छापे मारना, इस तरह की सब कार्यवाहियाँ भी करता रहा। हम लोग भी लड़ाई में उसकी तरफ के लोगों को मारते-काटते रहे।

उधर तो यह सब हो रहा था, इधर मेरी एक और योजना थी। मैंने इस बीच चुपके-चुपके पूर्णभद्र द्वारा यह मालूम कर लिया कि महल में सिंहघोष का पलंग किस जगह पड़ता है। बस, यह बात ठीक-ठीक मालूम होते ही मैंने अपने घर की दीवाल के कोने से लगाकर उसी दिशा में एक सुरंग खोदनी शुरू की। परन्तु वह जाकर बीच में ही ऐसी जगह निकली, जहाँ बहुत सी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियां और लड़कियाँ थीं। इनके कारण यह स्थान ऐसा लगा, मानो भूमि पर स्वर्ग आ उतरा हो! मुझे देखते ही वहाँ की वे सब औरतें बड़ी घबरा गईं। उनमें एक लड़की तो इतनी रूपवती और सुन्दर थी कि कुछ कहा नहीं जा सकता। उसे देखकर एक बार तो ऐसा लगता था, मानो किसी ने सोने की पुतली बनाकर खड़ी कर दी हो। उसकी देह से सचमुच स्वर्णप्रतिमा-जैसी ही सुनहरी और चमकीली-सी आभा निकल रही थी। उसे देखकर मेरे मन में तरह-तरह की कल्पनाएँ उठने लगीं। कभी खयाल होता कि यह शायद चन्द्रमा की कला है और पृथ्वी पर उतर आई है! यह तो अपने लावण्य और कान्ति से पाताल तक के अँधेरे को दूर कर सकती है! कभी जान पड़ता कि यह साक्षात् भगवती वसुन्धरा यहाँ शरीर धारण करके प्रकट हो गई है। क्षण-भर में ऐसा मालूम दिया कि किसी दानव को जीतने के लिए देवी दुर्गा आविर्भूत हुई हैं। फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि यह भगवान् कामदेव की प्रियतमा रतिसुन्दरी हैं, और पाताल-लोक की सैर को निकली हैं! तुरन्त ही दूसरा विचार उठा कि नहीं, यह तो पृथ्वीलोक की राजलक्ष्मी हैं, जो वहाँ के दुष्ट राजाओं की दृष्टि से बचने के लिए भूमि के किसी छिद्र में से घुसकर, पाताल में आ उतरी हैं। उस परमसुन्दरी कुमारी को देख-देखकर ऐसे ही अद्‌भुत खयाल मेरे मन में उठते रहे। इतने में मैंने देखा कि उस कुमारी की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी और मुझे देखते ही उसे कँपकँपी-सी आने लगी। उसका यह काँपना क्या था, ऐसा जान पड़ता था, मानो दक्षिण दिशा की धीमी-धीमी और ठंडी बयार से चन्दन की लता हिल उठी है!

यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इन स्त्रियों में मुझे देखते ही

एक अचम्भे के साथ-साथ डर-सा पैदा हो गया था। कुछ देर तक तो सब-की-सब सन्नाटे में खड़ी रहीं। बाद को उन्हीं में से एक बूढ़ी औरत आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ी। उसके सिर के सब बाल सफेद पड़ गए थे। उसे एकाएक देखने पर ऐसा लगता था मानों सफेद खिले हुए फूलों से लदी यह एक काँस की छड़ी है। वह बुढ़िया डरी हुई तो थी ही, इसलिए बड़ी दीनता के साथ कहने लगी——

"महानुभाव, हम लोग यहाँ पर सब औरतें-ही-औरतें हैं; इसलिए हम पर दया कीजिए। हम तो वैसेही अबला और असहाय हैं। हमारा यहाँ और कोई सहारा नहीं है। कृपा करके हमें बतला दीजिए कि आप कौन हैं ? क्या आप दानवों से युद्ध करने की इच्छा लेकर पाताल-लोक को जाने के इच्छुक कोई देवकुमार हैं ? इधर आपका कैसे आना हुआ ? कुछ बतलाने की कृपा कीजिए।"

मैंने उसे जवाब देते हुए कहा——"आप लोग डरें नहीं, मेरा नाम अर्थपाल है। द्विजश्रेष्ठ कामपाल जी मेरे पिता हैं और मेरी माता जी का नाम श्रीमती कान्तिमती देवी हैं। मैं किसी कार्यवश अपने घर से सुरंग लगाकर राजा के महल की तरफ बढ़ रहा था, रास्ते में आप सब दिखाई पड़ गईं। कहिए, आप लोग कौन हैं, और यहाँ कैसे रहती हैं ?"

वह बूढ़ी स्त्री हाथ जोड़कर बोली——'कुमार, आप तो हमारे स्वामी बड़े महाराज के धेवते निकले ! हमारा बड़ा सौभाग्य है जो अपनी इन आँखों से आपके शुभ दर्शन हमें हो सके। सुनिए, आपको अपने नाना महाराज चण्डसिंह का तो पता ही होगा ? महारानी लीलावती से उनके दो सन्तानें हुई थीं, एक महाराज कुमार चण्डघोष और दूसरी राजकुमारी कान्तिमती। चण्डघोष बहुत भोग-विलास में फँसे रहते थे, इस कारण क्षय-रोग के शिकार हो गए और परलोकवासी हुए। उनकी धर्मपरायणा पत्नी गर्भवती थीं। उन्हीं से यह मणिकर्णिका नाम की कन्या हुई। इसकी माँ बड़ी साध्वी थी; वह सदा धर्म-कर्म में लगी रहती थी, और पूजापाठ में ही दिन बिताती थी। उसका प्रसव-पीड़ा के कारण देहान्त

हो गया; इस तरह वह बिचारी भी पति के पीछे-पीछे चली गईं। इन दोनों के देहान्त के बाद महाराज चण्डसिंह मुझे बुलाकर एकान्त में कहने लगे—'ऋद्धिमती यह लड़की बड़ी होनहार जान पड़ती है, क्योंकि इसके लक्षण बहुत अच्छे हैं। मेरी मर्जी है कि इसे ठीक तरह पाल-पोसकर इसका विवाह महाराज मालवा के लड़के दर्पसार के साथ कर दूँ। कान्तिमती का हाल तो तूने सुना ही है। उस घटना के बाद से लड़कियों को बिलकुल आजाद खुला छोड़ रखने में मुझे खतरा दिखाई देता है, इसलिए तू एक काम कर। मैंने शत्रुओं की मुसीबत के समय बचने के लिए नीचे तहखाने के अन्दर एक बड़ा भारी महल बनवा रखा है। उसी के अन्दर तू इस लड़की को ले जाकर रख और वहीं इसका पालन-पोषण कर। यह तहखाने वाला महल कोई छोटा-मोटा या मामूली नहीं है। यह खूब लम्बा-चौड़ा है। इसमें बहुत से कमरे, नाटक घर, यहाँ तक कि क्रीड़ापर्वत समेत एक बगीचा भी है। तू जितनी चाहे दास-दासियां अपने साथ लेती जाना। इस महल में खाने-पीने की चीजें और तरह-तरह की सब उपयोगी सामग्रियाँ इतनी बहुतायत से हैं कि सौ बरस में भी तुम लोगों से नहीं निबट सकेंगी।'

इतना कहकर महाराज ने अपने रहने के कमरे की दो अंगुल मोटी दीवार में से, बिलांद-भर का एक पत्थर का टुकड़ा हटाया। उसके हटाते ही एक दरवाजा दिखाई पड़ा। उसी में से उन्होंने हमें उतारकर इस जगह पहुँचा दिया। हम लोगों को यहाँ रहते-रहते बारह बरस बीत चुके हैं। यह लड़की अब जवान होने को आई। पर महाराज हैं कि अब तक भी हम लोगों की कुछ खैर-खबर नहीं लेते। इस लड़की के बाबा ने इसे भले ही दर्पसार के साथ ब्याहने का संकल्प किया हो, पर आपकी माता कान्तिमती ने जब यह लड़की अपनी माँ के पेट में थी तभी उनसे इसे जुए के दाँव में जीत लिया था और इसे आपकी बहू बनाने का निश्चय कर लिया था।

खैर, अब तो यह सब बात आपके सामने ही है। आप भी इसके

बारे में अच्छी तरह से सोच लीजिए ।"

उसकी सब बातें सुनकर मैंने कहा—"मैं आज तो महल में जा रहा हूँ। वहाँ मुझे एक काम करना है। उसे पूरा करके और वहां से लौटकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

इसके पश्चात् उस बूढ़ी दासी ने दीये से मुझे वह खोल दिखलाया, जहाँ महल में से महाराज चण्डसिंह ने उन लोगों को नीचे तहखाने में उतार दिया था। मैं उसी जगह से उस छेद में होकर ऊपर महल में जा पहुँचा। जब आधी रात का समय हुआ तो मैंने वह बालिश्त-भर का पत्थर का टुकड़ा खिसकाया और उस कमरे में घुस गया जहाँ सिंहघोष निश्चिन्त पड़ा सो रहा था। मैंने जाते ही उसे जिन्दा पकड़कर बाँध लिया। इसके बाद जिस तरह गरुड़राज फड़फड़ाते हुए साँपों को उठा ले जाते हैं, उसी तरह मैं उसे दीवार के छेद वाले रास्ते से नीचे उन स्त्रियों में ले आया। वहाँ से उस सुरंग द्वारा अपने पिताजी के घर पर ले गया। यहाँ लाकर मैं उसे एक अकेले कोठे में लाया और साँकलों में उसके हाथ-पैर कस दिए। इस आकस्मिक घटना से सिंहघोष सकते की-सी हालत में आ गया था। हाथ-पाँव बाँधे जाने पर उसका चेहरा और भी उतर गया। उसी कोठे में वह उदास मुँह लिये सिर झुकाकर पड़ गया। इस समय उसे लज्जा भी आ रही थी और पछतावा भी हो रहा था। यहाँ तक कि उसके आँसू आने लगे और रोते-रोते उसकी आँखें लाल हो गईं। मैंने उसी हालत में उसे अपने पिताजी को दिखलाया।

इसके बाद मैंने उन्हें उस सुरंग की और सिंहघोष के महल को जाने वाले छेद की सब घटना सुनाई। उस नीच और दिल के काले सिंहघोष को इस हालत में देखकर मेरी माँ और पिताजी को बड़ी तसल्ली हुई। आज जाकर उनका जी ठंडा हुआ। सिंहघोष को उसी तरह कैद में रहने दिया गया।

सिंहघोष के कैद हो जाने पर काशी का राज्य अनाथ-सा हो गया। वह अब सहज ही हमारे अधिकार में आ गया। जब इतना सब काम पूरा

हो चुका तो पिता जी को कुमारी मणिकर्णिका के तहखाने वाले महल में होने की बात पता चली। उसे तुरन्त वहां से बुलवा लिया गया और माता ने उस सुन्दरी राजकुमारी के साथ बड़ी धूमधाम से मेरा ब्याह कर दिया।

सिंहघोष के बारे में कुछ दिनों बाद माता जी ने यद्यपि यह चाहा भी कि उसे छोड़ दिया जाय, परन्तु इस खयाल से कि वह छूटकर प्रजा में न जाने क्या उत्पात खड़ा करे, हम लोगों ने उसे पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं किया।

इस तरह हम लोग काशी में इन सब झंझटों से छूट ही पाये थे कि हमें अंगराज सिंहवर्मा के ऊपर शत्रुओं के चढ़ाई की खबर मिली। हमें मालूम था कि अंगनरेश आप (महाराजकुमार राजवाहन) के परम भक्त हैं, और आपके सहायकों में से हैं। इसलिए मैं तुरन्त सेना लेकर उनकी सहायता के लिए इधर चल पड़ा। यहाँ आकर मेरे भाग्य ही खुल गए और महाराज के दर्शन हुए। आज आपके चरण-कमलों की धूल पाकर मैं कृतार्थ हो गया।"

अपना यह सब हाल सुनाकर अर्थपाल ने राजवाहन को हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतापूर्वक नमस्कार किया। फिर कहने लगे—"कुमार, काशीराज का सिंहघोष आर्यजातीय आचार-विचारों से गिर चुका है। मैं चाहता हूँ कि उसके पिछले पाप धुल जायँ और वह आपके पवित्र चरणों पर सिर झुकाकर उनका प्रायश्चित्त करे।"

अर्थपाल की बात सुनकर महाराजकुमार राजवाहन बोले—"अर्थपाल, तुमने सचमुच बड़ी बहादुरी का काम किया। बुद्धि भी तुम्हें खूब मिली है! अच्छा, अब ऐसा करो कि सिंहघोष को छोड़ दो; वह आखिर तुम्हारे चचिया ससुर होते हैं! उन्हें जाकर मेरे पास भिजवा दो।"

इतना कहकर उन्होंने प्रमति की ओर दृष्टि फेरी और प्रेमपूर्वक मुस्कराकर उससे बोले—"अब तुम्हारी बारी है; तुम भी अपनी आप-बीती सुनाओ।"

४
प्रमति की आपबीती

प्रमति ने राजवाहन को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपनी आपबीती सुनाते हुए कहने लगे——

"राजकुमार, आपकी खोज में मैं भी सब दिशाओं में इधर-उधर घूमता रहा और एक बार विन्ध्याचल पहाड़ की ओर निकल गया। वहीं मुझे साँझ हो गई। अस्त होता हुआ लाल-लाल सूरज पश्चिम के आकाश पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो पश्चिम दिशा एक स्त्री है जिसके माथे को सूरज रूपी नई लाल कोंपल का बेना लगाकर सजा दिया गया है।

विन्ध्याचल पहाड़ के पास एक तरफ एक बहुत बड़ा पेड़ खड़ा था। यह इतना विशाल था कि अपनी ऊंचाई से बादलों को छूता हुआ-सा प्रतीत होता था। साँझ हुई देख मैंने तालाब के पानी से हाथ-मुँह धोये और इसी पेड़ के नीचे आ बैठा। फिर आचमन करके सन्ध्या-पूजा समाप्त की।

यहाँ इस समय तक अंधेरा खूब घना हो गया था, जिससे सब जगह एक-सी दिखाई पड़ती थी। कहाँ समतल जमीन है और कहाँ गड्ढे, यह कुछ भी पता नहीं चल रहा था। ऐसी हालत में आगे बढ़ना कठिन था, इस कारण मैंने यहीं पर रात बिताने का निश्चय किया। वह पेड़ अच्छी ऊँची जगह पर था, इसलिए उसी के नीचे नरम-नरम पत्ते बिछाकर मैंने बिछौना-सा कर लिया। इसके बाद हाथ जोड़कर मैंने ईश्वर का ध्यान किया। फिर मन-ही-मन कहने लगा——

"हे प्रभो ! इस घने जंगल में अकेला सोने चला हूँ। आज की रात

का अंधेरा भी इतना गहरा और काला है, जिसे देखकर शिवजी के गले की कालौंछ का ध्यान आता है। एक तो यह बीहड़ सुनसान जंगल, दूसरे ढेर-का-ढेर अँधेरा इसमें आकर भर गया है। कितना भयंकर सन्नाटा छाया हुआ है! सबसे बढ़कर मुसीबत यह कि जंगली तथा खूंखार जानवरों के झुण्ड चारों ओर घूम-फिर रहे हैं। ऐसे भयानक वन में मुझे सोना है। अब-जो कुछ होगा देखा जायगा। इस महावृक्ष पर जिन देवी-देवता का निवास है, अब तो उन्हीं का सहारा है; वे ही रक्षा करें।"

यही सब सोचते-सोचते मैंने बायें हाथ को तकिए की तरह सिर के नीचे रखा और सो गया।

अभी कुछ ही देर हुई होगी कि मुझे ऐसा लगा, मानो मेरी देह को कोई छू रहा है। यह स्पर्श मुझे बहुत भला और सुखदायक जान पड़ा। कम-से-कम इस पृथ्वी पर रहते हुए तो ऐसा स्पर्श-सुख प्राप्त होना कठिन ही था। इससे मेरे अंग-अंग में आनन्द की लहर-सी दौड़ गई। प्रत्येक इन्द्रिय में आह्लाद भर गया। यहाँ तक कि अन्तरात्मा सुख से विभोर हो उठा। इस अलौकिक स्पर्श के सुख से मेरे शरीर का एक-एक रोम इस समय खड़ा था। इसी समय मेरा दाहिना हाथ भी फड़क उठा।

मैं सोचने लगा कि यह माजरा क्या है? धीरे-धीरे मैंने आँखें खोलीं तो क्या देखता हूँ कि ऊपर सफेद कपड़े की शबनमी तनी हुई है। यह इतनी निर्मल और साफ थी कि कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसा जान पड़ा, मानो किसी ने चाँदनी को काटकर उसका एक टुकड़ा लाकर तान दिया है। अपने बाईं ओर दृष्टि डाली तो देखा कि एक महल है। इसमें अन्दर दीवार के नजदीक बेल-बूटोंदार बिछौनों पर बहुत-सी सुन्दर स्त्रियाँ बड़ी निश्चिन्तता के साथ सोई हुई हैं। दाहिनी ओर नजर दौड़ाई तो उधर भी एक युवती को लेटा हुआ पाया। उसकी छातियों पर से कपड़ा खिसका पड़ रहा था। वह एक बहुत ही सफेद और उजले बिछौने पर सोई हुई थी, जिसे देखकर जान पड़ता था मानो किसी ने अमृत के उज्ज्वल झाग इकट्ठे करके बिछा दिये हैं। इस रमणी को देखकर उन वसुन्धरा देवी का खयाल

आता था, जिन्हें प्रलय के समय वराह भगवान ने अपने सफेद चमकीले दाँतों पर उठा रखा था। भगवान के दाँतों में से उस समय श्वेत उज्ज्वल किरणें फूटी पड़ती थीं और ऐसा मालूम देता था, मानो वसुन्धरा उन किरणों के जाल में अटककर दोनों के ऊपर ही रखी रह गई हैं। उस समय उन पर से क्षीर सागर की सफेद झाग नीचे गिर रही थी और भय तथा घबराहट के कारण वे मूर्छित हो गई थीं। यह सुन्दरी भी उन्हीं की तरह सफेद उजले कपड़ों पर अस्त-व्यस्त पड़ी थी। इसके भी कन्धों पर से श्वेत रेशमी दुपट्टा खिसका पड़ रहा था और उन्हीं के समान यह भी सोती हुई अचेत पड़ी थीं। इस युवती के लाल-लाल ओठों से किरणें-सी फूटी पड़ती थीं और ये ऐसी लग रही थीं मानो गुलाबी-गुलाबी नई कोंपलें हों। इस स्त्री का मुँह लाल कमल-सा खिला हुआ था और जब इसकी महक-भरी साँसें चलतीं तो ऐसा प्रतीत होता कि उस कमल में से सुगन्ध की लपटें उठ रही हैं। इनसे हिल-हिलकर ये ओठों पर की किरण रूपी लाल-लाल कोंपलें नाचती हुई-सी जान पड़ती थीं।

सुना जाता है कि महादेव जी ने जब अपनी तीसरी आँख की आग से कामदेव को भस्म किया तो वह जलकर एक चिनगारी जितना रह गया था। यह स्त्री मानो अपनी सुगन्ध-भरी सांसों की हवा से महादेव जी की आँख की आग को भड़काकर उस तनिक से बाकी बचे हुए कामदेव को भी जलवा डालना चाहती थी।

इसके चेहरे की शोभा कुछ निराली ही थी। यह एक पूरे खिले हुए लाल कमल-सा लग रहा था। इस चेहरे पर दोनों आँखें नींद में मुँदी हुई थीं। ये ऐसी जान पड़ती थीं, मानो नीले कमलों में बन्द होकर दो भौंरे चुपचाप पड़े हों। सम्पूर्ण मुख को देखकर यह प्रतीत हो रहा था कि एक खिले हुए कमल पर दो नीले ताल बन्द हालत में रखे हैं और इनके अन्दर भौंरे बैठे हुए हैं।

यह रमणी पलंग पर यद्यपि अस्त-व्यस्त-सी दशा में पड़ी थी, फिर भी अत्यन्त सुन्दर लग रही थी। इसे देखते हुए ऐसी कल्पना होती थी कि

देवराज इन्द्र के हाथी ने मदमस्त होकर नन्दनवन के कल्पवृक्ष की रत्नों से भरी हुई एक डाली तोड़कर यहाँ डाल दी है।

यह सब नज़ारा देखकर मैं अचम्भे में पड़ गया। फिर सोचने लगा कि वह घना जंगल किधर हुआ? और सेनापति स्कन्दकुमार के दिव्य-भवन पर लगे हुए त्रिशूल की तरह ऊंचा, ऊपर उठा हुआ यह गगनचुम्बी महल कहाँ से आ गया? यह तो इस ब्रह्माण्ड के ऊपरी खप्पर को तोड़े-सा डाल रहा है। कहाँ तो मैं उस जंगल की जमीन पर पत्तों का बिछौना बनाकर लेटा था और कहाँ अब उसके स्थान पर यह असंख्य चन्द्र-किरणों से जगमगाता हुआ-सा गद्देदार रेशमी बिछौना बिछा हुआ है! अच्छा, ये इतनी स्वच्छन्दता से सोई हुई सुन्दर स्त्रियाँ कौन हैं? ये तो ऐसी जँचती हैं कि स्वर्ग की अप्सराएँ हों और चन्द्रकिरणों की डोरियों में बँधे हुए पालने में झूलती-झूलती अकस्मात् उसमें से गिरकर यहाँ अचेत होकर आ पड़ी हों! यह कमलहस्ता सरस्वती-सी दिव्य रमणी भी न जाने कौन है? जिस शय्या पर यह सोई है उसकी चादर तो देखो, इसका रेशम तो शरद् ऋतु के चन्द्रमण्डल-जैसा स्वच्छ और चमकीला है।

मैंने मन-ही-मन सोचा कि यह कोई देवबाला तो हो नहीं सकती, क्योंकि इसे चन्द्रमा की किरणें धीमे-धीमे जितना ही सहलाती जाती हैं त्यों-त्यों यह कमलिनी की तरह नींद में भरकर मुँदी-सी जा रही है। देवांगनाएँ तो सोया नहीं करतीं। दूसरी बात यह कि देवबालाओं का रूप-रंग एकसरीखा एकरस रहता है, परन्तु इस सुन्दरी का अजब ही हाल है। जब पीला हुआ आम का फल पूरा पक चुकने पर अपने डंठल से अलग हो जाता है, उस समय उस पर रस की बूँदें टपकी हुई होने से उसकी रंगत तरह-तरह की दिखाई पड़ती है। इस रमणी का कपोल भी पसीने की बूँदें छलक आने से उसी आम की तरह रंग-बिरंगी-सा हो रहा है। इसके स्तनों पर लगा हुआ चन्दन तथा रंगीन पाउडर भी अपना रंग बदलकर फीका पड़ चुका है; शायद नई जवानी की असह्य गरमी जो इसमें भरी है, उसी से यह बिचारा झुलस गया है। इस

रमणी के कपड़ों पर भी उनके इस्तेमाल में आने के कारण धूल-सी छा रही है, जबकि देवताओं के वस्त्र हमेशा एक-से उज्ज्वल बने रहा करते हैं। इन सब बातों से तो यही लगता है कि यह अवश्य मानवी ही है।

अच्छा, यह भी एक अचम्भे की ही बात है कि इसकी जवानी अभी अछूती है। यह इस कारण क्योंकि इसकी देह के अवयव यद्यपि मुलायम हैं तो भी अच्छे कसे हुए हैं। इनमें शिथिलता आई हुई नहीं जान पड़ती। देह की छवि पर लुनाई होने के साथ ही अभी एक तरह की पिछराई और निखार-सा आया हुआ है। इस बिचारी को अभी तक पता नहीं है कि उद्दाम वासना कैसी होती है, इसी से मुख पर तेज़ी या तमतमाहट नहीं है। अरुण अधर मूँगे की-सी रंगत लिये हुए हैं। गाल न तो बेहद फूले हैं और न ही अभी तक ढीले ही पड़े हैं। इन पर चम्पा कली की पंखुड़ियों की तरह बीचों-बीच हलकी-सी ललाई दीख पड़ती है।

कितनी मीठी और बेखबर की नींद में यह पड़ी सो रही है! कामदेव के बाणों की मार का इसे कोई डर ही नहीं! इसकी छातियों को देखकर लगता है जैसे खूब बेदर्दी के साथ कभी उन्हें मसला नहीं गया। इसीसे दोनों स्तनों की घुंडियाँ खुलकर फैल नहीं पाई हैं।

इस सुन्दरी को इस प्रकार सोते देख और इसकी ओर अपना खिंचाव अनुभव करते हुए मैंने सोचा कि मेरे मन में तो आज तक शिष्टता की मर्यादा के उल्लंघन का विचार नहीं आया। फिर भी इस रमणी की ओर मेरा चित्त न जाने क्यों खिंच रहा है। इस खिंचाव के बस होकर यदि इसको चिपटाये लेता हूँ तो यह ज़रूर चीखकर जाग पड़ेगी। इधर मेरे मन की हालत यह है कि इसे छाती से लगाये बिना मेरे लिए सोना बिलकुल नामुमकिन है। अब जो-कुछ होना हो होता रहे, आज तो यहीं तकदीर को आज़माऊँगा।

यह सोचते हुए मैं उसी पलंग पर उसके पास जा लेटा। उसके साथ मेरी देह छूती भी रही और थोड़ा-थोड़ा उससे अलगाव-सा भी बना रहा। इस समय मेरे मन में उस स्त्री के लिए प्यार का तूफान-सा उमड़ने

लगा। इसके साथ-साथ एक तरह का डर भी कभी-कभी अनुभव होता । मैं आँखें बन्द करके भीतर-ही-भीतर जाँचता रहा कि देखूँ अब क्या होता है ।

थोड़ी देर में मुझे ऐसा लगा कि मारे आनन्द के उस सुन्दरी की देह के बाएँ हिस्से में कँपकँपी-सी हो चली है । उसके रोंगटे भी खड़े हो गए । धीरे-धीरे उसने अंगड़ाई ली और उसकी देह ढीली-सी होने लगी। इसके बाद उसकी पलकों के अगले हिस्से तनिक-तनिक हिले और उसने कुछ-कुछ आँखें खोलीं। इस समय उसकी पुतलियों में आलस्य की क्लान्ति छाई हुई थी। कुछ कच्ची नींद के कारण आँखों के कोर अलसाते नज़र आ रहे थे। आँखें खोल लेने पर अब उसका यह हाल कि पहले तो वह कुछ-कुछ डरी; फिर उसे अचम्भा हुआ। ज़रा देर में उसके चेहरे से हर्ष-सा टपकता दिखाई पड़ा, साथ ही नेत्रों में अनुराग छलक आया, फिर आशंका की-सी भावना झलकने लगी। अन्त में उस पर कुछ-कुछ मस्ती-सी छा गई और उसने अपने एक-आध ज़ेवर को ज़रा इधर-उधर खिसकाकर ठीक किया। इन सारी बातों के होते समय लज्जा की एक गुलाबी छाया-सी उस पर लगातार पड़ी रही। कहने का मतलब यह कि प्रेम के देवता की माया निराली है। न मालूम कौन-कौनसी विचित्र भावभंगियाँ उस सुन्दरी ने कीं और कैसी-कैसी भावनाएँ उसके चेहरे पर खेलती रहीं ।

अन्त को ऐसा हुआ कि पहले तो उसने दास-दासियों को एकदम पुकारकर जगाना चाहा, परन्तु दिल में प्यार की उमंग भरी रहने के कारण वह वैसा कर नहीं सकी। एक तो अचानक आदमी को देखने से पैदा हुआ डर, दूसरे अपने मन की उमंग और मस्ती पर काबू पाने की कशमकश, इन सबके कारण उसकी देह पर पसीना छलक उठा और उसे रोमांच भी हो आया। जैसे-तैसे करके उसने अपने-आपको सँभाला। अन्त को अपनी आँखें ज़रा-ज़रा खोलीं और बड़ी खूबसूरती के साथ कोर की तरफ का हिस्सा थोड़ा सिकोड़कर अपनी चाह-भरी मीठी चितवन मेरी देह पर डाल ही तो दी ।

इस प्रकार मुझे एक नजर देखकर उसने ज़रा देर बाद अपनी

देह को खिसकाया। ऐसा करने पर भी अपनी देह का ऊपरी हिस्सा उसने यद्यपि दूर हटा लिया, परन्तु अचम्भे में पड़ी हुई वह सोती उसी बिस्तर पर रही। मुझे भी थोड़ी देर के लिए नींद आ गई, हालांकि प्यार मेरे भी मन में रह-रहकर बेहद उमड़ता रहा। मुझे नहीं मालूम कि इस हालत में मैं कब तक लेटा रहा।

कुछ देर बाद जब ऐसा मालूम पड़ा कि मेरे शरीर में कुछ गड़-सा रहा है और उससे देह दुखने लगी, तो मैं जागा। आँख खुलते ही क्या देखता हूँ कि वही बियावान घना जंगल है, उसी पेड़ के नीचे लेटा हुआ हूँ और पत्तों का वही बिछौना बिछा हुआ है। रात का अंधेरा इस समय भी छाया हुआ था।

मैं सोचने लगा कि क्या यह सपना था? क्या मुझे धोखा हुआ? कहीं कोई आसुरी या दैवी माया तो नहीं थी?

मैंने मन-ही-मन कहा—"जो होता हो होता रहे। मैं तो जब तक वास्तव में नहीं जाग जाऊँगा, तब तक अपना यह जमीन का बिस्तर छोड़ूँगा नहीं। यदि आयु कुछ बची है तो इस जंगल की देवी के भरोसे यहीं बिछौना किये पड़ा रहूँगा।" इस प्रकार पक्का इरादा करके मैं वहीं लेटा रहा। धीरे-धीरे मुझे नींद आ गई और सो गया। कुछ देर बाद ऐसा जान पड़ा कि कोई मुझे जगाकर कह रहा है—"बेटा, उठ, देख तो सही, मैं तेरी माँ हूँ!"

यह सुनते ही मैं उठ बैठा और देखा कि एक बहुत दुबली-पतली और कमजोर-सी स्त्री खड़ी है। उसे देखकर ऐसा लगा कि यह अभी-अभी कहीं से प्रकट हुई है।

उस स्त्री का शरीर सांवला था और उसकी दुबली-पतली अंगेठ देखकर ऐसा खयाल होता था कि सामने सूरज की किरणों से मुरझाई हुई कोई नीले कमलों की माला टँगी है। उसके शरीर पर लँहगा और दुपट्टा बहुत पुराने तथा मैले पड़ गए थे। ओठों को जान पड़ता था कि बहुत दिनों से पान का रंग नहीं लगा है, इस कारण उनकी स्वाभाविक लाली

फीकी हो गई है। वह स्त्री इतनी गरम-गरम साँसें ले रही थी कि उनसे उसके ओठ खुश्क पड़ गए थे और उनकी चमक जाती रही थी। इन ओठों की तरफ देखते हुए ऐसा लगता था कि वह विरह की आग उगल रही है, जिसमें से लाल-काला-सा धुआँ उठ रहा है। उसकी दोनों आँखें रोते-रोते लाल पड़ गई थीं। ऐसा लगता था कि लगातार आँसुओं की धारा बहने से उनके अन्दर पानी तो शायद बचा नहीं था, केवल रक्त रह गया था। उस देवी के सिर के बाल पीछे की ओर केवल एक चोटी में गुँथे हुए थे। यह चोटी उस महिला के लिए उसके कुल के आचार-विचार और सदाचार की मान-मर्यादा बनाये रखने वाली मानो एक रस्सी थी, जिसके द्वारा वह अपने को सदा संयत बनाये रखती थी। ऊपर से उसने एक आसमानी चादर ओढ़ी हुई थी। उसके दोनों हाथ खुले थे जिनमें चूड़ियाँ पड़ी थीं। उसे देखते हुए यह बात साफ पता चल जाती थी कि पतिव्रता और कुलवन्ती नारियों में उस स्त्री का बहुत ऊँचा स्थान होगा। उस महिला की देह बहुत ही दुबली-पतली थी, परन्तु शायद किसी देवी-देवता का ऐसा प्रभाव था जिसके कारण उसकी रौनक अभी तक बनी हुई थी।

उसे देखकर मेरे मन में अपने-आप ही भक्ति का भाव उमड़ आया और मैंने झुककर उसके पैरों पर नमस्कार किया। उसने भी मुझे अपने लड़के की तरह तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया, फिर मेरा मस्तक चूमा। बेहद खुशी के कारण उसकी बाँहें थरथरा गई और पुत्र-स्नेह के कारण छातियाँ भर आई, मानो वात्सल्य-रस उमड़ रहा हो। उसकी आँखों से भी आँसू बह चले और गला भर आया। स्नेह के कारण काँपती हुई आवाज में वह मुझसे कहने लगी—

"बेटा, मगध की महारानी वसुमती ने शायद तुझे सुनाया हो कि किस तरह मणिभद्र की लड़की उनकी गोद में बालक अर्थपाल को देकर और अपनी आपबीती सुनकर चली गई थी। अपनी उस रामकहानी में उसने अपने पति-पुत्र और सखी-सहेलियों का हाल बतलाया था और यक्ष-राज कुबेर की भी उसमें चर्चा की थी। सब हालचाल सुनाकर वह लुप्त

हो गई थी। मैं वही स्त्री हूँ, और तेरी माँ हूँ। तेरे पिता श्री कामपाल जी हैं, सुमन्त्र उनके बड़े भाई होते हैं। उनके पिता का नाम श्री धर्मपाल था। तेरे पिता जी से मैं बेबात ही रूठ गई थी। न जाने क्यों मेरे मन में व्यर्थ ही कुछ मैल आ गया, इसलिए मैं उनके चरणों का आसरा छोड़कर चली आई। बाद को मुझे बड़ा पछतावा हुआ और क्लेश भी रहा। उसके बाद मैं आकर इसी जंगल में रहने लगी।

एक बार जब मैं सोई हुई थी, सपने में क्या देखती हूँ कि कोई राक्षस-सा आया। वह मुझे शाप देकर कहने लगा—"तू बड़ी चण्डिका है! तेरा इतना गरम और क्रोधी स्वभाव है? तू घर छोड़-कर कैसे चली आई? अब तुझे परेशान करने के लिए मैं एक बरस तक तेरे सिर पर सवार रहूँगा।' यह कहकर वह लुप्त हो गया और मेरे अन्दर आकर समा गया। इसके बाद मैं जागी। मेरा वह एक वर्ष इतना लम्बा कटा, मानो एक हजार बरस बीत गए हों!

उधर श्रावस्ती में देवाधिदेव भगवान महादेव का मेला जुड़ा था। लोग जगह-जगह से अपने इष्ट मित्रों के साथ वहाँ एकत्र हो गए। मेरे भी नाते रिश्ते के बहुत से लोग वहाँ आये थे। उन्हें देखने कल रात में मैं भी वहाँ जाने को थी। सोचा था कि मेला देखकर और शाप से छूटकर पति के पास चलूँगी। इतने में यहां तू आ गया। तू यह बोला—'जो देवी-देवता यहाँ रहते हैं वे मेरी रक्षा करें।' इतना कहकर तू सो गया।

यहाँ जब तू आया उस समय मैं तुझे नहीं पहचान सकी कि वास्तव में तू कौन है, क्योंकि तब तक मैं शाप के दुःख से बड़ी बेचैन थी। उस समय तो तुझे देखकर मैंने यही सोचा था कि यह बिचारा कोई राही यहाँ के वन-देवता का शरणागत होकर सोया है। यह जंगल ऐसा है कि इसमें कोई ठिकाना नहीं, कब मुसीबत आ पड़े। इधर शरण में आये हुए को इस तरह सोता हुआ अकेला छोड़ जाना ठीक नहीं। इसीलिए मैं तुझे सोते-सोते ही उठाकर चल दी।

ज्यों-ज्यों श्रावस्ती का वह शिवमन्दिर निकट आने लगा, त्यों-त्यों

मुझे खयाल हुआ कि इस नवयुवक को साथ लिये हुए मैं उस मेले में कहाँ-कहाँ फिरूँगी ? मैं यही सोचती जा रही थी, इसी समय रास्ते में अचानक क्या देखती हूँ कि श्रावस्ती नरेश महाराज धर्मवर्धन का महल आ गया है। राजा धर्मवर्धन वास्तव में ही धर्म-कर्म की वृद्धि करने वाले और यथा नाम तथा गुण थे। उनके महल में एक जगह राजकुमारियों के रहने की अटारी थी। इसकी ऊपरी मंजिल पर गरमियों में सोने की बड़ी सुन्दर जगह बनी थी। वहीं पर उनकी लड़की नवमालिका एक मुलायम गद्देदार खुले हुए पलंग पर सो रही थी। मैंने सोचा कि यह तो बड़ा अच्छा हुआ। राजकुमारी भी नींद में है और इसकी सखी-सहेलियाँ तथा दासियाँ भी पड़ी सो रही हैं। क्यों न इस ब्राह्मण नवयुवक को थोड़ी देर यहीं सुला दूँ। यह यहीं सोता रहेगा और मैं तब तक शिवजी की पूजा करके थोड़ी देर में लौट आती हूँ।

बस मैंने तुझे वहीं सुला दिया और मैं मन्दिर की ओर चली गई। वहाँ का मेला और आनन्द-उत्सव मैंने देखा। अपने सगे-सम्बन्धियों से मिली-जुली। अन्त में शिवजी के दर्शन किये। इस समय मैंने अपनी अन्तरात्मा से यह अनुभव किया कि मुझसे जीवन में भारी अपराध हुआ है। इस भावना के उठते ही मेरे मन पर एक तरह का डर-सा छा गया। इसके उपरान्त भक्ति-भरे हृदय से मैंने अम्बिका भवानी को नमस्कार किया।

मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि माता पार्वती मुझे देखकर मुस्कराई और कहने लगीं—"बेटी अब तू भयभीत मत हो, तेरे शाप का समय निकल चुका है। अब तू अपने पति के पास चली जा।"

उनके वचनों से मुझे बड़ा सुख मिला और मेरा जी हल्का हो गया। अब मुझे अपने ऊपर कुछ आत्मविश्वास और भरोसा भी हो आया। मन्दिर से लौटकर मैं वहीं आई जहाँ तुझे सुला गई थी। अबकी बार तुझे देखते ही मैं ठीक-ठीक पहचान गई। मुझे तुरन्त ध्यान आया कि अर्थपाल का प्राणप्रिय मित्र यह प्रमति तो मेरा ही पुत्र है; मैं भी कैसी

अभागी और पापिन हूँ कि इसे भी नहीं पहचान पाई ? इस बिचारे की ओर से इतनी बेखबर बनी रही ?

तुम दोनों वहीं पलंग पर लेटे थे। तुम्हें ध्यान से देखकर मैं मन-ही-मन कहने लगी कि इस राजकुमारी नवमालिका को तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यह चाहने लगा है। यह लड़की भी इसकी ओर कुछ झुकती हुई-सी दिखाई देती है। मुझे ऐसा भी लगता है कि ये दोनों ऊपर से ही सोये हुए हैं, या तो डर से अथवा संकोच के मारे ये दोनों एक-दूसरे पर अपना दिल नहीं खोल रहे हैं।

इसके बाद मुझे ध्यान आया कि अब इस समय मुझे यहाँ से चल देना चाहिए। मैंने सोचा कि यह लड़की हालांकि इस नवयुवक को चाहने लगी है, पर भेद खुल जाने के डर से न तो इसने यह बात किसी सहेली से कही होगी और न किसी नौकर-चाकर को बुलाकर उसे कुछ बतलाया होगा, क्योंकि यहाँ किसी तरह की कोई हलचल नहीं दिखाई देती। अच्छी बात है, अब इस लड़के को लिये जाती हूँ। अवसर आने पर यह स्वयं ही कोई मुनासिब तरकीब ढूँढ़ लेगा और इस मामले को ठीक-ठाक कर लेगा।

यह सोच-विचारकर मैंने तुझे अपने असर से गहरी नींद में सुला दिया और इसी पेड़ के नीचे पत्तों वाले बिछौने पर तुझे ले गई। यह सब घटना इस ढंग से घटी है। अच्छा, अब मैं तेरे पिता के पास लौटी जा रही हूँ।"

उसकी ये सब बातें सुनकर मैंने हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया। उसने मुझे बार-बार छाती से लगाया, सिर पर हाथ फेरा और अन्त में स्नेह के मारे बड़ी कातर-सी होकर उसने मेरा मुँह चूमा। इसके बाद वह चली गई।

उसके चले जाने के बाद अब मुझे उस राजकुमारी की याद आने लगी। उससे मिलने की उत्कंठा लेकर मैं तुरन्त श्रावस्ती की ओर चल दिया। जाते-जाते रास्ते में सौदागरों का एक बड़ा भारी काफिला पड़ा। इन लोगों ने जहाँ पड़ाव डाला था, उस जगह मुर्गों के दंगल के कारण बड़ा होहल्ला

मच रहा था। मैं भी दर्शकों की भीड़ में जा घुसा और उनमें बैठकर लड़ाई देखने लगा। इतने में मुझे मन-ही-मन एक बात का खयाल हो आया और मैं मुस्कराने लगा। मेरे पास एक बुड्ढा बैठा हुआ था। यह आठों गाँठ कुम्मैत और बड़ा खुर्राट जान पड़ता था। यह ब्राह्मण था। मुझे इस तरह मुस्कराता देखकर वह पूछ बैठा—"क्यों जी, किस बात पर मुस्कराये ?"

मैंने कहा—"भला देखो तो, कहाँ वह बेचारा पूरब की तरफ का नारिकेल किस्म का मुर्गा और कहां उसके मुकाबले के लिए इस पछाहीं 'बलाका' जात के मुर्ग को ये नासमझ लोग ले आये हैं! यह मुर्गा ताकत और डीलडौल में बहुत ज्यादा है।"

वह ब्राह्मण भी इस बात को जानता था, बोला—"अरे भाई, इन बेवकूफों को ये सब बातें बतलाना बेकार है। चुपचाप बैठकर तमाशा देखो।" इतना कहकर गिलौरीदान में से एक कपूर पड़ा हुआ खुशबूदार पान निकालकर उसने मेरी ओर बढ़ा दिया। फिर बैठे-बैठे तरह-तरह के अजीब किस्से सुनाने लगा।

उधर उन दोनों मुर्गों में लड़ाई छिड़ गई। दोनों ओर के लोग बड़े जोश और उत्साह में भरकर खेल देखने लगे। ज्योंही कोई मुर्गा पंजे की चोट देता कि उसकी तरफ के लोग खूब जोर-जोर से उसे शाबाशी देते। इसी तरह अपने-अपने पक्ष की जीत पर दोनों ओर से वाहवाही होती और खूब नारे लगते। लड़ाई होते-होते अन्त को वह पछाहीं मुर्गा जीत गया। वह बूढ़ा ब्राह्मण भी पछाह का था। अपने देश के मुर्गे की जीत पर वह बड़ा खुश हुआ। यद्यपि मेरी और उसकी उम्र मेल नहीं खाती थी, तो भी वह मेरे साथ कुछ अपनापा और दोस्ती-सी मानने लगा। यहां तक कि वहां से अपने साथ-साथ वह मुझे अपने घर पर ले आया। उस दिन स्नान-भोजन आदि उसने मुझे वहीं करवाया। अगले दिन जब मैं श्रावस्ती की ओर चला तो वह थोड़ी दूर तक मेरे साथ-साथ आया। अन्त में चलते समय बोला—"अच्छा भाई, अब लौटता हूँ। कभी काम पड़े तो मुझे याद करना।" इसके बाद

मित्र की तरह मुझे विदा देकर वह लौट गया ।

मैं चलते-चलते श्रावस्ती तक आ पहुँचा । रास्ते की थकान के कारण नगर के भीतर नहीं गया, बाहर ही बाग में बेलों के एक कुंज में जाकर सो गया। कुछ समय बाद हंसों की-सी बोली सुनकर मेरी नींद खुली। उठकर देखा तो एक नौजवान स्त्री मेरी ओर चली आ रही है। उसके पैरों में पायलों के घुंघरू अब भी बज रहे थे ।

पास आकर उसने अपने हाथ में लिया हुआ एक चित्रपट खोलकर रखा । उस पर मेरी-जैसी सूरत के एक आदमी की तसवीर खिंची हुई थी । वह युवती एक बार उस तसवीर की छवि को देखती और उसके बाद मेरी ओर निहारती । होते-होते अन्त को वह अचंभे में पड़ गई । थोड़ी देर तक कुछ सोच-विचार और तर्क-वितर्क में भी रही; साथ ही कुछ खुशी भी उसके चेहरे से टपकती हुई मालूम पड़ी । थोड़ी देर तक वहाँ वह इसी तरह बैठी रही । तब तक मैंने भी उस तसवीर पर एक नजर डाल ली और ध्यान से देखा तो वह सचमुच ही मेरे साथ मिलती थी ।

मैं समझ गया कि यह स्त्री जो इस तरह मेरी आकृति पर दृष्टि डालकर अचरज में पड़ गई है, यह सब अकस्मात् ही ऐसा नहीं हो रहा है । मुझे पिछली सब घटनाएँ याद आ गईं । खैर, मैंने उससे बातचीत छेड़ी । मैंने कहा—"यह बाग तो बड़ा साफ सुन्दर बना हुआ है । यह जगह भी बड़ी रमणीक है। मेरे विचार में यह तो आम तौर पर सभी के उठने-बैठने की जगह होगी ? फिर अब इतनी देर से खड़ी-खड़ी तकलीफ क्यों उठा रही हैं ? आइए, बैठ लीजिए ।"

यह सुनकर वह तनिक मुस्कराई और बोली—"आपकी बड़ी कृपा हुई।" यह कहते-कहते वह आकर वहीं बैठ गई ।

इसके बाद हम दोनों में बातें होने लगीं । कुछ देर तक उस स्थान के और उसी इलाके के सम्बन्ध में बातें होती रहीं । फिर इधर-उधर की थोड़ी-बहुत और गपशप चलती रही। इसी बातचीत के सिलसिले में वह बोली—"आप तो अब हमारे नगर के अतिथि हैं। आपको देखने से ही पता चल जाता

है कि रास्ता चलते-चलते आपका शरीर थक गया होगा। यदि कुछ हर्ज न समझें तो हमारे घर पर चलिए; वहीं विश्राम कीजिएगा। आपकी बड़ी कृपा होगी।"

मैंने कहा—"देवी जी, इसमें हर्ज की क्या बात है? यह तो बहुत सुन्दर रहेगा, चलिए। इसके उपरान्त उसके साथ-साथ मैं उसके घर पर आया। वहाँ उसने राजा-रईसों की तरह बड़े ठाठ-बाट के साथ मुझे स्नान-भोजन आदि करवाया। इसके बाद मैं एकान्त कमरे में आराम करने लगा। कुछ देर बाद वहीं वह स्त्री भी आ गई। बातचीत के सिलसिले में वह कहने लगी—

"महानुभाव, आप तो देश-परदेश घूमते आ रहे हैं। आपने कहीं कोई नई और निराली बात देखी हो तो बताइए, या कोई अनोखी घटना आपके साथ बीती हो तो सुनाइए।"

उसकी यह बात सुनते ही मेरे मन में विचार आया कि इस स्त्री की इन बातों से तो आशा की एक किरण-सी दिखाई देती है। यह जरूर उसी राजकुमारी की कोई सहेली है, जिसे उस दिन तमाम दास-दासियों के बीच उस रात को मैंने देखा था। मैं सोचने लगा कि इसके पास की इस तसवीर में भी यह वही अटारी है जिसके ऊपर सफेद चाँदनी तनी हुई थी। उसके नीचे बिछा हुआ खूब लम्बा-चौड़ा यह पलंग भी वही है। इस पर का यह बिछौना कितना उजला और सफेद है। इसे देखकर उसी दिन की तरह आज भी शरद् काल के श्वेत चमकीले बादल की याद आ जाती है। इस पलंग पर यह जो आदमी की तसवीर बनी है जिसकी आँखें नींद में मुँदी-सी जा रही हैं, यह साफ-साफ मेरी ही हैं। जान पड़ता है मेरी तरह उस राजकुमारी को भी कामदेव ने प्रेम के बाणों से छेद डाला है। मेरे-जैसी ही उसकी भी नाजुक हालत हो चुकी है। यह तसवीर उसी बात का इशारा है। प्रेम में बेहद व्याकुल और आतुर हो जाने पर जब वह बहुत बेचैन और बेहाल हुई होगी तो सखियों ने बहुत हठ करके उससे इसकी वजह पूछी होगी। उसने जवाब तो शायद कुछ दिया

नहीं, हां, उत्तर-रूप में उस रात का वह नजारा इस चित्र में उतारकर दे दिया ! कितना असली, सच्चा और जोरदार यह उसका जवाब है ? इस औरत ने जब तसवीर की शक्ल के साथ मेरी सूरत का मिलान किया, तो इसे शायद कुछ संदेह हुआ, तभी इसने मुझसे यह इस तरह का सवाल किया है। अब, जबकि इसने पूछ ही लिया है तो फिर आपबीती सुनाकर इसका शक दूर ही कर दूँ ।

यह सब सोचते-विचारते हुए अन्त को मुझे मन-ही-मन पक्का निश्चय हो गया कि वास्तव में यही बात हुई है । तब मैंने उस युवती से कहा—

"सुन्दरी, ज़रा यह तसवीर तो मेरे हाथ में देना ।"

उसने वह मेरे हाथ में थमा दी । मैंने क्या किया कि उस तसवीर को लेकर उसमें अपने साथ उस अपनी प्रियतमा राजकुमारी का भी चित्र बना दिया। चित्र में उसकी वही हालत दिखाई गई थी कि सोने का बहाना किये हुए वह आँख बन्द करके पड़ी हुई है । साथ ही उसकी चेष्टाओं और चेहरे-मोहरे से यह बात साफ झलकाई गई थी कि उमड़ती हुई कामाग्नि के बारे में वह बेचैन हो रही है ।

यह तसवीर मैंने उस स्त्री के हाथ में देकर कहा—"तुमने मुझसे दुनिया में देखी हुई कोई अद्भुत बात पूछी है । इस तसवीर को देखो । इसमें जैसी शक्ल मैंने बनाई है, वैसी ही एक स्त्री इस तसवीर में बने हुए आदमी के पास सोती हुई मैंने एक बार सपने में देखी थी । जब मैं एक घने जंगल में पड़ा सो रहा था, यह सपना मुझे आया था । यही मेरे लिए दुनिया में सबसे अधिक अचंभे की बात थी ।"

मेरी बात सुनकर वह औरत बड़ी प्रसन्न हुई । उसने जब इस बारे में खुलासा पूछा तो मैंने बीता हुआ सारा हाल उसे सुना दिया ।

इस पर उसने अपनी सहेली उस राजकुमारी की सब बातें सुनाईं, कि मेरे कारण उस बेचारी की कैसी-कैसी हालत हो रही है ।

राजकुमारी की दशा सुनकर मैंने उस स्त्री को समझाया कि

तुम्हारी सखी के मन का रुझान यदि मेरी तरफ है तो उसके कुछ दिन इसी तरह और बिताओ। मैं कोई ऐसा उपाय करूँगा जिससे राजकुमारी के महल में मुझे बेखटके रहने का मौका मिल जाय और किसी को इसका गुमान तक न हो। ऐसी कोई तदबीर करके मैं राजकुमारी के पास आऊँगा।

उसे इस तरह समझाकर मैं वहाँ से चल दिया और लौटकर उसी गाँव में आया, जहाँ वह बूढ़ा ब्राह्मण मुझे मिला था। वह बड़ा चतुर और कामकाजी आदमी था। मैं उसके घर पहुँचा। उसने बड़ी आवभगत के साथ मुझे लिया और पहले की तरह अपने घर पर टिकाकर वहीं स्नान-भोजन आदि करवाया। इसके बाद एकान्त में बैठकर पूछने लगा —"कहिए महाशय, इतनी जल्दी कैसे लौट आये ?"

मैंने कहा—"आप ठीक ही पूछ रहे हैं। यह कहानी कुछ लम्बी है, बैठिए, सुनाता हूँ। आप श्रावस्ती नगरी से तो खूब परिचित ही होंगे। उसके राजा आजकल धर्मवर्धन हैं। वह वस्तुतः बड़ा धर्मात्मा व्यक्ति है। यदि इसे दूसरा धर्मराज युधिष्ठिर कहा जाय तो भी बड़ी बात नहीं है। इसकी लड़की बड़ी सुन्दर और भाग्यशालिनी है और बहुत सुलक्षणा प्रसिद्ध है। उसको साक्षात् लक्ष्मी समझिए, बल्कि लक्ष्मी भी इसके सामने तुच्छ है। उसके रूप-लावण्य का कुछ ठिकाना नहीं। यदि सौंदर्य के अवतार कामदेव का उस राजकुमारी को प्राण कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। सुकुमार वह इतनी है कि नई मुलायम बेल की कोमलता को भी मात करती है। शायद इसी कारण उस राजकन्या का नाम भी नवमालिका रखा गया है। इस राजकुमारी के साथ दैवयोग से अचानक ही मेरा मिलना हुआ। जबसे उसकी कटाक्ष-भरी चितवनें मेरे हृदय में ऐसी चुभ गई हैं मानो प्रेम देवता के तीखे बाण हों, मेरे कलेजे के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। काम के इन बाणों की नोकें हृदय में ऐसी धँसी रखी हैं कि तुम्हारे जैसा कोई धन्वन्तरी ही उन्हें निकाल सकता है, और किसी का तो सामर्थ्य दिखाई नहीं देता। इसीसे लौटकर तुम्हारे पास आया हूँ। अब मुझ पर तुम तरस खाओ और कोई उपाय निकालो।

मैंने तो ऐसा सोचा है कि मैं अपना भेस बदलकर स्त्री का रूप रच लूं और तुम्हारी लड़की बन जाऊँ। लड़की बनकर तुम्हारे साथ-साथ रहूँ। तुम चलकर राजा धर्मवर्धन के पास ऐसे समय पहुँचना जब वे कचहरी दरबार में हों। उनसे तुम यह कहना—"महाराज, यह मेरी इकलौती लड़की है। इसके पैदा होते ही इसकी माँ स्वर्ग सिधार गई थी, इसलिए माता और पिता दोनों के रूप में मैंने ही इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। इधर अब मुझे इसके ब्याह की चिन्ता हुई। हम लोगों का जिन घरानों में विवाह सम्बन्ध हो सकता है, उन्हीं में से एक घर का ब्राह्मण लड़का मैंने इसके लिए ठीक किया। वह पढ़ने-लिखने के लिए अवन्ती की ओर उज्जैनी में चला गया। ब्राह्मणों में तो आप समझते ही हैं कि वर का पढ़-लिख लेना यही एक तरह से कन्या के लिए उसकी 'ठहरौनी' है। अब उसी ब्राह्मण वर के लिए इसका देना तय हो गया है। किसी दूसरे के साथ ब्याह करने योग्य यह नहीं रही। अब इस समय यह ब्याह के योग्य और सयानी हो चुकी है, परन्तु उस युवक के लौटने में देर हो रही है। इस कारण मैंने उसे लिवा लाने के लिए उधर जाने का निश्चय किया है। उसे लाकर इसका ब्याह कर दूं और अपना बोझ उतारकर मैं संन्यास ले लूं। आप समझते ही हैं कि लड़कपन की उम्र पार करते ही कन्याओं की रखवाली बड़ी कठिन हो जाती है। खास तौर से जिन लड़कियों की माताएं न रहें, उनको तो बड़ी उम्र में वर बिठाये रखना बहुत ही कठिन होता है। इसलिए मैं अब महाराज की शरण आया हूं। क्योंकि आप ही प्रजा के माता-पिता हैं। जनता को अन्त में आपका ही सहारा रहता है। आप तो पुराने समय के राजा-महाराजाओं का अनुगमन करने में सबसे आगे हैं। यदि मेरे लिये इतना खयाल कर सकें कि यह एक बूढ़ा पढ़ा-लिखा निरुपाय ब्राह्मण है, और यदि अपना अतिथि मानकर मुझे अपनी दया का पात्र समझें तो इतना कर लें कि मेरी इस पुत्री को तब तक के लिए अपनी शरण में ले लें, जब तक मैं इस वर को लिवा लाऊं। मैं ऐसा इसलिए करना चाहता हूं, क्योंकि महाराज का रोबदाब

मामूली नहीं है। आपके असर से इसकी ओर कोई आँख भी नहीं उठा सकता। आपकी बलवान भुजाएं एक महान् वृक्ष के समान हैं। इन्हीं की छाया में यह पड़ी रहेगी। इसका आचार-विचार भी ठीक बना रहेगा।

राजा जब यह बातें सुनेगा तो अपनी तारीफ के कारण फूल उठेगा और अभिमान के साथ-साथ खुशी में भरकर मुझे अपनी लड़की उस राजकुमारी के पास रहने के लिए जरूर भेज देगा। इस प्रकार मैं नवमालिका के पास पहुँच जाऊंगा।

आप चढ़ते फागुन यहां से बाहर चले जाना और फागुन के अन्त में लौटना। इधर उतरते फागुन की तरह महाराज के रनवास के सब लोग तीर्थ-यात्रा का उत्सव मनायेंगे। तीर्थ यात्रा का यहां एक मेला लगता है। इस मेले की जगह से पूरब की ओर कोई दो फर्लांग हटकर बेंतों का घना जंगल है: इसमें भगवान् कार्तिकेय का एक मन्दिर बना हुआ है। आप उसी मन्दिर में आजावें और अपने साथ एक जोड़ी सफेद धोती-कुरता लेते आवें।

इतने समय तक मैं राजकुमारी के पास बेखटके रहता रहूंगा और आनन्द विहार भी कर लूंगा। तीर्थ-यात्रा के उस मेले पर गंगा जी के जल में सब लोग खेल-कूद रहे होंगे। राजकुमारी की सहेलियां भी जल-विहार में मग्न होंगी। उस समय उन सबके साथ मैं भी जलक्रीड़ा में लगा रहूंगा और डुबकी मारकर पानी के अन्दर-ही-अन्दर तैरकर आपके नजदीक आकर निकलूंगा। यहां आपके लाये हुए कपड़े बदलकर, लड़की का भेस उतारकर फिर लड़का बन जाऊंगा। अबकी बार आपके उज्जैनीवाले दामाद के रूप में आपके साथ रहूँगा।

उधर राजकुमारी वहां मुझे न पाकर इधर-उधर मेरी खोज करवायेगी। जब मैं नहीं मिलूंगा तो वह महल में रोने-धोने लगेगी और कहेगी कि मै तो अपनी प्यारी उस सहेली के बिना अन्न-जल नही छूऊंगी।

इस प्रकार राजकुमारी की सहेलियों के बीच से मेरे खो जाने पर बड़ी सनसनी-सी फैल जायगी और चारों ओर हल्ला-गुल्ला मचेगा।

सब दास-दासियां रोने-पीटने लगेंगी। नगरनिवासी भी इस खबर से बड़ा दुःख मान रहे होंगे। उधर जब राजा तक यह समाचार पहुँचेगा, तो वे और उसके मन्त्री, सब सन्नाटे में आ जायँगे और किंकर्तव्यविमूढ़ हुए बैठे होंगे। उस समय आप दरबार में पहुँचें और मुझे राजा के सामने ले जाकर उनसे कहें—

'महाराज, मैं आ गया हूँ। ये हैं वे मेरे दामाद। आप इन्हें आशीर्वाद दीजिए।' "

मैंने उस ब्राह्मण से कहा कि आप उस समय अपने दामाद की खूब बड़ाई करें और राजा से कहें—

"महाराज, इन्होंने चारों वेदों को पूरा पढ़ लिया है; साथ ही छः वेदांग भी विधिपूर्वक पढ़े हैं। न्यायशास्त्र में ये बहुत प्रवीण हैं। चौंसठ कलाओं को सीखकर उनका व्यापार भी ये बड़े अच्छे ढंग से करते हैं। हाथी-घोड़ों की सवारी और रथ हांकने के फन में तो इन्हें सिद्धहस्त ही समझिए। धनुष-वाण आदि अस्त्र-शस्त्रों के चलाने में तथा गदायुद्ध करने में इनका कोई जोड़ीदार ही नहीं है। पुराण और इतिहास इन्हें मुँहजबानी याद हैं। काव्य, नाटक और कहानियां ये स्वयं ही लिखा करते हैं। सब उपनिषदों और अर्थशास्त्र का इन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया है। इतना पढ़ा-लिखा और गुणी होने पर भी इन्हें किसी से ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। स्वभाव के इतने सरल हैं कि अपने हितैषियों और मित्रों का सरलता से विश्वास कर लेते हैं। बोलने-चालने में भी बड़े मीठे और मधुरभाषी हैं। अपने लिए कोई चीज ये कभी चुरा-छिपाकर नहीं रखेंगे; जो कुछ पास में होगा तुरन्त बाँट देंगे। इनकी स्मरणशक्ति का यह हाल है कि जो बात एक बार सुन लेते हैं इन्हें तुरन्त याद हो जाती है। इतना सब कुछ होने पर भी अहंकार इन्हें छू नहीं गया। मैंने तो जब से इन्हें देखा है, इनके अन्दर अवगुण या दोष मुझे रत्ती-भर भी नहीं खोज मिला। परन्तु गुण ऐसा कोई नहीं जो इनमें न मिले। महाराज, मैं तो बहुत ही छोटी सी हैसियत का ब्राह्मण हूँ, मेरे लिए भला ऐसा सम्बन्धी कहाँ मिल सकता

था ? भाग्य से ही ये मुझे मिल गए हैं। अब महाराज ठीक समझें तो मैं अपनी कन्या इनके हाथों में सौंप दूं। मेरा तो अब बुढ़ापा है। इस आयु में घर का त्याग कर देना ही ठीक रहता है, इसलिए मैं अब संन्यास ले लेना चाहता हूं। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे इन दामाद पर सदा कृपा-दृष्टि बनाये रखें।"

"राजा जब आपकी ये बातें सुनेगा तो आपकी लड़की के खो जाने के कारण बड़ी परेशानी और चक्कर में पड़ जायगा। पहले तो उसका चेहरा उतर जायगा और वह पीला दिखाई देगा। इसके बाद वह संकुचित और लज्जित-सा दीख पड़ेगा। आपकी बातें सुनकर वह स्वयं और उसके मन्त्री भी, सभी लोग मिलकर आपके सामने संसार की अनित्यता और असारता का बखान करने लगेंगे ; साथ ही आपकी विनती करके आपको मनाने में लग जावेंगे। इस तरह धीरे-धीरे अन्त में यह बात खुलेगी कि आपकी लड़की तो खो गई है।

परन्तु आप उनकी बातों पर कान न दें और गला फाड़-फाड़ कर रोना शुरू कर दें। खूब देर तक रो चुकने पर आप राजा के महल के ठीक दरवाजे के सामने लकड़ियां मंगवाकर चिता चुनवा लें और उसमें आग देकर यह स्वांग रचें कि मैं तो अब चिता में जल मरूंगा। राजा जब आपको आग में जल मरने पर आमादा देखेगा तो ब्रह्म-हत्या से घबड़ा उठेगा। वह अपने मंत्रियों को साथ लेकर आपके पैरों पर आकर पड़ जायगा। साथ ही बहुत सी धन-सम्पत्ति देते हुए आपको मनायेगा भी। उस समय आप यह कहें कि अच्छी बात है, मैं अब आपकी पुत्री को ही अपनी पुत्री मानकर सन्तोष किये लेता हूं। यह ब्राह्मण युवक सर्वगुण सम्पन्न है, इसके साथ अब आप अपनी पुत्री का विवाह करलें। क्योंकि मैं तो इसे दामाद मान ही चुका हूँ।

राजा मेरे गुणों को सुनकर मुझसे प्रभावित तो होगा ही । वह अपनी राजकुमारी का मेरे साथ ब्याह करने पर मजबूर भी हो जायगा। उसके कोई लड़का तो है ही नहीं इसलिए ब्याह हो चुकने पर उसका सब

राज-पाट भी मेरे ही हाथ लगेगा। उसके बाद तुम भी खुद खूब आनन्द से रहा करना।"

अपनी यह सब योजना उस बुड्ढे घाघ को सुनाकर मैंने उससे कहा—"यह है वह उपाय जो मैंने सोच रखा है। कहो, कैसा है ? अगर तुम्हारी समझ में आता हो तो फिर शुरू करो।"

वह बुड्ढा तो ऐयारों और धूर्तों का गुरु ठहरा। ऐसे कामों में वह खूब मँजा हुआ भी था। यह सब छल-प्रपंच रच डालना उसके बायें हाथ का खेल था। हां, उसका नाम बतलाना तो मैं भूल ही गया, लोग उसे पाचाल शर्मा कहकर बुलाया करते थे। उसने मेरे कहने के अनुसार बल्कि और भी अधिक चतुरता और मक्कारी के साथ यह सब काम कर दिखाया। मैं जो-जो बात चाहता था, उसमें मुझे आशातीत सफलता होती गई। अन्त को राजकुमारी नवमालिका मेरे हाथ लगी। जिस तरह भौंरा ताजे और रस से भरे फूलों की नवीन माला का रस लूटता है, उसी तरह मैंने भी नवमालिका का खूब आनन्द उठाया।

फिर जब मुझे अपने मित्र राजा सिंह वर्मा को सहायता दिये जाने की आवश्यकता मालूम हुई और यह पता चला कि हम सब मित्रों को इस स्थान पर एकत्रित होने के आदेश हैं, तो इन दोनों बातों का ध्यान रखते हुए, अपनी सब सेना लेकर मैं इधर चम्पा में चला आया। यहां महाराज के दर्शन करके मुझे अपार आनन्द हुआ है।"

अपनी यह सब आपबीती कहकर प्रमति चुप हो रहे। उनका हाल सुनकर कुमार राजवाहन बड़े प्रसन्न हुए। उनका मुख-रूपी नील कमल मुस्कराहट से खिल गया। वे कह उठे—"भाई प्रमति, तुम्हारी भी आप-बीती बड़ी सुन्दर रही। बुद्धिमान लोग तो ऐसे ही उपाय पसन्द करते हैं, जिनके द्वारा काम बहुत सहूलियत के साथ निकल जाय और आनन्द-भोग भी खूब बढ़िया शानदार और ऊंचे ढंग का भोगने को मिले।"

इसके उपरान्त उन्होंने मित्रगुप्त पर दृष्टि डाली और बोले—"अच्छा, अब आप यहां पधारिये और अपनी रामकहानी कहिए।"

५

मित्रगुप्त की आपबीती

मित्रगुप्त अपना हाल सुनाते हुए कहने लगे—

"राजकुमार, अपने इन्हीं मित्रों की तरह आपकी खोज में मैं भी इधर-उधर चक्कर लगाता हुआ सुम्ह देश की ओर निकल गया और उसके मुख्य शहर 'दामलिप्त' के शहरी बगीचे में पहुंचा। यहां कोई बहुत भारी उत्सव होने को था और बहुत-से लोगों की संगत जुड़ी हुई थी।

बाग में मैं इधर-उधर घूमने लगा। एक जगह बेला खूब पौंड़ा हुआ था, उसी के कुंज में देखा कि कोई नौजवान, वीणा बजाकर अपनी तबियत बहला रहा है। देखने से वह चिन्तित मालूम पड़ता था। मैंने उससे पूछा कि "भाई, यह कैसा मेला-सा जुड़ा है? इसकी शुरुआत कैसे-कैसे हुई? तुम तो उत्सव में कोई दिलचस्पी ही नहीं ले रहे हो और इस तरह चिन्तित से होकर अकेले में आ बैठे हो? यहां देखता हूं कि तुम्हारी साथिन इस वीणा के सिवा और कोई भी नहीं है? क्या बात है, कुछ बतलाओ तो।"

वह आदमी कहने लगा—"मित्र, बात यह है कि सुम्ह देश के राजा तुंगधन्वा के कोई सन्तान नहीं थी। इससे उदास होकर उन्होंने सब आमोद-प्रमोद और रागरंग त्याग दिए। यहां तक कि विन्ध्याचल पर रहकर आनन्द-उत्सव मनाने का उन्हें बड़ा शौक था, वह भी उन्होंने छोड़ दिया। केवल इस मन्दिर में सन्तान-प्राप्ति के लिए वे विन्ध्यवासिनी देवी के चरणों की आराधना में लीन रहने लगे।

देवी ने उन्हें सोते हुए सपने में वर दिया कि तेरे एक पुत्र होगा और एक कन्या। यह पुत्र उस कन्या के अर्थात् अपनी बहन के पति की मेहरबानी पर जिन्दगी बसर करेगा।

देवी ने यह भी आदेश दिया कि इस कन्या को चाहिए कि सातवें बरस से लेकर अपने ब्याह होने तक हर महीने कृतिका नक्षत्र में यहां मन्दिर पर आकर मेरे सामने 'कन्दुक नृत्य' किया करे और योग्य तथा गुणवान पति की प्राप्ति के लिए मेरी पूजा करती रहे। साथ ही अपनी पसन्द की चीज चढ़ावे में चढ़ाया करे। यह उत्सव 'कन्दुकोत्सव' के नाम से प्रसिद्ध होगा।

इस घटना के कुछ समय बाद महाराज की प्यारी पटरानी मेदिनी के एक लड़का और एक लड़की हुई। लड़के का नाम भीमधन्वा और लड़की का कन्दुकावती रखा गया।

देवी विन्ध्यवासिनी के दर्शन तो तुमने किये होंगे! उनके मुकुट पर कलगी की जगह चन्द्रमा रहता है। उन्हीं के सामने वह कन्दुकावती आज यहां गेंद खेलेगी; उसके पश्चात् कन्दुकनृत्य करती हुई देवी का पूजन करेगी।

इस राजकुमारी की एक सहेली है जो कि उसकी धाय की लड़की है। इसका नाम चन्द्रसेना है। मैं इसे चाहता हूँ, परन्तु चन्द्रसेना को इन दिनों राजकुमार भीमधन्वा ने ज़बरदस्ती पकड़कर रोक रखा है। इस कारण मुझे बड़ी बेचैनी रहती है। उसकी मुझे चिन्ता भी है।

मित्र, कामदेव के बाणों की चोट कैसी होती है, यह शायद तुम न जानते हो। पर मेरा मन तो उसकी कसक के मारे बड़ा व्याकुल है। इसी-लिए यहां अकेले में वीणा बजाने बैठ गया हूं, ताकि उसके मीठे सुरों में कुछ देर मन बहल जाय।"

वह आदमी इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में घुंघरुओं की रुनुक-झुनुक-सी आवाज़ पास आती सुनाई दी और एक स्त्री वहाँ आ गई। इसे देखते ही उस आदमी की आंखों में प्रसन्नता चमक उठी। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ; और वह स्त्री आकर इसके गले से लिपट गई। इसके बाद वह उसे लेकर वहीं बैठ गया और मुझसे बोला—

"देखो, यही है वह मेरी प्राणेश्वरी। इसी का विछोह मुझे आग की तरह जलाता है। इसे मेरी 'प्राण' और 'जीवन' समझो। राजकुमार ने इसे मुझसे क्या छीना है, एक तरह से मौत ने मेरे प्राण निकालकर मुझे बिलकुल ठंडा-सा कर दिया है। क्या करूं भीमधन्वा राजा के लड़के हैं, इस कारण मैं उनके हक में कोई बुराई करना नहीं चाहता। अब मेरी यह प्रियतमा मुझे एक बार अच्छी तरह देख ले बस फिर मैं अपने प्राण छोड़ दूँगा, क्योंकि ऐसे आदमी के जीने को ही धिक्कार है जो वैरी से बदला न ले सके।"

उस आदमी की ऐसी बातें सुनकर वह स्त्री रोने लगी। मारे आँसुओं के उसका सारा चेहरा भीग गया। वह बोली——

"प्राणेश्वर, मेरे लिए अपनी जान तक दे देने की ऐसी जोखिम मत उठाओ। आप तो ऊँचे कुल के हैं। जिनके पुत्र आप हैं वे आदरणीय अर्थदास कितने बड़े व्यापारी-मण्डल के मालिक हैं। ऐसे धनवान की सन्तान होने से ही गुरुजनों ने आपका नाम भी कोषदास रखा है। मैं ऐसी अभागिन हूँ कि मेरी ओर आपका इतना झुकाव होने से ही आपके बैरियों ने आपको 'वेश्यादास' कह-कहकर बदनाम कर डाला है। यदि आप न रहे और मैं जिन्दा रह गई, तो दुनिया की यह कहावत सच हो जायगी कि 'वेश्याएँ बड़ी हृदयहीन और बेमुरव्वत हुआ करती हैं।' मेरा जीवित रहना ही इस बात को पुष्ट करता रहेगा। इस कारण ऐसा करो कि कहीं भाग चलें। जो जगह तुम्हें अच्छी लगती हो, वहीं मुझे भी आज ही ले चलो।"

वह आदमी मुझसे बोला——"मित्र, तुम तो बहुत से देश-परदेश घूमे हो। तुम्हारी देखी हुई जगहों में कौनसा ऐसा स्थान है जहां खूब धन-दौलत और नाज-पानी हो और जहां बसने वाले ज्यादातर भलेमानस हों?"

मैंने कुछ हँसते हुए कहा——"भाई, यह समुद्रवसना पृथ्वी तो दूर तक फैली चली गई है। देश-विदेश के सुहावने और रमणीक स्थान कितने हैं, इसकी कोई गिनती नहीं। परन्तु पहले तो इसी देश को टटोलो। अगर मैं ऐसा कोई उपाय नहीं निकाल सका जिससे तुम दोनों यहीं पर

आनन्दपूर्वक रह सको तो फिर तुम्हें यहां से कहीं निकल चलने का रास्ता बतलाऊंगा ।''

हम लोग इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि इतने में मणियों से जड़े हुए घुंघरुओं की छमाछम आवाजें आने लगीं। वह स्त्री एकाएक उठ खड़ी हुई और बोली—''लो राजकुमारी कन्दुकावती तो आ पहुँचीं। वह अब गेंद खेलेंगी और देवी विन्ध्यवासिनी का पूजन करेंगी। हां, एक बात है, इस कन्दुकोत्सव में राजकुमारी को हर कोई देख सकता है। इस मौके पर उन्हें देखने की मुमानियत नहीं होगी, इसलिए आप सब लोग भी उनके दर्शन करके अपनी आंखें ठंडी कर लें। आइये, आप भी खेल देखने के लिए आ जाइये। मैं उनके पास चलती हूँ।''

यह कहकर वह चली गई। हम दोनों भी, उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँचे। उस जगह एक ऊंचा चबूतरा या वेदी-सी बनी थी। उस पर कीमती पत्थर और नग जड़े हुए थे। उसी के ऊपर राजकुमारी कन्दुकावती खड़ी थी। मुझे आज भी याद है कि उस समय उसके गुलाबी ओठ कैसे प्यारे मालूम दे रहे थे। वहीं से उस राजकुमारी की वह छवि मेरे मन में बस गई। उसके बाद से फिर मैं या कोई और कभी बीच में उसे न देख सका।

उसे देखकर मेरी तो अजीब हालत हो गई। मैं अचरज में पड़ गया और मन-ही-मन बार-बार सोचता कि यह कौन है—कहीं साक्षात देवी लक्ष्मी तो नहीं उतर आई? परन्तु लक्ष्मी ने तो हाथों में कमल का फूल पकड़ा हुआ होता है और इसके हाथ ही स्वयं कमल हो रहे हैं। लक्ष्मी के बारे में सुनते हैं कि उनके सौन्दर्य को आदि पुरुष भगवान विष्णु या दूसरे कोई राजा-महाराजा भी नहीं भोग सके, वह अछूता ही रहा। ऐसे भी रूप और जवानी किस काम के, जो एक से बने पड़े रहें। इधर इस सुन्दरी का तो निर्दोष यौवन, लावण्य रस से भरपूर दिखाई दे रहा है। रूप छलका पड़ता है। यह भी साफ ज़ाहिर है कि किसी ने आज दिन तक इसे छुआ नहीं है।

मैं मन-ही-मन इसी तरह सोच रहा था, इतने में वह आकर देवी के सम्मुख खड़ी हो गई। इस समय उसकी पूरी देह सामने दिखाई पड़ रही थी। मैंने इतना सुडौल शरीर कभी नहीं देखा था। उसमें कहीं तनिक भी कमी या कसर नज़र नहीं आती थी। राजकुमारी की काली घुँघराली लटें इधर-उधर लटक रही थीं। वहाँ आकर उसने अपने कोंपलों-जैसे मुलायम हाथों को आगे बढ़ाया, आगे की अंगुलियों से धरती को छुआ और फिर बड़ी अदा के साथ तनिक झुककर भगवती विन्ध्यवासिनी को प्रणाम किया।

इसके बाद उसने एक गेंद उठा ली। मुझे अच्छी तरह याद है कि वह गेंद ऊपर-नीचे तरह-तरह के चटकीले रंगों से रँगी हुई थी। राजकुमारी ने गेंद क्या उठाई, मुझे ऐसा जान पड़ा कि उसने साक्षात कामदेव को हाथों में पकड़ लिया है। इसके बाद उसने बड़ी मस्ती के साथ ढील देकर उसे ज़मीन पर छोड़ दिया। जब गेंद गद्दा खाकर थोड़ा उछली तो झट अपने कोमल हाथों में पकड़ लिया।

इस समय उसकी सुडौल हथेली देखते ही बनती थी। ऊपर को उछलती हुई गेंद को लेते समय इस हथेली का अंगूठा तनिक मुड़ा हुआ था और अंगुलियां फैल गई थीं। उसने गेंद को थामकर, हथेली से ही उसे फिर ऊपर उछाल दिया। इस उछली हुई गेंद के साथ-साथ देखने वालों की सैकड़ों चंचल आँखें भी उस गेंद पर जा लगीं। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो आकाश में गेंद के रूप में रंगबिरंगे फूलों का एक गुलदस्ता है और उस पर गिरती हुई चंचल आँखें मानो बहुत से भौरे हैं जो उस पर टूटे पड़ रहे हैं। इस उछली हुई गेंद को राजकन्या ने बीच अधर में ही पकड़ लिया और फिर छोड़ दिया!

इस प्रकार गेंद को वह कभी तो बीच में एक लम्बा अन्तर देकर धरती पर मारती और कभी जल्दी-जल्दी फेंकने लगती। कभी मुलायम हाथों से धीमे-धीमे ज़मीन पर गद्दे देती और फिर तत्काल ही एक बार जल्दी और एक बार धीमे, इस प्रकार बारी-बारी से

फेंकते हुए वह अपने खेल की सफाई दिखलाती रही। गेंद जब चलती-चलती रुक जाती तो उसको बड़ी बेदर्दी से पटककर उछालती। अगर वह तेजी में होती तो रोककर उसे धीमा कर देती। कभी गेंद को बड़े हल्के-से एक हाथ में लेकर दाहिने और बायें हाथों द्वारा बारी-बारी एक-दूसरे की ओर फेंकती। इस प्रकार जल्दी-जल्दी करने से गेंद ऐसी मालूम पड़ती जैसे कोई पक्षी उड़ा जा रहा है। कभी ऐसा करती कि गेंद को बहुत ऊंचा उछाल देती। जब तक वह नीचे आवे, तब तक स्वयं आठ-दस कदम गोलाकार चक्कर काट कर झट उसे हाथों में दबोच लेती। कभी गेंद को इस चतुरता से चारों-ओर हर-एक दिशा में उछालती कि वह लौट-लौटकर फिर वहीं आ जाती थी।

इस प्रकार गेंद के तरह-तरह के सुन्दर करतब दिखा-दिखाकर वह खेलती रही। राजकुमारी के इन खेलों से उत्सवस्थल में बैठे हुए दर्शकों के हृदय बड़े प्रभावित और मुग्ध हो रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर में इस दर्शक मण्डली के बीच से, उसके लिए प्रशंसा और सराहना की ऊंची-नीची आवाजें उठने लगती थीं। अपनी इन तारीफों को वह बड़े आदर-भाव और नम्रता के साथ ग्रहण करती थी।

उसके इन खेलों को देख-देखकर मुझ पर क्षण-क्षण में एक तरह का नशा और मस्ती-सी छाती जा रही थी। मारे हर्ष के मेरे कपोल का रोम-रोम खड़ा हो गया और उल्लास में भरी हुई आँखें चमक उठीं। मैं इस समय कोषदास के कन्धे के सहारे राजकुमारी की ओर मुँह किये उसके सामने ही बैठा हुआ था। आखिर एक कटाक्ष-भरी चितवन उसने मेरे ऊपर डाल ही दी। मुझे ऐसा जान पड़ा कि आज पहली बार कामदेव ने उससे यह कटाक्षपूर्ण नजर डलवाई है।

इस समय गेंद के पीछे-पीछे जहां-जहां वह खेलती हुई जाती, वहीं बड़े हाव-भाव के साथ अपनी सुन्दर भौंहों को तनिक ऊपर उकसा लेती। दौड़ते समय उसके गुलाबी मुँह पर घुँघराली लटें

आ पड़ती थीं और खेलने-कूदने के कारण उसकी साँसें भी जल्दी-जल्दी चलने लगती थीं। इन सांसों की हवा जब तेज़ी के साथ और जल्दी-जल्दी उसके ओठों पर पड़ती तब इन ओठों से उठती हुई चमकीली गुलाबी किरणें चल-विचल सी होने लगती थीं और ऐसा मालूम देने लगता मानो उसके मुख-रूपी कमल का रस लेने के लिए चारों ओर से जो भौंरे आ जुटे हैं, उन्हें यह राजकुमारी अपनी तफरीह के लिए पकड़े हुए लाल कोंपलों के गुच्छे से बार-बार टाल रही है! खेलते समय गेंद को तेज़ी से चारों ओर फिराकर वह उसे खूब चक्कर देती थी, जिससे उसके चारों तरफ गोल-गोल रंगीन घेरे बन जाते थे। जब इन घेरों के बीच में वह होती तो मुझे ऐसा भान होता कि मेरी नजरों से लज्जित होकर उनसे बचने के लिए वह अपने-आप को फूलों के पिंजरे में छिपाये-सी ले रही है। जब वह एक-एक बार में पाँच-पाँच घुमाव देकर गेंद फेंकती तो ऐसा प्रतीत होता कि पाँच तीर छोड़ने वाले कामदेव ने इसे एक साथ जो पाँच बाण मारे हैं, उनसे घबड़ाकर यह उन्हें व्यर्थ करने की चेष्टा कर रही है। खेलते-खेलते गेंद लेने के लिए टेढ़ी-मेढ़ी गतियों के साथ वह एकदम लपक पड़ती थी। ऐसे समय यह बात साफ मालूम होने लगती कि उसे गेंद खेलने का कितना शौक है। ये सब करतब दिखाते समय ऐसा जान पड़ता कि फुर्ती में वह बिजली को भी मात किये दे रही है।

यह गेंद का खेल एक मात्र खेल ही नहीं था, यह एक सच्चा कला-प्रदर्शन था। इसको दिखलाने वाली यह सुन्दरी राज-कन्या, अपनी कला के अनुरूप ही साज-शृंगार, वेश-भूषा और वस्त्र-आभूषण धारण करके कलामन्दिर में उपस्थित हुई थी। गेंद खेलते समय उसके कदम जिस अन्दाज से पड़ते थे, उसी के अनुरूप एक खास लय में उसके गहनों में लटकी हुई मणियाँ भी बज उठती थीं। वह जब किसी बहाने से मुस्कराती तो उस मुस्कान की चमक से उसके लाल-लाल बिम्बाफल-जैसे होठ और

भी खिल उठते थे। खेल के बीच-बीच में, उसके कन्धों पर पड़ी हुई काली घुँघराली लटें जब इधर-उधर खिसक पड़तीं तो वह बड़ी निराली अदा के साथ उन्हें अपनी जगह पर ले आती थी। उछलते और दौड़ते समय उसकी करधनी कमर पर उछटकर बार-बार टकराती, जिससे उसमें लगी हुई मणियां करधनी की जंजीर को भी बजातीं तथा स्वयं भी बजती जाती थीं। गेंद खेलने में तरह-तरह की हरकतें करते समय उसके उभरे हुए और भरे नितम्बों पर पड़ा हुआ रेशमी कपड़ा बार-बार खिसक जाता जिसके कारण यह खेल का दृश्य और भी आकर्षक हो उठता था। खेलते समय गेंद के लेने में उसके मुलायम और सुन्दर हाथ फैलतें तथा सिकुड़ते समय बहुत भले मालूम देते थे। कभी-कभी जब वह गेंद पकड़ने को लपककर आगे बड़ती तो उसकी दोनों बाहें इस प्रकार आ मिलतीं, मानो गेंद को जकड़ लेने के लिए वे एक पासा बना रही हों। खेलने में इधर-उधर मुड़ते समय कमर के ऊपर उसका मेरुदण्ड हिलता, जिससे उस पर पड़ी हुई वेणी लहराने लगती और बड़ी सुन्दर जान पड़ती थी। बीच में एक-आध बार ऐसा हुआ कि खेल के झटके में उसके कान के कर्णफूल का सोने का लटकन निकल पड़ा, परन्तु उसने इतनी जल्दी और फुर्ती के साथ उसे सम्हाल लिया कि खेल की गति में कोई रुकावट या बाधा नहीं आने पाई। हाथों के साथ ही राजकुमारी पैरों से भी गेंद खेलने लगती थी। इस प्रकार हाथों और पैरों के बीच फँसी हुई बिचारी गेंद बावली-सी बनकर कभी बाहर की ओर भागती कभी अन्दर की ओर। इस खेल में राजकुमारी को जिस प्रकार लगातार झुकना और उठना पड़ता था, उससे देखनेवालों को इस बात का खयाल ही नहीं आता था कि राजकुमारी के रीढ़ की हड्डी भी हो सकती है या उस हड्डी को कभी कोई देख भी पाया होगा। उसके इस तरह उचकने और लपकने में जिस समय उसके गले के मोतियों के हार अस्त-व्यस्त होकर इधर-उधर झूलते तो बड़े आकर्षक और सुहावने मालूम देते थे। खेल की मेहनत के कारण राजकुमारी के गालों पर पसीने की बूँदें छलक आईं जिनके कारण कस्तूरी केसर आदि की उन पर बनी हुई चित्रकारी पसीज

गई। परन्तु राजकुमारी के कानों में जो सोने के पत्ते लटक रहे थे वे निरन्तर झूल-झूलकर हिलते रहते थे और इस प्रकार हवा करके उन्हें सुखा देते थे। ऐसा मालूम पड़ता जैसे इन पत्तों को यह अधिकार मिला हुआ है कि ये गालों पर धीमी-धीमी बयार करते रहें। खेल के बीच-बीच में उसकी छाती पर से रेशमी कपड़ा बार-बार सरक जाता था, इसलिए उसका एक मुलायम हाथ इसे सँवारने में हमेशा लगा रहता था।

गेंद का यह खेल राजकुमारी कभी बैठकर खेलती कभी खड़े होकर खेलने लगती। कभी खेल के बीच में वह आँखें बन्द कर लेती और फिर खेलते-खेलते ही अचानक आँखें खोल देती थी। कभी वह खड़ी होकर खेलती रहती और कभी खेलते-खेलते ही भाग पड़ती थी। इस प्रकार बड़े अद्भुत और निराले ढंग से वह इस खेल को खेलती रही। गेंद को कभी वह जमीन पर मारती और कभी आकाश में फेंकती। इसी प्रकार कभी तो एक ही गेंद से वह तरह-तरह के खेल दिखलाती और कभी कई-कई गेंदों से एक साथ किसी एक बढ़िया करतब का प्रदर्शन करती थी।

इस तरह राजकुमारी कन्दुकावती चन्द्रसेना आदि अपनी प्यारी सहेलियों के साथ देर तक गेंद खेलती रही। खेल की समाप्ति पर उसने देवी विन्ध्यवासिनी की पूजा की और सब सखी-सहेलियों को साथ लेकर चल दी। ये सब तो उसके पीछे-पीछे चल ही रहे थे, परन्तु मेरा प्यार-भरा मन भी इन्हीं की तरह उसके पीछे-पीछे हो लिया। इस बिचारे को भी राजकुमारी खींचकर ले चली।

जाते समय वह बीच-बीच में मेरी ओर भी तिरछी चितवन डाल लेती। उस समय उसकी काली-काली और नुकीली नज़र ऐसी लगती, मानो कामदेव ने अपना नीलकमल का बाण मारा है। कई बार बीच-बीच में किसी बहाने से अपना चाँद-सा मुखड़ा भी वह मेरी ओर घुमा लेती, मानो बार-बार यह देखती हो कि उसने अपना जो हृदय मेरी ओर भेज दिया था, वह फिर उसके पास लौटकर आ रहा है या नहीं। इसी तरह अन्त में वह अपने महल को चली गई।

मुझ पर राजकुमारी के रूप और प्रेम का पूरा नशा चढ़ चुका था और मैं उसके प्यार में बड़ा बेचैन था। जैसे-तैसे कोषदास के साथ-साथ मैं घर पहुँचा। कोषदास ने बड़े आदर-यत्न के साथ और खूब खुले दिल से मुझे स्नान-भोजन आदि करवाया।

साँझ के समय चन्द्रसेना आई। मैं अकेले में बैठा था। मुझे उसने झुककर नमस्कार किया। फिर अपने प्रेमी कोषदास के कन्धे से प्यार से अपना कन्धा सटाकर वह वहीं आ बैठी। कोषदास उसे देखते ही खुश हो उठा और उससे कहने लगा—"सुन्दरी, जितने दिनों की यह मेरी उम्र रह गई है, उतने दिनों और प्यार कर लो, फिर तो…"

उसकी ऐसी बात सुनकर मैंने मुस्कराते हुए कहा—"मित्र, ऐसा खयाल मन में क्यों ला रहे हो? सुनो, मैं एक तरकीब बतलाता हूं। मेरे पास एक तरह का काजल है; उसको यह अपनी आँखों में लगाकर जावें। उसकी तासीर यह है कि उसे लगाये हुए इन्हें जब राजकुमार भीमधन्वा देख लेगा तो ये उसे बंदरिया की तरह दिखाई पड़ेंगी। बस, इस बात से नफरत करके वह इन्हें छोड़ देगा।"

मेरी बात सुनकर चन्द्रसेना बहुत हँसी। कहने लगी—"वाह, आपने तो इस दासी का बड़ा उपकार किया जो इस जन्म में ही आदमी का चोला छुड़ाकर बंदरिया बना देने का सामान कर दिया है। अच्छा, इसे छोड़िए। इसकी जरूरत नहीं रही है। दूसरी तरह से भी हमारा काम बन रहा है। आज जो कन्दुकोत्सव हुआ था उसमें आप तो बैठे ही हुए थे। आपकी यह कामदेव-सी सुन्दर सुडौल देह भला छिप कैसे सकती थी। गेंद खेलते-ही-खेलते कहीं राजकुमारी की भी इस पर नज़र पड़ गई। बस उसी समय से वे रीझकर आपको चाहने लगी हैं। ऐसा मालूम होता है कि आपकी खूब-सूरती से खीझकर कामदेव ने मारे क्रोध के राजकुमारी पर बेहद तीर चलाये हैं। वह बेचारी उनके मारे बड़ी व्याकुल है। मैं उसकी हालत देखते ही समझ गई थी। मैंने सब हाल अपनी माँ से कहा। उन्होंने राजकुमारी की माता से कह दिया। अब यह निश्चित है कि रानीजी इस बात को महाराज-

से कहेंगी। महाराज सारा हाल जानकर अवश्य ही आपके साथ अपनी पुत्री का ब्याह कर देंगे। इस प्रकार आगे से राजकुमार भीमधन्वा को आपकी मरजी देखकर काम करना पड़ा करेगा। इसे एक तरह से विधि का ही विधान समझिए। उस समय फिर सब राजकाज आपके इशारे परे हुआ करेंगे और भीमधन्वा की इतनी हिम्मत न होगी कि वे आपकी बात टालकर मुझे रोके या तंग करे।

इतना कहकर वह कोषदास से कहने लगी—"बस, यह दो-चार दिन की बात है, तब तक और सह लो। फिर तो सब ठीक ही हो जायगा।"

इसके बाद चन्द्रसेना उठ खड़ी हुई और मुझे बाग में सैर के लिए आने को कहकर कोषदास से मिल-भेंटकर वापस चली गई।

मैं और कोषदास उसकी बातों पर रात को बड़ी देर तक सोचते-विचारते और बातचीत करते रहे। वह रात जैसे-तैसे कटी। रात बीतते ही मैं उठ बैठा और नित्यकर्म से निबटकर उसी बाग की ओर चला, जहां आने के लिए चन्द्रसेना बतला गई थी। अपनी प्रेयसी को देखने की लालसा लगी होने से यह बाग मुझे बहुत प्यारा लगा।

मैं वहां पहुँचा ही था कि राजकुमार भीमधन्वा भी वहीं मेरे पास आ पहुँचे। उनका बरतावा मेरे साथ बड़ा अपनापन का रहा। गर्व या घमण्ड इस समय उनको छू तक नहीं गया था। यहाँ बैठकर उन्होंने मेरे साथ बातचीत की। इधर-उधर के और भी बहुत से हालचाल वे सुनाते रहे। थोड़ी देर बैठकर फिर वे मुझे अपने साथ ही महल में ले गए। वहां अपनी तरह मुझे भी उन्होंने भोजन आदि करवाया और सोने का प्रबन्ध कर दिया।

रात को जब मैं पलंग पर सो गया तो मुझे क्या सपना आया कि मेरी प्यारी कन्दुकावती मेरे पास आ गई है और मैंने उसे अपनी छाती से लगा लिया है। उसके आलिंगन का सपने में भी मुझे बड़ा सुख अनुभव हो रहा था। मैं इन्हीं मीठे सपनों में उलझा था कि बहुत से बलिष्ठ आदमियों ने आकर अपनी मोटी-मोटी मजबूत बाँहों से मुझे जबरदस्ती कसकर पकड़ लिया

और लोहे की जंजीरों में बाँध दिया।

यह सब करामात राजकुमार भीमधन्वा की थी। मैं जब एकदम जागा तो वह मुझसे बोला—"अरे मूर्ख, कल तुझसे इस बेवकूफ चन्द्रसेना ने जो-जो बातें कहीं वे मैंने सब सुन ली थीं। तू समझता क्या है? मैंने तो उसकी हरकतें जानने के लिए पहले ही सब इन्तजाम कर रखा था और इस कुबड़ी नौकरानी के द्वारा वहाँ एक जालदार छेद करवा लिया था। उसी में से तुम्हारी सब बातचीत सुनाई देती रही।"

फिर वह ताना देते हुए कहने लगा—"कन्दुकावती तो श्रीमान् जी को चाहने लगी है न? और मैं हुजूर का ताबेदार बनकर रहूँगा, क्यों? फिर मैं जनाब की बात को टाल तो सकता ही नहीं, इसलिए चन्द्रसेना को कोषदास के हवाले कर दूँगा।" इस प्रकार मुझ पर व्यंग्य कसते हुए अन्त में उसने पास खड़े अपने एक शरीर-रक्षक की ओर देखा और उससे बोला——

"इसे ले जाकर समुद्र में फेंक दो।"

उसकी यह बात सुनकर वह कम्बख्त सिपाही ऐसा खुश हुआ मानो उसे कहीं का राज्य मिल गया हो।

वह फौरन बोला——'जैसी आपकी आज्ञा'। और उसने सचमुच ही मुझे ले जाकर समुद्र में फेंक दिया।

समुद्र में गिरकर मैं अब बिलकुल असहाय था। हालांकि मैं तैरना जानता था, परन्तु मेरी बाँहें सांकलों से बँधी हुई थीं, फिर भी मैं उन्हीं को इधर-उधर हिलाने-डुलाने लगा। कुछ-कुछ पैरों का भी जोर लगाया। इसी समय भाग्यवश मुझे अचानक एक काठ का टुकड़ा बहता हुआ मिल गया। मैंने उसे जैसे-तैसे अपनी छाती के नीचे दबा लिया। बस उसी के सहारे मैं तैर चला।

समुद्र में इस प्रकार बहते-बहते पूरा एक दिन और एक रात हो गई। अगले रोज सबेरे के समय मुझे एक नाव-सी तैरती हुई दिखाई दी। पास आने पर देखा तो एक जहाज था। इस पर कुछ मुसलमान लोग थे। उन्होंने मुझे पानी में से निकाल लिया और 'रामेषु' नाम के आदमी से, जो मांझियों

का सरदार था, कहने लगे—

"एक आदमी पानी में से मिला है। इसी तरह जंजीरों में कसा हुआ यह तैर रहा था। बड़ा मजबूत जान पड़ता है। यह तो अकेला ही जरा देर में हजारों अंगूर की बेलों में पानी सींच देगा।"

ये लोग मुझसे अपना मतलब गाँठने की इस तरह की बातें कर ही रहे थे कि इतने में, बहुत सी नावों को लिये एक बड़ा जहाज हमारी ओर दौड़ा। उसे देखते ही ये सब-के-सब एकदम डर गए। जिस तरह सुअर के ऊपर कुत्ते टूट पड़ते हैं उसी तरह उस बड़े जहाज और उसकी नावों ने हमारे जहाज को चारों ओर से घेर लिया। अब दोनों ओर से हथियार चलने लगे और लड़ाई शुरू हो गई। अन्त को हमारे जहाज के मुसलमान हार गए। उन्हें कुछ न सूझ पड़ा कि क्या करें। सब बड़े उदास और बेचैन थे कि अब हमारा न जाने क्या हो? मैंने उन लोगों को दिलासा देते हुए कहा—"तुम लोग जरा मेरी जंजीरों को खोल दो, मैं अभी तुम्हारे इन दुश्मनों को सीधा किये देता हूँ।"

उन लोगों ने सचमुच ही मेरी साँकलें खोल दीं। बन्धन खुलते ही मैंने सींग का बना हुआ एक धनुष ले लिया। इसकी बड़ी जोरदार और डरावनी टंकार होती थी। मैंने इससे खूब पैने-पैने तीर बरसाये और उस दूसरे जहाज के तमाम सिपाहियों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

इसके बाद हम लोगों ने अपना जहाज ले जाकर दुश्मनों के जहाज से सटा दिया। यह देखते ही उसके आसपास की नावें उल्टी भाग गईं।

मैं झटपट उस पर कूद पड़ा और बचे-खुचे सिपाहियों का काम तमाम कर डाला। इतने आदमियों के मारे जाने से उस जहाज का कप्तान बेबस और निरुपाय-सा हो गया। मैंने झपटकर उसे जिन्दा ही पकड़ लिया। यह व्यक्ति वही राजकुमार भीमधन्वा निकला। मैंने जब उसे पहचान लिया तो वह बड़ा लजाया।

मैंने उससे इतना ही कहा—"कहो भाई, देखे तुमने तकदीर के ये खेल?"

मुझे जिस जहाज के लोगों ने समुद्र में से निकाला था वह एक तिजारती जहाज था। उसके सब सौदागर और खलासी अब इसी जहाज पर आ गए थे। उन लोगों ने मेरी जंजीरों से ही भीमधन्वा को बाँध दिया। फिर मारे खुशी के किलकारियाँ भरने लगे।

मेरे इस साहस और बहादुरी को देखकर उन लोगों ने मुझे बड़ी शाबाशी दी और मेरी खूब आवभगत की। इसके बाद से लोग मुझे बहुत मानने लगे।

हमारा यह जहाज भी बहुत बड़ा नहीं था। इधर समुद्र में हवाएँ उल्टी बहने लगीं, जिनके कारण हम जहाज को काबू में नहीं रख सके। इन हवाओं में फँसकर जहाज कहीं-का-कहीं चल दिया और एक बियाबान टापू में जा लगा। जहाज पर हम लोगों के पीने का पानी निबट चला था, खाने-पीने की चीजें भी नहीं रही थीं। इस कारण मीठा पानी, ईंधन, लकड़ी, कन्द-मूल, फल आदि संग्रह करने के विचार से हमने इसी टापू पर उतरने का निश्चय किया। जहाज का भारी-भारी चट्टानें बाँधकर बनाया हुआ लंगर समुद्र में डाल दिया गया और हम लोग उतर पड़े।

टापू पर एक बड़ा भारी पहाड़ खड़ा था। उसका दृश्य इतना सुहावना था कि एक बार तो मैं उसे खड़ा-खड़ा देखता ही रह गया। सामने-सामने, पहाड़ के बीच का हिस्सा खूब हरा-भरा और बहुत ही रमणीक दिखाई दे रहा था। नीचे तराई में से छार-छरीले की मनमोहक सुगन्ध उठ रही थी। झरने के रूप में गिरता हुआ पहाड़ी जल खूब ठंडा था। इसमें नीले तथा लाल कमलों के मकरन्द की बूँदें टपक-टपककर गिर रही थीं। इन विविध रंगों के कारण इसकी शोभा मोरपंख के रंगीन चन्द्रक की तरह प्रतीत होती थी। नीचे हरे-हरे वृक्षों से भरा-पुरा सुन्दर बन खड़ा था। इस पर तरह-तरह के और रंगबिरंगे फूलों से लदी हुई मंजरियाँ झूल रही थीं।

इस सारे दृश्य को बार-बार देखकर भी मेरी आँखें अघाती नहीं थीं। मैं धीरे-धीरे सामने की ओर चल दिया और प्राकृतिक सौन्दर्य के

आकर्षण में आगे बढ़ता जा रहा था। चलते-चलते मुझे पता भी नहीं चला और मैं उस पहाड़ की चोटी पर जा चढ़ा। वहाँ देखा तो एक बड़ा सुन्दर तालाब है। उसमें लाल, पीले,नीले तरह-तरह के रंग-बिरंगे कमल खिले हुए थे। इन कमलों का पराग झड़-झड़कर गिरने से उसका जल भी रंगीन हो रहा था। तालाब के पानी तक पहुँचने के लिए ऊपर से नीचे तक माणिक्य के रंग की लाल शिलाओं की खूबसूरत सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। इनसे जो गुलाबी छटा निकल रही थी, उसके कारण तालाब का जल लाल'सुर्ख मालूम पड़ने लगता था।

मैं उस तालाब में उतर पड़ा और स्नान करके मैंने उसमें से दूधिया और कच्ची कमल ककड़ियां खूब तोड़-तोड़कर खाईं। इस समय भूख भी बहुत लग रही थी, इस कारण ये मुझे अमृत-जैसी स्वादिष्ट जान पड़ीं। तालाब में से मैंने बहुत से अच्छे-अच्छे लाल कमल भी तोड़ लिए। इन्हें अपने कन्धे पर रखे हुए मैं बाहर निकला।

इतने में देखता क्या हूँ कि किनारे पर एक बड़ा विकराल ब्रह्म राक्षस खड़ा है। वह लपककर मेरी ओर बढ़ा और बोला—"तू कौन है और कहाँ से आया है ?"

मैंने बेधड़क होकर उसे जवाब दिया—"भाई, मैं ब्राह्मण हूँ। मेरे वैरियों ने मुझे समुद्र में फेंक दिया था। समुद्र में से मैं मुसलमान सौदागरों की नाव पर पहुँचा। उस नाव से तुम्हारे इस रंग-बिरंगे पत्थरों से सजे हुए सुन्दर पहाड़ पर आ गया और यहां से सहज ही इस तालाब में उतरकर मैंने स्नान आदि किया है। मैं ब्राह्मण हूं—तुझे आशीर्वाद देता हूँ, भगवान तुम्हारा मंगल करें।"

ब्रह्मराक्षस बोला—"यह सब तो ठीक है, पर मुझे कुछ पूछना है। पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो। अगर न दे सके तो तुझे खा जाऊंगा। मेरा ऐसा ही नियम है!"

मैंने कहा—"अच्छी बात है, पूछो।"

इसके बाद हम दोनों के सवाल-जवाब हुए। वह प्रश्न पूछता और

मैं उसका जवाब देता था। प्रश्न और उत्तर दोनों पद्य के रूप में थे—

"कौन क्रूर है जग में ?—अतिशय क्रूर हृदय है नारी,
गृही चाहता क्या ?—प्रियपत्नी गुणवन्ती हितकारी।
'काम' किसे कहते ?—यह मन का है बस एक विकल्प,
कठिन कार्य का साधन क्या है ?—बुद्धिसहित संकल्प।"

उसके इन सवालों के ये जवाब देते हुए अन्त में मैंने कहा कि "यदि आप मेरे द्वारा दिये गए इन उत्तरों के लिए कोई मिसाल चाहें तो 'धूमिनी', 'गोमिनी', 'निम्बवती' और 'नितम्बवती' के उदाहरण देता हूँ।"

मेरी बात सुनकर ब्रह्म राक्षस कहने लगा—"अच्छी बात है, ये सब कौन थीं और इन्होंने क्या-क्या किया, यह मुझे सुनाओ।"

मैंने पहले धूमिनी की कहानी शुरू की। मैं बोला—

"आपने शायद सुना हो कि उत्तर पश्चिम की ओर पहाड़ों के साथ-साथ त्रिगर्त देश चला गया है। इस त्रिगर्त में तीन गृहस्थ रहते थे। इनके नाम थे धनक, धान्यक और धन्यक। इन सबके पास खूब धन-धान्य और रुपया-पैसा था। ये तीनों सगे भाई थे। इनके जीवनकाल में ही एक बार ऐसा हुआ कि इन्द्र महाराज ने बारह बरस तक पानी नहीं बरसाया। नतीजा यह हुआ कि वहाँ अनाज एक तो पैदा ही नहीं हुआ और जो थोड़ा-बहुत हुआ भी उससे दाना बिलकुल खोखला और सूखा निकला। जड़ी बूटियां भी बिलकुल नीरस और बेअसर पैदा हुईं। पेड़ों पर फल आने बन्द हो गए। बादल कभी दिखाई भी पड़ते तो खुश्क और जलहीन। नदियों के स्रोत ही सूख गए। तालाब सूखकर उनमें कीचड़-ही-कीचड़ रह गया। झरने बहने बंद हो गए। जंगलों में कन्द-मूल-फल शायद ही कभी मिल पाते। बस्तियों के अन्दर कथा-वार्ताएँ होना बन्द हो गई। तीज-त्यौहार, उत्सव और मेले, बिलकुल फीके रहते। देश में चोर-उचक्के बहुत हो गए। गरीबी और अभाव के कारण लोग एक-दूसरे की छीना-झपटी करने लगे। अकाल में इतनी मौतें हुईं कि असंख्य नरमुण्ड जहाँ-तहाँ लुढ़कते दिखाई देते। ये साफ, सफेद और चिकने-चिकने कपाल, इधर-उधर

पड़े हुए दूर से ऐसे लगते, मानो जगह्-जगह् बगुले बैठे हैं। खाना न मिलने से दुबले-पतले और सूखे सिकुड़े हुए कौओं की टोलियां जहां-तहां उड़ती दिखाई देतीं। शहर, गाँव-देहात और छोटी-छोटी गौंटियां तक, सब-के-सब आदमियों के बिना सूने हो गए।

ये तीनों गृहस्थ ऐसे भयानक सूखे के दिनों में पहले तो अपना पिछला जमा किया हुआ अनाज खाते रहे। उसके बाद जब अनाज न रहा तो भेड़-बकरियों के रेवड़ और गाय-भैंसों के झुण्ड, जो इनके यहां पले हुए थे, उनके दूध पर निर्वाह करते रहे। जब दाने-घास के बिना वे सब भी मर गए तो नौकरों-चाकरों को बेच-बेचकर खाने की नौबत आई। यहां तक हुआ कि ये तीनों अपनी सन्तानों तक को बेच-बेचकर खा गए।

अन्त को एक दिन ऐसा आ पहुँचा कि खाने को कुछ भी नहीं रहा। तब बारी-बारी से बड़े और मँझले भाइयों की स्त्रियों को बेच डाला गया और उनसे उदरपूर्ति की गई। सबका खयाल था कि कल छोटे भाई की स्त्री को बेचकर उससे पेट पालना की जावेगी।

परन्तु छोटे भाई धन्यक को अपनी स्त्री बहुत प्यारी थी। उससे यह न देखा गया कि उसके सामने ही उसकी स्त्री हाथ से चली जाय। इस लिए वह उसी रात अपनी स्त्री को लेकर भाग निकला। चलते-चलते जब स्त्री रास्ते में बहुत थक गई तो धन्यक ने उसे अपने ऊपर कन्धे पर बिठा लिया और जंगलों में चलता रहा। रास्ते में चारों तरफ सूखा पड़ा हुआ था, इसलिए जब और कुछ भी खाने को न मिला तो धन्यक ने अपने निज के देह का मांस और खून खिला-पिलाकर अपनी स्त्री की भूख-प्यास शान्त की। वह उसे अपने कन्धे पर बिठाये चलता रहा। बीच में एक जगह उसने देखा कि एक लुन्जा आदमी कराहता हुआ जमीन पर सरक रहा है। इसके हाथ, पैर, नाक, कान सब कटे हुए थे। उसे देखकर धन्यक को बड़ी दया आई। उसने इस आदमी को भी अपने कन्धे पर चढ़ा लिया। अपनी स्त्री को और उस लुन्जे आदमी दोनों को कन्धों पर बिठाये

हुए वह चलने लगा। चलते-चलते वह एक बहुत घने जंगल में जा निकला। यहाँ भाग्य से फल-फूल और कंद-मूल भी बहुत थे और जानवर भी मिलते थे। इस जगह बड़ी मेहनत से उसने पत्तों की एक झोंपड़ी बनाई और उसी में रहना शुरू कर दिया। उस लुञ्जे आदमी के घावों पर जड़ी-बूटियों और हिंगोर का तेल आदि लगा-लगाकर उसने उसे ठीक कर दिया। साथ ही फल-फूल और मांस आदि भी वह उसे बिलकुल अपनी ही तरह खिलाता-पिलाता रहा, जिससे वह आदमी अच्छा मोटा-ताजा हो गया, उसकी नसों में नया खून दौड़ने लगा और अच्छा बलवीर्य भी उसके शरीर में आ गया।

एक दिन ऐसा हुआ कि धन्यक शिकार के लिए जंगल में चला गया। पीछे उसकी स्त्री और वह आदमी दोनों अकेले रह गए। एकान्त में धन्यक की स्त्री का मन कुछ चल आया और उसने इस आदमी के साथ मिलना चाहा। वह आदमी स्वभाव का भला था, इसलिए उसने इस स्त्री को दुत्कारा। परन्तु वह क्यों मानने लगी। आखिर औरत की जबरदस्ती पर उसे उसके साथ मुँह काला करना ही पड़ा।

उधर जब धन्यक वापिस लौटा तो उसने स्त्री से पानी देने के लिए कहा। स्त्री ने आज रस्सी और डोल लाकर उसके आगे पटक दिया और बोली—"मेरा तो सिर बड़ा दुख रहा है। तुम खुद ही कुएँ से पानी भरकर क्यों नहीं पी लेते ?"

इस पर धन्यक स्वयं पानी भरने लगा। वह बिचारा अभी झुका ही था कि उस स्त्री ने पीछे से जाकर उसे तुरन्त कुएँ में धकेल दिया। इसके बाद उस लुञ्जे आदमी को अपने कंधे पर बिठाकर वह औरत वहां से चलती बनी। उसे लिये हुए वह देस-परदेस घूमती और माँगती खाती। लोग उसके कंधे पर बैठे हुए उस लुञ्जे को देखकर समझते कि यह आदमी इस देवी का पति है, और यह स्त्री वही पतिव्रता है जो अपने लुञ्जे पति को भी इस प्रकार अपने कंधे पर लिये रहती है। इस बात से उसकी बड़ी ख्याति और मान्यता हुई। लोग उसकी पूजा तक करने लगे।

इसी प्रकार चलते-चलते वह मालवा पहुँची। वहाँ अवन्ती के राजा उससे बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने उसे खूब रुपया-पैसा दिया। इस धन से वह वहीं उज्जैनी में बड़े ठाट-बाट और आनन्द के साथ रहने लगी।

उधर धन्यक बिचारा कुएँ में पड़ा रहा। अचानक ऐसा हुआ कि उधर पानी के लिए भटकता हुआ सौदागरों का एक काफिला आ निकला। पानी भरते समय कुएँ के अन्दर आदमी देख उन्होंने उसे बाहर निकाल दिया।

इसके बाद धन्यक माँगता-खाता इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा। इसी तरह घूमता हुआ वह भी उज्जैनी जा निकला। उसकी स्त्री धूमिनी ने ज्यों ही उसे देखा, त्यों ही वह लोगों के सामने चिल्ला पड़ी—"अरे, देखो देखो! यही वह पापी है जिसने मेरे इस पति को लुञ्जा कर दिया था।"

लोग यह सुनते ही धन्यक को पकड़कर राज दरबार में ले गए। राजा को असली बात का कुछ पता तो था नहीं, उसने उस बिचारे को फाँसी का हुक्म दे दिया।

धन्यक के हाथ-पाँव पीठ की ओर कस दिये गए और उसे फाँसी-घर की तरफ ले चले। परन्तु उस बिचारे की जिन्दगी के दिन अभी बच रहे थे, इस कारण ऐसा हुआ कि जाते-जाते धन्यक अपनी सफाई देने लगा। वह बोला—"महाराज, आप जिस भिखारी के लिए यह कहते हैं कि मैंने उसके हाथ-पाँव काटे हैं, उसे बुलाकर उससे तो पूछ लीजिए। वह यदि मेरा अपराध बतलाता है तो मुझे बेशक दण्ड दे दिया जाय।"

राजा ने उसे बुलवाया और धन्यक को दिखलाकर पूछा कि "क्या इसने तुम्हें लुञ्जा किया है?"

वह आदमी धन्यक को देखते ही आँखों में आँसू भर लाया और उसके पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा—"नहीं, इस बिचारे ने तो मेरे साथ बड़ी नेकी की थी। फिर उस भलेमानस ने पहली सब कहानी कह सुनाई। यह भी बतला दिया कि धन्यक की उस दुराचारिणी स्त्री ने पति के साथ

कैसा बुरा बरताव किया था।

सब हाल सुनकर राजा बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने उस कुलटा के नाक कान कटवा डाले और उसका मांस पकवाकर कुत्तों को खिला दिया। धन्यक पर उस दिन से राजा की कृपादृष्टि हो गई।"

यह घटना सुनाकर मैंने ब्रह्म राक्षस से कहा—"अब तो आप समझ गए होंगे कि मैंने स्त्री के हृदय को सबसे अधिक क्रूर क्यों कहा है ?"

इस पर ब्रह्म राक्षस कहने लगा—"तुम्हारी पहली बात तो ठीक है; परन्तु 'गोमिनी' की क्या घटना है, वह भी सुनाओ।"

मैंने कहा—"सुनिये—

दक्षिण की ओर द्रविड़ देश है। इसमें कांची एक बड़ी प्रसिद्ध नगरी है। उसमें शक्तिकुमार नामक सेठ का लड़का रहता था। उसके पास करोड़ों रुपया था। जब वह अठारह बरस का हुआ तो उसके मन में खयाल आया कि दुनिया में जिन लोगों के पत्नी नहीं हैं, या जिन्हें मन के माफिक घरवालियां नहीं मिलीं, उन बिचारों को नाम का भी सुख नहीं मिलता। इसलिए मैं तो अपने लिए खूब अच्छी गुणवती स्त्री की खोज करूंगा।

इसके बाद उसके ब्याह के लिए लड़कियों की खोज होने लगी। उसके मित्र-हितैषी और विश्वासी लोग जिन लड़कियों का संदेशा लाते उनमें से किसी में तो उसके मन के मुताबिक गुण न होते और किसी में रूप की कमी होती। अन्त में तंग आकर शक्तिकुमार ने अपने लिए अपने मन की लड़की खुद ही खोजने का निश्चय किया। उसने ज्योतिषी का भेष बनाया और पिछौरे (चादरे) में ढाई-तीन पाव साठी के धान बाँधकर वह घर से निकल पड़ा। इसी रूप में वह देश-परदेश चक्कर लगाता फिरा।

जहाँ कहीं वह पहुँचता, उसके भेस को देखते ही लोग यह समझते कि कोई बड़े भारी ज्योतिषी जी आये हैं। इस प्रकार लड़कियों वाले अपनी-अपनी कन्या का हाथ दिखाने आ जाते। ज्योतिषी जी महाराज जब कोई ऐसी लड़की देख पाते जो उनकी जात-बिरादरी की होती और अच्छे लक्षणों वाली जान पड़ती तो उससे पूछा करते—"अच्छा यह बतलाओ कि ये

तुम्हारे सामने तीन पाव धान रखे हैं, इनके द्वारा हमारे खाने के लिए क्या तुम बढिया स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन तैयार कर सकती हो ?"

उनकी यह बात सुनकर लोग हँसने लगे। कोई-कोई उन्हें बनाया भी करते। तब वे बिचारे अपना-सा मुँह लेकर आगे चल देते। इसी तरह शक्तिकुमार एक से दूसरे के घर घूमते फिरते।

एक बार वे कावेरी नदी के दक्षिणी किनारे पर बसे हुए शिवि लोगों के नगर में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक ऐसी कन्या देखी जिसे उसके माता-पिता धाय को साथ लेकर दिखाने आये थे। इस लड़की की देह पर गहने आदि बहुत ही कम थे, क्योंकि इन लोगों की पिछली धन-सम्पत्ति सब नष्ट हो चुकी थी। केवल एक टूटा-फूटा मकान बच रहा था।

इस लड़की पर नजर पड़ते ही शक्तिकुमार का ध्यान उसकी ओर विशेष रूप से गया। उन्होंने देखा कि इसकी देह के हिस्से न बहुत मोटे हैं न ज्यादा पतले। यह बहुत नाटी या लमछड़ी भी नहीं थी। देखने में भी यह किसी तरह से डरावनी नहीं लगती थी, बल्कि बहुत साफ-सुथरी मालूम पड़ी।

तब उन्होंने उस पर बहुत बारीक निगाह डाली और देखा कि उसके हाथों की उंगलियां खूब गुलाबी-गुलाबी-सी हैं और हथेलियों पर जौ, मछली, कमल, कलश आदि की बड़ी शुभ आकृतियां बनी हुई हैं। दोनों टखनों के जोड़ उभरे हुए न होकर एकसार हैं। पैरों पर नसें उभरी हुई नहीं हैं, बल्कि वे गुदारे और सुडौल हैं। पिंडलियां आगे-पीछे गोलाई लिये हुए हैं। घुटनों के जोड़ भी हड़ीले न होकर गोल-मटोल हैं और ऊपर से आती हुई परिपुष्ट जाँघों के मेल में आ गए हैं, इसी कारण इनके जोड़ कठिनाई से नजर आते हैं। दोनों नितम्ब भी चाक की तरह गोल-मटोल, अलग-अलग छिके हुए और ठीक जगह बैठे हैं। इनके दोनों पासों में स्पष्ट गड्ढे पड़े होने से इनके चारों हिस्से सुस्पष्ट हो उठे हैं और सुन्दर लग रहे हैं। नाभि घेर में कम छोटी-सी और कुछ-कुछ गहरी भीतर को गई हुई है। पेट पर तीन बरतें पड़ रही हैं और वह सुन्दर लगता है। दोनों स्तन वक्षस्थल

को घेरकर बैठे हैं। उनकी घुण्डियाँ उभरी-उभरी हुई-सी हैं और खूब फैले हुए घेरे में उनका उठान होने से वे बड़े मनोहर प्रतीत हो रहे हैं। दोनों बाँहें दो बेलों की तरह बड़ी मुलायम हैं। इनमें जोड़ों की गाँठें उभरी-उभरी-सी न होकर बेमालूम हो गई हैं। कंधे उचके हुए नहीं, बल्कि ढलवां और सुडौल हैं। हाथों की उँगलियाँ मुलायम, आगे-पीछे गोलाई लिये और गुलाबी रंग की हैं। इन पर के नाखून उभारदार, चिकने और खूब चमकीले हैं, मानो नग रख दिये गए हों। हथेलियों पर पड़ी रेखाएँ इस बात को सूचित कर रही हैं कि पुत्र और धन-धान्य इसके भाग्य में बहुत हैं। गरदन इसकी पतली, शंख-जैसी गोल, धारीदार और खूबसूरत है। मुँह प्रफुल्लित कमल की तरह एकदम खिला हुआ है। नीचे का ओष्ठ, गोलाई लिये गुलाबी-गुलाबी और पतला-सा है। बीच की लकीर इसे दो हिस्से में छेकती हुई और भी सुन्दर बना रही है। ठोडी कंधे की तरह उतार खाती हुई खूब सुडौल बनी है। गोल-गोल गाल भरे हुए तने-से रखे हैं। काली-काली और चिकनी भौंहें, इकसार, कमानी की तरह मुड़ी हुई हैं और दो लताओं की तरह तसवीर में चित्रित-सी रखी हैं। सुडौल नासिका अच्छे नये खिले हुए तिल के फूल की तरह जंचती है। दोनों बड़ी-बड़ी आँखों में काली पुतली के साथ सफेद भाग के अन्दर कहीं-कहीं लाल डोरे भी पड़े दिखाई देते हैं। आँखों के अन्दर चमक और नजर में मिठास है। पुतलियां यद्यपि अधीर-सी बनी फिरती हैं तो भी उनमें शान्ति और स्थिरता का भाव है। माथा बिलकुल साफ और चमकदार है, मानो चाँद का टुकड़ा किसी ने ला रखा हो। बालों की लटें एक कतार में पड़ी हैं; ये ऐसी सपाट और चिकनी हैं कि इन्हें देख कर नीलम की शिला का खयाल होता है। दोनों कानों में सुन्दर कनौतियों की जोड़ी पड़ी है, जिसके कारण कान ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जिस तरह सिकुड़े हुए कमलों पर उनकी डंडियां दुहरा लपेट मारे पड़ी हों। इसके बाल खूब लम्बे-लम्बे और घने हैं, टूटते या गिरते हुए नहीं जान पड़ते। बालों के सिरों पर फीका या पीलापन भी दृष्टिगोचर नहीं होता। हर बाल एक-एक अलग दिखाई दे रहा है। ये सब-के-सब स्वाभाविक

तौर पर एक-से चिकने और काले-काले हैं। सब बालों ने अपने अन्दर बसाई गई सुगन्ध को भी खूब पकड़ा है।

इस प्रकार इस लड़की की एक-एक बात को बारीकी से देख चुकने पर शक्तिकुमार सोचने लगे कि जैसी यह लड़की है, इसी तरह की लड़कियों के अन्दर उनके रूप-सौन्दर्य के अनुरूप शील स्वभाव देखने में आया करता है। मुझे तो आज तक यही कन्या मिली है, जिसकी ओर मेरे मन का रुझान हुआ है। इसलिए इसी को अच्छी तरह देख-भालकर इसी से ब्याह करूंगा। दुनिया में अक्सर देखने में आता है कि जो लोग बिना सोचे-विचारे कोई काम कर बैठते हैं उन्हें बार-बार पछताना पड़ता है।

यह सब मन-ही-मन सोचने के बाद शक्तिकुमार कन्या से बोले—"क्या तुम इतना त्योनार दिखला सकती हो कि इन तीन पाव धानों से ही हमारे लिए अच्छा बढ़िया खाना तैयार कर दो?"

यह सुनकर उस कन्या ने अपनी बूढ़ी धाय की ओर खास मतलब से देखा, फिर आकर उसके हाथ से वे नपे-तुले तीनों पाव धान ले लिये।

इसके पश्चात् उसने शक्तिकुमार को पैर धोने के लिए जल दिया और बरामदे में एक साफ़ बुहारी हुई जगह पर पानी छिड़ककर उन्हें वहाँ बिठा दिया।

इधर उन धानों को लेकर उस लड़की ने छाँट-फटककर साफ किया और उनमें से थोड़े धानों को घाम में डाल दिया। फिर उन्हें कई बार लौट-पौटकर सुखा डाला। इसके बाद पक्की इकसार जगह पर मूसल से धीमे-धीमे कूटा और ऊपर के छिलके छुड़ाकर साबत चावल अलग कर लिए।

अब उसने धाय से कहा—"अम्मा, धानों के ये छिलके गहनों को साफ करने के काम आते हैं, इन्हें ले जाकर जिन सुनारों को जरूरत हो, बेच आ। बदले में जो कौड़ियां मिलें, उनसे कुछ ऐसी लकड़ियां ले आ, जो तनिक बोझल हों, न बहुत गीली हों और न बिलकुल सूखी हुई।

लकड़ियों के अलावा एक ऐसी हाँडी जिसमें नपे-तुले चावल रँध सकें और दो मिट्टी के सरवे लेती आना ।

धाय उस भूसी को बेचकर यह सब चीजें ले आई।

अब उस लड़की ने उन चावलों को एक ऐसी उखली में डाला जो ज्यादा गहरी भी नहीं थी, और न बहुत उथली थी । उखली का पेट काफी चौड़ा फैला हुआ था और वह अर्जुन पेड़ की लकड़ी की बनी थी । इसके बाद उसने मूसल उठाया । मूसल खैर की लकड़ी का खास तरह का बना हुआ था । इसके नीचे लोहे की साम चढ़ी थी । ऊपर से नीचे तक यह एक-सा चिकना था और बीच में पकड़ने के लिए इसमें मूँठ छिकी हुई थी । मूसल अच्छा फैला हुआ और वजनी था । इसी को जल्दी-जल्दी परन्तु बड़े सलीके के साथ उठा-उठाकर हल्के-हल्के चलाना शुरू किया। मूसल का काम जैसा कि आम तौर पर समझा जाता है, मामूली और सहज नहीं है । ऊंचे-ऊपर को उठा-उठाकर मूसल मारते-मारते, उस लड़की की बाँहों पर बड़ा जोर पड़ा । दूसरे हाथ की उँगलियों से वह बार-बार चावलों को उठाकर भींजती और उन्हें उखली में समेटती जाती थी । बाद में सूप से छर-छटक कर किनकी और चावलों की भूसी उसने साफ की । इस प्रकार खाने लायक अच्छे-अच्छे बड़े चावल उसने अलग छाँट लिए । उन्हें कई बार पानी से धोया। फिर चावलों से पंचगुना पानी हाँडी में खौलाकर उसमें वे चावल छोड़कर चूल्हे पर चढ़ा दिए। आँच पर हाँडी रखने से पहले, अपने घर के चलन के अनुसार उसने चूल्हे को पूजा भी दे दी।

जब चावल गलकर फूल गए और उनमें कच्चापन न रहा, तो उसने आँच धीमी कर दी। अब हांडी पर का ढक्कन ऐसा कर उसे जरा तिरछा कर दिया, और चावलों में से मांड़ पसाकर अलग कर दिया। फिर करछुली से ऊपर-नीचे के चावलों को चलाकर एक-सा कर दिया। जब सब चावल अच्छी तरह पककर उनका भात तैयार हो गया तो उसने हाँडी उतारकर नीचे रख दी।

अब उस लड़की ने ऐसी सब लकड़ियों को जो जलकर बिलकुल राख

नहीं हो गई थीं—जिनमें अभी दम बाकी था—अलग करके उन पर पानी के छींटे दे-देकर बुझा लिया और उनके कोयले कर लिए ।

कोयले कर लेने के विचार से ही उसने पहले से ऐसी लकड़ियां मंगाई थीं जो एकदम जलकर सब-की-सब राख न हो जायँ, बल्कि आग का काम हो चुकने पर उनके कोयले बनाये जा सकें । इन कोयलों को उसने खरीदारों के हाथ बेचने के लिए धाय के हवाले किया और उससे कहा कि "इन्हें बेचकर जो कौड़ियाँ मिलें उनसे किफायत के साथ कुछ शाक सब्जी, घी, तेल, दही, आंवले और थोड़ी सी इमली लेती आना ।"

धाय उसके कहने के अनुसार य सब चीजें भी ले आई । तब उसने दो-तीन तरह की सब्जियाँ तैयार कीं । इसके बाद उन कोरे साफ सरवों को गीली बालू पर जमाकर उनमें चावलों का वह मांड़ भर दिया और पंखे से धीमी-धीमो हवा करके उसे ठंडा कर लिया । फिर उनमें कोयलों पर जीरा, हींग आदि डालकर और इनका धुंगार देकर नमक-मसाला मिला दिया । आंवलों और इमली की उसने खूब बारीक चटनी पीस ली ; इसमें से मसालों की, कमल जैसी सोंधी सोंधी बड़ी बढ़िया महक उठने लगी ।

यह सब काम करके उसने धाय को भेजकर शक्तिकुमार के स्नान के लिए कहलाया । धाय नहा-धोकर और साफ-शुद्ध होकर पहले ही तैयार हो चुकी थी । वह शक्तिकुमार को सिर धोने के लिए और मालिश के लिए आँवले-तेल आदि दे आई । उन्होंने स्नान किया । एक ओर फर्श पर छिड़काव देकर जगह साफ कर ली गई थी; वहीं लकड़ी की पटली बिछी थी । शक्तिकुमार नहा-धोकर उसी पर आकर बैठ गए ।

घर के आंगन में केले का पेड़ लगा हुआ था । उसी में से एक पत्ता तोड़कर, उसके डण्ठल की तरफ का एक चौथाई भाग अलग कर दिया गया । शेष तीन-चौथाई पत्ता धोकर थाली की जगह बिछ गया । इस पर मांड़ भरे हुए वे दोनों सरवे रखे थे । शक्तिकुमार ने पानी से तर और ठण्डे-ठण्डे उन दोनों प्यालों को हाथ से एक तरफ सरकाया । अब वे भोजन की

प्रतीक्षा में बैठ गए। उस लड़की ने तुरन्त धाय से उनको कहलाया कि पहले प्याले के इस मांड़ को पी लीजिए। शक्तिकुमार उसे पी गए। उसके पीने से उनके चित्त को बड़ी शांति मिली, उनकी खुश्की भी मिट गई और रास्ते की सारी थकान जाती रही। उनकी तबियत प्रसन्न हो गई। इसे पीकर वे स्थिरता के साथ बैठ गए।

इसके पश्चात लड़की ने उनके आगे दो करछुली साठी का भात परोसा और उसी के अंदाज से दाल तथा तरकारियां रखीं। दाल में थोड़ा घी भी डाला। भात खा चुकने पर सोंठ, मिर्च, पीपल, नमक, हींग आदि पड़ा हुआ दही आया; इसके साथ और भी भात परोसा गया। अन्त में धुंगरा हुआ ठंडा-ठंडा मठ्ठा और खूब अच्छी उठी हुई महकदार कांजी दी गई। शक्तिकुमार ने इन चीजों के साथ भोजन बड़ी रुचिपूर्वक किया। उन तीन पाव धानों से ही इतना काफी खाना बना लिया गया था कि शक्तिकुमार तृप्त भी हो गए और उनकी पत्तल में भात बच भी रहा।

अन्त में उन्होंने पानी मांगा। तुरन्त ही अगर, धूप आदि सुगन्धित चीजों से धुंगारी हुई नई कोरी सुराही में भरा हुआ पानी आया। इसमें ताजे पाढल के फूल बसा दिये गए थे और खिले हुए कमलों की-सी मीठी-मीठी महक इसमें से उठ रही थी। इस सुराही में लगी हुई टुटनी से उन्हें धार बांध कर पानी डाला जाने लगा और शक्तिकुमार सरवे में मुंह लगाकर ठंडा-ठंडा पानी पीने लगे। इस बरफ जैसे शीतल पानी के छींटे उछट-उछटकर उनकी आँखों में पड़ रहे थे। इनके कारण यद्यपि उनकी आंखें जरा-जरा किलकिलाने लगीं और हल्की गुलाबी-सी पड़ आईं; तो भी उन्हें बड़ी शान्ति मिली। उनके सरवे में पानी गिरने का शब्द इस समय उनके कानों को बड़ा प्यारा लग रहा था। मुँह पर पानी के जो छींटे पड़ते थे, उनका स्पर्श शक्तिकुमार के लिए इतना सुखप्रद हुआ कि उनके गालों पर के रोएं खड़े हो गए। इस समय यदि वह अपने मुंह पर हाथ फेरते तो इन उठे हुए रोओं के कारण उन्हें स्वयं भी अपना मुंह खुरखुरा लगने लगता। पानी में बसी हुई महक की तेजी से उनकी नाक और

दिमाग तक खूब तर हो गए । इस पानी में उन्हें इतना अधिक मिठास लगा कि इसके माधुर्य से उनकी जीभ बिण्ठ-सी गई । वह साफ ठंडा पानी उन्होंने खूब जी भरकर पिया । इसके बाद सिर हिलाकर उन्होंने रुक जाने का संकेत किया । तब लड़की ने दूसरे हाथ से उन्हें कुल्ला करवाया ।

इस समय तक बूढ़ी धाय ने जूठन साफ कर दी और उस जगह को ताजे गोबर से लीप दिया । पलक मारते ही वह सूख गया ।

इसके बाद शक्तिकुमार ने वहीं फर्श पर अपनी चादर बिछा ली और जरा देर के लिए लेट गए ।

इस लड़की के रूप-रंग आचार-विचार आदि से शक्तिकुमार अच्छी तरह सन्तुष्ट हो चुके थे, इसलिए इसके साथ उन्होंने विधिपूर्वक ब्याह कर लिया और इसे वे अपने घर ले आये ।

घर आकर इन्हें न जाने क्या सूझा कि उन्होंने एक वेश्या भी घर में डाल ली । परन्तु तारीफ की बात यह कि उनकी इस विवाहिता स्त्री ने इस बात से तनिक भी बुरा नहीं माना । उल्टे वह इस वेश्या के साथ भी अपनी सहेली-जैसा बरताव करने लगी । अपने पति शक्तिकुमार की वह आलस्य छोड़कर पहले की तरह ही सेवा-सुश्रूषा करती और उन्हें अपने पूज्य देवता की तरह मानती । घर के सारे कामकाज में भी किसी तरह की कोई कमी उसने नहीं आने दी । इतना ही नहीं, यह लड़की इतनी चतुर और होशियार थी कि ससुराल के सब परिवार वालों को अपने अपनापन-भरे व्यवहार से उसने मुट्ठी में कर लिया ।

अन्त को हुआ यह कि शक्तिकुमार इसके गुणों पर मोहित हो गए । उन्होंने घर-बार, कुटुम्ब-परिवार सब उसके सपुर्द कर दिया; यहां तक कि अपने-आपको, अपने दिल-दिमाग, देह, सभी को उसके हाथों में सौंपकर वह अब केवल बाहरी कामों में, धर्म-चर्चा और कारोबार में लगे रहते थे ।

यह किस्सा सुनाकर उस ब्रह्मराक्षस से मैंने कहा—"इसीलिए मैं आपसे कहता हूं कि घरबारी आदमी को सुगृहिणी की ही सबसे बड़ी चाह हुआ करती है ।"

गोमिनी की यह कहानी सुनने के बाद ब्रह्मराक्षस बोला—"अच्छा, अब तीसरी निम्बवती का हाल भी सुनाओ।"

मैंने कहा—"सुनिए। गुजरात की ओर वल्लभी नगरी का नाम तो आपने सुना होगा, जो बहुत प्रसिद्ध है। इस नगरी में गृहगुप्त नामक एक बड़ा मालदार आदमी रहता था। वह बहुत से जहाजों का मालिक था। इसलिए धन-दौलत उसके पास अथाह समझी जाती थी। लोग उसकी तुलना इन्द्र कुबेर आदि के साथ किया करते। उसके रत्नवती नाम की एक लड़की थी। उसका ब्याह मधुमति नगरी के बलभद्र नामक एक आदमी के साथ हुआ। बलभद्र भी अच्छा पैसे वाला था। यह किसी व्यापारी दल के मुखिया का लड़का था।

ब्याह के बाद बलभद्र आकर रत्नवती को अपने यहां लिवा ले गया। घर पहुँचकर रात को दोनों सोये। रत्नवती बहू होकर अभी नई-नई आई थी। उसने अकेले में पति के साथ सोने में कुछ आनाकानी की। ऐसे आनन्द की रात में नवेली बहू की ओर से ही यह विघ्न पड़ता देख बलभद्र गुस्से हो गया और तब से मन-ही-मन स्त्री से बड़ा वैर मानने लगा। यहाँ तक कि उसके बाद से रत्नवती को देखना भी उसके लिए नागवार हो गया। कुछ दिनों यहाँ रहकर रत्नवती पीहर लौट गई। परन्तु बलभद्र ने फिर उसे अपने घर नहीं बुलाया। जब उसके मित्रों को पता चला कि वह अपनी स्त्री से किसी बात पर रूठ गया है और उसे बुलाता तक नहीं है, तो उन लोगों ने बलभद्र को बहुत समझाया, सैकड़ों बार आग्रह भी किया, परन्तु उसने उनकी भी बात नहीं मानी। वस्तुतः बलभद्र को स्त्री की यह बात हिमाकत जान पड़ी और इससे उसे अपने ऊपर बड़ी लज्जा आई। इसी कारण उसने रत्नवती को सदा के लिए छोड़ दिया।

उधर पीहर में धीरे-धीरे उस बिचारी पर पूरी मुसीबत ही आ गई। कुछ दिनों तक तो वह अच्छी तरह रही। पर जब वहां उससे उसके पति की नाराजगी की बात मालूम हुई और यह पता चला कि उन्होंने इसे छोड़ दिया है तो इसके बाद से उसके अपने और पराये सब-के-सब

उसका अनादर करने लगे। उसके घर वाले यहां तक कहते कि यह रत्नवती नहीं, इसे तो निम्बवती समझो।

कुछ दिन इसी तरह कटे। बाद में अब रत्नवती को मन-ही-मन पछतावा होने लगा। वह सोचती—"हाय, अब आगे-आगे मेरी क्या हालत होगी ?" उसे अपने अकेलेपन पर बड़ा दुःख होता।

एक बार ऐसा हुआ कि उसने किसी बूढ़ी संन्यासिन को देखा। वह मन्दिर से पूजा करके लौटी आ रही थी। उसके हाथ में चढ़ावे के बचे हुए कुछ फूल थे। रत्नवती को इस संन्यासिन पर बड़ी श्रद्धा-भक्ति हुई। वैसे भी वह इसकी माता की उमर की थी। यहाँ एकान्त में उस वृद्धा के सामने पड़कर रत्नवती की आंखों में आंसू भर आये। वह सिसककर रोने लगी। रत्नवती को देखकर संन्यासिन की भी आंखें डबडबा आईं। उसने उसे तसल्ली दी और बहुत तरह से ढारस बंधाया। फिर बहलाकर उससे रोने का कारण पूछा।

रत्नवती के लिए बात बड़ी लज्जा की थी तो भी बिना कहे बनती न थी। इसलिए लजाते-लजाते उसने अपना सब हाल उस वृद्धा से कह सुनाया और बोली—"मैया, क्या कहूं ? स्त्रियों के पति यदि उनसे रूठकर विमुख हो जावें, तो इससे बढ़कर उनका और दुर्भाग्य क्या होगा ? उन अभागिनों के लिए फिर यह जिन्दगी ही एक तरह से मौत बन जाती है। बड़े और ऊंचे घरानों की स्त्रियों की तो खासतौर से यही हालत होती है। मुझे ही देखो, मैं इस बात की जीती-जागती मिसाल हूँ। ससुराल-वालों की तो बात अलग है। मेरे अपने मां-बाप और सगे-सम्बन्धी तक अब मुझे नीची निगाह से देखने लगे हैं। तुम किसी तरह मेरी जिन्दगी सम्हालो, और कोई ऐसा यत्न कर दो कि मैं सबकी आंख का कांटा तो न बनी रहूं। अगर ऐसा न हो सकता हो तो फिर आज ही मैं अपने प्राण दिये देती हूं, क्योंकि अब इस बेकार जिन्दगी को रखकर करूंगी क्या ? तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं कि मैं जब तक जीती हूं तब तक मेरी यह बात किसी और पर खोलना मत।"

यह कहकर रत्नवती उस बूढ़ी के पैरों पर गिर पड़ी। बूढ़ी संन्यासिन ने उसे उठा लिया। उसकी भी आंखों में आंसू आ गए। वह कहने लगी—"बेटी, तू हिम्मत मत छोड़। मैं सब तरह तैयार हूं। जैसे तू कहेगी वैसे ही करूंगी। कोई उपाय बतला। मेरी जिन्दगी का अब क्या भरोसा! पर जब तक मुझसे तेरा काम बन पड़े तब तक तू जैसे चाहे मुझसे काम ले। तेरे सिवा और किसी का मुझे कुछ करना-धरना नहीं है। मैं देखती हूँ कि तेरे मन में गहरा दुःख है। अगर तू मेरी बात माने, तो जैसे मैं कहूँ उस तरह से तप कर, जिससे तेरा अगला जन्म तो सुधरे। आज जो तुझे यह मुसीबत भोगनी पड़ रही है यह सब पिछले जन्म के पापों का फल है। जो ऐसा न होता तो इतना रूप, ऐसा शील-स्वभाव, इतने ऊंचे कुल में जन्म पाना, ये सब बातें होते हुए भी, भला तू अपने पति के मन से क्यों उतर जाती? पति के विरुद्ध तूने जो वैर-विरोध ठाना, उसके मिटाने को अब अगर कुछ तरकीब तेरी समझ में आती हो तो बतला। तू तो अच्छी चतुर और बुद्धि की तेज मालूम पड़ती है।"

बूढ़ी की ये बातें सुनकर रत्नवती कुछ देर सिर झुकाये सोचती रही, फिर एक गहरी सांस छोड़कर बोली—"माता जी, मैं जानती हूं कि हम स्त्रियों के देवता पति ही होते हैं; कम-से-कम बड़े घरानों की यही रीति है। इसलिए ऐसी तदबीर सोचना है जिससे मैं अपने स्वामी की सेवा करने का कोई ढंग निकाल सकूं। मेरी समझ में एक उपाय आता है, वह मैं तुमसे कहती हूँ।

हमारे घर के पड़ोस में एक बनिये रहते हैं। इनका घराना भी ऊंचा है और धन-दौलत में भी ये शहर के और लोगों से बढ़े-चढ़े हैं। अपने यहाँ के राजा के साथ भी इनका गहरा मेल है। इनके एक लड़की है—कनकवती। इसका रूप-रंग और देह की गठन मेरे जैसी ही है। कनकवती मेरी सहेली है। इसका मेरे साथ खूब हेल-मेल और प्रेम है। मैं ऐसा करूंगी कि एक दिन उसके घर चली जाऊंगी और उससे भी ज्यादा सज-धजकर उसकी अटारी पर पहुँचूंगी। फिर उसके साथ खेल-कूद में लग जाऊँगी।

तुम जाकर मेरे पति से कहना कि कनकवती की मां ने हाथ जोड़कर आपको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया है और विनती कर दी है कि आज आप उनके घर पर पधारें। अगर तुम अनुरोधपूर्वक जोर देकर उनसे कहोगी तो वे जरूर आ जायँगे। जैसे बने तुम उन्हें कनकवती के घर नीचे के खन में ले आना। जब तुम और वे आकर नीचे बैठ जाओगे, उस समय मैं खेलते-खेलते मस्ती में आकर ऊपर से गेंद गिरा दूंगी। तुम वह गेंद उठा लेना और उनके हाथ में देकर कहना—"बेटा, इस गेंद को गिराने वाली, यह तुम्हारी स्त्री की सहेली कनकवती है। निधिपतिदत्त को तो तुम जानते होगे। आजकल शहर के सब सेठों में वे ही सबसे बड़े समझे जाते हैं। उन्हीं की यह लड़की है। यह अक्सर रत्नवती की बात को लेकर तुम्हें बड़ा निठुर बताया करती है और कहती है कि तुम्हारा मन डांवाडोल रहता है। यह हमेशा तुम्हारी नुक्ताचीनी और निन्दा किया करती है, इसलिए यह लो इसकी यह गेंद तुम लौटा दो। ऐसे आदमी की चीज क्या लेना जो अपने से वैर करे।

जब तुम उनसे ऐसे कहोगी तो वे कनकवती पर एक नजर डाल लेने के लिए जरूर ऊपर की ओर देखेंगे। उनके मन में यही खयाल होगा कि छत पर यह कनकवती है। परन्तु ऊपर होऊंगी मैं। मैं हाथ जोड़े गेंद माँग रही हूँगी। इधर तुम भी उसे लौटा देने पर जोर देती रहना। ऐसी दशा में स्वभावतः उनकी उत्सुकता बढ़ेगी और उनके मन में एक तरह की चाह पैदा हो जायगी। उसी हालत में वे उस गेंद को मेरी तरफ फेंक देंगे।

बस यह छोटी सी शुरुआत होगी। इस 'उँगली' पकड़ने के बाद 'पहुँचा' पकड़ने की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए उन्हें बढ़ावा देते हुए अपनी ओर खींचना होगा और प्यार की इस आग को तनिक भड़काना होगा। यहां तक नौबत आ जाय कि वे मुझे, कनकवती समझते हुए ही अकेले में मिलने का इशारा दें और फिर मुझे लेकर परदेस भाग चलें। बस इतना काम करना है।"

वह बूढ़ी रत्नवती यह तरकीब सुनकर खुश हुई। उसने इसे बहुत

पसन्द किया और इसी तरह सब काम किया। बलभद्र उस बुढ़िया के झाँसे में आ गया और रत्नवती को कनकवती समझकर उस पर मोहित हो गया। यहाँ तक कि अन्त में एक अमावस को अंधेरी काली रात के समय वह उसे भगाकर परदेस ले गया। यह कनकवती बनी हुई रत्नवती अपने साथ घर से अपना रुपया-पैसा और गहने भी निकालकर लेती गई।

इन लोगों के निकल भागने के बाद उस बुढ़िया ने रत्नवती के घर वालों के सामने यह बात बनाई––"बलभद्र तो कुछ दिन पहले से ही मेरे सामने इस ढंग की बातें कहा करते थे कि मैं बड़ा अभागा हूँ जो नाहक इतने दिनों तक रत्नवती की ओर से मन फेरे रहा। बेकार मैंने अपने सास-ससुर को भी बेइज्जत किया और यार-दोस्तों का कहना भी नहीं माना। इस जगह जहाँ मैं पैदा हुआ वहीं अब रहने में मुझे तो लज्जा आती है।" इन बातों का खयाल करते हुए मुझे ऐसा लगता था कि जरूर यह रत्नवती को जल्दी ही कहीं ले भागेगा।

उस बुढ़िया की ये बातें जब रत्नवती के मां-बाप और भाइयों ने सुनीं तो उन्होंने भी समझ लिया कि उसे जरूर बलभद्र ही ले गए होंगे। उन्होंने उसकी खोज करने में ढिलाई कर दी।

उधर बलभद्र के साथ कनकवती के रूप में रत्नवती भागी जा रही थी। जाते-जाते रास्ते में उसने भाड़े पर एक नौकरानी रख ली। उस पर खाने-पीने की चीजें और राह-बाट में काम आने वाला दूसरा जरूरी सामान लदवा दिया। ये लोग चलते-चलते एक छोटे से शहर में जा पहुँचे। बलभद्र वाणिज्य-व्यवसाय और कारोबार करने में तो होशियार ही थे। उन्होंने थोड़ी पूंजी लगाकर भी कुछ ही दिनों में वहाँ अच्छा पैसा पैदा कर लिया। अब उनकी शहर-भर के सबसे मालदार और बड़े-बड़े आदमियों म गिनती होने लगी। जब रुपया-पैसा काफी हो गया तो नौकर-नौकरानियां और कारिन्दा-मुनीम आदि भी उनके पास बहुत से आ जुड़े। खूब आनन्द से उनके दिन कटने लगे।

एक बार ऐसा हुआ कि उस पुरानी नौकरानी से, जिसे उन्होंने रास्ते

में रख लिया था, उनका कोई काम बिगड़ गया। उसके इस कसूर पर बलभद्र बहुत बिगड़े और बेहद खफा होकर कहने लगे—"तू कुछ काम-धाम नहीं करती। हमेशा आंख चुराये घूमती-फिरती है, जिसमें कुछ करना-धरना न पड़े। यह क्या बात है? जबाब भी तू अब बहुत देने लगी है। तेरी इतनी हिम्मत?" इस प्रकार डाँटते-फटकारते हुए उन्होंने उसे खूब गालियां दीं और पीटा भी।

पहले जिन दिनों यह नौकरानी घर में पूजी हुई थी, उस समय इसे इनके घर की बहुत-सी घरेलू और खानगी बातें मालूम हो गई थीं। उसे यह भी पता चल चुका था कि ये दोनों भागे हुए हैं। जब बलभद्र ने उसे पीटा और उस पर मार पड़ी तो गुस्से में आकर उसने गुप्त बातें इधर-उधर कहनी शुरू कीं। इस तरह बाहर के लोगों पर इन दोनों का यह भेद खुल गया।

ये बातें धीरे-धीरे उस शहर के मुंसिफ के कानों तक भी पहुँचीं। वह जानता था कि बलभद्र बड़ा मालदार आदमी है। मुंसिफ के मन में कुछ लोभ आ गया। उसने सोचा—"क्यों न इस ढंग से कुछ पैदा किया जाय?" इस खयाल के आते ही एक दिन शहर के मुखिया और बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोगों से बातचीत के सिलसिले में वह बोला—

"आप लोगों के इस शहर में यह जो धूर्त बलभद्र आकर बसा है, इसे आप सभी जानते हैं। इसके बारे में यह भी आपको मालूम है कि निधिपतिदत्त की लड़की कनकवती को उड़ाकर यह यहां भगा लाया है। फिर भी आप लोगों की ओर से न तो इस पर कोई मुकदमा चालू हुआ, न इसकी सम्पत्ति ही जब्त की गई। इसे किसी तरह की सजा भी नहीं मिली, यह क्या बात है? क्या ऐसे आदमी को कोई दण्ड न मिलना चाहिए?"

इस बात की चर्चा शहर में भी फैली और जब बलभद्र को यह मालूम हुआ कि यहां के अफसरों में मेरी सजा की बातचीत चल रही है तो वह बहुत डरा। यह देखकर रत्नवती उससे बोली—"आप किसी बात से मत डरें। यदि आपसे पूछा जाय तो कह दें कि मेरे घर में निधिपतिदत्त की

लड़की कनकवती है ही नहीं। यह तो वल्लभी नगर के गृहगुप्त की लड़की रत्नवती है। इसके माता-पिता ने इसका मेरे साथ कायदे से ब्याह किया है। मैंने इसका हाथ ब्याह करके पकड़ा है, वैसे नहीं। यह मेरी ब्याहता स्त्री है, कोई भगाई हुई औरत नहीं है। अगर आप लोगों को विश्वास न आवे तो इसके घर, मां-बाप और भाइयों के पास अपना कोई आदमी भेजकर पता लगा लीजिए।"

बलभद्र से जब पूछताछ की गई तो उसने यही उत्तर दिया। तब शहर के हुक्कामों ने गृहगुप्त को लिखकर उससे सब हाल ठीक-ठीक पूछा। उसे इन लोगों के पत्र से पता चला कि बलभद्र और रत्नवती यहाँ हैं। इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ और आकर लड़की तथा दामाद को वहाँ से अपने साथ लिवा ले गया।

बलभद्र इतने दिनों तक रत्नवती को ही कनकवती समझता रहा और जिस स्त्री से वह इतना अप्रसन्न हो गया था, उसी को दूसरे नाम से प्यार करता रहा। इस कारण नाम का भेद होने पर भी उसी के साथ उसका अब बड़ा प्रेम हो चुका था।

यहां तक रत्नवती के रूप में निम्बवती की कहानी सुनाने के बाद मैंने ब्रह्मराक्षस से कहा—"देखिए, 'काम' और कुछ नहीं, यह एक विकल्प विशेष या भावना मात्र है। रत्नवती या निम्बवती वही-की-वही रही और बलभद्र उसे कनकवती समझकर उससे फिर प्रेम करने लगा।"

मेरे तीनों प्रश्नों के जवाब सुनकर ब्रह्म राक्षस बोला—"अब चौथी नितम्बवती का भी हाल सुना दो।"

मैंने सुनाते हुए शुरू किया—

"शूरसेन राज्य में मथुरा बड़ी प्रसिद्ध नगरी है। इसमें एक आदमी रहता था। यह कोई बहुत ऊंचे कुल का नहीं था। वैसे तो यह तरह-तरह की दस्तकारियों और हाथ के कामों में बड़ा होशियार था, पर चालचलन का अच्छा नहीं था। यह आदमी दिन-रात रण्डियों में पड़ा रहता। स्वभाव का इसके यह हाल कि बड़ी झगड़ालू तबीयत का था। अक्सर अपने संगी-

साथियों और यार-दोस्तों के लिए केवल अपने बल-भरोसे पर ही यह बीसों झगड़े मोल ले लिया करता। इसके फिसादी होने के कारण इसका नाम ही 'कलह्-कण्टक' पड़ गया। बहुत से लड़ाके और झगड़ालू आदमियों ने इसका यही नाम इधर-उधर फैला दिया। तब से चारों ओर यह इसी नाम से मशहूर हो गया।

एक बार मथुरा में कहीं से एक तसवीर बनाने वाला आया। कलह्-कण्टक ने उसके हाथ में एक तसवीर देखी। इसमें एक सुन्दर और जवान स्त्री का चित्र खींचा गया था। इस औरत की खूबसूरती को देखते ही कलह्-कण्टक का दिल मचल उठा। वह उसके लिए पागल-सा हो गया। उस चितेरे से वह कहने लगा—"दोस्त, यह तसवीर बड़े गजब की है। इसमें तो कई निराली और एक दूसरी से उल्टी बातें दिखलाई पड़ती हैं। इस स्त्री के देह की गठन इतनी सुन्दर है कि ऐसी अच्छे-से-अच्छे ऊंचे घरानों की औरतों में भी नहीं मिलेगी। चेहरे से जैसा शील टपक रहा है उससे यह किसी ऊंचे घर की जान पड़ती है। परन्तु मुँह की छवि फीकी सफेद पड़ी हुई है और शरीर से ऐसा झलकता है कि इसकी जवानी का पूरा आनन्द अभी नहीं लूटा गया है। नजरों में भी इसके कुछ गम्भीरता है। ऐसा क्यों है? अच्छा, इसका आदमी कहीं परदेस चला गया हो और यह उसके वियोग में उदास रहती हो, ऐसी बात भी नहीं जान पड़ती, क्योंकि अगर ऐसा होता तो इसके बाल बिखरे होते या विछोह का कोई और चिन्ह होता जो कुछ भी दिखाई नहीं देता। इधर सीधी तरफ इसके नाखून का निशान बना है। मुझे तो यह लगता है कि इसका मालिक कोई बूढ़ा बनिया है, जिसमें मर्दानगी कम रह गई है। इस जवान औरत की तबियत उससे भर नहीं मिलती, इसीसे इसका जी मरा हुआ-सा है। क्यों, है यही बात? अच्छा दोस्त, तुमने यह तसवीर खींचने में किया तो कमाल है। एक गृहस्थिन को जिस हालत में तुमने देखा, ठीक वैसी ही उसकी छवि उतार दी है।"

चितेरे ने भी उसकी इन बातों की दाद दी और उसकी जानकारी

की सराहना करते हुए बोला—"यार, तुम ठीक कहते हो। अवन्ती की तरफ उज्जैनी में अनन्तकीर्ति की स्त्री की यह तसवीर है। यह आदमी वहाँ सौदागरों के एक काफिले का मालिक है। इस स्त्री का नाम नितम्बवती है। जैसा इसका नाम है वैसी ही यह है भी। मैंने इसे जब देखा तो इसकी खूबसूरती पर हैरान रह गया। उसी समय की इसकी यह छवि मैंने खींच ली।"

तसवीर बेचने वाले की सब बातचीत सुनने के बाद अब कलह-कण्टक के मन में बड़ी बेचैनी होने लगी। उस औरत को देखने के लिए वह छटपटाने लगा और भेष बदलकर घर से चल दिया।

चलते-चलते वह उज्जैनी पहुँचा। वहां ज्योतिषी बनकर चुटकी लेने के बहाने अनन्त कीर्ति के घर में घुस गया और वहां उसने नितम्बवती को देखा। उसे देख लेने के बाद तो उस पर काम का भूत पूरी तरह सवार हो गया। वहाँ से लौटकर वह शहर में आया और नगरपालिका के लोगों से उसने प्रार्थना की कि मुझे नौकरी की बड़ी जरूरत है। आप लोगों की बड़ी दया होगी, यदि मुझे किसी स्थान पर रख लिया जाय। कहीं और जगह न हो तो मुझे मरघट की चौकीदारी पर ही लगा दिया जाय।

भाग्य से मरघट की यह नौकरी उसे मिल गई। अब वह मरघट पर रहने लगा। यहां मुर्दों पर जो कफन आते, उन्हें वह ले लेता और अर्हन्तिका नाम की एक बौद्ध भिखारिन को दे दिया करता। इस तरह धीरे-धीरे उसने उसे पटा लिया।

एक दिन इसी अर्हन्तिका को उसने अकेले में नितम्बवती के पास भेजा और अपने दिल की चाह उस तक पहुँचाई। पर नितम्बवती ने उस फकीरनी को बड़ा फटकारा। उसने लौटकर सब हाल कलह-कण्टक से कहा। कलह- कण्टक ने सोचा कि यह तो किसी अच्छे ऊंचे परिवार की स्त्री है और सच्चरित्रा जान पड़ती है। इसे डिगाना सहज नहीं है।

तब उसने इस दूती को यह सिखाया—"तू उस सौदागर की औरत

के पास अब की बार फिर जा और उससे अकेले में मिलकर कहना कि बेटी, तू तो देख ही रही है कि मैं साधुनी हूँ। इस दुनियां में सिवा पाप और अनाचार के है क्या ? इसीलए मैं तो ध्यान समाधि लगाकर और इस चोले से छूटकर मुक्त हो जाना चाहती हूँ। जब मैं खुद इस वैराग्य के रास्ते पर हूँ तब कुलवन्ती नारियों को उनके शील सदाचार से डिगाऊँ, ऐसी बात भला मैं क्यों करूंगी ? यह तू अच्छी तरह समझ सकती है कि मेरे द्वारा ऐसा काम हो ही नहीं सकता। उस दिन बात यह थी कि मैंने देखा--तू खुले दिल की और उदार विचारों की स्त्री है। रुपया-पैसा, शील-स्वभाव, सौन्दर्य, सब कुछ भगवान ने तुझे दिया है। सबसे बड़ी चीज यह कि तू अभी भरी जवानी में है। ऐसा रूप-यौवन दुनियां में किसे मिलता है ? मैंने सोचा कि देखूँ मामूली औरतों की तरह इसका भी चित्त चंचल होता है या नहीं। इसीलिए वह बात कहकर मैंने तेरी जांच की थी। पर तेरे ऊपर उसका तनिक भी रंग नहीं चढ़ा, तू जरा भी नहीं डिगी। शाबाश है तुझे! मेरा मन तुझसे बड़ा प्रसन्न हुआ है। तेरी जो कुछ भलाई मुझसे बन पड़े करने को तैयार हूँ। अच्छा, एक बात मैं देख रही हूँ कि तेरी गोद सूनी है। तेरे कोई बाल-बच्चा अभी तक नहीं है। उस दिन से ही तेरी यह कमी बहुत अखर रही है। सोचती हूँ कि तेरे एक बच्चा हो जाता। ध्यान करने से मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि तेरे पति पर कोई बहुत अशुभ ग्रह आया हुआ है। उसी के कोप से पाण्डु रोग के कारण वह पीला और कमजोर पड़ गया है। उसमें तेरा जी भरने की ताकत नहीं रह गई है। हम साधु महात्मा लोग ऐसा उपाय तो जरूर कर सकते हैं कि तेरे बच्चा हो जाय। पर जब तक यह ग्रह दोष शान्त न कर दिया जाय तब तक कुछ नहीं हो सकता। इसलिए बेटी, तू एक काम कर। रात को अपने घर के पिछवाड़े पेड़ों वाले बगीचे में तू अकेली जाना। मैं वहां तन्त्र-मन्त्र के जानकार एक बड़े पहुँचे हुए योगी जी महाराज को ले आऊंगी। तू चुपचाप अंधेरे में अपना पैर तनिक बढ़ा देना। बस तेरे पैरों को वे अपने हाथ में थामकर मन्त्र फूँक देंगे। फिर तू घर लौट आना। रात को जब तू सोने जावे,

प्यार में झूठमूठ के लिए तू अपने उस मालिक से रूठ जाना और उसी मन्त्रसिद्ध पैर से एक हल्की ठोकर उसकी छाती पर लगा देना। बस ऐसा होते ही उनमें अपार बलवीर्य आ जायगा और बच्चा पैदा करने की ताकत भी हो जायगी। इतना ही नहीं, उस मन्त्र का यहां तक असर होगा कि तेरा मालिक तुझे देवी भवानी की तरह बहुत मानने लगेगा और हर काम में तेरे पीछे-पीछे चलेगा। तेरी हर इच्छा वह पूरी किया करेगा। बेटी, मेरी ये सब बातें सच समझना, इनमें किसी तरह का जरा भी सन्देह मत करना।"

अर्हन्तिका को इस तरह सिखा-पढ़ाकर कलह-कण्टक उससे बोला, "जब तू उसे इस तरह फुसलावेगी तो वह मेरे झांसे में जरूर आ जायगी। तू ऐसा करना कि रात को मुझे पहले से ही उसके बाग के अन्दर पहुँचा देना। मैं वहाँ अँधेरे में जा बैठूँगा। बाद में उसे लाना। बस,तुझे इतना ही करना होगा। बाकी सब काम मैं कर लूँगा। अगर तूने इतना कर दिया तो मैं तेरा बड़ा उपकार मानूँगा।"

उस कुटनी ने यह सब काम करने की हामी भर ली। उसी रात को कलह-कंटक बड़ी खुशी-खुशी उस औरत के बाग में जा बैठा। अर्हन्तिका बड़ी कोशिशों के बाद नितम्बवती को वहीं ले आई। उसके आते ही कलह-कंकट ने उसके पैर को मंत्र पढ़कर फूँक देने के बहाने से उसकी एक सोने की पायल को किसी तरह निकाल लिया। इसके बाद उसकी टाँग के निचले हिस्से पर छुरी से कुरेदकर कुछ निशान बना दिया और झटपट भाग गया।

परन्तु इतना सब होते-होते नितम्बवती बेहद डर गई। साथ ही झुंझलाकर वह अपनी इस निर्लज्जता और मूर्खता को खुद ही कोसने भी लगी। अर्हन्तिका को तो ऐसा मालूम देने लगा जैसे वह मार ही डालेगी। फिर जल्दी से वह लौट पड़ी और अपने घर के हौज में पैर के घाव को धोकर उसने पट्टी बांधी। इसके बाद बीमारी के बहाने दूसरे पैर की भी पायल उसने निकाल डाली और चारपाई पर पड़ गई। इसी तरह तीन-चार दिन उसने

अकेले पड़े-पड़े बिता दिये ।

वह धूर्त कलह-कण्टक नितम्बवती की पायल को बेचने के बहाने उसे अनन्तकीर्ति—उसके पति—के पास लाया । अनन्तकीर्ति उसे देखकर सोचने लगा कि यह तो मेरी स्त्री की पायल जान पड़ती है । इसके हाथ यह कैसे लग गई ? उसने कलह-कण्टक से सीधे मुँह तो कुछ नहीं कहा । पर थोड़ा घुमा-फिराकर पूछा कि तुम इसे कहाँ से लाये ?

कलह-कण्टक कहने लगा—"यह बात मैं नगरपालिका के सब बड़े-बड़े आदमियों और व्यवसायी मंडल के सामने बतला सकूँगा ।" यह कह कर वह वहीं बैठ गया ।

इसी बीच अनन्तकीर्ति ने घर के भीतर स्त्री से कहलाया कि अपनी पायल तो ज़रा भेजना । नितम्बवती यह सुनकर बड़ी घबड़ाई । वह लज्जित भी हुई । उसने पति से कहला भेजा कि कल मैं टहलने के लिए बाग में चली गई थी । वहीं पर मेरे एक पैर की पायल कुछ ढीली होने से कहीं निकल पड़ी । बाद में उसे ढूँढ़ा भी, पर अभी तक वह मिली नहीं है । एक पायल तो इस तरह खो गई दूसरी है, उसे भेज रही हूँ ।

इतना कहलाकर उसने दूसरे पैर की पायल उसके पास भेज दी । अपनी स्त्री की यह बात सुनकर अनन्तकीर्ति ने कलह-कण्टक से कुछ नहीं कहा । उसे उसने कुछ इनाम देकर विदा कर दिया । इसके उपरान्त अनन्त-कीर्ति नगरपालिका में पहुँचा । वहाँ सभा में जब कलह-कण्टक से उस पायल के बारे में प्रश्न किया गया तो वह मक्कार बड़ी दीनता और नरमी के साथ उन लोगों से कहने लगा—

"आप सब महानुभावों को यह अच्छी तरह मालूम है कि आप ही के हुक्म से मैं मरघट पर चौकीदारी कर रहा हूँ । इसी तरह मेरी गुज़र-बसर हो जाती है । इस खयाल से कि कहीं लालची लोग मुझसे लुक-छिपकर रात को अपने मुर्दे मुफ्त में न जला जावें, मैं रात को भी मरघट पर ही रहता हूँ । पिछली रात को मैंने वहाँ एक काली-काली-सी औरत देखी । वह एक

अधजले मुर्दे को चिता में से खींचे ले रही थी। मैंने सोचा इसे पकड़ लूं तो शायद कुछ इनाम मिल जाय। इसलिए लालच में आकर और अपने जी के डर को दबाकर मैंने उसे पकड़ लिया। मेरे हाथ में छुरी थी। उसकी जो टांग मेरे हाथ लगी, उसी पर मैंने छुरी चलाई। परन्तु डर के मारे मेरे हाथ से उसके खरोंच ही लग गई। इस हाथापाई में उसके पैर की एक पायल निकल पड़ी। यह मेरे हाथ आई। वह स्त्री फिर मेरे कब्जे से निकल भागी। यह है इतिहास इसके मिलने का। यह मैंने आप लोगों को सुना दिया है। अब जैसी आप लोगों की इच्छा हो कीजिए।"

नगर के सब बड़े-बड़े धनीमानी लोग वहाँ जमा थे। कलह-कण्टक के इस धूर्ततापूर्ण वर्णन से सब-के-सब अचरज में पड़ गए। उन सब पर एक भयानक डर और आतंक छा गया। इस बात में किसी को संदेह न रहा कि मरघट पर मुर्दे को खींचने वाली वह औरत डाकिनी थी। सबने एक राय से यही बात तय पाई।

अनन्तकीर्ति तो सब हाल सुनकर सन्नाटे में आ गया। उसने आते ही नितम्बवती को तुरन्त घर से निकाल बाहर किया। वह बिचारी रोती-कलपती हुई मजबूर होकर घर से चल दी। उसने सोचा अब जी कर क्या करूंगी। चलूँ, मरघट पर गले में फंदा डालकर मर जाऊँ। इस प्रकार सोचती हुई वह आत्महत्या के इरादे से मरघट पर पहुँची। परन्तु वहां श्रीमान् कलह-कण्टक जी तैयार बैठे थे। उन्होंने उसके पास जाकर उससे बड़े हाथ-पांव जोड़े और तरह-तरह से उसे मनाया। कहने लगे—"सुन्दरी, मैं तो तुम्हारे इस रूप पर मर मिटा हूँ। तुम्हें अपनी बनाने के लिए उस साधुनी अर्हन्तिका के द्वारा मैंने पहले तो तरह-तरह की तरकीबों से तुम्हें फुसला लेना चाहा था, पर जब उससे काम नहीं बना तो मुझे यह तिकड़म करनी पड़ी। तुम सच मानो, मैं जन्म भर तुम्हें प्यार करूंगा और सब तरह खुश रखूंगा। इस ज़िन्दगी में मेरा अब कोई सहारा नहीं है। तुम्हीं मेरे लिए सब कुछ हो। मुझ पर तरस खाओ और आज से मुझे अपना दास समझ लो।"

इस प्रकार कहते हुए उसने नितम्बवती के पैर पकड़ लिए, उसे तरह-तरह से मनाया और उस पर अपना प्रेम प्रकट करते हुए उसके जी को ढारस दिया। बिचारी नितम्बवती के सामने और कोई रास्ता भी नहीं था। वह लाचार थी, साथ-साथ निराश्रय भी। ऐसी दशा में अन्त को उसने कलह-कंटक का ही कहना किया। और उसी के हाथों में अपने आपको सौंप दिया।"

नितम्बवती की यह कहानी सुनाकर मैंने ब्रह्मराक्षस से कहा—"देखिए, इस स्त्री का उदाहरण लेकर ही मैंने कहा था कि बुद्धि के द्वारा कठिन-से-कठिन काम भी निकल जाते हैं।"

ब्रह्मराक्षस अपने उन चारों सवालों का ऐसा युक्तियुक्त समाधान पाकर मुझसे संतुष्ट हो गया। इतना ही नहीं, उसकी मेरे ऊपर श्रद्धा हो गई और वह मुझे बहुत मानने लगा। उसने मेरी अच्छी आवभगत की।

मेरी उससे यह बातें ही हो रही थीं कि इतने में क्या देखा कि ऊपर आकाश से पानी की बूंदें गिर रही हैं। उनके साथ-साथ अच्छी बड़ी सुपारी के दानों जैसे बड़े-बड़े मोती भी बरस पड़े। यह जानने के लिए कि यह क्या मामला है, मैंने ऊपर आंखें उठाईं। देखा, तो आकाश में एक राक्षस किसी स्त्री को खींचे लिये जा रहा है। वह बिचारी उसके चंगुल से अपने आपको छुड़ाने के लिए हाथ-पाँव मार रही है।

मैं कहने लगा—"देखो तो, यह पापी राक्षस इस बिचारी अबला को बिना इसकी मरज़ी ज़बरदस्ती लिये भागा जा रहा है।"

मैं आकाश में तो जा नहीं सकता था। कोई हथियार भी मेरे पास नहीं था, इसलिए नीचे खड़े-खड़े ही उसे देख-देखकर मैं हाथ मलने लगा।

उस ब्रह्मराक्षस ने भी यह दृश्य देखा। उसका इस समय तक मेरे साथ अच्छा हेलमेल हो गया था। इस कारण उसने तुरन्त उस राक्षस को ललकारा। वह बोला—"अरे नीच, ठहर तो सही इसे लेकर भागता कहां है?" यह कहते-कहते वह जाकर उस राक्षस से भिड़ गया। इन दोनों की इस गुत्थमगुत्था में उस बिचारी स्त्री का किसी को ध्यान न रहा।

वह आकाश से नीचे गिरने लगी। उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे स्वर्ग से कल्पवृक्ष की एक डाली टूटकर चली आ रही है। मैंने उसे गिरता देख अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर फैला दिये और नीचे आते-आते उसे अपने हाथों में ही ले लिया। मैं जिस समय उसे थाम रहा था उस समय वह बिचारी काँप रही थी। आँखें भी उसकी मुँदी हुई थीं। जब मेरी गोद में वह आई तो मेरे शरीर के साथ-साथ उसका छूना स्वाभाविक था। उस स्पर्शसुख के कारण उसका रोम-रोम खिल उठा। मैं उसे इसी हालत में, अपनी गोद में लिये रहा, नीचे नहीं उतारा। उसे लिये-लिये ही मैं बैठ गया।

जब तक मैं इधर उस स्त्री को सम्हालने में लगा रहा तब तक वे दोनों राक्षस लड़ते-लड़ते नीचे आ गए। उन दोनों में बड़ी घमासान लड़ाई हुई। आसमान से लड़ते-लड़ते वे पहाड़ों पर उतरे। वहाँ के बड़े-बड़े पत्थर और चोटियों की भारी चट्टानें उठा-उठाकर एक-दूसरे पर फेंकने लगे। फिर लपककर दोनों ने पेड़ उखाड़ लिये और उनसे लड़ते रहे। अन्त को दोनों में लात-घूँसे चलने लगे। यहां तक कि जूझते-जूझते दोनों ने एक-दूसरे की जान ले ली।

मैं उस स्त्री को गोद में बिठाये यह तमाशा देखता रहा। इस समय तक उसकी घबराहट भी कुछ-कुछ दूर हो चुकी थी। मैंने अब तालाब के किनारे एक बहुत ही मुलायम जगह ढूंढी जहाँ बालू बिछी थी। यहीं पर थोड़े से फूल भी बिखरे पड़े थे। यहाँ मैंने उसे धीरे से उतारकर लिटा दिया। फिर ज्यों ही मैंने उस पर एक प्यार-भरी नजर डाली तो देखता क्या हूँ कि वह तो मेरी ही प्रियतमा राजनन्दिनी कन्दुकावती है।

उसे पाकर मुझे बड़ा अचरज हुआ और साथ ही आनन्द भी। उसे मैंने सब तरह से धीरज बँधाया और तसल्ली दी। उसने भी तब तक एक तिरछी नजर मेरी तरफ डाली और झट मुझे पहचान लिया। मुझे देखते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। फिर मुझसे बोली—"नाथ, आप कहां चले गए थे? उस कन्दुकोत्सव के दिन जब मैंने आपको पहली बार

देखा, तभी से मैं तो आपकी हो चुकी थी । उसके बाद से तो आपकी झाँकी भी न मिली । सहेली चन्द्रसेना से आपकी पिछली बातें पूछ-पूछ कर ही मैं अपने मन को धीरज देती रही । कुछ दिनों पीछे ऐसा सुनने में आया कि नीच भीमधन्वा ने आपको समुद्र में डुबो दिया है । जब मैंने यह सुना तो निश्चय कर लिया कि अब मैं भी अपने प्राण तज दूँगी । इसी इच्छा से अपनी सब सखी सहेलियों और परिवार कुटुम्ब के लोगों की आँख बचा कर मैं खेलवाले बगीचे में चली गई । वहाँ मुझे इस बहुरूपिया राक्षस ने देख-लिया । इसकी नीयत बहुत बुरी थी, पर अकेली होने से मैं कुछ कर भी नहीं सकती थी । मैंने इसके बड़े निहोरे किए । पर इसने मेरी एक न सुनी और जबरदस्ती पकड़ लिया । मैं छटपटाती रह गई, परन्तु यह मुझे लेकर भाग निकला । यहाँ आकर यह दुष्ट अब खत्म हुआ है । भाग्य की होनी देखिए कि मैं आपके, अपने प्रियतम के ही हाथों पड़ी । ईश्वर आपका भला करे ।"

उसकी यह सब बातें सुनकर और इस प्रकार अनायास उसे पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई । उसे लेकर मैं पहाड़ पर से नीचे आया और जहाज पर सवार हो गया । जब हवा उल्टी दिशा में बहने लगी तब हमने जहाज का लंगर उठाया । हवा के रुख पर चलते-चलते जहाज फिर दामलिप्ता नगरी में आ गया । बिना किसी तकलीफ के हम सब यहां पर उतर पड़े और नगर में आये । वहां देखा तो तमाम जनता रो-पीट रही है । लोगों से सुना कि सुम्ह के राजा तुंगधन्वा उपवास करके प्राण छोड़ने के इरादे से गंगा जी के किनारे जा रहे हैं । उनके साथ महारानी भी जायँगी । कारण यह बतलाया गया कि उनका लड़का और लड़की दोनों मर चुके हैं । दूसरी कोई सन्तान उनके है नहीं । महाराज बूढ़े भी हो चुके हैं, इसलिए आगे सन्तान की कोई आशा नहीं । निःसन्तान होने से अब वे निराहार रहकर गंगातट पर प्राणत्याग कर देंगे । इधर नगर के धनी-मानी और प्रतिष्ठित लोग महाराज पर बड़ी भक्ति रखते हैं । उनके बिना वे अपने को अनाथ और असहाय समझ रहे हैं, इसलिए महाराज के साथ ही ये लोग भी अपने प्राण त्याग देने की

सोच रहे हैं।

यह खबर सुनकर मैं सीधा महाराज के पास पहुँचा। मैंने उन्हें सब हाल सुनाया। मेरे साथ जहाज पर भीमधन्वा तो पहले ही कैद थे, कन्दुकावती को भी मैं ले आया था। महाराज के इन दोनों लड़के-लड़कियों को मैंने उन्हें सौंप दिया। इन्हें पाकर सुम्हपति बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने राजकुमारी कन्दुकावती के साथ मेरा ब्याह करके मुझे अपना दामाद बना लिया। उनके पुत्र राजकुमार भीमधन्वा अब मेरे आत्मीय और सम्बन्धी बन गए थे। इस कारण वे भी मेरे अनुकूल हो गए। भीमधन्वा को यद्यपि चन्द्रसेना प्राणों से भी प्यारी थी, पर मेरे कहने से उन्होंने उससे सम्पर्क छोड़ दिया और चन्द्रसेना का कोषदास के साथ ब्याह हो गया।"

अपना यह सब हाल राजवाहन को सुनाकर मित्रगुप्त कहने लगे—"कुमार, इन सब कामों से निश्चिन्त होते ही मुझे श्री सिंहवर्मा की विपत्ति का समाचार मिला। इसलिए सेना लेकर मैं तुरन्त इनकी सहायता के लिए चल दिया। यहाँ आते ही आपके दर्शन हुए। आज के इस आनन्द और उल्लास का बखान करना कठिन है। मेरे लिए तो यह एक आनन्द मेला सा लग रहा है।

मित्रगुप्त की आपबीती सुनकर राजवाहन कहने लगे—

"भाई, दैव की गति भी बड़ी विचित्र है! तुमने वास्तव में मौके-मौके से खूब मेहनत और कोशिश की। तुम्हारी आपबीती खूब रही। और तुम दोनों का मिलना भी अजब ढंग से हुआ।"

यह कहते-कहते प्रसन्नता से उनका चेहरा खिल उठा और होठों पर मुस्कराहट खेलने लगी। इसके बाद उन्होंने खुशी से चमकती हुई अपनी आँखें मन्त्रगुप्त की ओर फेरीं। उन्हें अपनी ओर देखता हुआ पाकर मंत्रगुप्त ने हाथ जोड़ दिये और सिर झुकाकर युवराज को नमस्कार किया।

इस समय जुड़ी हुई अंजुली मुख के सामने होने से मंत्रगुप्त का चेहरा तनिक ओट में हो गया। इस तरह करके उन्होंने शायद अपने माणिक्य जैसे गुलाबी-गुलाबी होठों को छिपा लेने की कोशिश की, क्योंकि मंत्रगुप्त की

सुन्दरी प्रियतमा ने जिस समय उमंग में भरकर उनके होठों को चूमा तो मस्ती में उसके दाँत उन पर गड़ गए थे। इनके निशान मंत्रगुप्त के होठों पर साफ-साफ दिखाई पड़ रहे थे। इस दन्तक्षत की कल्लाहट से उनके बेकल होठ और भी गुलाबी और सुन्दर हो उठे थे।

मंत्रगुप्त ने अब अपनी आपबीती शुरू की। पर उन्होंने एक होशियारी की। अपने दुखते हुए होठ पर जोर न पड़े, इसके लिए उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग आरम्भ किया जिसमें होठों को हिलने-जुलने का काम ही बहुत कम पड़े।

६

मन्त्रगुप्त की आपबीती

मन्त्रगुप्त कहने लगे—"राजकुमार, आपके पिता सम्राट राजहंस तो राजाओं के भी राजा हैं। उनके कुँवर यदि इस तरह अचानक लोप हो जावें तो आप समझ सकते हैं कि कितनी छानबीन और खोज की गई होगी ! उसी खोज के सिलसिले में मैं भी निकला।

आप पहाड़ की खोह में से होते हुए किधर चले गए, यह बात जानने की इच्छा से मैं बहुत घूमा-फिरा और चलते-चलते कलिंग राज्य में जा पहुँचा। उसकी राजधानी के बाहर कुछ दूर पर मरघट बना है । इससे लगा हुआ जंगल चला गया है । उसी में एक पेड़ के नीचे मैं बैठ गया । चलता-चलता मैं दूर से आ रहा था, इसलिए आराम लेते ही मेरी आँखों में नींद भर आई और मैं उसी पेड़ के नीचे हरे-हरे मुलायम पत्तों का बिछौना बनाकर सो गया ।

रात का समय था । न जाने क्या बात हुई कि उस रात को वहाँ अँधेरा बहुत घना और बेहद काला था । ऐसा जान पड़ता था जैसे प्रलय की रात उतर आई है। चारों ओर बिखरे हुए अन्धकार को देखकर खयाल होने लगता था कि ये मानो उस रात्रि की काली-काली लटें फैली पड़ी हैं।

धीरे-धीरे रात बीतने लगी और अंधेरा कम हो चला। रात की अँधियारी में घूमने-फिरने वाले राक्षस भी विदा हुए । क्रमशः सबेरा होने आया और चारों तरफ ओस गिरती हुई दिखाई देने लगी। आज सरदी बड़े

कड़ाके की पड़ रही थी, सब लोग अभी तक अपने-अपने घरों के भीतर दुबके पड़े थे। हवा खूब जोर से चल रही थी और साल के घने पेड़ों की डालियों में घुसकर उन्हें झकझोरे डालती थी। इसकी वजह से जंगल में बड़े जोर की साँय-साँय-सी होने लगती थी। मेरी आँखों में नींद अभी तक भरी हुई थी, इसलिए मैं खुमारी में जकड़ा वहीं पत्तों के बीच पड़ा हुआ था।

इतने में मेरे कानों में किसी के बोलने की कुछ भनक-सी पड़ी। धीरे-धीरे आवाज साफ सुनाई देने लगी। कोई कह रहा था——

"देखो तो इस जाड़े-पाले में खूब लिपटकर आनन्द करने को जी हो रहा था, सो इस पाजी अघोरी ने यह संदेशा पहुँचाने का एक झंझट पीछे लगा दिया। इस बेहूदा खटराग में फँसकर मैं अच्छा बेवकूफ बना।"

इतने में एक और महीन आवाज में किसी ने कहा——

"राम करे कोई खूब मोटा मुश्टण्डा तगड़ा जवान मिल जाय। वही इस नीच अघोरी की अक्ल ठीक करेगा। इसके मन्त्र-तन्त्र का खात्मा भी वही कर सकेगा।"

इन बातों से मुझे इतना पता चल गया कि यह किसी के नौकर और उसकी अपनी औरत के बीच बातचीत चल रही है।

आज की इस ठंड में इन लोगों के जुदा-जुदा होकर बिछुड़ने की ऐसी दीनता भरी बातों से बड़ा तरस आता था। मैं सोचने लगा कि यह अघोरी कौन है? और यह मन्त्र-तन्त्र क्या बला है? यह न मालूम किस मतलब से किये जा रहे हैं? यह नौकर भी न जाने क्या करने जा रहा है?

मैं इस तरह सोच ही रहा था, जब तक वह नौकर बातें करते-करते आगे बढ़ गया। मैं जाग तो चुका ही था, उसकी बातों से मुझे यह जानने की उत्सुकता हुई कि देखूँ यह कहाँ जाता है और करता क्या है?

मैं झटपट उठकर उसके पीछे-पीछे लग गया। चलते-चलते थोड़ी दूर ही पहुँचा था कि देखता क्या हूँ कि सामने एक बड़ी डरावनी सूरत का कोई साधु-सा बैठा है। इसने आदमियों की खूब सफेद चिट्टी हड्डियों के टुकड़ों के गहने बना-बनाकर उनसे अपनी देह को सजाया हुआ था और

मरघट की आग में जली हुई लकड़ियों की राख को जगह-जगह चन्दन की तरह पोत रखा था। इसकी लंबी-लंबी जटाएँ इतनी पीली और चमकीली थीं कि बिजली की तरह कौंधती हुई जान पड़ती थीं। इसके सामने आग जल रही थी। जंगल में चारों ओर फैले हुए अँधेरे को यह आग एक राक्षस की तरह मानो निगले जा रही थी। यह आदमी थोड़ी-थोड़ी देर में तरह-तरह की लकड़ियाँ उठाकर इस आग में डालता जाता था। इस प्रकार ईंधन के जितने ग्रास यह आग निगलती उतनी ही तेज लपटें इसमें से उठती जाती थीं। बाँएँ हाथ से वह तिल-सरसों आदि डाल रहा था। इन चीजों के पड़ने से आग में से चटचट की आवाज होने लगती थी। मैं यह सब दृश्य ओट में खड़ा-खड़ा देखने लगा।

धीरे-धीरे वह नौकर इस भयानक आदमी के पास आ पहुँचा और हाथ जोड़कर कहने लगा—

"आज्ञा कीजिए, मुझे क्या करना है ?"

इसके बाद वह वहीं पर बैठ गया।

आग के सामने बैठा हुआ यह अघोरी बाहर से जितना डरावना दीख रहा था वैसा ही मन का भी बड़ा कुटिल और नीच जान पड़ता था। थोड़ी देर में उस नौकर से वह बोला—

"जा, तू जाकर कलिंग के राजा कर्दन की लड़की कनकलेखा को उसके महल में से यहाँ ले आ।"

उस नौकर ने ऐसा ही किया। वह तुरन्त चला गया और थोड़ी देर बाद राजकन्या को ले आया। इस अघोरी ने उठकर तुरन्त उसका जूड़ा पकड़ लिया। राजकन्या बिचारी बेहद डर गई और चीख-चीखकर रोने लगी। मारे आँसुओं के उसका गला रुँध गया। उसके जी में इतनी घबराहट और बेचैनी थी कि रोने-चिल्लाने के सिवा उसे कुछ और सूझता नहीं था। बीच-बीच में बड़ी दीनता-भरी आवाज से माँ-बाप को वह जरूर पुकारती जाती थी।

इस तरह एकाएक सिर के बाल झकझोरे जाने से उस बिचारी के

जूड़े में गुँथी हुई फूलमालाएँ और माथे पर लगी हुई फूलों की कलगी आदि सब टूट-टूटकर बिखर गए और बाल भी खुलकर तितर-बितर हो गए ।

अघोरी ने उसके बाल मुट्ठी में कसकर सिल्ली पर पैनाई हुई एक खूब तेज तलवार उठाई और सिर काटने के लिए तैयार हुआ । यह भयानक काण्ड मुझसे नहीं देखा गया । मैं तुरन्त झपटा और उसके हाथ से तलवार छीनकर मैंने उसी से उस अघोरी का सिर काट डाला । जटाओं समेत उसका वह सिर नीचे जमीन पर लुढ़कने लगा । वहाँ पास ही साल का एक पुराना पेड़ खड़ा था । उसके टहने में मुझे एक खोल दिखाई पड़ा । उसी के अन्दर मैंने उसका वह सिर डाल दिया ।

इसके बाद मेरी नजर उस नौकर पर पड़ी । अब जो मैंने उसकी ओर देखा तो मालूम हुआ कि यह तो एक राक्षस है । सब काण्ड देखकर वह बड़ा खुश हुआ । इस अघोरी के मारे जाने से उस बिचारे के जी का काँटा भी निकल गया । वह मुझसे कहने लगा––

"महानुभाव, आपने बड़ा भारी काम किया है । यह नीच मुझे बड़ा दुखी करता था । यहाँ तक कि रात को मेरी आँखों में नींद भी नहीं आती थी । हर समय मुझे डाँटता-फटकारता रहता था । यह दुष्ट ऐसे-ऐसे नीच काम करने के लिए कहता कि जिनका कुछ ठिकाना नहीं । आप सचमुच बड़े उपकारी जीव हैं । यह नीच इन्सान थोड़े ही था, यह तो नरक का कीड़ा था, बल्कि इसे आदमियों के बीच एक काला-कलूटा कौआ समझिए । आपने बड़ा अच्छा काम किया जो इसे यमलोक भेज दिया । इस नारकी ने बड़े-बड़े कुकर्म किये थे; अब यह तनिक नरक का भी मजा चखे । आप में जैसी अपार दया है, वैसे ही ताकत और हिम्मत भी आपके अन्दर गैर-मामूली है । आप मुझे कोई हुक्म दीजिए । मेरी बड़ी तबियत है कि आपका कोई काम करूँ । बतलाइए, कुछ-न-कुछ काम जरूर दीजिए; अब और देर मत कीजिए ।"

यह कहते-कहते वह मेरे सामने हाथ जोड़े हुए झुककर खड़ा हो गया ।

तब मैंने उससे कहा—"भाई, मैंने तो कोई भारी काम नहीं किया। परन्तु भले आदमियों का यही ढंग होता है कि वह छोटे से काम के लिए भी दूसरे का बहुत भारी मान-आदर किया करते हैं। खैर, तुम चाहो तो इतना कर दो कि इस बिचारी राजकन्या को इसके घर पहुँचा दो। देखो, यह कैसी दबी-दुबकी खड़ी है। इसे उस कुकर्मी ने बड़ा सताया है। अब इसे इसके घर ले जाओ। बस इतना ही कर दो, इससे अधिक और किसी काम की मुझे चाह नहीं है।"

मेरी ये सब बातें सुनकर उस राजकुमारी ने अब आँखें उठाई और तनिक तिरछी नजर से मेरी ओर देखा। हालाँकि उसकी आँखों में अब धीरज और शान्ति थी तो भी उसकी पुतलियाँ चंचल हो रही थीं। उसका यह श्यामल कटाक्ष जब उन बड़े-बड़े नेत्रों में से निकलकर उसके कान के पास से होता हुआ आया तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि उसकी कनौती के ऊपर किसी ने नीले कमल का फूल घुरस दिया है। देखने के साथ ही उसने बड़ी नजाकत से धीरे-धीरे एक मुलायम बेल जैसी अपनी भौं को तनिक उकसाया। उसकी यह भौं क्या थी, कामदेव की तनी हुई कमानी थी। राजकुमारी के माथे पर इस चंचल और उठी हुई भौं को देखकर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे राजकन्या का मस्तक किसी नाटक का रंगमंच है और उस पर भौं-रूपी नर्तकी नृत्य कर उठी है।

इधर जब मैं बातें कर रहा था तो उन्हें सुन-सुनकर राजकुमारी का रोम-रोम खिल-सा उठा। यहाँ तक कि मारे खुशी के उसके गुलाबी गालों के बारीक रोंगटे भी कुछ-कुछ खड़े-से हो गए। उसे देखने से यह बात साफ झलकती थी कि वह बिचारी इस समय प्यार और लज्जा दोनों के बीच में झूल रही है। उसका गुलाबी कमल का मुखड़ा तनिक एक ओर को झुका था और वह खड़ी-खड़ी पैर के नाखूनों से धरती कुरेद रही थी। ऐसा करते समय उसके पैरों के उजले नाखून तिरछे पड़कर एक चमक-सी पैदा करने लगे। वह स्वयं तो खूब गोरी-गोरी और चमकीली थी ही, साथ-साथ उसके नाखून भी चमक देने लगे, इसलिए ऐसा प्रतीत

हुआ, मानो धरती पर साक्षात चाँदनी उतर आई है।

मैंने उसके मुँह पर नजर डाली और ध्यान से देखा तो पता चला कि उसकी आँखों से आँसुओं की धारा गिर रही है। ये वास्तव में अपार सुख और खुशी के आँसू थे जो मौत के मुँह से इस तरह एकदम छुड़ाये जाने की हालत में अपने-आप उमड़े आ रहे थे। इन आँसुओं की बूँदें उसके चेहरे से होती हुई नीचे छाती पर टपकने लगीं और इनसे उसके स्तनों पर लगा हुआ चन्दन गीला हो गया। परन्तु इन आँसुओं के साथ ही उसके अन्दर से सुख की साँसें भी उठती थीं जो मुख से निकलकर मुलायम कोंपल जैसे होठों पर से होती हुई धीमे-धीमे नीचे की ओर बहती थीं और इनसे स्तनों का वह गीला चन्दन सूखता भी जा रहा था। राजकुमारी की ये सुख की उसाँसें कोई मामूली हवा की साँसें नहीं थीं। ये तो मलया-निल के दक्खिनी बयार के झोंके थे जो चालाक कामदेव के तीरों का काम कर रहे थे और स्वयं उस बिचारी के हृदय को ही निशाना बनाकर बड़ी तेजी से उसे बींधे डाल रहे थे।

अब तक राजकुमारी चुपचाप खड़ी थी। अन्त को जब उससे न रहा गया तो कोयल जैसी मीठी आवाज में उसके मुँह से कुछ शब्द निकल ही पड़े। ज्योंही वह बोलने को हुई कि उसके चाँदनी के टुकड़ों जैसे चमकीले दाँत हिल उठे और उजाले की एक काँपती हुई लहर-सी दौड़ गई। वह कहने लगी—"महानुभाव, आपने इस दासी को मौत के मुँह में से तो छीन लिया, पर अब इसे कामनाओं के अथाह समुद्र में क्यों फेंके दे रहे हैं। आपको क्या मालूम यह काम-सागर कितना विकराल और डरावना है। इसमें तो अनुराग के भारी-भारी तूफान उठते हैं और घबराहट तथा बेचैनी की लहरों पर लहरें उमड़ती हैं। हाय, आप यह कुछ भी नहीं देखते ? मैं तो आप से अधिक कुछ भी नहीं माँगती, केवल इतना चाहती हूँ कि मुझे आप अपने पैरों की धूल का एक कण ही समझ लीजिए। आपने मुझे बचा लिया इससे जान पड़ता है कि मुझ पर आपकी कुछ कृपा है। यदि वस्तुतः मेरे ऊपर आपका तनिक भी दया-भाव हो तो इतना कीजिए

कि मुझे अपनी दासी बना लीजिए। मैं आपके चरणों की नित्य पूजा और सेवा किया करूँगी। मेरा सब कुछ अब आपका है। राजकुमारियों के महल में जहाँ मैं रहती हूँ आज आप भी वहीं चलने की कृपा कीजिए। सम्भव है आपका यह ख्याल हो कि मेरे महल में आपके पहुँचने की यह बात खुल जायगी और कोई मुसीबत आ खड़ी होगी। परन्तु यह बात नहीं है। वहाँ मेरी सहेलियाँ और दासियाँ मुझ पर बड़ा प्रेम रखती हैं। उन पर सब तरह से भरोसा किया जा सकता है। वे सब-की-सब यही कोशिश करेंगी कि इस बात की किसी को कानोंकान खबर न होने पावे।"

राजकुमारी की इन बातों के आगे मैं क्या कह सकता था; बेबस हो गया। सच्ची बात तो यह है कि मैं भी काम की चोट से घायल हो चुका था। पहले तो उस सुन्दरी राजकन्या ने ही अपने कटाक्ष-रूपी लोहे की साँकल में मुझे कस लिया था, फिर उस पर कामदेव ने फूलों की कमान से मेरे दिल पर बड़ी बेरहमी से तीर चलाए। इस तरह बेबस और घायल होकर मैं पास खड़े हुए अपने उस राक्षस नौकर की ओर देखने लगा। उससे मैंने कहा—

"सुनते हो, इस मृगनयनी के साथ ही मुझे भी राजकुमारी के महल में पहुँचाओ !"

यह कहते-कहते मेरी नजर फिर उस सुन्दरी बाला पर जा पड़ी। मेरा मन न जाने कैसा हो उठा! मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उस मोहिनी की कमर के रूप में कामदेव का रथ खड़ा है। मैं इस समय सोलहों आने राजकुमारी के बस में था। मुझे ऐसा लगा कि यदि इसकी बात मानकर मैं इसके साथ नहीं जाऊँगा तो भगवान् कामदेव मेरी न जाने क्या दशा कर डालें। शायद हम दोनों की ही हालत बड़ी शोचनीय हो जाय।

मेरे कहते ही उस राक्षस ने हम दोनों को राजकन्या के महल में पहुँचा दिया। यह इमारत दूर से बिलकुल सफेद और बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती थी। इसे देखकर सामने से ऐसा लगा, मानो शरद्काल के श्वेत बादलों का ढेर हो। महल में सबसे ऊपर छत पर चाँदनी या चन्द्रशाला बनी

हुई थी। उस सुन्दरी चन्द्रमुखी के कहने से मैं कुछ देर उसी चाँदनी में जाकर एक जगह बैठ गया। इस राजनन्दिनी को मैं अब ज्यों-ज्यों देखता त्यों-त्यों उसकी छवि का एक तरह का नशा-सा मुझ पर चढ़ता जाता। मेरे मन का धीरज तो जैसे एक दम जाता रहा!

ऊपर छत पर इधर-उधर उस राजकुमारी की सहेलियाँ बेखबर पड़ी सो रही थीं। उसने अपनी हथेली से उन्हें तनिक छुआ ही था कि वे तुरन्त जाग गईं। पल-भर में ही हाथ के इशारे से उसने उन लोगों को सब बात समझा दी। राजकन्या ने केवल दो-चार सहेलियों को ही उठाया था। वे सब-की-सब तुरन्त आईं, और सबसे पहले उन्होंने राजकुमारी के पैरों पर सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। इन सहेलियों को देखने से साफ मालूम हो जाता था कि राजकुमारी के विछोह में ये बिचारी रोती रही हैं, क्योंकि आँसू आते-आते उनकी आँखें कुछ-कुछ सूज आई थीं। सब सहेलियों के सिर पर फूलों की कलगी बँधी हुई थी। इन कलगियों के फूल इतने महकते थे कि इनकी सुगंध और पराग पर भौंरे आ-आकर टूटने तथा गुंजार करने लगते। इन सहेलियों की आवाज भी बड़ी मीठी थी। जिस समय ये आकर धीमे और सुरीले स्वर में बोलने लगीं, उस समय कई बार तो इस बात का ही पता नहीं चला कि यह भौंरों की गूँज है या इन लोगों का महीन स्वर है।

कुछ देर बाद ये सहेलियां मेरे पास आ गईं और मुझसे बातचीत करने लगीं। एक सहेली ने कहा—"महानुभाव, आप धन्य हैं। आज आपने हमारी सहेली को बचा लिया। आपके तुल्य सूर्य जैसे तेजस्वी पुरुष का ही यह काम हो सकता था। हमारे बड़े भाग्य थे जो ऐसे समय आपकी नजर इन पर पड़ गई और यह यमराज के चंगुल से निकल आई। सचमुच आपकी ही दया से यह बची हैं। अबला को तो जो बचा ले, उसकी रक्षा कर सके उसी की वह हो जाया करती है। इस प्रकार हमारी यह सहेली स्वभावतः आपकी हो चुकी। परन्तु साथ-साथ भगवान् कामदेव की भी आप दोनों पर कृपा-दृष्टि हुई है। उन्होंने भी प्रेम या अनुराग रूपी अग्नि की साक्षी में इसे आपको सौंप दिया है। इस राजदुलारी को आप कोई मामूली स्त्री न

समझें। यह एक निराला और बेजोड़ हीरा है। आप भी भगवान् विष्णु के समान सुन्दर कमल-लोचन और श्रेष्ठ पुरुष हैं। यह राजकन्या रूपी अनुराग चंचल रत्न आप ही के योग्य है और आप से ही इसका जोड़ भी मिलता है। आप इसे अपने हृदय पर सुशोभित कीजिए और अपनी छाती से लगा लीजिए। जिस तरह चट्टान हिमालय पर्वत पर मज़बूती और दृढ़ता के साथ जमी रहती है भगवान् करें कि उसी दृढ़ता और स्थिरता के साथ यह राजदुलारी बराबर आपके मन में बसी रहे।"

इतना कहकर राजकुमारी की वे सहेलियाँ मेरे साथ इधर-उधर की और बातचीत करने लगीं। धीरे-धीरे हँसी-दिल्लगी करते हुए वे मेरे साथ बहुत खुल गईं। अन्त में एक तो खुल्लमखुल्ला बड़ी ढिठाई के साथ बोली—"अब चलिए और देर मत कीजिए। वह बिचारी बेचैन हो रही होगी। आप चलकर उसकी छातियों को अपने प्रेमालिंगन में कस लीजिए। हमारी सहेली आपसे कोई कम नहीं है। आप जैसा मजबूत मर्द ही उसका सच्चा ज़ोड़ीदार बन सकता है। आपकी बाँहों में आकर आज उसकी छातियों को स्वाद मिलेगा, आज वह भी अपने को धन्य मानेगी!"

यह कहते-कहते वे उस राजकुमारी को खींच लाईं और हम दोनों को एक-दूसरे से मिला देने की कोशिश करने लगीं। इसमें सन्देह नहीं कि ये लड़कियाँ प्यार-मुहब्बत के मामलों में खूब चतुर और होशियार थीं। इनकी उस समय की बातचीत ने हम दोनों के दिलों में और भी रस भर दिया। धीरे-धीरे एक-एक करके वे सब-की-सब खिसक गईं। हम दोनों अकेले रह गए। राजकुमारी लज्जा के मारे सिमटी बैठी थी। मैंने उसे उठाकर पलंग पर बिठा दिया। उस रात फिर उसके साथ मैंने खूब आनन्द किया।

इस तरह मैं अब राजकुमारी के महल में ही रहने लगा। उसके साथ मेरे दिन बड़े आनन्द में बीतने लगे। मेरे यहां रहने और राजकुमारी से मिलने की किसी को कानों-कान खबर नहीं हुई। इस तरह बहुत से दिन निकल गए।

एक बार ऐसा हुआ कि कलिंग नरेश महाराज कर्दन खेल-कूद और

आनन्द-विहार के लिए समुद्र के किनारे एक सुन्दर हरे-भरे जंगल में चले गए। वह अपने साथ अपनी लड़की मेरी प्रियतमा को और राजपरिवार को भी ले गए। इतना ही नहीं, सब नगरवासियों को भी साथ लेते गए। मैं भी शहर के इन लोगों के साथ वहीं चला गया।

इन दिनों समुद्र के किनारे का दृश्य बड़ा सुहावना हो रहा था। सागर की चंचल लहरों से उठे हुए जलकण पेड़-पत्तों से लिपट-लिपटकर सारे जंगल को खूब ठंडा बनाये हुए थे। किनारे की बालू पर मुलायम कोंपलों से लदी हुई बेलें बिछी पड़ी थीं, और गुंजार करते हुए भौंरों के झुण्ड-के-झुण्ड उन पर मँडराते फिर रहे थे। इन भौंरों के बोझ से लची हुई लताओं की फुनगियाँ और उन पर की कोंपलें नीचे झुकी हुई उस बालू को चूमती-सी जान पड़ती थीं। सारा जंगल फल-फूल और बेलपत्तियों से ऐसा घना हो गया था कि सूरज की सैकड़ों-हजारों किरणें भी उन्हें भेदकर निकल नहीं पाती थीं।

वास्तव में यह मौसम ही बड़ा सुहावना था। समुद्र के किनारे दर्दुर-गिरि था। इसकी तराई में दूर तक चन्दन के पेड़ चले गए थे। इनसे मिल-भेंटकर निकला हुआ ठंडा-ठंडा पवन जिस समय जंगल की ओर बहता तो बेलें खूब हिलने-डोलने लगतीं। इन्हें देख-देखकर ऐसी कल्पना होती थी कि पवन-रूपी उस्ताद अपनी शिष्या लताओं को मानो नाचना सिखा रहे हैं।

इस ऋतु में सभी पर एक तरह की मस्ती छा गई थी। यहाँ तक कि बड़े-बड़े ऊंचे घरानों की सुशील लड़कियों के मनों में भी प्यार की भावनाएँ फूट निकली थीं, जिनके कारण उनकी लज्जा छुटी पड़ती थी। युवतियों का यह हाल था कि चारों ओर कोयलों की सुरीली कूक सुन-सुनकर उनमें प्रेम और मुहब्बत की उमंगें भर गई थीं। उनके लालसा-भरे गुलाबी होठों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सहस्रों रति-सुन्दरियाँ प्रेम-युद्ध के लिए उपयुक्त अस्त्र-शस्त्रों और कवचों से तैयार होकर निकल पड़ी हैं। महक-भरी दक्खिनी बयार के झोंके-पर-झोंके आ रहे थे। इनके

तेज बहाव के साथ-साथ झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे आम के बौरों पर आ टूटते थे। ऐसा लग रहा था जैसे भ्रमर-रूपी वर को मलय पवन अपने तेज रथ पर चढ़ाकर आम की कली रूपी नई बहू के घर पर लाया है।

जंगल में जहाँ-तहाँ कनेर के पेड़ चटके हुए पीले-पीले फूलों से लदे खड़े थे। ये मानो सुनहरे छत्र थे, जिन्हें रूप के देवता महाराज अनंगदेव धारण किये हुए विराजमान थे। फूले हुए तिलक के पेड़ों से ऐसी शोभा बरस रही थी कि ये वृक्ष वनस्थली के माथे पर सचमुच तिलक की ही तरह जान पड़ते थे। घने-घने सुपारी के पेड़ बोझ के मारे झुके जा रहे थे। मधु के लोभी भौंरे इन्हें बार-बार लाँघते फिरते, जिससे तंग आकर ये मानो नीचे लचे पड़ते थे और परेशान हो रहे थे।

इस प्रकार समुद्र के किनारे दूर तक फैले हुए जंगल में इस समय बसन्त की बहार छाई हुई थी। क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी सभी के दिलों में उमंगें थीं। केवल ऐसे आदमियों के दिल बुझे हुए थे जिन बिचारों के घरों में घरवालियाँ नहीं थीं।

कलिंगराज कर्दन समुद्र के किनारे इसी वन में बड़े आनन्द के साथ भ्रमण और विहार करते रहे। वे खेल-कूद रागरंग आदि में इतने मग्न हो गए कि यहाँ उन्हें तेरह दिन लग गए।

सब नगरनिवासी और राजपरिवार के साथ महाराज नाच-रंग में मस्त रहते। दिन-रात गाना-बजाना हुआ करता। हज़ारों स्त्रियाँ इस रागरंग में तल्लीन रहतीं। यहाँ तक कि अच्छी तरह खाने-पीने और साज-सिंगार करने की भी उन्हें सुध-बुध नहीं थी। चारों ओर हास-विलास और नाच-गान का दौरदौरा था। सब प्रकार के आनन्द भोगों की खुली छूट थी। महाराज स्वयं भी आमोद-प्रमोद में मस्त रहते; उनकी तो जैसे इस रागरंग से प्यास ही नहीं बुझती थी।

किसी राज्य के राजा के लिए इतना मस्त और बेखबर होकर रहना एक तरह से संकट के लिए बुलावा देना होता है। हुआ भी यही। कलिंग के राज्य के साथ ही आन्ध्रों का राज्य था। वहाँ के राजा जयसिंह ने यह अच्छा

मौका देखा। समुद्र के किनारे-किनारे उनका राज्य होने से उनके पास नावें और जहाज आदि बहुत थे। इन्हीं के द्वारा उन्होंने चुपके से अपनी बहुत सी फौज इधर के जंगल में उतार दी और एकदम हमला करके, कलिंगराज कर्दन को उनके स्त्री बच्चों तथा परिवार समेत पकड़ लिया। इन्हीं में मेरी प्यारी वह मृगनयनी कनकलेखा भी थी। इस हमले से वह बहुत डर गई। परन्तु उसे और उसकी सहेलियों को भी आन्ध्र लोग पकड़ ले गए। उसके इस तरह मुझसे अलग चले जाने का मुझे बेहद दुःख हुआ। मेरी अभी जवानी की उम्र थी, इसलिए प्रेमिका के विछोह से मेरे दिल में बड़ी बेचैनी रहने लगी। उससे मिलने की आतुरता के मारे मेरे अंग-अंग में एक तरह की जलन-सी मालूम देती रहती। भूख-प्यास की भी मुझे सुध नहीं रही। दिन-रात उसी के सोच में घुलता रहता। इससे मेरी सब सुन्दरता और देह की शक्ति तक जाती रही। मैं बैठे-बैठे सोचा करता——

'देखो, अपने पिता कलिंगराज और अपनी माता के साथ ही वह राज-दुलारी भी वैरियों के पंजे में फँस गई। यह हो नहीं सकता कि आंध्र का राजा इस सुन्दरी कनकलेखा को देख ले और इस पर मोहित न हो जाय! वह जरूर उससे अपनी प्यास बुझाना चाहेगा और वह बाला इस बात को कभी भी सहन नहीं कर सकेगी। वह तुरन्त जहर आदि कुछ-न-कुछ खा बैठेगी। जब उसका ऐसा हाल होगा तब फिर मेरा तो कहना ही क्या! उसके न रहने पर मैं इस देह को लिये बैठा रहूँ, यह सर्वथा असम्भव है। उसका विछोह मुझे स्वयं समेट लेगा। देखो, उस समय फिर मेरी कौन गति हो!'

इसी तरह के सोच-विचार और चिन्ताओं में मेरे दिन बीतने लगे।

इन्हीं दिनों अचानक आन्ध्र देश से आया हुआ एक ब्राह्मण मुझे दिखाई दे गया। उसने अपने-आप ही वहाँ के हाल-चाल सुनाए और कहने लगा——

"पिछले दिनों आन्ध्र में एक बड़ी अद्भुत घटना घटी। आन्ध्र नरेश जयसिंह जब कलिंगराज कर्दन को पकड़ ले गए तो उन्होंने यह चाहा कि कर्दन को तंग करके और उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ देकर बेहद सताया

जाय, यहाँ तक कि रिझ-रिझकर अन्त में वह मर जावें। परन्तु इसी बीच जयसिंह की निगाह राजकुमारी कनकलेखा पर पड़ी। उस पर वे लट्टू हो गए। धीरे-धीरे उनका उसकी ओर बेहद खिचाव हो गया। यहाँ तक कि उसके प्रेम में वे अब कर्दन की पूछ-ताछ करने और उनकी खैर-खबर भी रखने लगे।

इधर उस लड़की कनकलेखा के बारे में यह सुना गया कि उस पर किसी यक्ष का हाथ है, जो उसकी दिन-रात चौकसी भी किया करता है। इसी कारण किसी दूसरे आदमी की तो बात ही अलग राजा जयसिंह के सामने तक वह न निकलने पाती। इस यक्ष के चंगुल से उसे छुड़ाने के लिए जयसिंह ने दूर-दूर के बहुत से तन्त्र-मन्त्र के जानकार लोग बुलवाकर इकट्ठे किए। इस समय भी ऐसे बहुत से जादू-टोने वाले वहाँ जमा हैं। इनके द्वारा वे उस यक्ष को भगाने की बड़ी कोशिश कर रहे हैं। पर अभी तक तो उसके हटने की कोई उम्मीद दिखाई नहीं देती।"

उस ब्राह्मण की ये बातें सुनकर मेरे मन को बड़ी तसल्ली हुई; मुझे कुछ आशा बँधने लगी।

अब मैंने क्या किया कि बड़ी दूर हिमालय पहाड़ पर से जहाँ भगवान शंकर अपना नृत्य किया करते थे, एक बहुत पुराने साल के पेड़ की लम्बी-लम्बी जटाएँ मँगवाईं। उस पुराने पेड़ के टहने में बड़ा भारी खोल था, उसी के अन्दरूनी हिस्से में से छील-छीलकर बड़ी कठिनाइयों से ये जटाएं छुड़ाई गई थीं। इन्हें मँगवाकर मैंने खूब धुलवाया और साफ करवाया, फिर रंगकर इन्हें ऐसा कर दिया जैसे लम्बे-लम्बे बाल हों। इन्हें जमा करके मैंने अपने सिर पर बड़ा भारी जटा जूट खड़ा कर दिया। इसके बाद पुरानी कथरी और चीरें लपेट-लपाटकर सारी देह को मैंने अच्छी तरह ढक लिया। कुछ शिष्य भी इधर-उधर से मैंने जोड़ लिए। इन्हें खूब सिखाया-पढ़ाया और सबको साथ लेकर मैं चल दिया। रास्ते में योगसिद्धि की बड़ी-बड़ी अचरज-भरी करामातें मैंने दिखलानी शुरू कीं। इनसे लोग बड़े चकित और हैरान होते। धीरे-धीरे मेरी करामातों की प्रसिद्धि होने लगी और लोग बड़ी दूर-दूर से खिंचकर

आने लगे। बहुत से श्रद्धालु और भक्तजन तरह-तरह के अन्न-वस्त्र आदि चीजें भेंट करते। परन्तु मैं किसी वस्तु को छूता तक नहीं था, अपन सब शिष्यों में ही बाँट दिया करता था। मेरे इस त्याग-भाव से ये शिष्यगण बड़े खुश रहते और मेरा दूना गुणगान करते रहते थे।

इसी तरह चलते-चलते कुछ दिनों में मैं आन्ध्र की राजधानी में जा जा पहुँचा। नगर से कुछ दूरी पर जंगल था। उसी में एक तालाब के किनारे मैंने डेरा डाल दिया। यह स्थान बड़ा रमणीक था। तालाब के अन्दर साफ निर्मल ढेर-का-ढेर पानी भरा हुआ था। बीच-बीच में नीले कमल खिले थे। तालाब में बहुत से हंस भी तैरते रहते और इन कमलों के बीच किलोलें किया करते, जिसके कारण कमल फूलों का बहुत-सा केसर झड़-झड़कर गिरता और पानी रंग-बिरंगा हो जाया करता था। हंसों के अति-रिक्त कितने ही सारस भी कतार बाँधे इधर-से-उधर जल में खेलते फिरते थे।

इसी जगह कुटिया बनाकर हम लोग रहने लगे। धीरे-धीरे मेरे चेलों ने यहाँ भी मेरी अद्भुत करामातों की मनगढ़न्त कहानियाँ कहनी शुरू कर दीं। इन्हें सुनकर लोग बड़ी दूर-दूर से खिंचे हुए मेरे दर्शनों को आने लगे। इन श्रद्धालुओं को उल्लू बनाये रखने में मैं पक्का उस्ताद हो चुका था, इसलिए मरी करामातों से प्रभावित होकर लोगों ने चारों तरफ तरह-तरह की अफवाहें उड़ाना शुरू किया। बहुत से लोग आपस में बातचीत करते हुए कहा करते--

"उस पुराने जंगल वाले तालाब के किनारे जो एक साधु आया है वह वास्तव में पक्का त्यागी और महात्मा है। हमने उसे खुद जाकर देखा है। बिचारा खुली जमीन पर सोता है। पढ़ा-लिखा इतना है कि चारों वेद उसकी जीभ पर रखे हैं। छहों वेदांगों और उपनिषदों के भी सब गूढ़ रहस्य उस पर खुल चुके हैं। और भी कितने ही बड़े-बड़े पोथे, जिन्हें दूसरे लोगों ने सुना तक न होगा, वे भी उसे मुँहजबानी याद हैं। इन बड़ी-बड़ी किताबों के बारे में जिसे कुछ मालूम करना हो वह सीधा इन महात्मा के पास चला जाय। वे मन के सब सन्देह दूर कर देते हैं। झूठी बात तो उनके मुँह से निकलती

कभी किसी ने सुनी ही नहीं। दयालु इतन हैं, मानों साक्षात दया ही देह धरके उतर आई हो।"

कोई श्रद्धालु भक्त लोगों को सुनाता—

"भाई हम तो उन महात्मा जी से आज ही मिले हैं। हम पर उनकी बातचीत, रहन-सहन और व्यवहार का गहरा असर पड़ा है। हमारे देखते-देखते बहुत-से लोगों ने आकर उनके पैरों की धूल सिर पर चढ़ाई। मालूम यह हुआ कि इनमें से बहुतों की बड़ी-बड़ी पुरानी बीमारियाँ, जिनका अच्छे-अच्छे वैद्यों से इलाज कराते-कराते थक गए थे और दूर नहीं हो पाई थीं, इन महात्मा की एक चुटकी भभूत से गायब हो गईं।"

कोई-कोई भक्त आकर सुनाता—

"अरे भाई, इन साधु जी की करामात का क्या कहना! अगर कोई धर्मात्मा पुरुष हो और इनके पैरों का धोवन सिर चढ़ा ले तो उसका असर इतने गजब का होता है कि सुनकर आदमी अचम्भे में आ जाय! पल-भर की भी देर नहीं लगती, और ऐसे-ऐसे विकट राढ़ी ग्रह, जिन्हें बड़े-बड़े झाड़-फूंक करने वाले भी नहीं हटा पाते, इस चरण-जल के प्रभाव से चुटकी बजाते-बजाते साफ भागते हैं! इन महात्मा की कितनी महिमा है और हाथ में कहाँ तक असर है, यह जान लेना मामूली आदमी के बस का तो है नहीं! सबसे बड़ी बात यह कि अभिमान इस साधु को छू तक नहीं गया है।"

मेरे बारे में ये बातें इसी तरह एक के मुँह से दूसरे तक पहुँचते-पहुँचते घर-घर फैल गईं। यहाँ तक कि अन्त में आन्ध्र-नरेश जयसिंह के कानों तक भी जा पहुँचीं। जयसिंह तो दिल से ही यह चाहते थे कि इस कनकलेखा पर आये हुए यक्ष को किसी तरह दूर भगाया जा सके। मेरी मन्त्रसिद्धि और करामात की बात ने उनका ध्यान भी खींचा। खबर पाते ही राजा मेरे दर्शनों को आये। फिर धीरे-धीरे रोज आने लगे और अब बड़े मान-आदर के साथ मेरी पूजा भी करते। मैं तो वीतराग और सर्वस्व त्यागी था, इसलिए मेरे चेलों को वे रुपया-पैसा और दूसरी-दूसरी चीजें भी भेंट में दे जाया करते।

एक बार ऐसा हुआ कि उन्हें एकान्त में मुझसे मिलने का अवसर मिल गया। इस मौके पर धीरे-धीरे उन्होंने अपने मन की साध पूरी कर देने की मुझसे याचना की। मैं खूब ध्यान लगाये चुपचाप शांत बैठा हुआ था। मुझे इस बात का तो पहले पता चल ही चुका था कि कनकलेखा के पास हर समय एक यक्ष के बने रहने की खबर उड़ी हुई है और उस यक्ष को यह भगाना चाहता है। मैंने बहुत ध्यानमग्न होकर और अन्दर-ही-अन्दर अपनी एक गुप्त योजना की सब बातों पर अच्छी तरह सोच विचारकर जयसिंह से कहा —

"राजन्, आप एक बहुत अच्छे और शुभ काम में हाथ डाल रहे हैं। जिस कन्यारत्न के सम्बन्ध में आप कोशिश करना चाहते हैं, वह सकल गुणों की खान है और उसके बड़े शुभ लक्षण हैं। इस कन्या की प्राप्ति आपके लिए बड़ी मंगलकारिणी है। यह जो चारों ओर धरती-रूपी रमणी विराज रही है, जिसने क्षीर सागर की करधनी पहनकर अपनी कमर को सजाया है, और गंगा-जमुना आदि नदियों को हार की लड़ियों की तरह अपने हृदय पर धारण कर रखा है, इस सुन्दरी को जो पाना चाहो तो पहले इस कन्यारत्न को प्राप्त कर लो। इस सुलक्षणी कन्या के आते ही यह सारी वसुन्धरा आप-से-आप तुम्हारी अपनी हो जायगी।

पर कठिनाई यह है कि जो यक्ष इस समय इस कन्या पर अधिकार जमाकर बैठ गया है, वह इस बात को सहन नहीं करता कि उसकी इस नील कमलाक्षी बाला को कोई राजा देख पावे। खैर आप चिन्ता न करें। मैं इस यक्ष को समझूँगा।

आप केवल तीन दिन का समय किसी तरह काटें। इन तीन दिनों के भीतर मैं आपकी मनचाही को पूरा कर देने का उद्योग करूँगा। आप तीन दिन के बाद यहाँ पधारें।"

मेरी बात सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और मेरा कहना मान कर तीन दिन बाद आने के लिए अपने महल को लौट गया।

इधर मैंने क्या काम किया कि रात के समय सबकी आँख बचाकर

चुपके से उस तालाब के किनारे पहुँचा। वहाँ घाट के नजदीक एक ओर को मैंने ऐसी पक्की जगह ठीक की जहाँ आसपास कोई छेद या किसी का बिल आदि कुछ नहीं था। इन दिनों अँधेरे पाख की काली रातें थीं, इसलिए चन्द्रमा का उजाला नहीं होता था। अँधेरा इतना घना और काला हो जाया करता कि दिशाएँ तक नहीं सूझती थीं। अँधेरा ऐसा था जैसे दसों दिशाओं को निगल जा रहा हो।

रात के समय जब लोगों की आँखों में खूब नींद भर जाती और सब लोग बेखबर सो जाया करते तब मैं अपनी कुटिया में से निकलता और उस जगह जाकर बेलचे और कुदाली से खोदा करता। इसी तरह जब तक अँधेरा रहता, मैं बराबर खोदने में लगा रहता था। इस प्रकार तीन दिन के अन्दर मैंने एक अच्छी-खासी सुरंग तैयार कर ली। यह सुरंग तालाब के किनारे एक बियाबान जगह से शुरू होकर तालाब में पानी के अन्दर जाकर खुलती थी। इसमें एक आदमी आसानी से आ-जा सकता था। इस सुरंग के जल के अन्दर वाले छेद पर मैंने एक सिल मजबूती के साथ जमा दी। जब तक कोई तालाब की निचली तह को बहुत ही अधिक सावधानी से न टटोले तब तक इसका पता नहीं चल सकता था। इस सुरंग के तालाब से बाहर के किनारे वाले मुँह पर भी मैंने पक्की ईंटें और चट्टानें बड़ी सावधानी से जमा दीं, जिससे यदि कोई इसके मुँह पर भी आकर खड़ा हो जाय तो भी सहज कुछ पता न चले। इस प्रकार बाहर के आदमियों को यहाँ कोई गड्ढा या सुरंग आदि होने का सन्देह तक नहीं होता था।

तीन रातों के अन्दर-अन्दर सब काम मैंने गुप्त रूप से पूरा कर डाला। अन्तिम रात को जाकर मैं इससे निश्चित हुआ। इस समय तक रात भी बीत आई थी, इसलिए सवेरे के स्नान के बहाने मैंने अपनी देह की धूल-मिट्टी की सफाई की और उसे अच्छी तरह धो डाला।

इसी समय सूरज नारायण ने दर्शन दिये। उन सहस्र-किरण भगवान भुवन-भास्कर की इस समय की छटा का क्या कहना था! अंधेरा दूर हो चुका था, परन्तु सफेद चमकीले तारे आसमान पर अब भी जगमगा रहे थे।

इसी समय लाल-लाल सूरज-मंडल प्रगट हुआ और एसा लगा मानो नक्षत्र माला की लड़ी में किसी ने एक बड़ा सा लाल पिरो दिया हो। यदि काली रात के अँधेरे को एक मस्त हाथी खयाल कर दिया जाय, तो सूरज की उपमा सहज ही ऐसे केसरी सिंह से दी जा सकती है जिसने उस मदमस्त हाथी को मार भगाया हो। पूरब की ओर खड़ा हुआ पहाड़ इस समय सुनहरी पड़ गया था। इसकी सोने की तरह चमचमाती हुई चोटी पर लाल-लाल सूरज ऐसा लग रहा था जैसे किसी दिव्य और अलौकिक पुरुष की खेल-कूद और नृत्य-क्रीड़ा के लिए यह एक रंग-मंच सजाया गया है। आकाश इस समय एक नीले सागर की तरह प्रतीत होता था और उस पर छितराए हुए सफेद बादल इस समुद्र की लहरों जैसे लग रहे थे। इन बादल रूपी लहरों को पार करता हुआ सूर्य किसी खूँख्वार और चमकीले नाके की तरह जान पड़ रहा था। यह उषाकाल का समय था, इसलिए सूरज निकलने के साथ ही पूरब दिशा में लाली छा गई थी। लाल-लाल सूरज,लाल ही उसकी किरणें और लाल-लाल ही पूरब दिशा! इन दोनों पर एक-सी गुलाबी आभा चढ़ी देखकर मुझे ऐसा लगा कि पूरब दिशा रूपी स्त्री पर जब अनुराग के कारण लाली छा गई तो उसे देखकर सहस्र-किरण भगवान सूर्य भी उस पर अनुरक्त हो उठे और उनका चेहरा भी शरमा आया।

इस सुहावने दृश्य का आनन्द लेते हुए मैंने स्नान आदि समाप्त किया। फिर मैं पूरब की ओर मुँह करके खड़ा हो गया। खुदाई का काम करते-करते मेरी हाथों की हथेलियाँ लाल पड़ गई थीं। अपने इन्हीं हाथों की लाल-लाल कमल जैसी अँजुली में पानी लेकर मैंने सूरजनारायण को अर्घ्य चढ़ाया। इसके बाद अपनी कुटिया में लौट आया।

आज तीसरा दिन था। यह भी बीत चला और साँझ हो गई। दिन नायक भगवान् सूर्य अस्ताचल पर आ पहुँचे। इनका उजाला ऐसा हल्का लाल-सा रह गया जैसा गैस के पहाड़ की चट्टानों की हल्की-हल्की परछाई पड़ने से उत्पन्न हो जाता है। क्रमशः आसमान में साँझ उतर आई।

ऐसा प्रसिद्ध है कि हिमालय-सुता पार्वती की किसी बेढंगी माँग पर

महादेव जी को साँझ की रचना करनी पड़ी थी। यह आसमान भगवान् महादेव का ही शरीर माना जाता है। शंकर जी के इस शरीर के साथ मिली हुई सन्ध्या भी नित्य प्रगट हुआ करती है। उस दिन भी सन्ध्या-रूपिणी बाला, आकाश-रूपी महादेव जी की देह में अवतीर्ण हो चुकी थी। अस्त होता हुआ गोल-गोल और लाल सूरज इस सन्ध्याकालीन आकाश पर एक रेखा-सा दिखाई दे रहा था। यह ऐसा लगता था, मानो सन्ध्या-सुन्दरी का लाल चन्दन-से रँगा हुआ एक ओर का स्तन हो।

साँझ हाने के साथ ही आन्ध्र-नरेश मेरे पास आ पहुँचे। उन्होंने मेरे पृथ्वी पर पड़े हुए पैरों पर माथा नवाकर और हाथ जोड़कर मुझे प्रणाम किया। इस तरह सिर झुकाने से उनका मुकुट मेरे पैर की उँगलियों के साफ और चमकीले नाखूनों के निकट आ लगा, जिसके कारण मेरे उन उजले तथा चमकीले नाखूनों की किरणों ने राजा के मुकुट को ढक-सा लिया।

आन्ध्रराज बड़ी विनय के साथ प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए ही मेरे सामने बैठ गए। उन्हें आये देखकर मैंने कहा—"महाराज आपका बड़ा सौभाग्य है कि जिस काम में आप सफलता चाहते हैं उसका रास्ता मैंने ढूँढ निकाला है।

इस दुनिया के अन्दर ऐसा देखने में आता है कि जो लोग धन-दौलत के विशेष चाहक नहीं होते, उन्हें रुपया-पैसा मिलता भी नहीं है। दूसरी ओर, जो लोग आलस्य छोड़कर अपने काम के पीछे पड़ जाते हैं उनके हाथ सफलता भी जरूर आती है, बल्कि बिचारी सफलता तो ऐसे उद्यमी लोगों के पास-ही-पास छाया की तरह लगी रहती है। इस कारण हर काम में सफलता के लिए जी तोड़कर लगन के साथ कोशिश करने की आवश्यकता है।

मेरे सम्पर्क में आप इधर थोड़े दिनों से ही आये हैं,किन्तु मैं देखता हूँ कि आप बड़ी सज्जनतापूर्वक मुझसे मिलते हैं। आपका आचार-व्यवहार भी मैंने उत्तम पाया है। किसी तरह की पाप भावना आपके अन्दर मैंने नहीं पाई। आप सदा बड़े पूज्य भाव से मुझे देखते रहे हैं और मेरे प्रति मान-आदर भी आपका बहुत रहा है। इन सब कारणों से आपने वस्तुतः

मेरा हृदय जीत लिया है । इसी से आपके लिए एक विशेष उपाय और भारी उद्योग मुझे करना पड़ा है ।

वह उपाय यह है कि इस तालाब को मैंने अनेक योग साधनों के द्वारा विशेष रूप से शुद्ध और संस्कारयुक्त बना दिया है । इसमें अद्भुत और अलौकिक गुण आ गए हैं । इसी के द्वारा आज आपको अपने काम में सिद्धि प्राप्त होगी ।

आप ऐसा कीजिए कि आज ही इसी रात को जब रात आधी बीत चुके तब इस तालाब में स्नान कीजिए । स्नान करते हुए ही नीचे पानी के अन्दर बैठ जाइए और इन निरन्तर चलते रहने वाले प्राणों को आप रोकिए । इन्हें जितनी देर हो सके रोके हुए आप पानी के नीचे ही लेटे रहें ।

इसी समय ऊपर किनारे पर से कमल की डण्डियों समेत बहुत से फूल तालाब में डाले जावें । ये पानी में वैसे-के-वैसे ही स्थिर होकर पड़े रहेंगे । कुछ देर में बहुत से हंस तैरते और खेलते हुए उधर आवेंगे, परन्तु पानी में पड़े उन कमलों की डण्डियों के काँटों में ये उलझ और फँस जायँगे । इनकी चुभन के कारण शरीर-पीड़ा से व्यथित होकर ये हंस मारे डर और घबराहट के चीखने-चिल्लाने लगेंगे । आप पानी में पड़े-पड़े इन हंसों की आवाज पर कान लगाए रहें । इसी समय एकदम तालाब के भीतर से पानी की कुछ गड़गड़ाहट-सी सुनाई पड़ेगी । थोड़ी देर बाद यह सब शांत हो जायगी । तब आप पानी में से निकलें ।

इस समय तक आपकी सारी देह पानी से खूब तर हो चुकेगी । आपकी आँखों में भी कुछ-कुछ गुलाबीपन आ जायगा । इस समय आप जिस रूप को धारण करके निकलेंगे, उसे देखकर आपकी सब प्रजाएँ बहुत आनन्दित होंगी । बस आपके इस स्वरूप के सामने फिर उस यक्ष की ताकत नहीं रहेगी कि वह ठहर सके । उस राजकुमारी पर से वह तुरन्त भागेगा । उस समय वह राजकन्या ज्योंही आपको देखेगी, त्यों ही उसका मन आपकी ओर खिंच जायगा । आपके चित्त में उसके प्रति जो एक गहरे और स्थिर प्रेम का भाव है, उस प्रेम की जंजीर से उसका हृदय बँध-सा

जायगा। फिर वह आपको नहीं छोड़ सकती, यहाँ तक कि आपको बिना देखे एक-एक पल तक बिताना उसे कठिन पड़ जायगा। जिस समय यह राजकन्या आपकी हो गई, फिर इस धरती रूपी स्त्री का क्या कहना! इस पृथ्वी पर आपके जितने वैरी हैं, उन्हें तो आप खेल-खेल में ही हरा डालेंगे और फिर इस सारी वसुन्धरा को आप अपनी मुट्ठी में ही समझें।

बस इसे पक्की बात जानिए। मेरे इस कथन में सन्देह या शंका का कोई काम नहीं है।

अब यदि आप यह महान कार्य करना चाहते हों तो ऐसे पंडितों को बुलवाइए जिन्होंने सब वेद-शास्त्र अच्छी तरह पढ़े हों और इस शास्त्र-ज्ञान के द्वारा जिनकी मति साफ और स्थिर बन चुकी हो। साथ ही और भी अधिकारी विद्वानों को तथा दूसरे-दूसरे अपने हितैषियों को इकट्ठा कीजिए। इन सबके साथ अच्छी तरह सोच-विचार और सलाह कर लीजिए।

एक बात और, सौ-दो सौ गोताखोर मछुए भी बुलवाइए। ये लोग जाल डालकर पहले इस तालाब को अच्छी तरह देख-भाल लें। इन गोताखोरों के साथ ऐसे लोग भी रहें जो आपके मनरंग मित्र-हितैषी और परम विश्वासी हों। इनके द्वारा तालाब को भीतर से खूब अच्छी तरह दिखला लीजिए। इनके अतिरिक्त तालाब के किनारे-किनारे बाहर की चौकसी के लिए पहरेदार लगा दीजिए। कम-से-कम आठ-आठ गज की दूरी पर एक-एक सन्तरी तैनात रहे। इनके द्वारा बड़ी मुस्तैदी से रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए, क्योंकि कौन जाने किस समय क्या हो जाय! वैरी लोग जरा सा मौका पाते ही क्या-से-क्या कर डालेंगे. इस बात का किसी को कुछ पता नहीं रहता।"

इस प्रकार अपनी यह योजना मैंने सविस्तार से राजा के सामने रख दी। मेरी बात उसे पसन्द आ गई और अन्त म रक्षा व्यवस्था का सुझाव तो उसे बहुत ही अच्छा लगा। उससे वह खास तौर से प्रभावित हुआ।

अब उसने मेरे कहने के अनुसार वहाँ का सब इन्तजाम करवा

दिया और जगह-जगह पहरेदार लगा दिए।

जिन अफसरों के हाथ में यह काम सौंपा गया था, वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि कलिंग की राजकुमारी पर महाराजा बेतरह लट्टू हो रहे हैं, उसकी चाह उनके दिल से निकल नहीं सकती और उसे पाने के लिए वे इन साधु महात्मा का बतलाया हुआ उपाय ज़रूर करेंगे। इसलिए इस काम में किसी तरह का ऐब या तालाब में कहीं कोई खतरा उन अफसरों को दिखाई भी नहीं दे सकता था। उन्होंने इस काम की कोई नुकताचीनी या इसमें किसी तरह की रुकावट नहीं डाली।

इस प्रकार राजा उस तालाब में घुसने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने मेरे कहने के अनुसार सब काम पूरा करके राजकुमारी को अपनी बनाने का पक्का इरादा कर लिया था। जब वह इस काम के लिए अच्छी तरह तैयार हो चुके तो अन्त में मैंने उनसे कहा—

"राजन्, आपके इस राज्य में और आप जैसे धर्मात्मा सज्जन के निकट हमारा बहुत दिनों तक रहना हुआ है। हम साधु-संन्यासियों के लिए एक जगह अधिक समय तक टिकना ठीक नहीं रहता, इसलिए अब हमें आगे चलना है। खेद है कि आपको अपने काम में सफल और कृतकृत्य होता हुआ हम नहीं देख पाऍंगे। आपके राज्य में हमने भिक्षा पाई और भोजन आदि भी पाया, परन्तु तो भी आपकी कोई भलाई या उपकार हम नहीं कर सके। अब साधु-धर्म के कारण हमें यहाँ से आगे के लिए चल देना पड़ रहा है। बिना भलाई का बदला चुकाए इस प्रकार चला जाना आर्यजनों की परिपाटी नहीं है, परन्तु विवशता है, क्या करें! हमारा यहाँ का अन्न-जल समाप्त हो चुका।"

मैंने फिर बात का रुख बदल देने की गरज से कहा—

"यहाँ इतने अधिक समय तक हम क्यों टिके रहे, इसका कारण भी अब आप समझ गए होंगे। आपके इस काम की पूर्ति हो और आपको सफलता मिले, यही इसका कारण है। वह महान् कार्य आज पूरा होता है। अब आप अपने घर जाइए। वहाँ जाकर खूब सुगन्धित उत्तम जल से स्नान

करके तेल-फुलेल, चन्दन आदि लगाइए और सफेद मालाएँ धारण कीजिए। फिर अपने सामर्थ्य के अनुसार दान-दक्षिणा देकर अपने राज्य के ब्राह्मणों को जिमाइए, उनका अच्छी तरह आदर-सत्कार करके आशीर्वाद लीजिए। यह काम करते-करते आपको आधी रात हो जायगी। उस समय तिल के तेल में एक हज़ार मशालें जलाकर उनके साथ-साथ आप अपने महल से चलिए। अमावस का घना अँधेरा सब इससे दूर हो जायगा। इस प्रकार विधिपूर्वक इस तालाब पर आकर अगले काम में लग जाइए और अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए पूर्ण रूप से यत्न कीजिए।"

राजा ने सब बातें ध्यान से सुनीं। मेरे वैराग्य भाव पर उसने बड़ी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की। फिर बहुत कृतज्ञता दिखाते हुए कहने लगे——

"भगवन्, आपका हमें छोड़कर चल देना और ऐसे समय आपका सत्संग न मिलना, यह तो हमारे काम में सिद्धि होने पर भी एक तरह से असिद्धि के बराबर ही है। सारी दुनिया जानती है कि आप वीतराग महात्मा हैं। आपको राग-द्वेष छू तक नहीं गए हैं। फिर भी मैंने तो महाराज का कोई अपराध नहीं किया और कोई पाप भी मुझसे नहीं बन पड़ा है। तब आप मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हैं? आपकी अकस्मात् विदाई से हृदय को बड़ा दुःख होता है। परन्तु आप महान् हैं! आप जैसे पहुँचे हुए योगी की बात को टालना भी अनुचित है।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ और बड़ी श्रद्धा के साथ झुककर मुझे नमस्कार करके स्नान आदि के लिए महल की ओर चला गया।

इधर यहाँ जब एकान्त हो गया और रात खूब हो चुकी तब मैं भी अकेला जंगल की ओर निकला और तालाब के किनारे उस बाहर वाले छेद से सुरंग में जा घुसा। वहाँ बैठकर एक बारीक-से छेद में कान लगाए बाहर की सब टोह-खबर लेता रहा। जब आधी रात हो चुकी तब मेरे कहने के अनुसार नहा-धोकर राजा वहाँ आया। उस समय तालाब के चारों ओर पहरा बिठा दिया गया। इसके बाद जाल डालने वाले मछुए और गोताखोर बुला लिये गए। उनके द्वारा उस तालाब का सब कीचड़-कंकड़

निकलवाकर उसे साफ करवा दिया गया। जब सब तरह से देखभाल कर ली गई और इतमीनान हो गया तो राजा साहब बड़ी शान के साथ तालाब के पानी में उतरे और किलोलें करने लगे। कुछ देर नहाने के बाद आप नीचे पैठे। ज्यों ही वे नीचे गये मैंने तालाब के अन्दर वाले छेद में से झपटा मारा। वे खूब गहरे पानी में तो थे ही, इधर नाक-कान भी उन्होंने बन्द कर रखे थे। मैंने झट उनके बिखरे हुए बाल पकड़ लिए और जैसे पानी में गये हुए हाथी को नाका नीचे-ही-नीचे खींच लेता है उसी तरह उनके कपड़े और बाल पकड़कर मैं उन्हें उस सुरंग में दबोच ले गया।

वहां लात-घूँसों से मैंने उसे खूब मारा। उस समय मुझे कनकलेखा की याद हो आई और बड़ा क्रोध चढ़ा। जैसे यमराज ने अपने तेज और कँटीले लोहे के डण्डों से कभी किसी को करारी मार लगाई होगी, उसी तरह मैंने सब दया-माया छोड़कर उसे खूब कड़ी-कड़ी चोटें दीं। इस मार के खाते ही थोड़ी देर में वह यमपुर सिधार गया। पानी में से उसकी मुर्दा देह वहीं अन्दर सुरंग में मैंने डाल दी और उसे पहले की तरह मूँद दिया।

इसके बाद पानी के नीचे से मैं ऊपर तालाब की सतह पर आ गया। राजा के अर्दली और सिपाही आदि सब वहाँ जमा हो गए। मुझे देखकर और अपने राजा का रूप परिवर्तन समझकर उन्हें किसी तरह का सन्देह न हुआ। हाँ, मेरी सुडौल शारीरिक गठन को उन सब ने बड़े अचरज के साथ देखा। वे उसकी बड़ी सराहना करने लगे।

इसके पश्चात् तैयार होकर मैं हाथी पर सवार हुआ। मेरे ऊपर सफेद छत्र चँवर आदि सब राजचिन्ह लगाये गए। धीरे-धीरे मेरा हाथी मुख्य महल पर आया। आगे-आगे डंडे लिये हुए सिपाही रास्ता निकालते चल रहे थे। मुझे देखने को चारों ओर से लोगों की भीड़ टूटी पड़ती थी। यहाँ तक कि आगे बढ़ना कठिन हो गया। यह देखकर उन आगे वाले सिपाहियों ने भीड़ पर बड़े ज़ोर से डण्डे बरसाने शुरू किये, तब कहीं मार से घबड़ाकर भीड़ छँटी। इस तरह बड़ी मुश्किल से लोगों ने रास्ता दिया। वह रात महल में बड़ी उत्सुकता और कौतूहल में कटी। आँखों में

नींद तो आई ही नहीं।

धीरे-धीरे सवेरा हुआ और सब लोगों को सूर्य नारायण के दर्शन हुए। मैं रात को हाथी पर चढ़कर आया था, शायद इसी से आज सवेरे सूरज को देखते ही मुझे लाख के पानी से रँगे हुए हाथी के गोल-गोल सिर का ध्यान हो आया। सूरज उसी तरह लाल-लाल गोल-मटोल दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे दिन कुछ और चढ़ा। अब सूर्य कुछ अधिक सफेद, साफ और चमकीला हो उठा। इस समय वह ऐसा लग रहा था, मानो पूरब दिशा रूपी रमणी का रत्नों से जड़ा हुआ आइना हो।

मैंने बड़ी स्वाभाविकता के साथ सब नित्य नियम समाप्त किये और अपने राजकीय सिंहासन पर जा बैठा। आन्ध्र के राजाओं का यह सिंहासन बड़ा सुन्दर बना था। इसमें बहुत से कीमती पत्थर और हीरे-जवाहरात कतारों में जड़े हुए थे, जिनमें से बड़ी चमकीली और रंगबिरंगी किरणें फूट रही थीं। इन किरणों के कारण सिंहासन जगह-जगह अनीदार और नुकीला दिखाई पड़ता था। इस सवेरे के प्रकाश में वह बहुत सुन्दर लग रहा था। राजसिंहासन के आसपास बहुत से अंगरक्षक बैठे थे। न जाने कब कैसा मौका आ पड़े, इसलिए खतरे का सामना करने की दृष्टि से उन लोगों ने खूब अच्छी तरह हथियार बाँध रखे थे। इनकी देह का एक-एक हिस्सा ज़रह-बख्तर में मढ़ा हुआ था। जिस नाज़ुक काम पर वे तैनात थे, उसी के अनुरूप इन लोगों में फुर्ती और मुस्तैदी थी। मैं इन अंगरक्षकों से बोला—

"अपने ऋषि-मुनियों के योगबल को तो देखो कि मुझे इतना सुन्दर दर्शनीय रूप मिल गया! यह मेरा नया शरीर क्या है, बिलकुल ऐसा लगता है, जैसे इस पर सैकड़ों हज़ारों कमलों की परछाईं पड़ रही हो। इसे तो बारम्बार देखने को जी चाहता है। वे साधु महात्मा भी कैसे अद्-भुत पुरुष थे! संयमी इतने कि इन्द्रियों का उन पर जैसे कोई दाँव ही नहीं लग पाता था! उन्हीं की कुछ ऐसी कृपा हुई कि उस तालाब के सुन्दर कमल भी जहाँ-तहाँ खिले रहे, खुशी में भरे हुए भौंरे भी गुंजार करते रहे, और उन्होंने उसका संस्कार करके उसमें अद्भुत अलौकिक शक्ति भर दी।

इसी से मेरी यह देह कुछ-से-कुछ हो गई।

आज अगर यहाँ कोई नास्तिक हों, तो इस दैवी शक्ति का चमत्कार देखकर उन सबका सिर लज्जा के मारे झुक जाय।

इसके उपलक्ष में अब ऐसा करो कि जहां-जहां ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, यम, वरुण, कुबेर आदि बड़े-बड़े देवताओं के मन्दिर हों, वहां-वहां खूब अच्छी तरह श्रद्धा-भक्ति के साथ नृत्य, संगीत, भजन, कीर्तन आदि किया जाय। भिखारियों से कह दो कि वे आकर इस महल से मन भरकर धन-द्रव्य ले जायँ, जिससे उनके सब दुःख, क्लेश और गरीबी आदि दूर हों।"

मेरी इस आज्ञा को सुनकर सब आश्चर्यचकित और बड़े आनन्दित हुए। उनकी खिली हुई आंखों से खुशी बरसने-सी लगी। सब लोग मिलकर 'महाराज की जय हो!' 'त्रिभुवन पति की जय हो!' इस प्रकार बड़े ऊँचे स्वर से बारम्बार मेरा जय-जयकार करने लगे। ये जयकार इतने ऊँचे-ऊंचे और ज़ोर-ज़ोर से हो रहे थे कि सब जगह सन्नाटा छा गया और चारों दिशाएँ स्तब्ध-सी रह गई। लोग चारों तरफ मेरी बड़ाई करने लगे और मेरा ही गुणगान सबके मुँह से सुनाई देने लगा। आस-पास के दरबारी कह उठे—"महाराज, इस समय दुनिया में आपका इतना नाम हो रहा है कि उसके सामने दुनिया के सबसे पहले राजा भगवान मनु की कीर्ति-चर्चा भी फीकी पड़ गई है।"

इस तरह मेरी खूब तारीफ कर चुकने के बाद उन्होंने मेरे कहने के अनुसार सब देवी-देवताओं की पूजा-आराधना और दान आदि के कार्य बड़ी अच्छी तरह पूरे किये।

इधर ऐसा हुआ कि मेरी प्यारी कनकलेखा की शशांकसेना नाम की एक बड़ी पक्की सहेली थी। वह किसी काम से बाहर दरबार में आई और जहां मैं अकेला बैठा था उस ओर निकल आई। मैंने उसे एक तरफ बुलवाया और एकान्त में उससे कहा—"सुनो तो, तुमने मुझे इससे पहले भी कभी देखा है?"

उसने बड़े ध्यान से मेरी ओर देखा। देखते ही वह खुशी के मारे

उछल पड़ी। फिर एक नज़र डालकर बड़े हाव-भाव और मस्ती के साथ ज़रा मुस्कराई। इसी में उसके नन्हे नन्हे सफेद दांत चमक उठे। उसके बाद बड़ी नज़ाकत किन्तु कायदे के साथ अपने दोनों हाथ जोड़कर उसने मुझे नमस्कार किया। ऐसा करते समय उसके गुलाबी कोंपल जैसे होंठ, दोनों हाथों की आड़ में आ गए। इस समय तक शायद उसे पिछली सब बातें याद हो आई थीं, क्योंकि तुरंत ही उसकी आंखों में खुशी के आंसू छलक उठे। कुछ बूँदें टपक भी पड़ीं। इन आंसुओं के साथ-साथ उसकी आंखों का काजल तक छूट गया। फिर वह हाथ जोड़े हुए ही धीमे-धीमे कह चली—

"मैं जान गई ! पर ऐसी बात हो किस तरह सकती है ? कहीं यह किसी जादूगर की करामात ही न हो ! यह हुआ किस तरह ? बतलाओ तो सही !"

उसकी ये बातें सुनकर मैं समझ गया कि बहुत अधिक खुशी और स्नेह के आवेश में इसके मुँह से ऐसी अटपटी बातें निकल पड़ी हैं।

फिर मैंने उसे अपना सब हाल कह सुनाया। उसी के द्वारा अपनी प्यारी कनकलेखा को अपना सन्देश भी कहला दिया, जिसे सुनकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा।

इसके पश्चात् मैंने कलिंग नरेश महाराज कर्दन को तुरन्त कैद से छुड़वाया और उनका खूब मान-आदर किया। उन्होंने भी मेरे किये को बहुत माना और विधिपूर्वक कनकलेखा के साथ मेरा विवाह कर दिया।

इस प्रकार अब आन्ध्र राज्य के साथ-साथ मैं एक तरह से कलिंग राज्य का भी सर्वेसर्वा बन गया।" अपना यह सब हाल राजवाहन को सुना चुकने पर अन्त में मन्त्रगुप्त बोले—

"कुमार, आन्ध्र और कलिंग पर अपना सिक्का बिठाकर मैं निश्चिंत हुआ ही था कि इतने में अपने मित्र अंगराज पर शत्रुओं के हमले का समाचार आया। मालूम हुआ कि शत्रुदल उन्हें एकदम से कुचल ही डालना चाहता है। यह सुनते ही मैं एक भारी सेना लेकर उनकी मदद के लिए दौड़ा। यहाँ आकर देखा तो आपको अपने सब मित्रों के साथ मिलते हुए पाया।

आपके अचानक दर्शन हो गए । इस समय हृदय को जैसा अपार आनन्द हुआ है उसको बता सकना मेरी शक्ति से बाहर है ।"

मन्त्रगुप्त की अपने वैरी पर इस प्रकार के कौशल द्वारा विजय पाने की बात सुनकर कुमार राजवाहन बड़े चकित और प्रसन्न हुए । एक आनन्द-मयी मुस्कान से उनका चेहरा जगमगाने लगा । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मुस्कान के रूप में कहीं से चाँदनी आकर फैल गई है और इस ज्योत्स्ना जल में कुमार के सुन्दर ओष्ठ स्नान कर रहे हैं ।

कुमार ने और उनके सब मित्रों ने भी मन्त्रगुप्त की सूझ, कोशिश और होशियारी की बड़ी सराहना की । फिर वे कहने लगे––

"मित्रो, इन योगीराज जी महाराज का कौतुक तो बड़ा अद्भुत रहा । इन्होंने जो महाकठिन और घोर तपस्या की थी, वह यहां ऐसी जगह आकर फली । बहुत ठीक ! अच्छा, हँसी-मजाक की बात तो अलग है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बुद्धिमानी के साथ-साथ बल का जोड़ यहीं देखने में आया । मन्त्रगुप्त की आपबीती में इन दोनों का ऐसी सुन्दरता के साथ मेल मिला है कि जितनी सराहना की जाय थोड़ी है ।

मन्त्रगुप्त, तुम्हारे इस कौशल और पराक्रम का हाल सुनकर सचमुच बड़ी खुशी हुई ।" इतना कहने के बाद राजवाहन ने विश्रुत की ओर नजर डाली । विश्रुत अपने नाम के अनुरूप थे भी बहुश्रुत । उन्होंने सुन-सुनकर ही बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था । राजकुमार राजवाहन इस समय बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे । हर्ष,आश्चर्य और उल्लास उनके नेत्रों से बरसे पड़ते थे । जब उन्होंने अपनी खिली हुई आँखें घुमाकर एकाएक विश्रुत पर नजर डाली तो उनकी इन आँखों को देखकर सबको प्रफुल्लित कमलों का ध्यान हो आया ।

राजवाहन विश्रुत से मानो आँखों ही आँखों में कह रहे थे––"आइये, अब आप पधारिए और अपनी रामकहानी शुरू कीजिए !"

७

विश्रुत की आपबीती

मन्त्रीपुत्र विश्रुत अपना हाल सुनाते हुए राजवाहन से बोले—

"कुमार, मैं भी आपकी खोज में चक्कर लगाता रहा और विन्ध्याचल के जंगल में जा निकला। वहां एक जगह देखता हूँ कि कुएँ के पास एक लड़का है। उसकी उम्र आठ साल की होगी। बिचारा भूख-प्यास के मारे बड़ा बेचैन था। देखने से किसी अच्छे घर का जान पड़ता था। उस बिचारे की देह ऐसी नहीं थी, जो इन कष्टों को सह सके। मुझे देखकर वह घबराहट के कारण थरथराती हुई-सी आवाज में कहने लगा—

"महानुभाव, मैं बड़ा बेचैन हूँ, कृपा करके मेरी कुछ मदद कर दीजिए। बात यह है कि रास्ता चलते-चलते मुझे इतने जोर की प्यास लगी कि मेरे प्राणों पर आ बनी। मेरे साथ एक बूढ़ा आदमी था, उसने सहायता करनी चाही और कुएँ पर पानी भरने लगा। परन्तु वह इसके अन्दर गिर पड़ा। यहां वही मेरा एकमात्र सहारा था सो वह बिचारा भी गिर गया। मेरा इतना बूता नहीं जो उसे इसमें से निकाल सकूं। आप ही सहारा दे दीजिए।"

उसकी बात सुनकर मैं कुएँ पर आ गया और एक लम्बी-मजबूत बेल को रस्सी की तरह मैंने कुएँ में लटकाया। इसके सहारे धीरे-धीरे उस बूढ़े को ऊपर निकाल लिया। इसके बाद मैंने एक लम्बे खोखले बांस को कुएँ में डाला। जब वह पानी की सतह पर ज़ाकर लग गया तब उसमें मुँह लगा-

कर मैंने हवा को ऊपर खींचना शुरू किया। इस तरह करने से पानी ऊपर खिंच आया। अब मैंने कुछ खाद्य पदार्थ पाने के विचार से इधर-उधर पेड़ों पर नज़र डाली। थोड़ी दूर पर एक बड़हल का पेड़ दिखाई दिया। पर कठिनाई यह थी कि यह बेहद ऊँचा था। अगर ऊपर तीर छोड़ा जाता तो शायद इसकी ऊँचाई को पार न कर पाता। मैंने जैसे-तैसे पत्थर मार-मार कर इसकी चोटी पर लगे कुछ फल नीचे गिरा दिये। उन दोनों को ये फल खिलाकर मैंने पानी पिलाया।

इसके बाद हम लोग पेड़ के नीचे बैठ गए। मैंने उस बूढ़े से पूछा—"क्या आप बतला सकते हैं कि यह बालक कौन है ? आप भी अपना परिचय दीजिए। आप दोनों इस मुसीबत में कैसे पड़ गए ?"

बूढ़े बिचारे की आँखों में आँसू भर आए; वह रोने लगा। फिर काँपती हुई आवाज़ में और भर्राये हुए गले से कहने लगा—

"आपने प्राचीन विदर्भ देश या बरार का नाम तो सुना होगा। वहीं पर पुण्यवर्मा नाम के एक राजा थे। वह महाराज भोज के वंश में हुए हैं और उस कुल का उन्हें भूषण स्वरूप समझना चाहिए। वह बेहद गुणी व्यक्ति थे। धर्मात्मा इतने कि मानो इनके रूप में धर्म के ही एक अंश ने अवतार ले लिया हो। उनके शरीर में बहुत बल था। साथ ही वह बड़े सत्यवादी, दानी और नम्र पुरुष थे। इसलिए उनका नाम बहुत फैला। आम लोगों को वह बड़ी अच्छी-अच्छी बातें बतलाया करते और सुन्दर सीख देते रहते थे। जो नौकर एक बार उनकी टहल करने लगता वह इतना खुश रहता कि फिर नौकरी छोड़ने का नाम न लेता था। वह बाहर से देखने में जैसे भव्य मूर्ति थे वैसे ही बुद्धि भी इनकी बड़ी तीव्र थी। सदा किसी-न-किसी धन्धे में लगे रहते थे। जब उन्हें किसी विषय में सन्देह या शंका होती तो यह पता लगाया करते कि धर्मशास्त्र इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं। इस प्रकार धर्मशास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही वह किसी बात का निश्चय करते थे। काम भी वही शुरू किया करते जिसे स्वयं पूरा कर सकते। हमेशा लोकोपकार के या आम जनता की भलाई के कामों में ही उनकी तबियत लगती और हर एक काम

को बड़े कायदे के साथ किया करते थे। उनके दरबार में विद्वानों का बड़ा आदर होता। अपने सेवकों और सहायकों को भी पद, सन्मान और इनाम आदि के द्वारा वह सदा सन्तुष्ट रखा करते थे। गैरों के साथ-साथ अपनों का भी उन्हें बड़ा खयाल रहता था, इसलिए भाई-बन्द और कुटुम्बियों को आगे बढ़ाने, तथा ऊँचा उठाने की वह सदा कोशिश किया करते। दूसरी ओर अपने वैरियों को नीचा दिखाने का कोई अवसर वह चूकते नहीं थे। ऐसे बड़े आदमी प्रायः कानों के कच्चे हुआ करते हैं,परन्तु राजा पुण्यवर्मा इस तरह के नहीं थे। वह किसी की ऊल-जलूल बातों पर कभी कान न देते। यद्यपि उनमें इतने गुण थे फिर भी जहां कहीं कोई अच्छी बात देखने में आती, वे उसे तुरन्त ग्रहण करने की चेष्टा किया करते थे। भिन्न-भिन्न कला-कौशल, हुनर और दस्तकारियों के भी राजा पुण्यवर्मा बड़े अच्छे जानकार थे। धर्म-पुस्तकों के साथ ही अर्थशास्त्र के ग्रन्थों का भी वह बड़ी रुचि से अवलोकन किया करते। दूसरे के किये हुए को इतना मानते कि ज़रा-सी भलाई के बदले भी अपने उपकारी का अधिक-से-अधिक भला करने की कोशिश करते। अपने राज्य के खजाने और यातायात के साधनों की देखभाल के साथ-साथ राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के कर्मचारियों तथा अधिकारियों पर भी उनकी सतर्क दृष्टि रहती थी। जो लोग खास बहादुरी के या जनता की भलाई के काम करके दिखलाया करते, उन्हें राजा पुण्यवर्मा यथोचित पुरस्कार आदि के द्वारा बहुत उत्साहित करते रहते थे। उनके राज्य में जब कभी कोई कांड हो जाता या दैवी आपत्ति आ पड़ती, तो वह बड़ी मुस्तैदी के साथ उसके दूर करने में जुट जाया करते थे। अच्छे-अच्छे शासकों की तरह सन्धि-विग्रह आदि छहों उपायों का बड़ी युक्ति के साथ वह प्रयोग किया करते। मनु महाराज पुराने समय में जैसी रीत चला गए थे, उसी के अनुसार महाराज पुण्यवर्मा भी अपने राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चारों वर्णों को गुण कर्म स्वभाव के आधार पर व्यवस्थित रखने की चेष्टा करते। इस प्रकार वह राजा बड़े योग्य और गुणी शासक थे और उनका नाम बहुत दूर-दूर तक फैला था। अपने जीवन में अनेक धर्म-कर्म

और अच्छे-अच्छे काम करते हुए उन्होंने बहुत लम्बी आयु भोगी। फिर प्रजा के दुर्भाग्य से वह सुरलोक सिधार गए। इस प्रकार राजा पुण्यवर्मा का नाम पृथ्वी पर अमर हो गया।

महाराज पुण्यवर्मा के बाद अनन्तवर्मा उस राज्य का शासन करने लगे। वह भी उन्हीं के समान अच्छे प्रभावशाली व्यक्ति थे। और सब गुणों में तो वह पूरे उतरे, परन्तु राजकाज में विशेष रूप से नीति सम्बन्धी कामों में उनके अन्दर कुछ ढील रही। इनके मन्त्री का नाम वसुरक्षित था। वह राज्य के बहुत पुराने मंत्री थे। अनन्तवर्मा के पिता पुण्यवर्मा भी उन्हें बहुत मानते थे। वह बड़े खरे आदमी थे।

एक दिन राजा अनन्तवर्मा से उन्होंने कहा—"पुत्र, मनुष्यों के अन्दर अपने जो निजी गुण हुआ करते हैं, उनमें तो तुम अपने परिवार के अन्दर किसी से कम नहीं हो। कला-कौशल, चित्रकारी, नृत्य-संगीत, काव्य-रचना—इन सबमें तुम्हारी प्रतिभा स्वभावतः खूब चलती है, बल्कि औरों की अपेक्षा तुम्हारी अधिक गति है। परन्तु राजनीति में तुझे अपने कुल परम्परागत संस्कार नहीं मिले। तुम जानते हो कि सोने चाँदी आदि धातुओं को जब तक आग में न तपाया जाय तब तक ये निखरतीं नहीं। इसी तरह बुद्धि का हाल है। जब तक नीति-विषयों में यह अच्छी तरह मँज नहीं जाती, तबतक खुलती नहीं। और जिस राजा की बुद्धि न चमकी हो, वह चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसका हाल यह हो जाता है कि जब तक वैरी सिर पर सवार न हो जाय, तब तक उसे होश ही नहीं आता। उस बिचारे को इतनी भी समझ नहीं होती कि कौन हमारे विरोधी पक्ष के हैं और कौन हितैषी हैं; और इन्हें अलग-अलग करके हर एक के साथ यथायोग्य बरताव भी उसे नहीं करना आता। जो राजा यथोचित व्यवहार करना नहीं जानता वह बात-बात में अटकता है और अपने हों या पराये, उसे सभी से नीचा देखना पड़ता है। जो राजा इस तरह नीचा देख जाता है और लाचार या दबा होता है, वह फिर इस योग्य नहीं रह जाता कि अपनी प्रजाओं के लिए कोई नया उपयोगी

काम कर सके या उसके हित की रक्षा कर सके। वह प्रजा को ठीक-ठीक नियमों के अन्दर चला भी नहीं सकता। परिणाम यह होता है कि प्रजा राज नियमों को तोड़ने लगती है। जो रियाया हुकूमत से बागी हो गई, फिर उसका कुछ ठीक ठिकाना नहीं। लोग जो चाहें सो बकते हैं। जिसकी जो मरजी आती है, कर बैठता है। सारे राज्य की दशा ही बिगड़ जाती है। कायदे-कानून की कोई मर्यादा नहीं रह जाती। सब लोग उच्छृंखल हो उठते ह। इस प्रकार जनसाधारण की और साथ-साथ राजा की भी यह जिन्दगी भी बिगड़ जाती है और परलोक का तो कुछ कहना ही नहीं! राजा और प्रजा इस लोक तथा परलोक दोनों ओर से हाथ धो बैठते हैं। वस्तुत: जीवनयात्रा सुख से कट जाय, इसके लिए एकमात्र उपाय यही है कि ऐसे रास्ते से चला जाय जो नीतिशास्त्र द्वारा बतलाया गया है। राजनीति शास्त्र एक ऐसा दीपक है कि इसी के उजाले से जीवन मार्ग का अँधेरा दूर हो पाता है। यह मनुष्य का एक दिव्य नेत्र है, जिसकी दृष्टि भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालों तक बिना रुकावट पहुंचती है। कोई वस्तु चाहे जितनी दूर की हो, अथवा उसके बीच में कितनी ही रुकावटें क्यों न पड़ी हुई हों, नीतिशास्त्र की पैनी नजर इन सबको भेदकर वहाँ तक जा पहुँचेगी। जो व्यक्ति इस शास्त्र से अनभिज्ञ है, उसकी बाहरी आँखें चाहे कितनी ही बड़ी और विशाल क्यों न हों, वह एक तरह से अन्धा ही है, क्योंकि मतलब की बात तो उसे सूझेगी ही नहीं।

इसलिए, पुत्र, तुम इन बाहर की और-और बातों की ओर से अपना चित्त हटाकर राजनीति को सीखो। यही तुम्हारी कुल की विद्या है। इस राजतन्त्र के बल से तुम्हारा अपना सामर्थ्य भी बढ़ जायगा और हर काम में तुम्हें सफलता भी मिलेगी। उस समय फिर किसी की हिम्मत नहीं पड़ेगी कि तुम्हारी बात को टाले या आदेशों को तोड़ सके। ऐसा हो पाया तो फिर चारों समुद्रों से घिरी हुई इस सारी पृथ्वी पर बहुत समय तक तुम निर्विघ्न हुकूमत कर सकोगे।"

राजा अनन्तवर्मा ने वृद्ध मन्त्री की ये बातें सुनकर इतना ही

कहा कि 'आर्यश्रेष्ठ, आप ठीक कहते हैं, मैं आगे से ऐसा ही करूँगा।'

इतना कहकर वह रानियों के महल की ओर चले गए। वहाँ बातचीत के सिलसिले में राजा ने ये बातें रानियों के सामने भी कहीं। इन्हीं के बीच में कहीं राजकुमार का सेवक विहारभद्र भी बैठा हुआ था। यह आदमी दूसरे के मन की बात को ताड़ने में बड़ा होशियार था। राजा की चापलूसी करना ही इसने अपना पेशा बना रखा था। रनवास में रहकर, गाने-बजाने और नाचने में यह आदमी हरदम मस्त रहता। इस विहारभद्र की महल के अन्दर तो दाल गलती नहीं थी, इसलिए ये हजरत बाहर तेरी-मेरी औरतों की ताक-झाँक में लगे रहते। यह आदमी चालाक और मक्कार तो था ही, मुँहफट भी बहुत था। जब जो कुछ मन में आता बक देता। तरह-तरह से मुँह बिचकाना, आँखें मटकाना और इशारेबाजी करना इन सबमें यह खूब उस्ताद था। दूसरों की कमजोरियों पर इसकी हरदम निगाह रहती। महल में रहते हुए भाँडपन भी यह अक्सर किया करता। दूसरों की बुराई और चुगली की बातें इससे कोई जब चाहे सुन ले। छल, फरेब, मक्कारी और धोखाधड़ी के आप पूरे पंडित थे! रिश्वती यह इतना कि औरों से तो नाजायज ढंग से पैसा ऐंठना ही था, मन्त्रियों तक से मौका पड़ने पर रिश्वत लेने में नहीं चूकता था। दुनिया का कोई ऐब ऐसा नहीं, जिसके आप पंडित न हों और दूसरों को सिखा न सकें। काम-शास्त्र का तो आपको आचार्य ही कहना चाहिए।

इन विहारभद्र महाशय ने भी कहीं राजा अनन्तवर्मा की ये बातें सुनीं। आप तुरन्त मुस्कराते हुए बोले--

"महाराज, दुनिया के लोगों का यह हाल है कि यदि सौभाग्य से किसी व्यक्ति को धन-दौलत और ऐश्वर्य मिलते हैं, तो ये धूर्त लोग आ-आकर इधर-उधर के ऊटपटाँग प्रलोभन देने लगते हैं, और उसकी कमियाँ दिखला कर उससे अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। इन धूर्तों के अद्भुत और अजीब तरीके हैं। कुछ लोग आकर मरने के बाद परलोक में मिलने वाले सुखों और ऐश्वर्यों की बड़ी-बड़ी रंगीन आशाएँ बँधाते हैं। इसी नाम पर ये लोग उस

बिचारे का सिर मुँडवाकर उसकी कमर में मूँज की रस्सी बँधवा देते हैं; पहनाने के नाम पर हिरन की खाल में उसका शरीर लपेट देते हैं; ऊपर से उस भलेमानस के सिर पर तो मक्खन चुपड़ते हैं, पर उसे सुलाते हैं भूखा-प्यासा। इसके बाद दक्षिणा के रूप में उस बिचारे का सब कुछ छीनः छान लेते हैं।

इनसे भी जबरदस्त कुछ ऐसे पाखण्डी होते हैं, जो उस भोले आदमी से उसका लड़का, स्त्री, उसका शरीर और यहां तक कि उसके प्राण भी छुड़वा देते हैं। यदि कोई इतना समझदार निकला, जो इस 'तेरह उधार' के लिए अपने 'नौ नकद' छोड़ने को राजी न हुआ, और इनके हाथों न मुँड़ पाया, तो नये ढंग के मक्कार आ पहुँचते हैं।

ये लोग उसके आत्मीय बनकर पहले तो उसके चारों तरफ घेरा-सा डाल लेते हैं, फिर मौका देखकर कहना शुरू करते हैं—'वत्स, यदि कोई हमारे बतलाए हुए रास्ते से चले, तो हम ऐसा उपाय बतलावें कि एक दमड़ी के लाखों पैसे बन जायँ। लोग जो इतने हथियार बाँधे फिरते हैं, उनकी जरूरत ही न रहे, बिना हथियार सब दुश्मनों का सफाया हो जाय। हमारी तरकीब ऐसी है कि आदमी अकेलादम ही क्यों न हो, वह दुनिया भर का बादशाह बन सकता है।"

जब इनसे पूछा जाता है—'भगवान्, ऐसा कौनसा रास्ता है?' तब ये निराली रागमाला छेड़ते हैं और कहने लगते हैं—

"बेटा, सुनो! संसार में राजाओं के लिए चार विद्याएँ हैं—त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षिकी और दण्डनीति। इनमें पहली तीन तो बेहद लम्बी-चौड़ी हैं, इनसे नतीजा भी कुछ नहीं निकलता, इसलिए इनके झंझट में तो पड़ो मत, बस चौथी दण्डनीति को पढ़ना शुरू करो! यों तो यह दण्ड-नीति भी अनन्त और अथाह है, मगर आचार्य चाणक्य जब चन्द्रगुप्त मौर्य को पढ़ाने बैठे, तो उन्होंने इसका संक्षेप करके इसे कुल छः हजार श्लोकों में भर के रख दिया। इस दण्डनीति को ठीक-ठीक पढ़कर अगर तुम इसके अनुसार चल निकले, तो मेरी कही हुई सब बातें सच्ची हो निकलेंगी।"

राजा बिचारे इन गुरु जी के उपदेश को मानकर पढ़ना शुरू कर देते हैं, और रोज बैठे-बैठे इस दण्डनीति को सुना करते हैं। परन्तु यह सुनना खत्म ही नहीं होता और यहां तक कि सुनते-सुनते ही बुढ़ापा आ घेरता है।

बात यह है कि दण्डनीति तो एक पूरा शास्त्र ठहरा और शास्त्रों का यह हाल है कि एक शास्त्र की चुटिया दूसरे शास्त्र से बँधी होती है, और दूसरे की तीसरे से। मतलब यह कि जब तक दुनिया भर के शास्त्रों के पोथे न चाट डाले जावें, तब तक असली तत्त्व हाथ ही नहीं आता। खैर, चाहे थोड़ी देर पढ़ो चाहे ज्यादा देर, उन गुरु जी महाराज की चांदी तो बनी ही रहती है।

इस शास्त्र के पढ़ने का फल भी अद्‌भुत है। उन शिष्य महोदय को गुरु जी का पहला उपदेश यह होता है कि—'बेटा, विश्वास अपनी स्त्री और लड़के का भी मत करना।'

अच्छा, इस शास्त्र में सिखाया क्या जाता है? सीखने के लिए बड़ी-बड़ी गूढ़ बातें हैं। शिष्य को शिक्षा दी जाती है कि अपने पेट के लिए ही भोजन क्यों न बनाना हो, परन्तु यह बात मत भूल जाना कि इतने चावलों से इतना भात तैयार हुआ करता है। इतना भात पकाना हो तो उसके लिए इतना ईंधन बहुत काफी है। और देखो, ईंधन हो या चावल, हर एक चीज को हमेशा तोल-तोलकर लेना-देना चाहिए।

ऐसी-ऐसी बारीक शास्त्रीय बातें बतलाने के बाद, राजा की दिनचर्या के सम्बन्ध में लम्बा-चौड़ा प्रवचन किया जाता है। राजा सवेरे तड़के ही उठ बैठे। फिर धुले या अधधुले मुँह में जल्दी-जल्दी दो-चार कौर ठूँसकर अपने राज्य भर की आमदनी-खर्च का कुल हिसाब सुन डाले। इस काम के लिए सवेरे या शाम के समय का घण्टा-आध घण्टा काफी है। इस प्रकार राजा बिचारा यह आय-व्यय का चिट्ठा ही सुनता रह जाता है और ये धूर्तों के उस्ताद तब तक अपनी दक्षिणा में उससे दुगना-चौगुना रुपया ऐंठ चुकते हैं। आचार्य चाणक्य ने तो पैसा ठगने के कुल चालीस

उपाय गिनाए हैं, पर ये गुरुघण्टाल अपनी अक्ल से उन चालीस के भी भेद-उपभेद करके सैकड़ों-हजारों तरकीबें निकाल लेते हैं।

दिन के दूसरे भाग में राजा को अपनी रियाया के मामले मुकदमे सुनने होते हैं। लोगों के आपसी झगड़ों के कारण चिल्ल-पुकार के मारे कानों के परदे फटने की नौबत आ जाती है। रोज-रोज यही झगड़े-झंझट सुनते-सुनते उसका जीना दूभर हो जाता है। मुकदमों का यह हाल कि मुद्दई और मुद्दालय दोनों तरफ के वकील और गवाह मनमाने ढंग से अपनी-अपनी जीत हो जाने का दावा करते हैं। अन्त में फैसला हो चुकने पर बदनामी तो थोपी जाती है राजा के सिर, और रुपयों से जेबें भरते हैं ये लोग!

दिन के तीसरे पहर में जाकर राजा साहब को नहाना खाना नसीब होता है। पर यह खाया हुआ खाना जब तक पच नहीं जाता, तब तक उसमें जहर मिले होने का डर सताया करता है।

दिन के चौथे हिस्से में कर-वसूली का और नजराने का रुपया लेने के लिए हाथ फैलाए हुए राजा साहब फिर निकल खड़े होते हैं।

पाँचवें पहर में मन्त्रियों के साथ सलाह-मशविरा और विचार-परामर्श करना होता है। यहां की मगजपच्ची के मारे दिमाग थककर चकनाचूर हो जाता है। इस बैठक में मन्त्रिगण आकर ऐसे बैठ जाते हैं, जैसे ये बिलकुल निष्पक्ष और दूध के धुले हुए हों। पर अन्दर-ही-अन्दर सब एक दूसरे के खिलाफ गुटबन्दी किये होते हैं। अब राजा के सामने राज्य की अच्छाई-बुराई की टटोल लगती है; राजदूतों और गुप्तचरों की रिपोर्टें पेश की जाती हैं। कौन-कौनसी समस्याएँ आकर खड़ी हो गई हैं, और उनके क्या-क्या हल होना संभव या असंभव है, इस विषय में तर्क-वितर्क होते हैं। देश की क्या दशा है, मौसम किस काम के लिए मौजूं है, राज्य के अन्दर तरह-तरह के कामकाज और व्यापार-व्यवसाय की कैसी हालत है—ये सब बातें बना-बनाकर झूठ-मूठ पेश की जाती हैं। तमाशा यह कि इन बहुत गम्भीर और विचारणीय बातों में भी मन्त्री महाशय जब

और जैसे चाहें, लौट-पौट नया उलटफेर करते रहते हैं। इन गहरी बातों के साथ-साथ स्वमण्डल, शत्रु-मण्डल और मित्र-मण्डल को लेकर माथापच्ची की जाती है। मजे की बात यह कि यही मन्त्री लोग कभी तो गुपचुप स्वयं ही राज्य से बाहर के लोगों को भड़का देते हैं या अपने राज्य के अन्दर किसी को उभार देते हैं, फिर जाहिरा तौर पर इन सब विद्रोहों को शांत करवाने बैठते हैं। राजा बिचारे बेबस हुए यह सब तमाशा चुपचाप देखा करते हैं। करें क्या? सब-के-सब मन्त्री राजा पर हावी हुए बैठे हैं।

दिन के छठे भाग में राजा को तनिक फुरसत मिल पाती है। इसमें चाहे आराम कर ले और चाहे गुप्त मन्त्रणा। पर इच्छानुसार आराम का यह समय होता है कुल डेढ़ घण्टा।

दिन के सातवें हिस्से में हाथी घोड़े रथ और पैदल, तमाम सेना की निगरानी करते-करते राजा को फिर दलेल भुगतनी पड़ती है।

आठवें भाग में प्रधान सेनापति के साथ बैठकर राजा साहब को इस बात पर माथापच्ची करनी होती है कि कौनसे राज्य को अपने बल पराक्रम का नमूना दिखाया जावे।

इतने में सांझ हो आई। अब सन्ध्या-उपासना कीजिए। इसके बाद रात में भी दिन की तरह वही चक्कर।

रात के भी आठ हिस्से हैं। पहले में जासूसों से मुलाकात करनी है; उनकी लाई हुई खबरों और सूचनाओं के ऊपर हत्याएँ कराना, आग लगवाना और जहर दिलवाना, ये सब बेरहमी और निदर्यता के काम करने वाले खुफिया आदमियों को जगह-जगह तैनात करने का इन्तजाम करना है।

अब रात का दूसरा पहर शुरू होता है। दिन भर काम में जुटे रहने के बाद अब तुरन्त भोजन करो और खाते ही वेदपाठी जी की तरह स्वाध्याय शुरू कर दो।

रात के तीसरे पहर में घण्टा बजने के साथ ही घर जाकर सीधे सो जाओ। ज़रा सोचने की बात है कि जिस आदमी का दिमाग हरदम सैकड़ों-

हज़ारों तरह की फिक्रों और उलझनों में परेशान रहे, उस बिचारे के पास बेफिक्री की नींद फटकेगी कैसे ? तिस पर भी कुल तीन घण्टे सोना !

रात के छठे हिस्से के शुरू होते ही उठकर फिर शास्त्र-चिन्तन और सैकड़ों तरह की फिक्रें !

सातवें भाग में बाहर से आई हुई सलाह सम्मतियां सुनना और जगह-जगह दूतों को भिजवाना। इन दूतों का भी अजब हाल होता है ! ये दोनों हाथों से पैसा बटोरते हैं। इधर तो राजा को खूब बढ़िया और चिकनी-चुपड़ी खबरें सुनाकर उससे धन लेते हैं, और दूसरी ओर इन लोगों के लिए सरकारी सड़कों पर टैक्स या महसूल देने की रुकावट तो होती नहीं, इस कारण वाणिज्य-व्यापार करके भी ये लोग खूब पैसा पैदा करते हैं। इन लोगों को करने के लिए काम चाहे तनिक भी न हो तो भी कोई-न-कोई हीला-बहाना निकालकर और कुछ-न-कुछ काम खड़ा करके ये खूब सैर-सपाटे करते फिरते हैं।

अब रात का आठवाँ पहर आता है। इसमें पुरोहित जी और पंडित जी पधारते हैं और कहते हैं—"महाराज, आज तो बड़ा बुरा सपना देखने में आया। ग्रह बड़े विकट घरों में जा बैठे हैं। सब तरफ अशगुन ही अशगुन दिखाई दे रहे हैं। इनकी शांति का उपाय जल्द करवाइये। देखिए, होम सामग्री के सब बरतन खालिस सोने के होने चाहिएँ, तभी क्रिया-कलाप का फल होगा। और महाराज, ये ब्राह्मण जिन्हें आप देख रहे हैं, इन्हें ब्रह्म से कम मत समझिए। इन्हीं का किया हुआ पूजा-पाठ कल्याणकारी होगा। हाँ देखिए, होम करने के लिए जिन ब्राह्मणों को लगाया गया है, वे बिचारे गरीबी के मारे बड़ी मुसीबत में हैं। इनके बाल-बच्चे बहुत से हैं। हों भी क्यों न ? सब-के-सब बड़े वीर्यवान और तेजस्वी पुरुष ठहरे ! इन गरीबों को अभी तक पिछली दान-दक्षिणा में भी कुछ नहीं मिला है। इन्हें जो कुछ पुण्य किया जायगा उससे निश्चय ही आपको स्वर्ग मिलेगा और सारे अमंगल दूर होकर महाराज की बड़ी लम्बी आयु होगी !

इस ढंग से ये पुरोहित महाराज इन ब्राह्मणों को बहुत-सी दान-

दक्षिणा दिलवाकर फिर उनके द्वारा स्वयं भी खूब माल मारते हैं।

इस प्रकार जो राजा सीधा-सादा होता है, इन लोगों के दाँव-पेंच नहीं जानता, उसे दिन-रात में पल-भर के लिए भी ये लोग चैन नहीं लेने देते। हरदम कामकाज के जुए में जोते रखते हैं और उसकी बड़ी दुर्गत करते हैं। ऐसे राजा का चक्रवर्ती बन जाना तो बड़ी दूर की बात है, बिचारे को अपने छोटे से राज्य की रखवाली करना भी मुश्किल पड़ जाता है।

इस प्रकार के राजा के लिए एक और मुसीबत है। इन शास्त्र के बड़े-बड़े ठेकेदारों के कहने से ही वह दान करता है, दूसरों का सेवा-सत्कार करता है, और मीठे वचनों से सबकी आवभगत में लगा रहता है; किन्तु समझा यह जाता है कि राजा ये सब काम अपना मतलब गाँठने के लिए कर रहा है। इस तरह उस बिचारे की ईमानदारी पर कोई एतबार ही नहीं करता। यह अविश्वास भावना जहाँ आई, वहाँ से लक्ष्मी फिर निश्चय ही किनारा करने लगती है।

वास्तविक बात यह है कि इस नीति का सिखाना-पढ़ाना सिर्फ एक ढकोसला है। जितनी नीति के बगैर दुनिया के काम नहीं चल पाते, उतनी नीति तो आदमी दुनिया में रहते-बसते हुए वैसे ही सीख जाता है। इसके लिए नीति-शास्त्र का कोई काम ही नहीं पड़ता। यह बात सब जानते हैं कि दूध पीता हुआ बच्चा भी ऐसे-ऐसे ढंग निकाल लेता है, जिनसे माँ का दूध उसे मिलता रहता है। इसलिए महाराज, मेरा तो यही कहना है कि ये नीति-शास्त्र के झंझट छोड़कर आनन्द से मौज की जिन्दगी बिताइये।

अनेक बार बहुत से लोग आ-आकर बड़े लम्बे-चौड़े उपदेश दिया करते हैं, वे कहते हैं—"राजन्, इन्द्रियों को इन-इन उपायों से काबू में रखना चाहिए। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर ये छहों मनुष्य के भयानक वैरी हैं, इनसे बचे रहिए; साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतिशास्त्र के अमोघ शस्त्र हैं, मौका पड़ते ही इनसे काम लिया कीजिए। चाहे अपने हों या पराये, किसी पर इनका वार खाली नहीं जाता। देखिए, समय खाली न जाने पावे! हर समय सन्धि, विग्रह, यान-आसन आदि का चिन्तन करते

रहिए! आप तपस्या की ज़िन्दगी बिताया करें, आरामतलबी ठीक नहीं।"
इस तरह के अद्भुत उपदेश देने वाले ये बगला-भगत मन्त्री महाशय स्वयं क्या किया करते हैं, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। ये सब-के-सब चोरी और मक्कारी से आपका धन लूट-लूटकर अपनी रखैलों के साथ मजा किया करते हैं। खैर, इन बिचारों की तो बिसात ही क्या, वे शुक्र, अंगिरा, विशालाक्ष, बाहुदन्ति-पुत्र पराशर आदि, जिन्होंने बड़े-बड़े तन्त्र बनाए, कूटनीतियां निकालते-निकालते जिनकी ज़िन्दगी का सब रस ही सूख गया, उन्हीं को देख लीजिए। उन लोगों ने क्या काम-क्रोध आदि को पूरी तरह जीत लिया था? अथवा वे लोग क्या ठीक-ठीक शास्त्रीय ढंग से जीवन बिताते थे? उन्होंने जब अपनी ज़िन्दगी में तरह-तरह के काम शुरू किये, तो उन्हें भी सफलता और विफलता दोनों का ही मुँह देखना पड़ा। आज दुनिया में क्या दिखाई देता है? जो लोग कुछ भी नहीं पढ़े हैं, वे बड़े-बड़े विद्वानों तक को मात करते हैं। फिर महाराज, आपको तो सौभाग्यवश जन्म से ही बहुत कुछ मिला हुआ है। पहले तो आपको जन्म ही ऐसे कुल में मिला है जिसे सब दुनिया आदर की नजर से देखती है। फिर आपकी आयु का एक चौथाई हिस्सा भी नहीं बीत पाया है। बिलकुल नई उम्र है। देह ऐसी सुन्दर कि लोग देखते ही रह जायँ! साथ-साथ अपार धन-दौलत मिली हुई है। इन सबको हरदम स्वराष्ट्र, परराष्ट्र की चिन्ता करते-करते बरबाद मत किये डालिए। इस राजनीति के जंजाल में जो फँसता है, उसके कौलफेल पर फिर लोगों को भरोसा नहीं रह जाता। ऐसे आदमी को जीवन का रस और आनन्द भी नहीं मिलता, क्योंकि दिन-रात सैकड़ों अड़चनें लगी रहती हैं। फिर एक कठिनाई यह है कि नीति के जंगल में तो बेशुमार पगडण्डियां चली गई हैं; किस रास्ते चला जाय यही निश्चय से नहीं कहा जा सकता। किसी बात को आदमी सन्देहरहित होकर तय ही नहीं कर पाता। रही राज्यरक्षा की बात, सो महाराज, आपके पास दस हजार हाथियों की फौज, तीन लाख सवार और बेशुमार पैदल सिपाही हैं। खजाने सोने-चाँदी और जवाहरात से भरे पड़े हैं। अनाज इतना जमा है कि

दुनिया के सब आदमी हजारों बरसों तक खाते रहें, तो भी आपकी खत्तियाँ खाली न हों। यह इतनी धन-दौलत क्या कम है, जो और बटोरने के लिए पसीना बहाया जाय ? आदमी की जिन्दगी ही कितनी ? कुल चार-छः दिन का जीना है ! उसमें भी इस छोटी सी आयु के बहुत से टुकड़े हो जाते हैं। सुख उठाने लायक तो बहुत ही छोटा-सा हिस्सा रह जाता है। जो लोग नासमझ हैं, वे कमाते-कमाते ही इस आनन्द-भोग के छोटे-से समय को बरबाद कर डालते हैं। कमाई का सौवाँ हिस्सा भी ये ख़र्च करना नहीं चाहते।

अब मैं महाराज से अधिक कहाँ तक कहूँ। मेरी तो यही प्रार्थना है कि राज्य का यह बोझ तो सौंपिए ऐसे लोगों को, जो इसे सम्हालने के लायक हैं, जो आप पर पूरी तरह श्रद्धा-भक्ति रखते हैं तथा आपके अन्तरंग हैं; और आप स्वयं महल की इन अप्सराओं जैसी सुन्दरियों के साथ आनन्द-विहार कीजिए। हर मौसम के लायक बढ़िया-बढ़िया नाच-गाने और शराब की दावतें उड़ने दीजिए। यही इस जिन्दगी का निचोड़ है, शरीर को इसका आनन्द उठाने दीजिए !"

यह उपदेश झाड़ने और इतनी बढ़िया सीख देने के बाद विहार-भद्र, महाराज के सामने जमीन पर लम्बा-लम्बा लेट गया और सिर नवाकर हाथ जोड़े हुए उसने उनके आगे एक लम्बा-चौड़ा प्रणाम झुकाया।

महल की रानियाँ उसकी बातें सुनकर और यह हरकत देखकर एक-दम हँस पड़ीं और बड़ी खुश हुईं। उनकी प्रफुल्लित आँखों से हँसी-विनोद का भाव साफ-साफ झलकने लगा। विहारभद्र की बातों पर महाराज अनन्तवर्मा भी मुस्कराए और बोले—"अच्छा श्रीमान् जी, अब उठिए। ऐसा हित से भरा हुआ उपदेश देकर तो आप अब हमारे गुरु हुए। किन्तु यह नीचे झुककर गुरूपन से उल्टी बात क्यों कर डाली ? उठो उठो !"

यह कहते हुए उन्होंने उसे उठा दिया और इस हँसी-मजाक के बाद स्वयं भी उठ खड़े हुए।

इसके बाद से ऐसा होने लगा कि जब कोई काम पड़ता तो बूढ़े मँत्री

वसुरक्षित आकर महाराज को समझाते और उन्हें बार-बार ताकीद करते। पर महाराज का यह हाल कि मुँह से तो वे उनकी हाँ में हाँ मिला देते, परन्तु मन-ही-मन यह सोचा करते कि "ये कैसे आदमी हैं कि दूसरे के चित्त का हाल ही नहीं समझते!" इस प्रकार मन्त्री की बातों को वे टालने लगे।

अनुभवी मन्त्री ने भी कुछ समय बीतने पर राजा के मन का भाव ताड़ लिया; उन्होंने सोचा—'देखो, मैं इनके मोह में पड़कर कितना बेवकूफ बन गया हूँ! राजा को जिस बात में दिलचस्पी नहीं, उसी की तरफ मैं उन्हें बार-बार ठेलता हूँ। उन्हें यह खयाल होता होगा कि इसमें इनका अपना कोई मतलब छिपा हुआ है। इस तरह राजा की नजरों में मैं तो एक भिखारी-सा हो गया। अच्छी मैंने अपनी हँसी कराई! महाराज की चेष्टाओं से यह बात भी साफ है कि वे अब पहले वाले महाराज नहीं रहे, क्योंकि न तो वैसी स्नेह-भरी आँखों से वे अब हमें देखते हैं और न हँसते हुए चेहरे से बातचीत करते हैं। गुप्त भेद की बातें भी खोलकर नहीं कहते। पहले जब हम जाते तो हमारा हाथ पकड़कर बिठलाया करते थे। वह बात भी नहीं रही। कभी कोई दुःख-कष्ट पड़ता तो बड़ी सहानुभूति के साथ उसे दूर करने की चेष्टा किया करते थे, सो भी अब नहीं है। इधर उत्सव-त्यौहारों के अवसर पर किसी तरह की विशेष कृपा भी उनकी अब हम पर दिखाई नहीं देती। पहले की तरह दान की भी कोई चीज उनके यहाँ से नहीं आती। पहले जब कभी हमसे कोई अच्छा काम बन पड़ता था, तो हमारी खास तौर से सराहना किया करते थे, वैसा भी अब कुछ नहीं होता। हमारा घरेलू हालचाल पूछना भी उन्होंने बन्द कर दिया है। हमारे समर्थक दूसरे संगी-साथियों का भी वे अब कुछ खयाल नहीं करते। कोई काम चाहे कैसा ही जरूरी और तुरन्त करने का हो, पहले की तरह उसमें वे अब हमें शामिल नहीं करते। और तो और अपने पास महल के अन्दर भी अब उन्होंने हमें बुलाना बन्द कर दिया है!

इस सब के विपरीत महाराज अब ऐसे कामों में हमें जोत देते हैं,

जिनसे हमारी हेठी होती है और जो हमारे पद को शोभा नहीं देते। जिस जगह पहले हम बैठा करते थे, वहाँ आजकल जब कोई और बैठने लगा है, यह देखते हुए भी उसे वहीं बैठ जाने देते हैं। हमारे विरोधियों पर वह अब विश्वास और भरोसा भी अधिक करने लगे हैं। पहले स्वयं ही मुझे सब बातें बतलाया करते थे, परन्तु आजकल मैं खुद कोई बात कहूँ तो भी उसका जवाब नहीं देंगे। मुझे जलील और शर्मिन्दा करने को, मेरे जैसे दोष या कमी किसी दूसरे के अन्दर देखेंगे तो मुझे सुना-सुनाकर उसकी खूब बुराई करेंगे। मेरे साथ हँसी-मजाक भी कभी करते हैं तो ऐसी जो दिल पर चोट करे। मैं उनकी राय से मिलती-जुलती ही कोई बात क्यों न कहूँ, किन्तु उसे भी वे जरूर लौट देते हैं। चाहे जितनी कीमती और बढ़िया चीज मैं भेजूँ, उसे सराहेंगे नहीं। मेरे मुँह पर मूर्ख और बेवकूफ लोगों से इस तरह की बातें कहलवायेंगे कि 'अमुक महाशय बड़े नीतिज्ञ बनते थे, पर उन्होंने भी ऐसी-ऐसी गलती कर डाली !'

शायद इन्हीं सब बातों को सोचते-समझते हुए चाणक्य कह गए हैं कि जो व्यक्ति राजा के दिल की बात ताड़कर, उनकी-सी कहा करते हैं और उनकी हां में हां मिलाया करते हैं, उनसे यदि कोई भूल-चूक भी हो जाय या कोई काम बिगड़ भी जाय तो भी वे राजा के मन को भाते हैं। किन्तु दूसरे लोग चाहे कितने ही चतुर और होशियार क्यों न हों, यदि वे राजा की मनपसन्द बात कहना नहीं जानते, तो उनसे राजा कभी खुश नहीं होते। उन्हें वे अपना बैरी मानने लगते हैं।'

इस प्रकार उधेड़बुन करते हुए वे बिचारे वृद्ध मन्त्री मन-ही-मन फिर सोचने लगे कि—

"ऐसे उल्टे समय में अब क्या किया जाय ? दूसरा कोई चारा भी नहीं है। यद्यपि राजा बहुत विरोध और अक्खड़पन दिखला रहा है, तो भी मेरे जैसे आदमी को उसे छोड़ते भी नहीं बनता, क्योंकि बाप-दादों के समय से मेरा घराना इन लोगों के यहां काम करता चला आया है। अच्छा, मैं जब इसे छोड़कर जाता नहीं और बात भी यह मेरी सुनता नहीं,

ऐसी हालत में इसकी भलाई भी क्या की जा सकती है ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह पड़ौसी अश्मक देश का राजा वसन्तभानु, जो पूरा पक्का नीतिज्ञ भी है, इसी के हाथ में हमारा यह राज्य चला जायगा। सम्भव है कि आगे पड़ने वाली यह मुसीबतें ही इस अनन्तवर्मा को सीधी राह पर ले आवें। परन्तु यह भी हो सकता है कि ऐसी आपत्तियां पड़ने पर जो दु:ख-कष्ट और कठिनाइयां सहज ही आ जाया करती हैं, उन्हें न चाहते हुए भी इसे शुभ और हितकर बात अच्छी न लगे ! खैर, कुछ भी हो, कोई-न-कोई अनर्थ जरूर होने वाला है। ऐसी हालत में मैं तो, अब मुँह बाँधें रहूँगा, क्योंकि अनचाही और बेमाँगी राय देने में कहीं इस मन्त्री पद से भी हाथ न धोना पड़े। इसलिए चुपचाप बैठूंगा।"

इस प्रकार सोचकर वे बूढ़े मन्त्री अलग जा बैठे। वे अब किसी बात में न बोलते। राजा अनन्तवर्मा उसी तरह अपनी मनमानी करते रहे।

इसी बीच एक घटना घटी। अश्मक राज्य के मन्त्री का नाम इन्द्र-पालित था। उनका एक लड़का था चन्द्रपालित। उसके बारे में एकाएक यह खबर उड़ी कि यह चन्द्रपालित अच्छे चालचलन का आदमी नहीं है। इसलिए उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया है।

यही चन्द्रपालित अश्मक राज्य से निकलकर बरार में आ गया। उसके साथ-साथ बहुत से भाट आये और अच्छी-अच्छी कारीगर तथा तसवीर बनाने वाली स्त्रियां भी आ गईं। नौकरों और यार-दोस्तों के रूप में बहुत से जासूस भी चन्द्रपालित के आसपास घिरे रहते। इन लोगों ने बरार में आकर बड़े-बड़े खेल-तमाशे दिखलाये और सबसे पहले विहारभद्र को झटपट अपने फन्दे में फाँसा।

इस विहारभद्र के द्वारा बढ़ते-बढ़ते इन लोगों की पहुँच राजा अनन्तवर्मा तक हो गई। चन्द्रपालित ने जल्दी ही राजा की कल पकड़ ली। अब वह तरह-तरह की बुरी लतों में राजा को फाँसने लगा। जिस-जिस व्यसन को वह शुरू करवाता, उसकी तारीफ के पुल बाँध देता और उस चीज़ के

सैकड़ों गुण तथा लाभ ढूँढ-ढूँढकर राजा को सुनाया करता। जब उसने राजा को शिकार का शौक डलवाया तो कहने लगा——

"महाराज! शिकार या मृगया से जितना फायदा आदमी को होता है; उतना और किसी चीज़ से नहीं हो सकता। इसमें आदमी को दिन-रात कसरत करनी होती है, इसलिए विपत्ति पड़ने पर मालूम होता है कि इस मृगया ने हमारा कितना उपकार किया है। इसमें घूमते-फिरते रहने से आदमी के अन्दर लम्बा रास्ता तय करने का सामर्थ्य आ जाता है और पैरों में तेज़ी बनी रहती है। शरीर में से बलगम का विकार दूर होकर तन्दुरुस्ती बढ़ती है और जठराग्नि खूब तेज़ हो जाती है। शिकारी की देह के सभी हिस्सों की चरबी छँट जाया करती है, जिससे अंग-प्रत्यंग स्थिर मज़बूत और हलके पड़ जाते हैं। मनुष्य में गरमी, सरदी, बरसात, भूख, प्यास आदि को सहन करने की ताकत पैदा होती है। शिकार में हर किस्म के जानवरों से पाला पड़ता है और उनकी तरह-तरह की हालतें देखने में आती रहती हैं, इसलिए पशु-प्रकृति का बहुत अच्छा अध्ययन हो जाता है। जानवरों के मन की बात और उनकी भिन्न-भिन्न चेष्टाओं का ज्ञान भी इनसे खूब होता है। यह बात सभी जानते हैं कि हिरन, जंगली भैंसे, नीलगाय, आदि खेती को बरबाद किया करते हैं और फसलें उजाड़ देते हैं। शिकार के द्वारा इन हानिकारक पशुओं को मार डालने से खेती का बहुत बचाव हुआ करता है। इधर खुश्की के रास्तों में जंगली जानवरों के आ पड़ने से बड़ा खतरा रहता है शिकार के द्वारा बाघ भेड़ियों आदि को खत्म कर देने पर यह उपद्रव भी दूर होता है। इसी बहाने पहाड़ों और जंगलों के भिन्न-भिन्न स्थान देखने में आते हैं, जिससे इस बात पर गौर किया जा सकता है कि कौनसी जगह का क्या उपयोग है, और किस-किस जगह क्या-क्या उद्योग-धन्धे खड़े किये जा सकते हैं? जंगलों के गरीब भीलों और सन्थालों आदि को शिकारियों के वहां पहुँचते रहने से बड़ा भरोसा होता है, उनकी दिलजोई हो जाती है और उन्हें इस बात का विश्वास होता है कि हम लोगों के बचाव और रखवाली का भी राजा को ध्यान है। शिकार

करने वालों में उमंग, स्फूर्ति और उत्साह तो हर दम बने ही रहते हैं, इनसे राज्य के वैरियों पर रोब और दबदबा रहता है। इस प्रकार शिकार के बेहद लाभ हैं और यह बड़ी उपयोगी चीज़ है।"

इसी तरह चन्द्रपालित ने जब राजा को जुए में डाला तो वह जुए की गुणावली गाने लगा और बोला—

"महाराज, जुए को लोगों ने व्यर्थ ही बदनाम कर रखा है। बतलाइए, जिस प्रकार जुआरी अपने रुपयों के ढेर का तिनकों की तरह परित्याग कर देता है, वैसा त्याग कहीं और देखने में आता है? ऐसी उदार-भावना की मिसाल है कोई दूसरी? जुआ खेलने वाला हार और जीत दोनों को निर्विकार भाव से लेता है कि उसे न हार में रंज है और न जीत में खुशी। हर्ष और शोक दोनों में से किसी में भी उसकी आसक्ति नहीं होती। हाँ, खेलते-खेलते जोश और उत्साह उसका अवश्य बढ़ जाता है। परन्तु ये दोनों गुण ऐसे हैं कि इनसे मनुष्य में मर्दानगी और पौरुष उत्पन्न होते हैं। आपने देखा होगा कि जुए के खेल में खेलने वाले का हाथ पाँसे, उनके डालने की जगह ये सब-के-सब दांव डालने के पहले तक तो साफ-साफ दिखाई देते हैं, किन्तु हाथ फेंकते समय इतनी सफाई और चालाकी बरती जाती है कि दूसरे देखने वालों को इनमें से किसी चीज का भी कुछ पता नहीं चलता। इस प्रकार यह खेल खेलते हुए मनुष्य में विलक्षण बुद्धि-चातुर्य आ जाता है। खेलने वाले का ध्यान लगातार एक ही जगह रहता है, जिससे चित्त में एक अद्भुत प्रकार की एकाग्रता भी आती है। जुए का खिलाड़ी अपनी जीत के लिए लगातार कोशिश करता रहता है। इस निरन्तर उद्योग करने की प्रवृत्ति से आगे चलकर मनुष्य का बड़े-बड़े, अद्भुत और आश्चर्यजनक हिम्मत के काम करने की ओर झुकाव रहता है। जो लोग जुए में बैठते हैं, उन्हें प्रायः झगड़ालू और कठोर स्वभाव के आदमियों से पाला पड़ता है। इनके साथ टक्करें लेते-लेते उनकी अपनी तबियत भी ऐसी बन जाती है कि आदमी फिर किसी की दाब-धौंस में नहीं आता; साथ ही दृढ़ आत्माभिमान की भावना उसमें बनी रहती है।

आप देखेंगे कि जुआरी आदमी अपनी ज़िन्दगी बसर करने के लिए किसी के आगे हाथ नहीं फैलाएगा। इसलिए, महाराज, जुआ कोई ऐसी बुरी चीज नहीं मालूम पड़ती। इसके बहुत से लाभ हैं।"

जुए के ये गैर-मामूली फायदे दिखाकर और जुआ खिलवाकर चन्द्रपालित धीरे-धीरे महाराज को वेश्यागमन की ओर भी खींच ले गया। वेश्याओं के बारे में वह कहता—

"महाराज, इन सुन्दरी रमणियों का नाम ढोंगी लोगों ने 'वेश्या' तो इसलिए रख दिया है जिससे इन बिचारियों के प्रति घृणा फैलने लगे। आप तनिक विचार कर देखें कि रुपया तो आदमी बरबाद करता ही है। खाने-पहनने में भी पैसा नष्ट हो जाता है। इससे अच्छा तो यह कि किसी सुन्दरी के साथ दिल बहलाकर उसी को दे दिया जाय। इसमें तो धन का अच्छा खासा सदुपयोग है। ऐसा करने से एक अबला की सहायता भी हो जाती है, जिससे एक धर्म-कार्य सम्पन्न होता है। इन औरतों में बिहार करते हुए आदमी के अन्दर मर्दानगी भी बनी रहती है और दूसरे के चित्त के अन्दरूनी भावों को समझ लेने में मनुष्य बड़ा प्रवीण हो जाता है। सुन्दरियों को उनकी मुंहमांगी चीजें देते रहने के कारण ऐसे आदमी के स्वभाव में से कन्जूसी निकल जाती है, और खुले हाथ से बिना झिझक के लेने-देने की उसकी आदत पड़ती है। ये रमणियां तरह-तरह के हुनर और कला-कौशल के काम जानती हैं, इसलिए इनकी संगत में बैठने वाले आदमियों में भी कलात्मक रुचि पैदा होती है और उन्हें कारीगरी की बहुत-सी बातों की जानकारी हो जाती है। इसके अतिरिक्त वेश्याओं में उठते-बैठते हुए जो चीज अपने पास नहीं है वह दूसरे से कैसे हथियाई जाती है, यह बात मनुष्य जान जाता है। उसे मिली हुई चीज को सम्हालकर रखना आता है; अपने पास हिफाजत से रखी हुई चीज वक्त पर इस्तेमाल करने का तरीका वह सीखता है। और कौन चीज कब इस्तेमाल हुई, कितने दिनों चली, यह बात उसे याद रहती है। कोई रूठ गया हो तो उसे किस प्रकार मनाना चाहिए, यह बात भी आदमी को आ जाती है। हर समय इन्हीं सब बातों में उलझे रहने और तरह-तरह की

तरकीबें ढूँढ निकालने में मशगूल रहने के कारण आदमी की अक्ल और उसकी बोली दोनों अच्छी तरह मँज जाते हैं। इन सजीली स्त्रियों में रहने की वजह से आदमी को अच्छे ढंग से अपनी देह की सफाई और सजावट करना आ जाता है। साथ ही अच्छे सुन्दर कपड़े पहनने का सलीका भी वह सीख जाता है, जिससे सब लोग उसे मान-आदर के साथ बिठलाते हैं। उसे स्वयं चार मित्रों में बैठने की आदत पड़ती है और वह दूसरों को तथा दूसरे लोग उसे प्रेम करने लगते हैं। इस प्रकार इन सुन्दरी स्त्रियों तथा इनके संगी-साथियों में बैठने-उठने से आदमी गैर लोगों के प्रति भी अपनेपन का कुटुम्बी-जनों जैसा बरताव करने लगता है। उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकं' की विशाल भावना जागती है। वह हँसमुख होकर बोलना-चालना सीख जाता है। दूसरे के लिए अपने हृदय के प्रेम और प्यार का दान करना तथा सज्जनता और शिष्टता का बदला चुकाना भी उसे आ जाता है। अन्त को इन सुन्दरियों से बाल-बच्चे पैदा करके मनुष्य का यह जन्म भी सुधरता है और परलोक भी बनता है।"

इस प्रकार वेश्यागमन के भी बड़े-बड़े लाभ दिखाकर और इस कुकर्म में राजा को ठेलकर चन्द्रपालित ने उन्हें शराब पीने की आदत भी डलवा दी। शराब की गुणावली का बखान करते हुए वह कहने लगा—

"महाराज, मद्य-सेवन में सब बुराई-ही-बुराई नहीं हैं। सोचकर देखिए, तरह-तरह की संसारी चिन्ताएँ दूर कर देने वाले ये आसव कैसे उपकारी पेय पदार्थ हैं। इनके निरन्तर सेवन करते रहने से आयु जल्दी ढलती नहीं, बल्कि ठहरी रहती है और तन्दुरुस्ती ऐसी अच्छी हो जाती है कि देखने वाले रश्क करने लगते हैं। इसे पी लेने के बाद आदमी में अभिमान जाग उठता है, जिससे वह दुनिया के सब दुख क्लेशों और झंझटों को धता बतला देता है। कामेच्छा इसके सेवन से खूब होने लगती है, जिससे स्त्रियों के साथ विषय भोग करने की खूब ताकत आ जाती है। इसके असर से आदमी दूसरों के कसूर माफ कर देता है और उसके मन का मैल धुल जाता है। शराब के नशे में बकने-झकने की शिकायत बहुत की जाती है, परन्तु ऐसी बेहूदा बक-

वास जो कहने-सुनने योग्य नहीं होती, उसके बक डालने के बाद, शराब पीने वाले के दिल में रह कुछ नहीं जाता; वह अन्दर से साफ हो जाता है और उस पर लोगों का बड़ा भरोसा और इतमीनान रहता है। शराबी के मन में किसी के लिए द्वेष या खोट नहीं रह जाता और वह अपनी मौज में मस्त रहता है। जो लोग इस उत्तम चीज का सेवन करते रहते हैं उनके आँख, कान आदि सब हिस्से अपना-अपना काम लगातार बड़ी मुस्तैदी के साथ करते रहते हैं। इस कारण देखने-सुनने के सम्बन्ध में प्रायः कोई शिकायत उन्हें पैदा नहीं होती। शराब पीने वालों की आदत पड़ जाती है कि वे जब खुद पीने बैठते हैं तो संगी-साथियों को भी जरूर पेश करते हैं। इस आदत के कारण उनके पास मित्र लोग जमा रहते हैं। इसके सेवन करने वालों के बदन पर हमेशा सुर्खी और सरूर-सा छाया रहता है और वे अच्छे खूबसूरत जँचा करते हैं। इनके दिन भी खेल-कूद और मौजबहार में कटते हैं। डर या तकलीफ शराब से कोसों दूर भागते हैं, इसलिए लड़ाई के मैदान में इस चीज से बड़ा काम निकलता है। ऐसा देखने में आता है कि शराब पीने वाले बोलते बड़ी कड़क के साथ हैं। किसी को सजा देते हैं तो बड़ी सख्त सजा देते हैं और रुपया पानी की तरह बहा देते हैं। ये बातें साधारण तौर से ठीक नहीं जान पड़तीं, परन्तु बहुत से मौकों पर यही बातें बड़ा काम देती हैं और इन्हीं से बड़े-बड़े काम बनते हैं। इसलिए महाराज, शराब में बड़े-बड़े गुण और बहुत सी विशेषताएँ हैं।"

इस प्रकार शिकार, जुआ, रण्डीबाजी और शराब की बड़ाई करते हुए अन्त में चन्द्रपालित राजा अनन्तवर्मा से बोला—"महाराज, सब राजा लोग कोई ऋषि-मुनि तो होते नहीं जो हरेक चीज का शौक छोड़ बैठें। ऐसे राजा जो निरे बाबाजी बन बैठते हैं, वे फिर अपने विरोधियों और दुश्मनों को नीचा नहीं दिखा सकते। ऐसे राजा दुनिया के कामकाज भी नहीं सम्हाल सकते।"

राजा अनन्तवर्मा चन्द्रपालित की ये बातें ऐसे ध्यान से सुना करते, जैसे किसी गुरू का उपदेश सुन रहे हों। ये बातें नये ढंग से और दिलचस्प बनाकर कही जातीं थीं, इसलिए उन्हें बहुत पसन्द आतीं और वे इन्हीं के

अनुसार चलने भी लगे।

दुनिया का ऐसा ढंग है कि जो काम राजा करे, उसी को दूसरे मामूली लोग भी करने लगते हैं। इसी के अनुसार राजा अनन्तवर्मा को रागरंग में मस्त देखकर उनके राज्य की जनता भी कुमार्ग पर चली गई और उन्हीं सब कुकर्मों में फँस गई। जो मर्ज़ राजा को लगा, उसी की छूत प्रजा को जा लगी। अब कौन किसका इलाज करे और कौन किसके दोष दिखावे? राज्य के अलग-अलग महकमों के सब अफसरों ने जब राजा-प्रजा दोनों को एक ही राह पर और गाफिल देखा, तो उन्होंने अपने-अपने मद की रकमें डकारना शुरू कर दिया। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे राज्य की आमदनी के दरवाजे बन्द हो गए। उधर खर्च का यह हाल था कि राजा खुद ही ऐयाश और बुद्धू बने हुए थे। वे पानी की तरह पैसा बहा रहे थे; इस कारण राज्य का खर्च दिनोंदिन बढ़ता गया। राजा के सरदार, जिले और नगर की पंचायतों के मुखिया लोग, सब-के-सब इन दिनों एक-से हो रहे थे। इसलिए ये सभी राजा के अन्तरंग और जिगरी दोस्त बने हुए थे। जब कभी शराब की दावतें होतीं तो राजा इन सबको और साथ में इनकी स्त्रियों को भी बुलावा देकर इनमें शामिल किया करते। इस प्रकार राज्य के सामन्त-सरदारों, और रईस-उमरावों का चरित्र गिर गया। इनकी औरतों को तरह-तरह के बहानों से बुलवाकर राजा इनके साथ भी कुकर्म करने लगा। जब राजा का यह हाल हो गया तो उनके महल की रानियों के चरित्र का गिरना भी स्वाभाविक था। उनके दिल से राजा का दबदबा और दहशत जाती रही। ये भी निधड़क होकर रंग-रेलियाँ करने लगीं। रानियों का असर राज्य के अच्छे और ऊंचे घरानों की स्त्रियों पर पड़ा। बड़ी-बड़ी कुलवन्ती नारियां तक अब खुले आम भद्दे इशारे करतीं और सहज भाव से अश्लील बातें बका करतीं। इन सबके शील सदाचार का बाँध टूट गया। अपने पतियों की इन्हें तनिक भी परवाह नहीं रही। ये सब अपने यारों के साथ खुले-आम हँसी-ठट्ठा और इशारेबाजियों में लगी रहतीं। इनके आदमियों को जब ऐसी बातों का पता लग जाता तो ये बड़े

लाल-लाल होते, यहां तक कि लड़ाई-दंगों तथा मारपीट की नौबत आने लगी। इन झगड़ों में कमजोर लोग पिट जाया करते और तगड़े आदमी हावी हो जाते। यह गुण्डापन जब और बढ़ा तो मालदारों की लूट-खसोट होने लगी। इन लोगों का रुपया-पैसा चोर-डाकू बनकर वहीं के लोग छीन लेते। इस तरह जन-साधारण की सम्पत्ति लुटने लगी। आपस में मार-धाड़ शुरू हो गई और पाप तथा अधर्म की राह खुल गई।

जब इस प्रकार लोगों के भाई-बन्द और सगे-सम्बन्धी मारे जाने लगे, रुपया-पैसा छिंनने लगा और कत्ल-खून होने लगे तो सब जनता घबड़ा उठी। प्रजा रोती-चिल्लाती हुई खुले आम राजा को कोसने और बुरा-भला कहने लगी। राजा की ओर से इन सबको राजद्रोही मानकर सजाएँ दे दी गई। इस पर लोगों में डर के साथ-साथ क्रोध और भी भड़कने लगा।

इधर इस गिरी हुई दशा में गरीब-निर्धन और कंगाल लोगों में लोभ-लालच पैदा हो गया। सबमें आपाधापी मचने लगी। जो लोग आत्म सम्मान रखने वाले और इज्जत-आबरूदार थे, वे जब अपमानित होने लगे तो उनका हृदय बदले की आग में जलने लगा।

इस तरह राज्य-भर में अराजकता का-सा समय आ गया। ऐसे समय बाहरी दुश्मनों की बन आई और वे अनन्तवर्मा के राज्य में दुर्घटनाएँ और उपद्रव करवाने लगे। पड़ोस के विरोधी राज्यों की ओर से इनके यहाँ तोड़-फोड़ की कार्यवाहियाँ शुरू हो गईं।

अब बरार के अन्दर बहुत से शत्रु शिकारियों के भेस में आ घुसे। इन्होंने यहां यह झूठी खबर उड़ाई कि राज्य के पहाड़ों में आज़कल जंगली जानवर आ गए हैं, इस कारण पहाड़ी दर्रे में से गुजरना खतरनाक है। यह सुनकर सैकड़ों राहगीर असली चलता हुआ रास्ता छोड़-छोड़कर सूखी झाड़ियों और बाँस के झुरमुटों के अन्दर हो-होकर चलने लगे। इसी समय दुश्मन जासूसों की ओर से इनमें आग लगवा दी गई और अनन्तवर्मा के राज्य के सैकड़ों आदमियों को वहीं जलाकर मार डाला गया। शत्रु-राज्य

के ये शिकारी लोग कभी-कभी ऐसा करते कि बरार वालों को शेर, बाघ, आदि जंगली जानवरों का शिकार करने के लिए उकसाते और फिर अपनी तरकीबों से इन्हीं लोगों को खुद बाघ का शिकार बना दिया करते। राह चलने वालों को ये शत्रु लोग जब रास्ते के जोहड़ों पर पानी पीने के लिए उतावला देखते तो यह कहकर बहकाया करते कि "कुछ दूर और चलो, आगे ईंटों का बना पक्का कुआँ है। उसका पानी पीना। यहाँ रद्दी तलैया का पानी क्यों पीते हो?" यह सुनकर सैकड़ों राहगीर धोखे में आ जाते और बिना पानी पिये आगे चल देते। तब इन्हें बहकाकर ये जासूस लोग दूर ले जाते और बियाबान जंगलों में भूखा-प्यासा भटकाकर मार डालते। बहुत से यात्रियों को ये लोग ऐसे ऊबड़-खाबड़ और खतरनाक रास्तों से ले जाते, जहाँ ऊपर से देखने में तो घास और झाड़ियाँ होतीं, पर नीचे, गहरे खड्ड हुआ करते। इनमें ये इन यात्रियों को गिराकर मार डालते। कई जगह नदियों के किनारे-किनारे ऐसे रास्तों से ये लोग इन यात्रियों को ले जाते, जहां का कगार गिराऊ होता। यहाँ इन्हें नदी में गिराकर डुबा दिया जाता। बरार के जंगलों में राह चलते लोगों को बहुधा काँटे लग जाते, तब ये शिकारी बने हुए गुप्तचर लोग, जहर में बुझी कुरेदनी या सुइयों से इन्हें निकालने बैठ जाते, जिससे विष फैलने से सैकड़ों यात्री मौत के घाट उतर जाया करते। रास्तों में जब कोई-कोई यात्री अपनी मण्डलियों से बिछुड़ कर पीछे छूट जाते और अकेले पड़ जाया करते तो उन्हें ये विदेशी जासूस बड़ी मारें लगाते, और जान से मार डालते थे। कभी ये लोग ऐसा करते कि तीर मारकर राहगीरों के प्राण ले लेते और पूछताछ किये जाने पर बहाने बना देते कि हमने दूर से शिकार पर निशाना लगाया था, वह बिचलकर इन्हें जा लगा है। अनेक बार ये लोग ऐसी चाल चलते कि किसी पहाड़ की ऊंची अगम चोटी पर इस राज्य के यात्रियों के साथ शर्तें बद-बदकर चढ़ना शुरू करते। जब कुछ राही चलते-चलते अकेले पड़ जाते या किसी और ध्यान में हुआ करते और उस समय कोई दूसरा देख न रहा होता, तब यह इन्हें ऊपर से ढकेलकर गिरा दिया करते। इस प्रकार यहाँ

के बहुत से लोगों को मार डालते थे। कभी-कभी ये परदेसी जासूस जंगलात के महकमे के अफसर बन जाया करते और राजा अनन्तवर्मा की सेना के अकेले-दुकेले सैनिकों को जंगल में आते-जाते हुए पकड़कर बाँध ले जाते। ये गुप्तचर लोग बहुधा ऐसी जगहों पर भी धींगामुश्ती करके घुस बैठते जहां जुए की चौकड़ी जमी हुई होती, या मुर्गों आदि के दंगल हो रहे होते, या मेले जुलूस-उत्सव आदि के लिए लोग इकट्ठे जमा होते। इनमें ये जासूस दुर्घटनाएँ और उपद्रव करके लोगों को मार डालते थे। कई बार शत्रु-राज्यों के ये गुप्तचर बरार के अन्दर जगह-जगह कत्ल और खून की वारदातें भी कर डालते। इन गुप्तचरों द्वारा किये गए कारनामे जब कभी खुल पड़ते तब इन कुकर्मों के गवाहों पर ही ये लोग अपना कलंक मढ़ दिया करते और उनके साथ मार-पीट कर बैठते। ऐसी हरकतों से इन गुप्तचरों की बदनामी छिपी रहती, और असली बात खुलने नहीं पाती थी। कहीं-कहीं ये परदेसी जासूस ऐसा करते कि बदमाशों को अपना यार बना लेते। इन्हें पराई स्त्रियों को अपने मित्रों की घरवाली बतलाकर उनके पीछे छोड़ देते थे। बाद में इनके पतियों के साथ लड़ाई-झगड़ा होने पर ये विदेशी लोग इन भले आदमियों को ही मारने-पीटने लगते और नाम उन बदमाशों का लगा देते थे। जहां कहीं मौका देखते, वहां इन दोनों के ही साथ मारपीट कर बैठते और दंगा खड़ा कर देते थे।

शत्रु देशों के इन गुप्तचरों ने ऐसी स्त्रियाँ भी रख छोड़ी थीं, जो गुपचुप कत्ल और हत्या के कामों को खूब सीखी हुई थीं। ये जासूस स्त्रियां बरार के नागरिकों को दुराचार के लिए उकसातीं, और खास-खास जगहों पर अपने साथ मिलने के लिए इन्हें बुलाया करतीं। इनके साथी ये गुप्तचर लोग ऐसे स्थानों के आसपास पहले से ही छिपे बैठे होते। उन लोगों के आ जाने पर ये मौका देखकर टूट पड़ते और उन्हें मार डाला करते। इस प्रकार अनंतवर्मा के राज्य के अंदर कत्ल की ऐसी-ऐसी वारदातें हुआ करतीं, जिनका न किसी को भेद मिलता और न इनके विषय में कोई कहने-सुनने वाला ही होता। कभी-कभी ये जासूस इस राज्य के लोगों को इस तरह के लालच दिया

करते कि अमुक सुरंग के अन्दर खजाना गड़ा हुआ है, उसे खोदने चलो। कभी यह कहकर बहकाते कि फलानी गुफा में एक बाबाजी मन्त्र सिद्ध कर रहे हैं; चलो उन्हें देख आवें। इस तरह फुसलाकर लोगों को सुरंगों के भीतर ले जाते और मार डाला करते। बाद को यह बात फैला देते कि वहाँ इस-इस तरह दुर्घटना हो पड़ी, जिसमें ये लोग मारे गए। कभी ये जासूस किसी मस्त हाथी पर चढ़ बैठने के लिए लोगों को बढ़ावा दिया करते। जब कुछ हिम्मती लोग जोश में आकर इस पर चढ़ जाते तो ये जासूस लोग बाद में उसे काबू करने के उपाय नहीं चलने देते थे जिसके कारण ऊपर चढ़े हुए लोग इस मस्त हाथी द्वारा कुचल डाले जाते थे। अनेक बार शत्रुओं के ये गुप्तचर लोग ऐसा करते कि राजा अनन्तवर्मा के राज्य के किसी हरे-भरे और उपजाऊ क्षेत्र को नष्ट-भ्रष्ट कर डालने का निश्चय कर लेते। इसके बाद कुछ लोगों को अन्धाधुन्ध रिश्वत देकर, उनके द्वारा इस प्रदेश में पागल हाथियों को छुड़वा देते। ये पागल और खूनी जानवर इस सारे इलाके में उत्पात मचाकर इसे तहस-नहस कर डालते थे। किसी अवसर पर ऐसा होता कि जब इस राज्य के कुछ लोग रुपये-पैसे या जायदाद के बँटवारे पर झगड़ रहे होते, उस समय ये शत्रुओं के जासूस किसी एक फरीक के लोगों को अकेली जगह में मार डालते। ऐसे समय इन हत्याओं की बदनामी दूसरे फरीक वालों पर पड़ती थी। इन जासूसों पर किसी का सन्देह तक न होता था। वैरियों के इन गुप्तचरों की कार्यवाहियां राजा अनन्तवर्मा के सरदारों के इलाकों में भी होने लगीं। इनके नगरों और देहातों के अन्दर घुसकर ये जासूस लोग छिपे-छिपे ऐसे लोगों पर हमले किया करते, जिनकी गिनती गुण्डों और बदमाशों में की जाती थी। इन्हें स्वयं मारकर ये जासूस लोग इनके विरोधियों का नाम बदनाम कर दिया करते थे। इन विरोधी राज्यों की ओर से बरार के अच्छे-अच्छे जवान सूरमाओं के पास सुन्दरी वेश्याएँ पहुँचाकर उन्हें अत्यधिक भोग-विलास में फँसा दिया जाता, और इस प्रकार उन्हें तपेदिक आदि का शिकार बना दिया जाता था। इन जासूस वेश्याओं के द्वारा ही राज्य के बड़े-बड़े अफसरों और फौज के सिपह-

सालारों के कपड़ों, आभूषणों, फूलमालाओं, तेल-फुलेल, उबटन-चन्दन आदि में जहर मिलवाकर उन्हें मरवा डाला जाता। बहुधा इलाज करने के बहाने लोगों के रोग खूब बढ़ा दिये जाते। मतलब यह कि जासूसों द्वारा हत्या, जहर, आग, कत्ल आदि के बहुत से उपाय राजा अनन्तवर्मा के पड़ौसी अश्मक देश के राजा की ओर से बरते जा रहे थे। इनका परिणाम यह हुआ कि इन सब घातक उपायों द्वारा बरार का राज्य अन्दर-ही-अन्दर खोखला हो गया। राजा अनन्तवर्मा की सेना के बहुत से वीर सिपाही और अच्छे-अच्छे सेनापति भी मार डाले गए, जिससे उनकी स्थिति बड़ी कमजोर पड़ गई।

इतना हो चुकने के बाद अब अश्मकराज वसन्तभानु ने एक काम किया। उन्होंने बरार के पड़ोसी भील राजा भानुवर्मा को उकसाकर उसे अनन्तवर्मा के साथ भिड़ा दिया। अनन्तवर्मा के राज्य के छोर मे मिलता हुआ ही भानुवर्मा का जंगली राज्य चला गया था। इस अपने पड़ोसी का हमला देखकर अनन्तवर्मा ने भी अपनी फौज जमा करनी शुरू की। जब अश्मकराज ने यह सुना तो उन्होंने एक चाल चली। अनन्तवर्मा के सरदार लोग अभी अपनी फौजें लेकर आये भी नहीं थे कि उन सबसे पहले अश्मकराज स्वयं अपनी कुमुक लेकर अनन्तवर्मा की मदद के लिए उनके पास जा पहुंचे। उन्हें इस प्रकार अपनी सहायता के लिए आया देख अनन्तवर्मा बहुत प्रसन्न हो गए और उन्हें अपना हितैषी समझकर उनसे बड़ा प्रेम मानने लगे। इसके बाद दूसरे सामन्त लोग भी अनन्तवर्मा के साथ आ मिले। ये सब इकट्ठे होकर भानुवर्मा से लड़ने नर्मदा के किनारे पहुँचे। इस सम्मिलित सेना में कुन्तल के राजा महासामन्त अवन्तिदेव भी आये हुए थे। उनके दरबार की एक नर्तकी बहुत मशहूर थी। यह सुन्दर भी बेहद थी। स्वर्ग में जैसे उर्वशी का नाम था, उसी तरह इसे पृथ्वी लोक की उर्वशी समझा जाता था। धूर्त चन्द्रपालित आदि ने क्या किया कि अनन्त-वर्मा के सामने इसके नाच की बड़ी तारीफ की। राजा ने इसे बुलवा भेजा और नाच देखा। इसी बीच वह उस पर लट्टू भी हो गए और उसके रूप

माधुर्य पर रीझकर उन्होंने उसके साथ विषय भोग भी किया ।

इस बात को लेकर अश्मकराज वसन्तभानु ने कुन्तल नरेश से एकान्त में भेंट की और बोले—

"इस अनन्तवर्मा की करतूत आपने सुनी? इस पर तो एकदम मस्ती छाई हुई है और काम का भूत सवार है । नौबत यहाँ तक आ चुकी है कि यह अब हम लोगों के महलों की स्त्रियों पर भी हाथ साफ करने लगा है । इस बेइज्जती को कहाँ तक सहा जायगा ? सुनिए, आज हम पर बात आई है, तो कल आप तक भी पहुँच सकती है । इसलिए इसका तुरन्त इलाज करना पड़ेगा । देखिए, सौ हाथी तो मेरी सेना में हैं और पाँच सौ आपके पास भी हैं । आइए, हम और आप सलाह कर लें और मुरल के राजा वीरसेन, ऋचीक-नरेश एकवीर, कोंकण-राज कुमारगुप्त तथा नासिकपति नागपाल से मिलकर इस विषय में मशवरा कर लें । यह बात पक्की है कि ये सब राजा लोग अनन्तवर्मा की इस ढिठाई और उद्दण्डता को कभी बरदाश्त नहीं करेंगे और हमारा साथ देंगे ।

एक बात और सुनिए, यह भीलराज भानुवर्मा जिसके विरुद्ध अनन्तवर्मा लड़ने जा रहा है, मेरा पक्का मित्र है । ऐसा करें कि यह विषयी अनन्तवर्मा जब सामने से भानुमित्र के साथ उलझ जाय, तब हम लोग मिलकर इस पर पीछे से हमला कर दें । इसके बाद इसका खजाना और रथ-घोड़े हाथी वगैरा छीनकर हम आपस में बाँट लें ।

वसन्तभानु की यह सलाह अवन्तिदेव को बहुत पसन्द आई । इसके बाद इन लोगों ने अपने विश्वस्त आदमियों के द्वारा, बीस-बीस रेशमी कपड़े के थान और पच्चीस-पच्चीस सुनहरी काम के केसरिया कम्बल उन सब सामन्तों के पास भिजवा दिये । साथ ही अपना सन्देश भी कहला भेजा । वे सब सामन्त इन दोनों के साथ आ मिले ।

अगले दिन इन लोगों की योजना के अनुसार ही काम किया गया । इन सबने मिलकर अनन्तवर्मा की सेना पर पीछे से धावा कर दिया, और वे पराजित हो गए । इस प्रकार अपनी अनीति के कारण अनन्तवर्मा

को इन सब सामन्तों का तथा वनराज भानुवर्मा का शिकार होना पड़ा।

अश्मकराज वसन्तभानु ने अब एक और चालाकी चली। इन सब लोगों से वह कहने लगा—"इस अनन्तवर्मा के खजाने और रथ-घोड़े आदि सब सामान को आप लोग अपने अधिकार में कर लीजिए और अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार आपस में बाँट लीजिए। उसमें से आप लोग अपनी मरजी से जो थोड़ा-बहुत हिस्सा मुझे दे देंगे, मैं उसी को खुशी से ले लूँगा।'

यह कहकर वह धूर्त हिस्सा बाँट होते समय उन सबसे अलग रहा। अब लूट के माल का बँटवारा शुरू हुआ और इस हड्डी के टुकड़े पर सबकी आपस में खूब तकरार हुई। यहाँ तक कि सब-के-सब एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। वसन्तभानु इसी मौके को ताक रहा था। इन सब में फूट पड़ी हुई देखकर उसने एक-एक करके इन सब सामन्तों की खबर ली और सब को मार भगाया। अन्त में लूट का सारा माल वह अकेला डकार गया। केवल भानुवर्मा को उसने थोड़ा सा हिस्सा जरूर दे दिया, वह भी बड़ा एहसान जताते हुए। इसके बाद लौटकर उसने अनन्तवर्मा के सारे बरार राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया।

इधर महाराज अनन्तवर्मा जिस समय सेना लेकर लड़ाई के लिए चले थे तो उनके पीछे वृद्ध मन्त्री वसुरक्षित रह गए थे। उन्होंने राज्य की कुछ चुनी हुई विश्वसनीय सेना इकट्ठी की।···"

यह सब वृत्तान्त सुनाते-सुनाते वह बूढ़ा आदमी अपने पास खड़े हुए उस बालक को दिखलाकर कहने लगा—

"यह बालक उन्हीं अनन्तवर्मा का पुत्र है। इसका नाम भास्करवर्मा है। मन्त्री वसुरक्षित ने उसी थोड़ी सी राजभक्त सेना के साथ इस भास्कर वर्मा को इसकी तेरह बरस की बहिन मंजुवादिनी को और इन दोनों की माता महारानी वसुन्धरा को साथ में लिया।

इन्हें लेकर वे इस सेना के साथ राज्य से भाग निकले। इस मुसीबत के समय दूसरी और मुसीबत आने को रह गई थी। दुर्भाग्य से रास्ते में मन्त्री वसुरक्षित को गरमी का तेज बुखार चढ़ आया और उसी में उनका

देहान्त हो गया। तब मैं और मेरे साथ-साथ राज्य के अन्य शुभचिंतक महारानी तथा उनके बच्चों को माहिष्मती नगरी में ले गए। माहिष्मती में महाराज अनन्तवर्मा के भाई मित्रवर्मा रहते थे। उन्हीं के पास इन सब को लेकर हम लोग पहुँचे और वहीं रहने लगे। महारानी वसुन्धरा बड़ी सच्चरित्र महिला थीं। परन्तु मित्रवर्मा बहुत नीच प्रकृति का निकला। उसने उनके वहां आने का कुछ और ही मतलब लिया और उनसे एक दिन छेड़छाड़ की। उसकी इस अशिष्टता पर महारानी ने उसे फटकार दिया। तब वह उनको ताने देता हुआ कहने लगा—"ओ हो, आप तो बड़ी सतवन्ती बनती हैं! ऐसे ही रहकर अपने लड़के को राज दिलवाना चाहती हो!" इसके बाद से मित्रवर्मा की नीयत भी बदल गई। वह इस बालक को मार डालने की फिक्र करने लगा। जब महारानी को यह पता चला तो उन्होंने मुझे बुलाया और कहने लगीं—

"भइया नालीजंघ! तुम इस बच्चे को यहाँ से बचाकर अपने साथ निकाल ले जाओ और जहाँ इसे जिन्दा रख सको, वहीं ले जाकर रहो। यदि मैं बची रह गई तो मैं भी कभी इसके पास चली आऊँगी। तुम इसकी अच्छी तरह देखभाल रखना और इसकी राजी-खुशी की खबर कभी-कभी मुझ तक पहुँचा दिया करना।"

इसके बाद मित्रवर्मा के महल की उस भीड़-भाड़ में से मैं इस बालक को जैसे-तैसे बचाकर निकाल लाया और विन्ध्याचल के बियाबान जंगल में निकल गया। यह बालक अब तक लगातार पैदल चलता आ रहा था और बहुत थक गया था। मैंने सोचा कि यह कुछ दम ले ले। इस विचार से मैं इसे अहीरों की बस्ती में ले गया। वहाँ कुछ दिन इसे आराम देकर फिर इस डर से कि कहीं यहाँ पर भी मित्रवर्मा के भेजे हुए सरकारी आदमी न आ पहुँचें, मैं इसे लेकर मुख्य सड़क से दूर-दूर रहता हुआ भाग निकला। चलते-चलते बीच में इसे बड़ी सख्त प्यास लगी। तब मैंने इस कुएँ से पानी लेना चाहा, किन्तु इसमें खुद ही गिर पड़ा। आपने दया करके मुझे बाहर निकाल लिया। यह बिचारा राजकुमार इस समय

बिलकुल असहाय है। अब आप ही इसे कुछ सहारा दीजिए।"

इतना कहकर उस बूढ़े आदमी ने मेरे सामने हाथ जोड़ दिए।

यह सब हाल सुनकर मैंने उससे पूछा कि "अच्छा, यह तो बतलाओ, इस बालक की माता किस परिवार की है ?"

वह बोला—"पाटलिपुत्र नगर में वैश्रवण नाम के एक बड़े भारी व्यवसायी थे। उनकी लड़की का नाम सागरदत्ता था। उस सागरदत्ता के कौशलराज कुसुमधन्वा से एक लड़की हुई, वही इस बालक की माँ है।"

. मैंने कहा—"यदि ऐसा है तब तो इसकी माँ और मेरे पिता दोनों के नाना एक ही हैं।" यह कहते हुए मैंने उस बालक को प्रमपूर्वक हृदय से लगा लिया।

बूढ़े ने मुझसे पूछा—"श्री सिन्धुदत्त जी के पुत्रों में से आप किनके लड़के हैं ?"

मैंने कहा—"श्रीमान् सुश्रुत के।"

मेरा पता पाकर बूढ़ा बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद मैंने निश्चय किया कि "अश्मक के इस राजा को अपनी कूटनीति का बड़ा घमण्ड है। मैं भी इस पत्थर को पत्थर से ही तोड़कर निकाल बाहर करूँगा और इस बालक को इसके बाप-दादों की राजगद्दी पर जरूर बिठाऊँगा।"

अब मुझे यह फिकर हुई कि इस बालक के खाने-पीने का क्या इन्तजाम किया जाय, क्योंकि वह बिचारा बहुत भूखा था।

मैं इसी चिन्ता में था कि इतने में किसी शिकारी की मार से बचकर निकल भागे हुए दो हिरन उधर आ निकले। शिकारी ने तीन बाण मारे थे, किन्तु उन तीनों से बचकर वे निकले जा रहे थे। उनके पीछे-पीछे वह शिकारी भी आ पहुँचा। मैंने झट उसके हाथ से कमान खींच ली और बचे हुए दो तीर भी ले लिये। इन्हीं से उन हिरनों को मार गिराया।

एक हिरन तो तीर से बिंधा हुआ ही गिरा, दूसरे को लगकर तीर पार निकल गया था। इनमें से एक हिरन मैंने उस शिकारी को दे दिया।

दूसरे को लेकर उस पर से बाल साफ करके खाल उतार डाली। फिर उसकी कलेजी निकालकर धोई और उसे कुचल लिया। इसके बाद टाँगों और गरदन पर का अच्छा-अच्छा माँस निकालकर उसका खीमा बनाया। अब मैंने आग बनाकर अंगारों पर सीखचों के कबाब की तरह इसे भून डाला। यह गरम-गरम माँस मैंने उन दोनों को खिलाया। इसी से अपनी भूख भी मिटाई।

वह शिकारी इस खानें पकाने के बाद में मेरी इतनी फुर्ती और होशियारी देखकर बड़ा खुश हुआ। वह मुझसे हिल-मिल गया। थोड़ी बातचीत के बाद मैंने उससे पूछा—"क्यों जी, माहिष्मती का कुछ हाल-चाल जानते हो?"

वह कहने लगा—"मैं तो बाघ का चमड़ा और दूसरी कुछ खालें बेचकर वहाँ से आज ही आ रहा हूँ। वहाँ की खबर मुझे क्यों नहीं मालूम होगी? वहाँ का हाल सुनो। आज माहिष्मती नगर-भर में सजावट और जलसे की तैयारी हो रही है, क्योंकि चण्डवर्मा का भाई प्रचण्डवर्मा वहाँ आ रहा है। वह मित्रवर्मा के भाई की लड़की मंजुवादिनी के साथ ब्याह करना चाहता है।"

मैंने उस शिकारी की यह बात सुनकर उसके कान में बहुत धीरे से कहा—"सुनो, तुम्हें मालूम है, असलियत क्या है? वास्तविक बात यह है कि मित्रवर्मा बड़ा चालाक है। वह धूर्त इस लड़की का अच्छी जगह सम्बन्ध करके इसकी माँ के जी में जगह बना लेना चाहता है। उसका विश्वास पाकर फिर उसी के मुँह से यह जान लेना चाहता है कि अपना लड़का उसने कहाँ भेज दिया है। इसके बाद उस बालक की खोज कराके वह उसे मार डालेगा।

फिर मैंने उस शिकारी से कहा—"तुम वहाँ लौटकर एक काम करो। महारानी वसुन्धरा से एकान्त में जाकर कहना कि आपका पुत्र अच्छी तरह है। मेरा भी हाल उन्हें बतला देना।

इसके बाद और सब लोगों के सामने रोते-चिल्लाते हुए यह खबर

सुनाना कि महारानी के लड़के को जंगल में बाघ ने फाड़ खाया।

महारानी का देवर मित्रवर्मा बड़ा नीच है। वह इस खबर से मन-ही-मन बहुत खुश होगा, हालाँकि बाहर से बेहद दुःखी होने का दिखलावा करेगा। महारानी को भी वह हर तरह से समझाने-बुझाने और तसल्ली देने की कोशिश करेगा। महारानी को तुम कहना कि वे मित्रवर्मा के साथ चाल चलें और कहें, 'अपने जिस लड़के की खातिर मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी थी, वह भी मेरे पाप से चल बसा। अब मेरा कौन है? अब तो जो तुम कहोगे मैं वही करूंगी।' महारानी की इस बात से वह बड़ा प्रसन्न हो जायगा और उनकी ओर अपना रुख भी अच्छा कर लेगा।

तब वे एक काम करें। मैं यह मीठा तेलिया दे रहा हूँ,इसे ले लें। यह बड़ा खतरनाक ज़हर होता है। इसे पानी में पीसकर मिला दें, फिर इसी पानी में फूलों का एक हार भिगोकर तैयार रखें। जब मित्रवर्मा एकान्त में उनसे मिलने आवे तो यही हार उसके मुँह और छाती पर फेंककर मारें; फिर चिल्लाकर कहें, 'यदि मैं पतिव्रता हूँ तो यह हार ही तेरे जैसे पापी के लिए तलवार का काम करेगा।'

इसके बाद मैंने उस शिकारी को दूसरी एक और चीज दी और कहा—"इसे भी तुम रानी को देना। यह मीठा तेलिया का 'उतार' है। इसे पानी में मिलाकर फिर उसी हार को वे इसमें डुबो दें। ऐसा करने से मीठा तेलिया के ज़हर का असर उसमें से निकल जायगा। यह हार फिर वे अपनी लड़की को पहना दें। मित्रवर्मा तो उस हार के लगने से उसके ज़हरीले असर के कारण मर जायगा और रानी की लड़की पर उसी हार का कुछ भी असर नहीं होगा। रानी की बात देखकर सब लोग इसे 'सती का प्रभाव' समझेंगे, और महारानी के भक्त बन जायँगे।

मित्रवर्मा के इस प्रकार मारे जाने के बाद प्रचण्डवर्मा के पास महारानी की ओर से इस आशय का संदेशा भिजवाया जाय कि 'माहिष्मती के इस राज्य का अब कोई मालिक नहीं रह गया है। इसलिए इस लड़की को लेने के साथ-साथ आप यह राज्य भी स्वीकार कीजिए।'

उधर तो यह काम हो रहा होगा, इधर मैं और यह बालक, हम दोनों अघोरी साधु का भेष बनाकर भीख माँगते हुए रानी के दरवाजे पर पहुँचेंगे। रानी से भीख लेकर हम चले आयँगे और आकर शहर से बाहर मरघट के पास डेरा डालेंगे।

इससे पहले ही रानी नगर के खास-खास धनी-मानी आदमियों और अपने मान्यवर मन्त्रियों को एकान्त में बुलाएँ और उनसे कहें—"रात सपने में विन्ध्यवासिनी देवी ने मुझे दर्शन देने की कृपा की और कहा—'आज से चौथे दिन प्रचण्डवर्मा मर जायगा। पाँचवें दिन तू नर्मदा के किनारे वाले मेरे मन्दिर में जाना और जाकर यह अच्छी तरह देखभाल लेना कि उस समय कोई दूसरा वहाँ न हो। पूजा के बाद जब सब लोग वहाँ से जा चुकेंगे, उस समय मन्दिर में से तेरे लड़के को लेकर एक ब्राह्मण कुमार निकलेगा। वही ब्राह्मण इस राज्य की रखवाली करता हुआ तेरे पुत्र को राजगद्दी पर बिठायेगा। मैं अब तक एक बाघिन के रूप में रहती रही। वह तेरा पुत्र अब तक मेरे प्रभाव से मेरे साथ-साथ ही था। और यह जो तेरी लड़की मंजुवादिनी है, इसे मैं आज से उस ब्राह्मण कुमार की धर्मपत्नी बनाती हूँ।' "

यह सब सुनाकर अन्त में महारानी उन लोगों से इतना और कह दें कि "यह भेद की गुप्त बात मैंने आप ही लोगों के सामने खोली है। इसे तब तक छिपाए रखिए, जब तक सब काम इसके अनुसार पूरे न हो जायँ।"

मेरी ये सब बातें सुनकर और इन्हें पूरा कर देने का वचन देकर वह शिकारी खुशी-खुशी वहां से चला गया। इसके कुछ दिनों बाद उसी ढंग से सारी घटनाएँ घटीं। पतिव्रता बरार नरेश की रानी के हार द्वारा मित्र-वर्मा के मारे जाने की खबर चारों ओर फैल चुकी थी। लोग सब जगह आपस में बातचीत करते हुए कहते—"धन्य है। पतिव्रता सती नारी के तेज और प्रताप की महिमा अपार है! उस हार की चोट ने तो सचमुच तलवार का काम कर दिया। इस मामले में धोखेधड़ी या छल-प्रपंच की

बात भी नहीं हो सकती, क्योंकि वही हार फिर रानी ने अपनी लड़की को भी पहना दिया और उसका बाल तक बाँका न हुआ; उल्टे उसकी छाती पर वह हार अच्छी-खासी माला की तरह लहराता रहा। भाई, यह रानी सचमुच सतवन्ती है इसका हुक्म जिसने न माना वह सीधा भस्म होता दिखाई देगा।"

इसके बाद ठीक समय पर मैं और वह बालक भास्करवर्मा अघोरी साधु के भेस में निकले। रानी ने दूर से हमें भीख के लिए आते देखा। अपने लड़के को इतने दिनों बाद देखते ही उसका पुत्र-प्रेम उमड़ आया। वह जल्दी से उठी। खुशी के मारे वह बेचैन-सी हो गई और बोली——

"साधुजी महाराज, आइए। मेरा प्रणाम स्वीकार हो। मैं अनाथिनी हूँ, इसलिए मुझ पर कृपा रखिए। मैंने एक सपना देखा है। बतलाइए वह सच निकलेगा या नहीं?"

मैंने कहा—"ईश्वर चाहेंगे तो उस स्वप्न का फल आज ही देखोगी।"

रानी बोली——"जो ऐसा हो, तब तो इस दासी के भाग्य ही खुल जायँ! वह सपना तो यही कहता है कि मेरा उद्धार होगा।"

इसी बीच मुझे मंजुवादिनी भी देख रही थी। उसके चेहरे के भाव से यह साफ झलक रहा था कि उसे मेरे प्रति प्रेम हो गया है। वह झिझकी और सहमी हुई-सी खड़ी थी। रानी ने उससे मुझे नमस्कार करवाया। अन्त में खुशी के मारे रुँधे हुए गले से रानी कहने लगीं——

"महाराज, मेरा सपना जो झूठा हो गया तो मैं तुम्हारे इस बाल-संन्यासी को छीन लूँगी।"

यह बात सुनकर मुझे हँसी आ गई। मंजुवादिनी इस समय भी प्रेम-भरी आँखों से मेरी ओर निहार रही थी। उसकी इन नजरों से मेरा धीरज-सा छूटने लगा। फिर भी मैंने जैसे-तैसे अपने मन के भाव को छिपाया और रानी से कहा——"अच्छा, ऐसा ही कर लेना।"

इसके उपरान्त भीख लेकर मैंने धीरे से नालीजंघ को बुलाया और वहाँ से निकलकर बाहर की ओर चल दिया। नालीजंघ मेरे पीछे-पीछे

आ रहा था। उससे मैंने पूछा--

"वह प्रचण्डवर्मा कहाँ है ? उसका नाम तो बहुत सुना है । उस बिचारे के भी दिन अब पूरे होते दिखाई देते हैं।"

नालीजंघ बोला--"वह तो समझे बैठा है कि यह राज्य अब मेरा हो चुका। इसी इरादे से महाराज के दरबार हॉल में ठहरा है। भाट लोग उसके गुणगान कर रहे हैं !"

मैंने कहा--"अच्छा, ऐसी बात है ! खैर, जाओ, तुम जाकर दरबार के पीछे वाले बाग में बैठो।"

इस प्रकार बूढ़े नालीजंघ को तो मैंने यह हुक्म दिया और मैं महल की चहारदीवारी के एक तरफ बनी हुई खाली मठिया में जा पहुँचा। वहाँ मैंने अघोरी का भेस और कपड़े आदि उतारकर धर दिये। राजकुमार भास्करवर्मा से मैंने कहा कि तुम यहीं बैठना और इन्हें सम्हालकर रखना। इसके बाद मैंने भाटों का भेस बना लिया और प्रचण्डवर्मा के दरबार में जाकर दूसरे भाटों की तरह उसके गीत गाने लगा।

कुछ देर में धूप पीली-सी पड़ चली और दिन ढलने को हुआ। अभी तक तो मैं और भाटों की तरह राजा की विरदावली गा रहा था, परन्तु इसके बाद ही मैंने वहाँ भरे दरबार के अन्दर कुछ ऐसी कसरतें और खेल-कूद के करतब दिखाने शुरू कर दिये जो उपयोगी भी थे और दिलचस्प होने के साथ-साथ जिनसे लोगों की जानकारी भी बढ़ती थी।

पहले मैंने गाने सुनाए, थोड़ा नाच भी दिखलाया, फिर पशु-पक्षियों की बोलियाँ बोलकर तथा रोने की नकलें करके दिखाईं। इसके बाद आसनों के ढंग के कुछ खेल दिखलाते हुए हाथों को आगे-पीछे इधर-उधर घुमाया--फिराया। शीर्षासन की तरह ऊपर पैर और नीचे सिर करके मैं जमीन पर हाथों के बल खड़ा हुआ। फिर मैंने एक पाँव उठाकर दूसरा समेटे हुए तिरछे नाच-नाचकर दिखाया। बिच्छू मगरमच्छ आदि की तरह, देह की अनेक गतियां कर-करके दिखलाईं। मछलियों के समान उलट-पुलटकर फड़फड़ाने का प्रदर्शन भी किया। इसके बाद मैंने आसपास

के लोगों की छुरियाँ ले लीं और उन्हें अपने शरीर में भोंक-भोंककर दिखलाया। इसके अनन्तर बड़े अद्भुत और कठिन ऐसे-ऐसे काम किए जिनमें बाज की तरह झपटना और कुरर पक्षी की तरह नीचे गिर पड़ना होता था। यह सब खेलें करते-करते बीच में ही मैंने अन्दाज कर लिया कि प्रचण्डवर्मा मुझसे लगभग १५-२० गज की दूरी पर बैठा है। बस मैं खेलें करते-करते एकाएक उछला और पलक मारते एक ही छुरी में मैंने उसका सीना फाड़ डाला। साथ ही मैं जोर से गरजकर बोला—'वसन्त भानु की जय हो!' 'वसन्तभानु की हजार वर्ष की आयु हो!'

प्रचण्डवर्मा का काम तमाम होते ही वहाँ खलबली मच गई। उसके जासूस और शरीर-रक्षक वहाँ मौजूद थे ही। उनमें से एक हिम्मती और बहादुर आदमी ने मेरी देह को तुरन्त काट फेंकने के लिए तलवार खींच ली। परन्तु वह अभी हाथ उठा ही पाया था कि मैं उसके मोटे और भारी कन्धों के ऊपर जा कूदा। मेरी इस झपट और तेजी को वह सम्हाल नहीं पाया, और इसी में बेहोश हो गया। मैं तब तक उसके कन्धों पर से उछलकर पास की फसील को लाँघ गया। आसपास के लोग घबराये हुए और हैरान से होकर मुँह उठाये देखते ही रह गए। यह फसील दो आदमियों जितनी ऊँची होगी; मैं इसको फाँदकर दूसरी ओर जा कूदा।

इस प्रकार अब मैं इस तरफ उसी बाग में आ गया जिसमें नालीजंघ खड़ा था। कूदते-कूदते भी मैं इतना और कहता गया कि 'जो मेरा पीछा करने की हिम्मत रखते हों उनके लिए यह रास्ता खुला है।'

यहां आते ही मैं भाग निकला। इस तरफ बाग में नीचे रेत थी। उस पर से भागते-भागते मैं तमाल के पेड़ों वाली रास पर जा पहुँचा। पीछे-पीछे नालीजंघ बालू पर पड़े हुए मेरे पैरों के निशान, मिटाता जा रहा था। इस रास में से फसील के साथ-साथ मैं पूरब की ओर उल्टा भागा। यहाँ ऊँची-नीची ईंटें चुनी पड़ी थीं। इस कारण इधर भागते समय मैं वैसे भी दूर से दिखाई नहीं पड़ सकता था।

दौडते-दौड़ते मैं ऐसी जगह आ पहुँचा जहाँ से कूदकर मैंने किले के

परकोटे की दीवार और खाई सब पार कर ली। इसके बाद झटपट मैं उसी मठिया में आ घुसा। आते ही मैंने यह भेस उतारकर फिर वही अघोरी साधु का रूप बना लिया और राजकुमार को संग लेकर चल दिया।

मैंने जो कार्यवाही की थी, उसके कारण शहर के सदर फाटक पर लोगों की बड़ी भारी भीड़ जमा हो गई थी। इसमें से बड़ी कठिनतापूर्वक निकलकर मैं बाहर मरघट को चला आया।

इसके बाद मैं दुर्गा मन्दिर में पहुँचा। भगवती दुर्गा के इसी मन्दिर की महारानी नें अपने सपने में चर्चा की थी। इसके अन्दर जाकर मैंने ऐसा किया कि जिस जगह देवी की मूर्ति रखी हुई थी, वहीं पर एक ओर के हिस्से को तोड़कर नीचे खोखला कर लिया और अन्दर-अन्दर एक सुरंग-सी बना ली। इसके मुँह पर मोटी और भारी-सी शिल जमाकर ऊपरी छेद बन्द कर दिया।

जब आधी रात बीत गई तब हम दोनों उस सुरंग में घुसकर चुपचाप जा बैठे। इससे पहले रानी का एक हिजड़ा नौकर कुछ बढ़िया रेशमी कपड़े और जवाहरात जड़े हुए जेवर दे गया था। हम दोनों ने वही पहन लिए थे।

मैं जब प्रचण्डवर्मा को मार आया तो उसी दिन महारानी ने उसका दाह-कर्म खूब अच्छे ढंग से करा दिया और चण्डवर्मा के पास खबर भेजते हुए कहलाया कि इस-इस तरह किसी अज्ञात व्यक्ति ने प्रचण्डवर्मा की हत्या कर डाली। उस आदमी ने अन्त में भागते हुए 'वसन्तभानु की जय' के नारे लगाये थे। इस हालत में मुझे तो यही लगता है कि यह उत्पात अश्मक-राज वसन्तभानु का करवाया हुआ है।

अगले दिन तड़के ही रानी अपने साथ चुने हुए मन्त्रियों-सरदारों और नगर के धनी-मानी लोगों को लिये मन्दिर में आईं। इन लोगों को उन्होंने पहले से ही सूचना दे रखी थी। वहां आकर महारानी ने देवी की पूजा की। इसके बाद मन्दिर के हर एक कोने पर नजर डालकर उसे अच्छी तरह देखा-भाला गया कि कहीं और कोई व्यक्ति तो नहीं है। अब आये हुए सब लोग

मन्दिर के बाहर सामने चौक में बैठ गए। दुर्गा जी की मूर्ति के आगे के किवाड़ भेड़ दिये गए। ठीक समय पर महारानी की आज्ञा से खूब जोर-जोर से नगाड़ा बजवाया गया। उसकी आवाज चारों ओर दूर-दूर तक फैल गई। यहां तक कि आसपास के बारीक-से-बारीक छेद के अन्दर भी जा पहुँची। मूर्ति के नीचे सुरंग में बैठे-बैठे मैंने भी उसे सुना। यह एक तरह का इशारा था, जिसे पाकर मैं सावधान हो गया। अब मैंने नीचे से जोर लगाया और सिर से उकसाकर देवी की मूर्तिसहित लोहे की चौकी को ऊपर उठा लिया। यह इतनी भारी थी कि अच्छे-अच्छे तगड़े जवान तक इसे मुश्किल से ही हिला पाते। फिर मैंने इसे दोनों हाथों से पकड़कर एक तरफ हटा दिया और बाहर निकल आया। राजकुमार को भी मैंने बाहर निकाल लिया।

इसके पश्चात् मैंने अपने नित्य नियम के अनुसार दुर्गाजी की पूजा की, और मन्दिर के किवाड़ खोलकर सबके सामने प्रगट हो गया।

मुझे एकाएक प्रगट हुआ देख सामने बैठी हुई जनता के अचरज का ठिकाना न रहा। उसके हैरानी और खुशी के मारे रोंगटे खड़े हो गए। सबने उठकर तुरन्त हाथ जोड़ लिये और सिर झुकाकर नमस्कार किया।

इसके बाद मैंने उन लोगों को लक्ष्य करके कहा—

"सज्जनो, मैं देवी भवानी का सेवक हूँ। देवी विन्ध्यवासिनी मेरे द्वारा आप सब लोगों को सूचित कर रही हैं कि यह राजकुमार जो सामने खड़ा है, इस पर बड़ी भारी मुसीबत आई थी। देवी भवानी कहती हैं कि मैं उस समय बाघिन बन गई और इस बालक पर तरस खाकर मैंने इसे बाघ के बच्चे का रूप दे दिया। इस तरह मैं इसकी रखवाली करती रही। आज इसे मैं तुम लोगों को सौंप रही हूँ। इस बालक को अभाग्य से अपनी माँ का स्नेह नहीं मिला, इसलिए मेरा ही पुत्र इसे आप लोग समझिए और आज से अपने संरक्षण में लीजिए।

देवी जी ने मेरे लिए कहा है कि 'इस अपने सेवक को मैं इस राजपुत्र का सिरधरा बनाती हूँ। इन्हीं के द्वारा एक बड़े भारी कुकर्म का

भण्डाफोड़ होगा। आप लोगों को मालूम नहीं कि अश्मकराज वसन्तभानु ने कैसी अनहोनी और कपट-भरी चालें चलीं तथा कैसे-कैसे कुचक्र रचे। उसकी चालाकी और मक्कारी की बातें जिस दिन खुलेंगी, तब आपको पता चलेगा कि वह कितना निठुर और धूर्त है। अश्मकराज के पाप का घड़ा अब भरने वाला है। यह मेरे सेवक ही उस घड़े को फोड़ेंगे।

इस राजकुमार की बहन की रक्षा का भार भी मैं अपने उसी सेवक को सौंपती हूँ और मेरा आदेश है कि उसका ब्याह इन्हीं के साथ किया जाय।' "

देवी के ऐसे आदेश वचन सुनकर वहाँ के लोग बड़े प्रसन्न हुए। वे कहने लगे—"महाराजा भोज का यह राजवंश बड़ा भाग्यवान् है, क्योंकि इसका रक्षक स्वयं देवी ने इन महानुभाव को बनाकर भेजा है।"

महारानी ने जब दृश्य देखा और यह सब सुखद प्रसंग सुना तो हर्ष के मारे उनकी विचित्र दशा हो गई। उनकी हालत का बखान करना मुश्किल था। उसी दिन उन्होंने मंजुवादिनी का मेरे साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। इस प्रकार वे अब मेरी सास हो गईं।

जब रात हुई तो सावधानी के साथ मैंने पहला काम यह किया कि दुर्गाजी की मूर्ति के नीचे वाला गड्ढा अच्छी तरह भर दिया।

अगले दिन जब लोग मन्दिर में आये और उन्होंने देखा-भाला तो किसी तरह के बिल या छेद का किसी को पता नहीं चला। इसलिए मेरी कारस्तानी के बारे में किसी को शक नहीं हुआ।

इसके विपरीत लोगों में मेरे वीतराग होने और मौजी प्रकृति का मस्त जीव होने के सम्बन्ध में तरह-तरह की चर्चाएँ चलने लगीं। कोई कहता—'अरे, हमने तो इन्हें भीख माँगते भी बहुत कम देखा है। किसी से चुटकी मिले या न मिले, इन्हें कुछ चिन्ता ही नहीं रहती।'

कुछ लोग मेरे बारे में और कई तरह की अचरज-भरी बातें सुनाते रहे। इस प्रकार सभी आदमी मुझे कोई दिव्य और अलौकिक पुरुष मानने लगे। इसका असर यह हुआ कि मैं जो कह देता वही सब लोग मान लेते।

मेरी बात कोई न टालता।

शीघ्र ही राजकुमार के बारे में यह मशहूर हो गया कि वह देवी भवानी के पुत्र हैं। इस बात के फैलने से उसका भी लोगों पर बड़ा असर रहा। उसकी दूर-दूर तक प्रसिद्धि भी हो गई। मैंने एक अच्छा दिन निकालकर राजकुमार की हजामत आदि बनवाई और उपनयन संस्कार करवाकर राजपुरोहित के पास उसे पढ़ने बिठा दिया। वह और कई तरह की विद्याओं के साथ-साथ राजनीति का भी अध्ययन करने लगा। राज्य का सब कामकाज मैंने देखना आरम्भ कर दिया।

इसी बीच एक दिन मेरे मन में यह बात आई कि माहिष्मती का सब इन्तजाम ठीक ढंग से होना चाहिए। मैंने सोचा कि "राज्य का काम तीन बातों पर चला करता है। ये हैं मन्त्र, प्रभाव और उत्साह। राज्य के हर काम में ये तीनों शक्तियाँ एक-दूसरे की सहायक रहती हैं, तभी सब मामले ठीक-ठीक हो पाते हैं। मन्त्र के द्वारा राज्य की भलाई और हित का निश्चय किया जाता है। प्रभाव के बल से इन हितों को पूरा करने के लिए तरह-तरह के आयोजन खड़े किये जाते हैं। उत्साह की शक्ति से इन आयोजनों को जारी रखकर इनकी समाप्ति सफलतापूर्वक हो पाती है।

मैंने खयाल किया तो मुझे पता चला कि यह राजनीति भी एक पेड़ के समान है। राजा के लिए यह पेड़ फले और फायदेमन्द साबित हो, इसके लिए यह जरूरी है कि यह सारे-का-सारा एक साथ बढ़े और फले-फूले।

मन्त्र को इस राजनीति रूपी पेड़ की जड़ समझना चाहिए। मन्त्र के पाँच हिस्से हैं—सहायक, साधन, देश, काल और रुकावटें दूर करने के उपाय।

प्रभाव इस पेड़ का तना है। इसके दो हिस्से हैं—धन सम्पत्ति का फैलाव और अपने पक्ष में आदमियों की अधिक-से-अधिक संख्या बढ़ाना।

उत्साह इस पेड़ की डालों की तरह है। जैसे पेड़ की डालें चारों ओर फैली रहती हैं, उसी तरह यह उत्साह भी हर काम में चौगुना और चौतरफा होना चाहिए।

इस पेड़ के पत्ते भी होने चाहिएँ। ये पत्ते हैं प्रजाएं या रयत। इन प्रजाओं के शास्त्रकारों ने बहत्तर भेद किए हैं।

राजनीति में जिन सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव को सद्गुण कहा जाता है, वे इस पेड़ में नई कोंपलों की तरह हैं।

इस राजनीति-वृक्ष के फूल और फल हैं सफलता तथा शक्ति।

इस प्रकार मैंने सोचा कि राजनीति के तो बहुत से भेद-उपभेद हैं। इसमें जब तक अपने साथ काफी संख्या में सहायक और संगी-साथी न हों, तब तक इसका चलाना बड़ा कठिन काम है।

अब मेरे दिमाग में यह बात आई कि इस राज्य का काम चलाने के लिए कुछ समझदार आदमियों को जोड़ना पड़ेगा। मित्रवर्मा के इस राज्य की और बातें मालूम होने के साथ-साथ मुझे पता चला था कि यहाँ आर्यकेतु नाम का व्यक्ति अधिक समझदार है। लोगों में भी उसकी बुद्धिमत्ता की प्रसिद्धि थी। मैंने पता लगाया तो मालूम हुआ कि यह आर्यकेतु कोशल देश के किसी अच्छे घराने का था। मुझे खयाल आ गया कि राजकुमार भास्करवर्मा की माता बड़ी महारानी भी कोशल की ही हैं। मैंने सोचा कि तब तो आर्यकेतु एक तरह से महारानी के मायके का हुआ। इसके बारे में अब तक जो कुछ सुना था, उससे भी मैं इस परिणाम पर पहुँचता था कि इस आर्य-केतु में मन्त्री होने की योग्यता है और वैसे ही गुण भी हैं। यह बात भी मेरे कानों में पड़ी थी कि इस आदमी की सलाह को ठुकरा देने के कारण ही मित्रवर्मा की बरबादी हुई थी। मैंने सोचा कि अगर यह आर्यकेतु मेरे हाथ आ जाय तो बड़ा अच्छा रहे।

इस तरह सोच-विचार करने के बाद मैंने नालीजंघ को अकेले में बुलाया और उसे सब बात समझाते हुए कहा—"नालीजंघ, तुम आर्यकेतु जी के पास जाकर किसी समय अकेले में मिलना और कहना—

'मंत्री जी, यहां इस राज्य में यह बना हुआ-सा आदमी कौन आ गया है। यह तो यहाँ के खूब राज-सुख लूट रहा है। और जो कुछ है सो तो है ही, पर इसने तो साँप की तरह हमारे इस राजकुमार के चारों ओर भी

कुण्डली डाल ली है और इसे चारों तरफ से घेर रखा है। अब यह बतलाइए कि आगे होगा क्या ? यह इस बिचारे को डसेगा या समूचा निगल ही जायगा ?'

तुम्हारी इन बातों का वे जो कुछ जवाब दें वह तुम मुझसे आकर कहना ।''

नालीजंघ ने जाकर ऐसा ही किया। उसके बाद लौटकर वह मुझ से बोला——

''मैं आपके कहने के अनुसार आर्यकेतु जी के पास गया था । मैंने जाकर सबसे पहले उन्हें बहुत-सी चीजें नजराने के तौर पर भेंट कीं । इसके बाद तरह-तरह की कुछ मजेदार बातें सुनाईं। फिर उनके हाथ-पैर दबाता और सहलाता रहा। इस तरह जब मैं उनसे हिल-मिल गया और उनका मझ पर अच्छी तरह इतमीनान और भरोसा हो गया तब मैंने आपकी बतलाई हुई वे सब बातें उनसे कहीं। मेरी बातें सुनकर वे कहने लगे——'भले आदमी, ऐसा मत कहो। मैं तो देखता हूँ कि इस नये आये हुए पुरुष में ऐसे-ऐसे गुण ह, जिनमें से एक-एक गुण भी एक आदमी में मिलना कठिन है। तुम सोच कर देखो कि कोई आदमी अच्छे बेदाग घराने का हो, उसकी असाधारण रूप से खूब तेज बुद्धि हो, देवों जैसा अथाह शारीरिक बल हो, स्वभाव का बेहद उदार हो, फिर उसकी नीति-कुशलता अचरज में डालने वाली हो और तरह-तरह के हुनर व दस्तकारी के कामों में भी वह खूब होशियार हो, हृदय उसका ऐसा हो कि दया के मारे पिघल उठे, रोब और असर इतना कि ऐसे-वैसे लोग उसके सामने टिक न सकें, इस सबके साथ-साथ वैरियों पर वह सीधी चोट करता हो, दबना जानता ही न हो, ये इतनी बातें एक आदमी के अन्दर कहां मिलती हैं ? सब गुणों का इकट्ठे एक ही व्यक्ति में मिलना तो दूर की बात है, इनमें से एक-एक गुण भी एक आदमी में मिलना कठिन है। परन्तु इस व्यक्ति में तो ये सभी बातें आकर इकट्ठी हो गई हैं। एक और विशेषता यह कि इस राज्य के वैरियों के लिए तो इसे एक जहरीला पेड़ ही समझो, जिसमें सब ओर जहर और काँटे ही

काँटे हैं।' विचित्रता यह है कि यही आदमी नम्र और सज्जन पुरुषों के लिए एकदम चन्दन की तरह शीतल हो जाता है।

नालीजंघ तुम तो देख ही चुके हो, यह अश्मकराज वसन्तभानु जो अपने आपको बड़ा भारी चाणाक्ष और कूटनीतिज्ञ समझे बैठा था, उसे इस आदमी ने कैसी मात दी है! यह निश्चय जानो कि वसन्तभानु के दिन अब गये! और तुम देख लेना कि यह आदमी इस राजपुत्र को भी इसके पिता की जगह बरार की राजगद्दी पर जरूर बिठाकर मानेगा। यह बात होकर रहेगी, मुझे तो इसमें तनिक भी संदेह दिखाई नहीं देता।"

आर्यकेतु की ये बातें सुनकर मेरे मन को बहुत कुछ सन्तोष हो गया। फिर भी मैंने दूसरे कई उपायों से उसे ठोक-बजाकर उसके मन को अन्दर से टटोला। जब सब तरह से मैंने देख लिया तब एक दिन आदर-पूर्वक उसे बुलवाया और अपना मुख्य सलाहकार नियत कर लिया।

इस प्रकार आर्यकेतु जैसे बुद्धिमान् और विश्वासी आदमी को अपना सहायक तथा मित्र बनाकर अब मैंने ऐसे व्यक्ति तलाश किये जो समझदार, सच्चे, ईमानदार और दिल के भी साफ हों। ऐसे कुछ आदमियों को ढूँढ़ कर इन्हें मैंने अपना मन्त्री बनाया।

इसके पश्चात् बहुत से ऐसे गुप्तचर रखे, जो तरह-तरह के भेस बनाकर कई तरह के पेशे और काम कर सकते थे।

इन लोगों के द्वारा मैंने राज्य की प्रजा के अन्दर ऐसे गिरोहों का पता लगवाया जो खूब मालदार होते हुए भी बड़े लोभी थे या घमण्ड में आकर सरकारी आदेशों को तोड़ते रहते थे। इन सबको मैंने ठीक राह पर लाने की कोशिश की। मुझसे जहाँ तक बना मैंने लोगों के मन से लोभ की वृत्ति को हटाकर धार्मिक भावनाओं को ऊपर उठाया। राज्य में नास्तिक और बुरे चालचलन के लोगों को उभरने नहीं दिया। साथ ही अशांति और गड़बड़ मचाने वालों को राज्य से ही निकाल बाहर किया। जो लोग राज्य के वैरी थे और हुकूमत के कामों में रोड़े अटकाते थे उनकी भी मैंने पूरी रोकथाम कर दी। राज्य के विचारशील विद्वानों, साहसी वीरों, वाणिज्य

व्यवसाय करने वाले व्यापारियों तथा सेवक और कर्मचारी वर्ग को उनकी सहूलियत के अनुसार उनके अपने-अपने कामों की ओर मैं सदा उत्साहित करता रहता था। अन्त में मैंने राज्य की माली हालत की ओर ध्यान दिया और करों को ठीक-ठीक वसूली करवाके खजाने को भर दिया। रुपया इकट्ठा करना बेहद जरूरी था, क्योंकि मैं जानता था कि अदालत, कानून, फौज-पुलिस आदि राज्य के सब काम पैसे से ही चलते हैं। मैं यह बात भी अच्छी तरह समझ चुका था कि दुर्बलता या कमज़ोरी से बढ़कर दुनिया में कोई पाप नहीं है। इसी विचार को सामने रखते हुए मैंने राज्य की सब प्रकार से शक्ति बढ़ाई और तरह-तरह के उपाय बरतते हुए अपने सहयोगियों के सहारे मैं राज्य के सब काम करने लगा।

इस प्रकार जब कुछ समय में सारी व्यवस्था ठीक हो गई तब मैंने एक दिन अन्दर और बाहर की हालत को जाँचा। मैंने सोचा कि अब यहाँ की सब परिस्थिति अपने अनुकूल है। राज्य के अफसर और नौकर-चाकर सब अच्छे लड़ाके तो हैं ही, साथ-साथ मेरे प्रति इनका प्रेम भी है और मुझ पर पूरा भरोसा भी रखते हैं, यहाँ तक कि यदि मैं कह दूँ तो ये लोग मेरे ऊपर अपने प्राण तक न्योछावर कर सकते हैं। मेरे पास इस समय दो राज्यों की फौज और साज-सामान है। इसके द्वारा अब मैं अश्मकराज वसन्तभानु से किसी बात में कम नहीं हूँ। मैं उसके किसी राजनीतिक फन्दे में भी फँसा हुआ नहीं हूँ। ऐसी दशा में वसन्तभानु को हराकर विदर्भपति अनन्तवर्मा के पुत्र इस भास्करवर्मा को उसके बाप-दादाओं की राज-गद्दी पर बिठा सकने की अब मुझमें पूरी ताकत है। इस समय सब ओर यह अफवाह भी फैली हुई है कि देवी भवानी ने इस राजकुमार भास्कर-वर्मा को अपना पुत्र बना लिया है और मुझे इसका सहायक नियत कर दिया है। मैंने इस सिलसिले में जिस छल-कपट से काम लिया था, वह भी आज तक कोई नहीं जान पाया है। यहाँ वाले सब लोग भास्करवर्मा के बारे में आशा भी लगाये बैठे हैं कि यह हमारे राजा अनन्तवर्मा का लड़का है और देवी भवानी के प्रताप से यहाँ का राज्य इसे जरूर मिलेगा

इधर ये सूचनाएँ भी मिली हैं कि अश्मक की फौजें हमारे मुकाबले में आने से घबड़ा रही हैं। उन लोगों को मालूम हो चुका है कि स्वयं देवी भवानी राजपुत्र भास्करवर्मा की पीठ पर हैं। वे बिचारे समझे बैठे हैं कि देवी की शक्ति के आगे भला आदमी की क्या चलेगी ? ऐसी दशा में अश्मक के सैनिकों के मन इस समय चलविचल-से हैं। इधर हमारे अपने राज्य की स्थिति इस समय कहीं अधिक मजबूत है, क्योंकि प्रजाओं में से स्वामि-भक्ति के. आधार पर खड़ी की गई 'मौल' सेनाएँ पहले से ही यह चाहती रही हैं कि राजपुत्र भास्करवर्मा को गद्दी मिले। मैंने उन्हें इनाम और ओहदे आदि देकर उनका और भी विश्वास प्राप्त कर लिया है। इस कारण अब तो वे खास तौर से भास्करवर्मा को सिंहासन पर बिठाना चाहती हैं। दूसरी ओर मैंने अश्मकराज के अन्तरंग और विश्वस्त सेवकों तथा कर्मचारियों के अन्दर फूट डलवाने में भी कसर नहीं छोड़ी है। मेरे खास आदमियों ने इन लोगों के भीतर पैठकर और इन से गहरी दोस्ती गाँठकर अकेले में इन लोगों के खूब कान भरे और कहा—

"भाई सुनो, तुम लोग हमारे मित्र हो, इसलिए ऐसी बात जिसका नतीजा अच्छा हो और जो तुम्हारे भले के लिए हो तुमसे हमें जरूर कह देनी चाहिए। तुम्हें मालूम है और यह बात फैल भी चुकी है कि खुद देवी माता ने कुँअर भास्करवर्मा की मदद के लिए विश्रुत नाम के एक बड़े योग्य सज्जन को खास तौर से तैनात कर दिया है। मतलब यह कि इनकी पीठ पर खुद देवी भवानी हैं। ऐसी हालत में यह बात पक्की समझो कि तुम्हारे वसन्तभानु की तरफ के लोग या उनकी ओर से और भी जो-जो लड़ेंगे, वे सब-के-सब उनके हाथों जरूर यमलोक पहुँचेंगे। अब सूरत यह है कि तुम्हारे अश्मकराज अपनी हरकतों से इन लोगों को भड़का दें और खून का प्यासा बना डालें, इससे पहले ही आप लोग भास्करवर्मा की ओर आ जाइए। साथ-साथ वसन्तभानु को भी आप समझावें। वह भी अगर भास्करवर्मा का तरफदार होकर आपके ही मत में

आ जाय तो सबसे अच्छा है। वसन्तभानु यदि उनकी शरण में आ गया तो वह निश्चिन्त और बेखटके होकर रह सकेगा। उसे बहुत कुछ मान-आदर और ओहदा भी मिलेगा। अपने सब घरवालों के समेत वह आनन्दपूर्वक रहता चलेगा। परन्तु यदि यह बात न हुई और वसन्तभानु अड़ा रहा तो फिर अन्त में देवी भवानी का त्रिशूल है ही। उसके नीचे तो उसे आना ही पड़ेगा! देवी माता और उनके सेवक विश्रुत जी दोनों का हमें ऐसा ही आदेश था कि तुम लोग जाकर एक बार यह बात उन सबसे कह आओ। हमारे मन में यह खयाल आया कि तुम लोगों के साथ हमारा भाईचारा है, और मित्रता भी है, इसीलिए हमने सब बात खोलकर तुम्हारे सामने रख दी है।"

इन लोगों की इस बात का वसन्तभानु के नौकर-चाकरों और कर्मचारियों पर अच्छा असर पड़ा।

वैसे तो अश्मकराज्य के अन्दर जबसे देवी के प्रगट होने की बात फैली और वसन्तभानु के खास अफसरों तथा विश्वासपात्र कर्मचारियों को जब से यह पता चला कि इस-इस तरह से देवी भवानी ने भास्करवर्मा को आशीर्वाद दिया है, तभी से उनका मन उसकी ओर से कुछ-कुछ फिरा हुआ-सा था। अब मेरी ओर से भेजे गए इस संदेशे को पाकर तो बहुत से लोग मेरे तरफदार हो गए।

वसन्तभानु को भी यह सब हाल मालूम हुआ। वह चौकन्ना हुआ। उसके मन में भी तरह-तरह के विचार आने लगे। उसने सोचा कि मेरी हालत तो अब डांवाडोल-सी होती जान पड़ती है। यह बात देर से मालम हो रही थी कि अनन्तवर्मा के राज्य की स्वामिभक्त जनता उनके लड़के इस भास्करवर्मा को राज्य का मालिक बनाना चाहती है। पर अब मैं देख रहा हूँ कि मेरे ये ऊपरी नौकर-चाकर और राज्य के अन्तरंग अधिकारी तक मुझसे फिरते जा रहे हैं। अगर ऐसी दशा में मैं इसी तरह चुप्पी साधे घर बैठा रहा तो मेरे राज्य-भर में कुचक्र चलने लगेंगे। फिर मैं अपने इस निज के राज्य को भी नहीं बचा पाऊंगा। इसलिए

जब तक मेरे ये विरोधी लोग मेरी सेना को उकसाएँ और सेना में बगावत फैले, इससे पहले ही भास्करवर्मा से लड़ाई छेड़ देना ठीक रहेगा। मेरे इस एकाएकी हमले से अभी तो यह बहुत मुमकिन है कि वह मेरे मुकाबले में जरा देर भी न टिक पावे।

इस प्रकार वसन्तभानु अन्त को भी उल्टे रास्ते ही चला। उसके मन में अपने पिछले किये पर पछतावा तो न हुआ, बल्कि उसे यही सूझा कि न्याय-अन्याय और धर्म-अधर्म से, जैसे भी बने, पराये राज्य पर हमला कर देना चाहिए!

वह तुरन्त अपनी फौज लेकर हम पर चढ़ दौड़ा। परन्तु उस बिचारे ने हमला क्या किया, वह एक तरह से मौत के मुँह में चला आया।

वसन्तभानु के हमले की खबर पाकर भास्करवर्मा आगे बढ़ा। मैं उसकी सेना से थोड़ा हटकर घोड़े पर सवार होकर जिधर वसन्तभानु आ रहा था, सीधा उसी की ओर बढ़ा। उसकी सब सेना देखने लगी कि मैं अकेला उसकी ओर चला आ रहा हूँ। इस बात का उन लोगों पर अजीब असर हुआ। सारी सेना के सिपाही कहने लगे— 'हमारी इतनी बेशुमार फौज के मुकाबले में यह जो अकेला बढ़ा आ रहा है, इसका और कोई कारण ही नहीं हो सकता। यह तो साफ ही देवी माता के वरदान का प्रताप है!'

मुझे सामने देखते ही उस सेना के सब-के-सब सिपाही सन्नाटे में आ गए और जहां-के-तहां खड़े रह गए। सब ऐसे मालूम पड़े मानो तसवीर में खिंचे हुए हों।

मैंने आगे बढ़कर वसन्तभानु को आमने-सामने की लड़ाई के लिए ललकारा। वह भी झपटकर आया और तलवार की एक जबरदस्त चोट उसने सीधे मेरे सिर पर की। मैं तलवार चलाना खूब सीखा हुआ था, इस कारण उसका वार मैं बड़ी सरलता से बचा गया और पलक मारते ही एक जवाबी चोट में मैंने वसन्तभानु का सिर काट डाला। उसका मुण्ड धरती पर लुढ़कने लगा।

अब मैं सिपाहियों की ओर मुखातिब हुआ और उनसे मैंने कहा—
"तुममें से जो लोग अब भी लड़ना चाहते हों, वे इकट्ठे ही मेरे साथ आकर लड़ लें। अगर तुम लोग लड़ाई पसन्द न करो तो सब-के-सब इधर चले आओ और राजकुमार भास्करवर्मा के पैरों पर झुककर उन्हें नमस्कार कर लो। अच्छा यही है कि अब तुम सब लोग उनके अपने बन जाओ और तनखाह लेते हुए अपनी-अपनी जगह काम करके चैन की बंसी बजाओ।"

वसन्तभानु के सिपाहियों ने जब मेरी ये बातें सुनीं तो वे अपनी-अपनी सवारियों पर से तुरन्त उतर पड़े और सबने राजकुमार को सिर झुका कर प्रणाम किया। इस प्रकार इन सबने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

इसके बाद वसन्तभानु के अश्मक राज्य को भी मैंने भास्करवर्मा के राज्य में मिला लिया। इस राज्य की देखभाल और रखवाली के लिए अपने विश्वासपात्र कुछ चुने हुए अफसर रख दिए। इधर अश्मक की सब सेनाएँ अब अपनी हो गई थीं, इसलिए उन्हें साथ लेकर हम लोग बरार आ गए। यहाँ आते ही सबने मिलकर भास्करवर्मा का तिलक कर दिया और उन्हें गद्दी पर बिठा दिया। इस प्रकार उसके बाप-दादों का राज्य मैंने उसके हवाले किया। इसके बाद हम लोग सुख-चैन से रहने लगे।

एक दिन राजा भास्करवर्मा अपनी माता वसुन्धरा देवी के साथ बैठे हुए थे। मैं भी वहीं था। अच्छा अवसर देखकर मैंने उनसे कहा कि "बहुत दिनों से मैंने एक खास काम छोड़ा हुआ है; वह जब तक पूरा नहीं हो जाता, तब तक किसी एक जगह जमकर मुझसे नहीं बैठा जा सकेगा। इस-लिए ऐसा करो कि इसे, अपनी बहन को, तुम कुछ दिनों अपने पास ही रखो। मैं अपने जिन आत्मीय बन्धु का पता लगाना चाहता हूँ उनके लिए कुछ दिनों परदेस घूमूंगा। उनके मिलते ही मैं फिर यहाँ लौट आऊंगा।"

मेरी बात सुनकर महारानी ने तो मुझे जाने की राय दे दी, परन्तु भास्करवर्मा कहने लगे—"बन्धुवर, हमारा यह राज्य आपके कारण ही हमें मिला है। यह फैलकर जो इतना बड़ा और विशाल हुआ, यह भी आपकी ही कोशिशों का फल है। आपके बिना तो इस राज्य की बागडोर पल-भर

को भी सँभालना हमारे लिए असम्भव है। फिर आप यहाँ से चले जाने की बातें क्यों कह रहे हैं ?"

मैंने कहा—"राज्य के इन्तजाम के बारे में तुम अपने मन में तनिक भी सोच मत करो। तुम्हारे यहां आर्यकेतु जैसा व्यक्ति मौजूद है। आर्यकेतु मामूली आदमी नहीं है। इन्हें मन्त्रियों में एक हीरा समझो। यह राज्य तो कुछ भी बड़ा नहीं है। ऐसे-ऐसे कई राज्यों का प्रबन्ध-भार वह बड़ी सुगमता से उठा सकते हैं। तुम घबराओ नहीं, राज्य का सब प्रबन्ध ठीक तरह से उनके सुपुर्द करके तब मैं जाऊंगा।"

इस प्रकार मीठी-मीठी और तसल्ली देने वाली बातों से भास्करवर्मा को मनाने का मैंने बहुत प्रयत्न किया, पर वह किसी तरह नहीं माना। महारानी की मति भी तब तक बदल गई। वे भी मुझे जाने देने के लिए राजी नहीं हुईं। इन लोगों के हठ पर और कुछ दिनों के लिए मुझे अपने प्रस्थान का कार्यक्रम स्थगित कर देना पड़ा।

इधर राजा भास्करवर्मा ने एक और काम किया। उन्होंने प्रचण्डवर्मा का उत्कल या उड़ीसा का राज्य सब-का-सब मुझे दे दिया। उस राज्य को लेकर मैंने उसका भी सब इन्तजाम किया। इसका मैंने नये सिरे से प्रबन्ध किया और बड़े अच्छे ढंग पर सब व्यवस्था की। इसके बाद भास्करवर्मा को यहाँ बुलाकर मैंने आपकी खोज में निकलने के लिए उनसे फिर आग्रह किया। अपने प्रस्थान करने की सब तैयारियां भी मैंने कर लीं। इतने में चम्पा से अंगराज सिंहवर्मा का बुलावा आ गया कि हमारी सहायता के लिए आइए। इस निमन्त्रण को पाते ही मैं तुरन्त इधर चला आया। मैं तो यही कहूँगा कि पिछले जन्म में मैंने कोई बहुत अच्छे कर्म किये थे, उन्हीं का यह फल है जो यहाँ आते ही आपसे भेंट हो गई।"

इस प्रकार कुमार राजवाहन को विश्रुत ने भी अपनी आपबीती सुना दी।

उत्तर पीठिका

उपसंहार

उपसंहार

इस समय चम्पा में अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत ये सात राजपुत्र आकर इकट्ठे हो गए थे। उधर पाटलिपुत्र में कुमार सोमदत्त युवराज बनकर राजकाज चला रहे थे। वे अपनी स्त्री वामलोचना के साथ वहाँ आनन्द से दिन बिता रहे थे। उन्हें पहले ही राजवाहन ने कह दिया था कि ज्यों ही दूत भेजा जाय तुम यहाँ चले आना। अब राजकुमार ने अपने कुछ विश्वस्त सेवकों के द्वारा उन्हें भी स्त्री-सहित यहीं बुलवा लिया था। महाराजकुमार राजवाहन स्वयं तो यहाँ थे ही। इस प्रकार दस में से नौ राजकुमार अब तक आकर मिल चुके थे, केवल पुष्पोद्भव उन लोगों के बीच में नहीं थे। ये नौ राजपुत्र मिलकर यहां चम्पा में खूब आनन्दोत्सव मनाने लगे। सबने अपनी-अपनी आपबीती एक-दूसरे को सुनाई।

इस हँसी-खुशी में ये लोग लगे ही थे कि पाटलिपुत्र से महाराज राजहंस का एक खरीता लिये हुए कुछ राजकर्मचारी आ पहुँचे। उन्होंने राजवाहन को प्रणाम करके कहा—"कुमार, यह लीजिए, आपके पिता श्रीमान् महाराज राजहंस ने यह पत्र आपके लिए भेजा है।"

कुमार यह सुनते ही सभा में उठकर खड़े हो गए और उस पत्र के सामने कई बार झुके। इसके बाद बहुत आदरपूर्वक वह पत्र ले लिया, उसे सिर से लगाया, फिर मुहर खोलकर वह पत्र सबको सुनाते हुए पढ़ना शुरू किया। पत्र इस प्रकार था—

"स्वस्ति, श्री महाराज राजहंस पाटलिपुत्र से यह पत्र चम्पा नगरी को भेज रहे हैं। चम्पा में इस समय कुमार राजवाहन आदि जितने राजपुत्र उपस्थित हैं, उन्हें महाराज आशीर्वाद देते हैं और उनके लिए यह आज्ञा-पत्र भेज रहे हैं। महाराज का कहना है कि तुम लोग सब बातें अच्छी तरह सोच-विचारकर और मुझसे सलाह लेकर विदा हुए थे। बाद में यह मालूम हुआ कि किसी जंगल में एक शिवालय के पास सेना की छावनी तुम लोगों ने डाली थी। रात को राजवाहन वहाँ के मन्दिर में शिवजी की पूजा के लिए गये और सवेरा होने पर वे नहीं मिले। इस पर शेष सब राजकुमारों ने यह प्रण किया कि हम सब राजकुमार राजवाहन को साथ लेकर ही राजहंस के चरण छुएँगे, नहीं तो प्राण त्याग देंगे। इस प्रतिज्ञा के बाद तुमने सेना को लौटा दिया था और राजवाहन की खोज में सब-के-सब अलग-अलग दिशाओं को चल दिए थे। हमें तुम लोगों का यह हाल वहाँ से लौटे हुए सैनिकों के मुख से सुनकर मालूम हुआ था। इसे जानकर तुम्हारी माताओं को और हमें असह्य कष्ट हुआ। हम दोनों दुःख के अथाह सागर में डूब गए। इसके बाद हमने निश्चय कर लिया कि मुनि वामदेव के आश्रम में जाकर और उन्हें यह हाल बताकर हम दोनों प्राण त्याग देंगे। इसी के अनुसार उनके आश्रम पर पहुँचकर और उन्हें प्रणाम करके हम खड़े हो गए। मुनिवर तीनों कालों की बात जानने वाले थे; उन्हें हमारे मन की बात मालूम हो गई। हमारे प्राण छोड़ देने का निश्चय समझकर वे कहने लगे—'राजन्, आप इस समय जो करना चाहते हैं वह आपके मन की बात हम ज्ञान बल से पहले ही समझ चुके हैं। सुनिए, आपके ये सब पुत्र कुमार राजवाहन के लिए कुछ दिनों तक दुःख और कष्ट झेलेंगे, इसके बाद इनका भाग्य खुलेगा। तब असाधारण बल और वीरता दिखाते हुए ये लोग चारों ओर दिग्विजय करेंगे और बहुत से राज्यों को अपने अधीन कर लेंगे। सोलह साल के बाद ये सब विजयी राजवाहन को लेकर वापिस आयँगे और तुम्हारे तथा वसुमती के पैर छूकर फिर तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हुए जीवन बिताएँगे। ऐसी हालत में इन लोगों के लिए अपनी जिन्दगी को जोखिम में डालने

की आवश्यकता नहीं है ।' उनकी यह बात सुनकर हमें बड़ी तसल्ली हुई और हम यहाँ लौट आए । तब से लेकर आज तक तुम्हारी माता और हम इसी आशा में जी रहे हैं । जब सोलह साल बीत चुके, तब हम फिर मुनि के आश्रम पर पहुँचे और उनसे कहा कि 'मुनिवर, आपने जितने सालों की मियाद रखी थी वह तो अब पूरी होने को आ गई । वे लोग कहाँ हैं या क्या कर रहे है, इस विषय में क्या कुछ समाचार आपको मालूम हुए हैं ?'

यह सुनकर मुनि कहने लगे—'राजन्, कुमार राजवाहन आदि सब राजपुत्र बड़े-बड़े भयंकर और कठिन शत्रुओं को जीत चुके हैं और दिग्विजय करके चम्पा में आकर इकट्ठे हो गए हैं । उन्होंने इस सारे चक्रवर्ती प्रदेश को जीत लिया है । अब आप ऐसा कीजिए कि अपना एक आज्ञा-पत्र देकर सेवकों को भेजिए और उन्हें बुलवा लीजिए ।'

मुनि के ये वचन सुनकर मैं तुम सबको बुलाने के लिए यह आज्ञा-पत्र भेज रहा हूँ । इसे पाते ही चल दो । अब यदि आने में तुमने जरा भी देर की तो समझ लेना कि अपनी माता वसुमती को और मुझे जीता नहीं पाओगे । तुरन्त ही प्रस्थान कर दो । खाना-पीना हो तो वह भी यहाँ से चलकर रास्ते में ही खा पी लेना ।"

महाराज राजहंस का यह आदेश-पत्र उन सब लोगों ने सिर-माथे चढ़ाया और निश्चय किया कि अब तुरन्त चल देना चाहिए ।

इसके पश्चात् इन राजकुमारों ने जल्दी-जल्दी सब व्यवस्था कर डाली । जिन राज्यों को जीतकर इन लोगों ने अपने अधीन किया था, उनकी रखवाली के लिए काफी तादाद में विश्वसनीय सेनाओं को लगा दिया गया । राज्यों के महत्त्वपूर्ण पदों और ओहदों पर योग्य तथा मातबर कर्मचारी नियत किये गए । कितनी ही सेना रास्तों की देखभाल और रक्षा के लिए लगा दी गई । यह सब कर चुकने के पश्चात् इन लोगों ने अपने पुराने वैरी मालवा के राजा मानसार की खबर लेने की ठानी । यह निश्चय किया गया कि इसके राज्य को कब्जे में करके तब पाटलिपुत्र चलेंगे और महाराज राज-

हंस तथा महारानी वसुमती के चरग छुएँगे।

यह सब तय कर चुकने के बाद सब राजकुमारों ने अपने परिवारों को साथ लिया और एक अच्छी मजबूत सेना लेकर ये लोग मालवराज की ओर बढ़े। उज्जयिनी पहुँचते ही राजवाहन ने एकदम धावा किया। इनके साथ सहायक के रूप में ये सब राजपुत्र थे और नपी-तुली वही सेना थी। उधर मालवा की ताकत का उस समय क्या कहना! महाराज राजहंस की पराजय के बाद से मालवराज के पास अपार सेना हो गई थी। वे अत्यन्त शक्तिशाली समझे जाते थे, परन्तु कुमार राजवाहन की इस छोटी दिखाई देने वाली परन्तु अन्दर से बहुत संगठित और मजबूत ताकत के सामने उनकी कुछ न चली। इधर कुमार ने एकदम हमला कर दिया था। मानसार को समय भी नहीं मिला, वे बड़ी जल्दी हार गए। इसी लड़ाई में वे काम भी आए। राजवाहन की प्रियतमा मानसार की लड़की अवन्तिसुन्दरी यहीं थी। अब राजकुमार ने उसे अपने साथ ले लिया। मालवा के मन्त्री चण्डवर्मा थे। उन्होंने राजकुमार पुष्पोद्भव को उनके परिवारसहित जेल में डाल रखा था। परन्तु चण्डवर्मा चम्पा में मारे ही जा चुके थे। इधर मालवा के हार जाने पर वहाँ के मौजूदा मन्त्री के लिए पुष्पोद्भव को तुरन्त छोड़ देना आवश्यक हो गया। राजवाहन ने कुमार पुष्पोद्भव को भी उनकी पत्नी सहित अपने साथ ले लिया। मालवा का राज्य उन्होंने अपने कब्जे में कर लिया। इसकी रखवाली के लिए कुछ फौज रख दी और मन्त्री भी नियत कर दिए। यहाँ की बची हुई सेना उन्होंने अपने साथ ले ली। इस प्रकार कुमार राजवाहन को अगुआ करके सब राजपुत्र, एक अच्छे विशाल सैन्य दल को संग लिये हुए पाटलिपुत्र आये और सबने महाराज राजहंस तथा महारानी वसुमती के चरण छुए।

राजा-रानी दोनों जब इन सब दस-के-दस पुत्रों से मिले तो उनके आनन्द का वारपार न रहा। दोनों बहुत प्रसन्न और सुखी हुए।

कुछ दिनों तक सब राजपुत्र पाटलिपुत्र में इकट्ठे रहे। इसके बाद धीरे-धीरे सबको अपने-अपने राज्यों में जाकर वहाँ रहने की इच्छा हुई।

मुनि वामदेव ने सबकी इस अन्दरूनी इच्छा को ताड़ लिया और राजहंस तथा वसुमती के सामने राजवाहन आदि दसों राजकुमारों को बुलाकर उन्हें आदेश दिया कि अब तुम सब लोग इकट्ठे ही अपने-अपने राज्यों को चले जाओ और न्यायपूर्वक वहाँ का शासन करो। जब फिर तुम्हारी इच्छा हो तब आकर राजा-रानी के चरण छू जाया करना।

इस पर सब राजपुत्रों ने मुनि के कहने को सिर माथे किया और राजा-रानी को नमस्कार करके विदा हो गए। अपने-अपने राज्यों में आकर इन सबने फिर सेनाएँ तैयार कीं और ये लोग फिर देश-देशान्तरों को जीतने के लिए चल दिए। जब पृथ्वी पर सब तरफ के सभी राज्य इन्होंने जीत लिए, तब ये फिर पाटलिपुत्र आये। इन सबने अलग-अलग अपना-अपना हाल मुनि वामदेव को सुनाया। राजा और रानी ने भी इसे बड़े चाव से सुना। जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके पुत्रों ने ऐसी वीरता दिखलाई और इतने-इतने कठिन काम किये तो दोनों को बेहद खुशी हुई।

अब महाराज राजहंस ने हाथ जोड़कर मुनि वामदेव से निवेदन किया कि "भगवन्! यह आपकी ही कृपा का फल है जो हमें इतना सुख नसीब हुआ। हमारे मन में जितनी चाह थी उससे भी कहीं अधिक हर्ष और आनन्द हमें मिला है। आज अपने जी के परम सुख और सन्तोष को मुख से पूरी तरह कह सकना भी हमारे लिए कठिन है। अब इसके बाद तो हमारा आपके चरणों के समीप रहना ही उचित मालूम पड़ता है, इसलिए हम वानप्रस्थ आश्रम में आना चाहते हैं। अब कुछ अपनी आत्मा की उन्नति का उपाय कर सकें, यही हमारी मन की कामना है। आप कृपा करके ऐसी व्यवस्था कर दें कि पाटलिपुत्र के और मानसार वाले मालवा के राज्यों पर तो राजवाहन का तिलक कर दिया जाय और बाकी राज्य अन्य नौ राजपुत्रों को दे दिये जायँ। हर एक राजपुत्र का अपना-अपना राज्य पहले से निश्चित ही है। नये सिरे से उसमें कुछ नहीं करना है। राजवाहन की आज्ञा में ये सब पहले से ही चलते हैं; सबमें एक-सी सलाह-सुमत भी है। इस प्रकार चारों समुद्रों से घिरी हुई इस सारी पृथ्वी का ये लोग राज्य भोगें। जहाँ

कहीं कोई विघ्न-बाधा आवे, उसे एक-दूसरे की मदद से दूर करते रहा करें। बस इतना ही मैं चाहता हूँ। आप इसकी व्यवस्था कर दीजिए।"

राजकुमारों ने जब महाराज की यह वानप्रस्थ लेने की बात सुनी तो सबने एक सुर से विरोध किया। कहने लगे कि हम महाराज को जंगल में नहीं जाने देंगे। जब राजपुत्रों का यह आग्रह मुनि ने देखा तो बोले—"पुत्रो! तुम्हारे पिता जिस राह पर चलना चाहते हैं, वह अब उनकी इस आयु के लिए ठीक ही है। उन्हें शारीरिक कष्ट किसी प्रकार का नहीं होने पावेगा। वे मेरे आश्रम पर रहेंगे। वहाँ और बानप्रस्थी भी आ-आकर रहते हैं। अब तुम लोग इन्हें रोको मत। आश्रम पर रहते हुए ये भगवान् का भजन बहुत अच्छी तरह कर सकेंगे। यहाँ तुम्हारे पास बने रहने पर अब इनसे तुम्हें कोई विशेष सुख भी नहीं मिल पावेगा।"

मुनि वामदेव ने उन्हें जब इस प्रकार समझाकर कहा और आखिरी फैसला-सा कर दिया तो उन राजकुमारों ने महाराज के बानप्रस्थ न लेने का हठ छोड़ दिया। सब लोग उनकी बात मान गए।

इसके बाद महाराजकुमार राजवाहन का पाटलिपुत्र में राजतिलक हो गया। उनकी अनुमति लेकर उनके साथी राजपुत्र अपने-अपने राज्यों को चले गए। ये लोग बड़ी अच्छी तरह अपने राज्यों का प्रबन्ध करते रहे। जब कभी इच्छा होती तो ये आकर महाराज और महारानी के दर्शन कर जाते। सबका एक-दूसरे के पास आना-जाना बराबर जारी रहा।

इस प्रकार अपने-अपने राज्यों में अच्छी तरह जमकर इन दसों राजकुमारों ने पृथ्वी-भर पर राज्य किया। राजवाहन इनमें सबसे बड़े और सबके मुखिया थे। समय-समय पर सब राजपुत्र उन्हीं से सलाह लेते रहते और न्यायपूर्वक राजकाज चलाते। सबमें परस्पर सुमति और बड़ा एका रहा। इस सलाह और एकता का यह फल हुआ कि उन्होंने चारों ओर फैले हुए इतने भारी राज्य पर हुकूमत भी की और ऐसे-ऐसे सुख-आनन्द उठाए कि जिनका मिलना इन्द्र आदि देवताओं के लिए भी बहुत कठिन था।

⊙⊙⊙⊙⊙